डा. निगम शर्मा
एम.ए., पी.एच.डी.

ऋक्सूक्त

मंजरी

स्टूडेन्ट स्टोर, बरेली

ऋक्-सूक्त मञ्जरी

(RIKH-SUKTA-MANJARI)

वैदिक-साहित्य विषय को लेकर भारत के प्रमुख-विश्वविद्यालयों के
पाठ्य-क्रमों के अनुरूप ऋक् सूक्तों की सरल-सुबोध
व्याख्या तथा अथर्व-वेद का पृथिवी-सूक्त,
व्याख्या सहित।

व्याख्याकार--

डा० निगम शर्मा, एम० ए०, पी०-एच० डी०,
साहित्याचार्य, स्वर्ण-पदक प्राप्त,
रीडर-अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
गुरुकुल-कांगड़ी, विश्वविद्यालय,
हरिद्वार [उ० प्र०]

स्टूडेन्ट स्टोर, रामपुर बाग, बरेली

प्रकाशक :

स्टूडेन्ट स्टोर,

रामपुर बाग, बरेली।

प्रथम संस्करण १९८२

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये नियन्त्रित मूल्य के कागज पर मुद्रित।

मूल्य :

मुद्रक :

दया प्रिंटिंग प्रेस खुर्जा।

प्राक्कथन

वेद-साहित्य की सांस्कृतिक-गरिमा को देखते हुए विश्व के विश्वविद्यालयों ने यथा रुचि उचित पाठ्य-क्रम को अपनाया है। बीस वर्ष से अध्यापन करते-करते अपने अनुभव तथा छात्रों की कठिनाई के समाधान के लिए यह पाठ्य-क्रम मैंने बनाया है। आशा है, छात्र तथा विद्वान् विद्या-रसिक उपाध्याय महानुभाव इस ऋक्-सूक्त-मंजरी को अपना प्यार तथा सहानुभूति देंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अनेक विपत्तियां तथा कठिनाइयां आयीं पर आयुष्मान अजय कुमार जी ने बड़ी धीरता और सहृदयता के साथ उन समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। मैं उनकी सराहना करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि उनका 'स्टुडेंट स्टोर' उत्तर-भारत में अपना श्रेयस्कर स्थान प्रकाशन-संस्थान के रूप में प्राप्त कर लेगा।

इस पुस्तक के छपने में अनेक अशुद्धियां आ गयी हैं। मेरी व्यस्तता तथा स्थानीय समस्यायें इनमें प्रमुख कारण हैं। प्रार्थना करता हूँ, विद्वान् और कृपालु पाठक उन अशुद्धियों से तथा उचित परामर्श से कृतार्थ करें ताकि दूसरी आवृत्ति में वे दोष दूर किये जा सकें तथा इस ऋक्-सूक्त-मंजरी को प्रगुण-गन्ध से सुरभित बनाया जा सके।

—निगम शर्मा

विषयानुक्रमणी

ज्ञान - 10 - 71
सुदासयुद्ध 7 - 83
[illegible] - 10 - 98
नदीसूक्त - 3 - 33
धनान्नदान - 10 - 117
श्रद्धा - 10 - 151
वरुण - 7 - 88
सूर्य - 1 - 115

[सूर्य तथा सुदासयुद्ध को [illegible]]
अश्विनी 7 - 71

आमुखम्

ऋग्वेद विश्व-साहित्य में अपना पूज्य एवं प्रतिष्ठित स्थान रखता है। भारतीय-संस्कृति का आदि स्रोत होने के कारण भारती-भाषा और पूजा के लिए प्राण-प्रद प्रतिष्ठा का हेतु है। इसी कारण भारत के सभी विश्वविद्यालयों ने संस्कृत-विभाग में ऋग्वेद को प्रमुख-स्थान दिया है। विश्व के अन्य विश्व विद्यालयों में भी ऋग्वेद के पठन-पाठन की विशेष व्यवस्था है। भाषा-विज्ञान, साहित्य-समीक्षा, रस-सिद्धान्त, नट्‌य-विद्या, गणित-काण्ड, उपनिषत्, ज्योतिष्, दर्शन, समाज-शास्त्र आदि विषयों को लेकर गहनता के साथ अब तक ऋग्वेद के अध्ययन तथा गवेषणा में जिज्ञासा वृत्ति रही है।

ऋग्वेद से संकलित इन सूक्तों में उत्तर भारत के प्रायः सभी विश्व-विद्यालयों के पाठ्य क्रम को अपनाकर रक्खा गया है। मंत्र-व्याख्या में भारतीय परम्परा के प्रमुख भाष्यकार सायणाचार्य, ऋषिदयानन्द का विशेष ध्यान रक्खा गया है। मंत्रार्थ को छात्रों के लिए सुखद—सरल भाषा में किया गया है। जहाँ कहीं कठिन अपरिचित से शब्द आये हैं उनकी निरुक्त-प्रक्रिया का सम्मान करते हुए अर्थ निकाला गया है। टिप्पणी में व्याकरण-प्रक्रिया से व्युत्यत्तिलम्प अर्थ का निर्देश किया गया है और हिन्दी में मन्त्रार्थ को अच्छे ढंग से समझा दिया गया है। मत्रों के ऋषि, देवता और छन्दों पर भी संक्षेप में टिप्पणी दे दी गई है। छात्रों की वेदाध्ययन की ओर रुचि और प्रवृत्ति हो, इस कारण भाषा-प्रवाह और सरसता का पूरा ध्यान रक्खा गया है और दुरूह वाक्यों को सरल कर दिया है।

गौ, गातु, स्वसर, दोषावस्तः आदि ऐसे शब्द हैं जिनकी प्रकरण, देवता आदि विषयों को देखते हुए मंत्रार्थ की संगति में अर्थ किया गया है इससे सहृदय पाठक को प्रसन्नता और सन्तोष होगा।

पाश्चात्य व्याख्याकार मैक्डानल, पटिर्सन ग्रिफिथ आदि के उपयोगी विचारों को यत्र तत्र स्वीकार किया गया है पर कहीं-कहीं अनभिमत विचार को सकारण अस्वीकार कर दिया गया है। गौ का अर्थ केवल 'गाय' नहीं है। कालिदास ने रघुवंश में गौ शब्द का 'केश' अर्थ में प्रयोग किया है। अथास्य गोदान विधेरनन्तरम्' रघु २—३३, टीकाकार मल्लिनाथ ने कहा है गावो, लोमानि केशा दीयन्ते खण्डयन्ते इति गोदान विधिः केशान्त संस्कारः। इसी प्रकार भारतीय परम्पर में गोपाल तथा गोस्वामी (तुलसीदास) में महान् अन्तर है। निरुक्तकार यास्क ने किरण, वाण पृथ्वी, आदि विशाल अर्थों में गो शब्द का प्रयोग उदाहरण के साथ प्रदर्शित किया है।

(१) मंत्रार्थ-प्रक्रिया

बृहद्देवता में १–८० पर लिखा कि नाम को यथावत् जाने-समझे बिना मंत्रार्थ अधिगत नहीं हो सकता—'न हि नामान्य विज्ञाय मंत्राः शक्या हि वेदितुम्'।

इस मंत्रगत रहस्य को जानने के लिए महर्षि यास्क ने जो शैली अपनायी है तथा पदगत रहस्य को अभिव्यक्त करने की जो दिशा दी है वह गूढार्थ के चिन्तन में दत्त चित्त मनीषियों के लिए उद्घाटनद्वार का कार्य करती आ रही है। भारतीय परम्परायोग-वेदान्त की प्रक्रिया, पुराण-मन्थन, आयुर्वेद-ज्योतिष् व्याकरण आदि सम्प्रदाय, काव्य-साहित्य मर्म आदि विषय इस महान् वेद-राशि की किंचिद्-उन्मेष-विवक्षामात्र है। हम यहाँ कुछ शब्दों की अर्थ-मीमांसा पर प्रकाश डालना इस प्रक्रिया की दिशा में उचित समझते हैं—द्यौः शब्द दिन, प्रकाश, द्युलोक आदि का बाचक है- लक्षणा वश स्वर्ग, आकाश आदि भी समझा जा सकता है, दीप्त, विजिगीषु शत्रु के लिए भी प्रयोग हुआ है। ४–८७–४ में 'अश्वैः के साथ 'नृभिः' प्रयोग हुआ है। अतः गतिशील मानव अर्थ अधिक उचित होगा। ५–५६–१ में 'अश्वान्' के लिये सायण ने 'उदय संघातान्' अर्थ सुसंगत ही किया है। इसी प्रकार मेघ के लिए 'वृक्ष' शब्द का प्रयोग ५–५४–६ में हुआ है। २–३४–६ में मेघ के लिए 'धेनु', १०–२७–७ में यतयः प्रयोग हुआ है। इस प्रकार ऋग्वेद में नाना प्रकार से विविध अर्थों में शब्द प्रयुक्त हैं। धातुज-अर्थ की मीमांसा के साथ लाक्षणिक तथा प्रकारणिक दृष्टिकोण को भी व्यवस्थित तथा सुरक्षित रखना चाहिये।

उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस प्रकार की अर्थ-मीमांमा की गई है—वाग् वा अग्निः, प्राणा वा आदित्याः, अहम् अन्नम्, पुरुषो वा यज्ञः, जारः अग्निः आदि प्रयोग कुशल मानव बुद्धि को एक लम्बे समय से आमंत्रित करते आ रहे हैं। इस समाज नेतोमुख वृत्ति का अभिप्राय यही है कि छात्र अथवा उपाध्याय की अपनी उपासना-निष्ठा क्या है? और कहाँ तक है। वाक् की महिमा और ममत्व में असक्त व्यक्ति के लिए यही परम उत्कृष्ट उपदेश है कि इस अनादिनिधना वाक् को ब्रह्माभिन्न रूप में अभ्यास करें पर पुनः प्रश्न उठता है कि यह वाक् भी संकल्प रूप में मन में अधिष्ठित है अतः 'मनोवा ब्रह्म' की श्रुति का प्रतिसचार हुआ और यह मन कहां अधिष्ठित है? परे प्राण में। अतः ब्रह्म तथा विशाल होने से प्राण ही ब्रह्म हुआ और फिर यह तो कहना ही है कि 'परे ब्रह्मणि सर्व एकी भवन्ति।'

(२) वैदिक-भाषा

भाषा—रूप की दृष्टि से लौकिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत में कुछ अन्तर है। हमें सावधानी से देखने पर यह भेद अच्छी प्रकार से समझ में आ जाता है और अभ्यास करते रहने से वेद-साहित्य सुगम हो जाता है। वैदिक भाषा बहुत ही सरल, सुगम्य और स्वाभाविक है। लयात्मक ढंग से गाया जा सकता है। चिन्तन करते रहने से वेद-रस का माधुर्य अपने आप प्रकट होने लगता है।

वेद—साहित्य के पाठकों की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए कुछ सामान्य नियम निवेदित हैं—

देवाः, जनाः के स्थान पर देवासः, जनासः आदि का प्रयोग भी होता है। संस्कृत के समान प्रायः सन्धियाँ हो जाती हैं पर कहीं-कहीं सन्धि नहीं भी होती—तितउ, प्रउग, गो ओपशा, गो ऋजीक आदि। संस्कृत में तुमुन् के स्थान पर 'असे, असेन्, कसे, कसेन्० आदि अनेक प्रत्यय लग सकते हैं। ग्रामं गन्तुम् के स्थान पर गन्तवे, गमध्यै, सर्तवे आदि प्रयोग मिलते हैं। अलङ्कृत भाषा में बोलने के लिये न, चित्, इव, नु आदि प्रयोग हुए हैं। वाक्यों में सौन्दर्य लाने के लिये किल, स्मत्, कुवित्, नु, हिं, सवट् आदि प्रयोग किये गये हैं। उपसर्गों का प्रयोग क्रिया से पूर्व भी हो सकता है और उपरान्त भी ; और कहीं-कहीं व्यवधान देकर भी प्रयोग हुए हैं। पुल्लिंग द्विवचन के प्रयोग में लोक-भाषा में रामौ, बालकौ आदि प्रयोग बनते हैं पर वेद में कहीं-कहीं 'आ' ही रह जाता है—दस्रा, नासत्या, जत्रिष्ठा, रोहिता आदि। संस्कृत भाषा के सभी नियम लगते भी हैं और नहीं भी लगते। 'त्वा' के स्थान पर 'त्वाय' हो जाता है—दत्त्वा, दत्वाय। कहीं-कहीं 'त्वी' प्रयोग भी होता है—स्नात्वी, पीत्वी (स्नात्वा, पीत्वा)। क्रिया के बहुवचन 'मस्' के स्थान पर मसि हो जाता है—भञ्जयामः, दीपयामः = भञ्जयामसि, दीपयामसि) ध्वम् के स्थान पर ध्वात् प्रयोग भी होता है—वारयध्वम्, वारयध्वात्। त के स्थान पर तात् का प्रयोग, जैसे कृणुत—कृणुतात्, खनत-खनतात् कहीं-कहीं पर तप्, तनप्, तन, थन आदि प्रयोग मिलते हैं—शृणुत-शृणोत, सुनुत-सुनोत, धत्त-दधातन, जुषत—जुजुष्टन, यदिच्छत—यदिष्ठन आदि। कहीं-कहीं तृतीया लुप्त सी दीखती है—धीती, मती, सुष्टुती—धीत्या, मत्या, सुष्टुत्या।

क्रियाक्षर कहीं-कहीं लुप्त से रहते हैं—तत्त्वा यामि (याचामि) द्वितीय बहुवचन आन् के स्थान में आत् का प्रयोग जैसे ताद् ब्राह्मणात्—तान् ब्राह्मणान्। यूयं, वयम् के स्थान पर 'या' का प्रयोग जैसे—उरुया, धृष्णुया = उरुणा, धृष्णुना। कहीं-कहीं 'इया' भी जैसे—उर्विया, दार्विया—उरुणा, दारुणा। सुक्षेत्रिया, सुगात्रिया—सुक्षेत्रिया, सुगात्रिणा। भाषा में घ्नन्ति का प्रयोग होता है पर वेद में 'घ्नन्ति'

का भी । शेते के स्थान पर शयते का भी प्रयोग होता है। वेद में एक पृथक् लेट् लकार भी होता है—भवति, भवाति, जोषिषत्, तारिषत् आदि। अकरत्, अमरत्, अदरत् (अदारीत्) आदि प्रयोग भाषा सौष्ठव को प्रकट करते हैं। लुङ्, लङ् और लिट् प्रत्यय प्राय: सभी कालों में प्रयुक्त होते हैं। 'स दाधार पृथिवीम्' आदि प्रयोगों में क्रिया-व्यापार मात्र लिया जाता है। कृत्यार्थ प्रयोगों में तवै, केन्, केन्य और त्वन् आदि प्रत्यय होते हैं— अन्वेतवै—अन्वेतव्यम्, परिधातवै—परिधातव्यम् नावगाहे—नावगाहितव्यम्, दिदृक्षेण्य:—दिदृक्षितव्यम्, शुश्रूषेण्य:—शुश्रूषितव्यम्, कर्त्वम्—कर्त्तव्यम्, नावचक्षे—नावख्यातव्यम्। संस्कृत में 'सदा' के स्थान पर सनम्, सदमित्, सना आदि प्रयोग होते हैं। सभ्य के स्थान पर सभेय का भी प्रयोग होता है। नपुंसक लिंग बहुवचन में वनानि—वना, धनानि—धना आदि प्रयोग भी होते हैं।

इस प्रकार धातु, संज्ञा और पदों के लिंग, वचन और कारकों के दृष्टि से बहुल प्रयोग हुए हैं। इस व्याख्या के साथ स्थान और अवसर देख कर ऐसे शब्दों के वैदिक रूप पर संकेत दे दिया गया है। पाणिनि, यास्क तथा प्रातिशाख्य ग्रंथों में इन पर विस्तार से विचार हुआ है।

(३) वैदिक वाङ्मय

वैदिक साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान तथा मञ्जुल भण्डार है। चारों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) ब्राह्मण-ग्रन्थ (ऐतरेय, शतपथ, ताण्डय, गोपथ) उपवेद (अर्थवेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद और आयुर्वेद) आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषदें आदि के रूप में हमारा विशाल वैदिक-साहित्य विस्तृत और अलंकृत है। चारों वेदों को अङ्ग और शाखाओं सहित अध्ययन की परम्परा पुराकाल से चली आ रही है।

ऋग्वेद का स्वरूप

ऋग्वेद १० मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मंडल सूक्तों में तथा सूक्त मंत्रों में व्यवस्थित हैं। पूरे ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं। इन सूक्तों में प्राय: एक गोत्र अथवा परिवार के सदस्यों द्वारा दृष्ट-प्रचारित मंत्र हैं। आरम्भ के मण्डलों में मधुच्छन्दा, गृत्समद, कण्व, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ और इनके वंशज ऋषि हैं।

मंत्रों में नाम की व्याख्या क्रिया-व्यापार को देखते हुए धातुज-व्याख्या के साथ करनी चाहिये। स्वर, संस्कार, अर्थ-स्थिरता के साथ मन्त्रार्थ स्फुट होता है।

ऋग्वेद को अष्टक, अध्याय और वर्ग के रूप में भी विभाजित किया गया है पर इस रूप का प्रचार कम हुआ है। शाकल और वाष्कल ऋषियों को उक्त प्रकार से ऋग्वेद को विभाजन की प्रसिद्धि मिली है।

ऋग्वेद की भाषा अतीव सरल, सरस तथा प्रभावोत्पादक है। छन्द, लय, स्वरों के आरोह-अवरोह में भाषा का यान्त्रिक सौष्ठव अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रत्येक मंत्र तन्त्री स्वर के साथ अनुरूप स्वरों में गाया जा सकता है। प्रत्येक छन्द का अपना अनुध्वनित स्वर है।

काव्य सौन्दर्य—काव्य सौंदर्य की दृष्टि को "ऋग्वेद में काव्य-तत्त्व" ग्रन्थ में अभिव्यक्त किया गया है। अन्य भी पूर्व तथा पश्चिम के गहन विवेचकों ने ऋग्वेद के काव्य तत्व पर प्रकाश डाला है। उपाख्यान कथोपकथन, दूत-काव्य, प्रकृति-चित्रण, नायकवाद आदि की दृष्टि से ऋग्वेद एक रत्नाकर ग्रन्थ है। सरमा-पणि संवाद, उर्वशी—पुरुखा, दाल्भ्य, अगस्त्य—लोपामुद्रा, विश्वामित्र—नदी सम्वाद, अदिति—इन्द्र संवाद आदि बहुत ही गहन-स्थान साहित्य-मर्मज्ञों के समक्ष रखते हैं।

संग्राम भूमि में असुरों के साथ भयावह युद्ध में अदिति अपने पुत्र इन्द्र को प्रोत्साहन देती हुई कहती है—'पुत्र ! सावधान रहना, देवगण तुम्हें छोड़ते जा रहे हैं—

अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्मन्
सखे विष्णो वितर विक्रमस्व ॥ ४·१८·११

कितना ओजस्वी बन्ध है ? पर्जन्म सूक्त, इन्द्रसूक्त इस प्रकार के ओजस्वी वर्णन के सुन्दर उदाहरण हैं। मरुत्सूक्त, अग्निसूक्त, वरुणसूक्त तथा उषः सूक्त में काव्य-सौष्टव का अतीव मार्मिक-स्पर्श मिलता है। प्रथम मण्डल के ६५ से ७८ तक के सूक्तों में उपमा-चमत्कार अतीव सजीव है।

स्वर संस्कार—वेदाध्ययन में स्वरों का मुख्य महत्त्व है। बहुत से शब्द स्वर महिमा के कारण अर्थान्तर में अतिक्रमण कर जाते हैं। एक भ्रातृव्य शब्द भतीजा तथा शत्रु वाचक केवल स्वर-महात्म्य से जाना जाता हैं। यदि स्वारित भ्रातृव्य शब्द है तो भतीजा अन्यथा आद्युदात्त होने पर भ्रातृव्य शत्रु वाचक होगा। इसी प्रकार कर्त्ता (लुट लकार=कल करेंगे) तथा कर्त्ता (तृच्=करने वाला)। गर शब्द विषवाचक अन्तोदात्त है और जलवाचक गरम् आद्युदात्त रहेगा। घञान्त प्रत्यय प्रायः अन्तोदात्त होते हैं, त्यागः, रागः, पाकः। वेग, वेद, वेष्ट और बन्ध शब्द करण में अन्त

दात्त तथा भाव और अधिकरण में आद्युदात्त रहेंगे। चित् प्रत्यय वाले समुदाय को अन्तोदात्त होगा मेदुरः, उच्चकैः, बहुपटुः। सु के अनन्तर क्त प्रत्यय अन्तोदात्त होता है—सुकृतम्।

जिस पर स्वर विधान किया जाय, उसे छोड़कर शिष्ट पदों में अनुदात्त होता है। नीचे पड़ी रेखा लगाकर (क) हम अनुदात्त की सूचना देते हैं। जहाँ पर ऊपर खड़ी लकीर लगी हो उसे स्वरित (क) कहते हैं। तित् प्रत्ययान्त स्वरित होता है कार्यम्; चिकीर्ष्यम्। ञित् और नित् प्रत्यय आदि उन्दात्त होते हैं—गार्ग्य।

निवास वाचक क्षय शब्द आद्युदात्त होता है पर विनाश अर्थ में अन्तोदात्त। क्षयः।

विशेष विवरण तथा जानकारी के लिये फिट् सूत्र तथा पाणिनि मुनि की अष्टाध्यायी के स्वर विधायक सूत्रों से सहायता लेनी चाहिये।

एक देवोपासना

एक देवपासना—ऋग्वेद में विधि देवों के नाम आते हैं। इससे बहुत से पाठकों को चाहे वे इस देश के हो अथवा अन्य देश के, एक भ्रान्ति-सी हो उठती है कि वेदों में नाना देवों की उपासना-पद्धति है।

वास्तव में ऐसा नहीं है। वस्तु-महात्म्य को देखकर वस्तुगत गुण का ख्यापन ही वेद को इष्ट रहा है। इस प्रकार वस्तुगत सौंदर्य अथवा वस्तु निष्ठगुण का सूक्ष्म-निरीक्षण करा देना ही इष्ट रहा है पर साथ ही वह भी इष्ट है कि उस वस्तु में जो कुछ वैभव है वह एक ब्रह्म की ही विभुता का परिचायक है। सुरेश्वराचार्य ने कहा है कि यह अस्ति-भाति-प्रीणाति रूप ब्रह्म के ही अस्ति-भाति प्रीणाति रूप का अनुव्याख्यान है। 'तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगल मूल' कह कर भाषा कवियों ने भी इसी तथ्य को दुहराया है। स्वयं ऋग्वेद में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' १—१६४—४६ ऋष्टि, मित्र, इन्द्र, वरुण आदि रूपों एक ही ब्रह्म की उपासना की प्रक्रिया को सिद्ध दर्शाया गया है। १०—९०—९ में भी यही प्रतिपादित किया गया है कि उसी यज्ञ रूप परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामदेव तथा अथर्ववेद की उपस्थिति मानी गयी है।

बृहदारण्यक उपनिषद् १—४—६ में समझाया गया है कि 'यह जो कहा गया है कि, "इसे यजन करो, इसकी पूजा करो, यह एक-एक की पूजा नहीं है। यह तो एक उसी अखिलाधार की पूजा है।"

मंत्रार्थ--निर्वचन

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहु—
नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं—
शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥ ऋ' १०-७१-५

मंत्रार्थ में शब्द प्रक्रिया की वैज्ञानिक गति-विधि तथा प्रकरण-परम्परा के प्रति आदर बुद्धि के साथ व्याख्या करनी चाहिये। षडङ्ग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष् आते हैं। अपने-अपने क्षेत्र में इनका महत्व है। और इनका प्रगुण-ज्ञान वेदार्थ की समीक्षा में संगत आधार प्रस्तुत करता है। वेद (४) अङ्ग (६) पुराण, मीमाँस, धर्मशास्त्र तथा न्याय (४)=१४ इन चतुर्दश विद्याओं में कुशल पुरुष को ही प्रवीण कहा गया है। वैदिक ऋषि शरीर को ही वीणा (वाण) मान कर चलते हैं। अति कर्षण से वीणा टूट जाती है और अकर्षण से शिथिल पड़ जाती है। अच्छी वीणा तन्त्रीलय समन्वित होकर गन्ध वं बलिका की भाँति कल-मधुर आलाप से गृह को पूजित और गुंजारित करती है इसी प्रकार नियम-बद्ध संयत शरीर ऐश्वर्य सम्पन्न तथा अध्यात्म-रस से पूजित और पूरित होकर गुणानुरणन में अन्तः करण को पवित्र बनाता है।

'सखिविदं सखायम्' (तै० आ० २—१५) में वेद-मंत्र को सखा कहा गया है। वेद रूप वाणी की मैत्री में स्थित होकर स्थिरता के साथ अर्थामृत का पान माना गया है। वेद वाणी ही देवों के साथ दिव्य-मैत्री का लाभ दिलाती है। पीतामृत व्यक्ति ही दिव्यत्व को प्राप्त करने में आनन्दित पौरुष प्राप्त करता है। ऐसे सभा-प्रगल्भ व्यक्ति को 'वाजिनः' (वाचाम् इनाः ईश्वराः वाजिनाः, तेषु वाजिनेषु) कहा गया है। अन्य सभी वाणियाँ पुष्प-फल रहित लताओं के समान रुक्षता, नीरसता और समाज में, शुष्कता उत्पन्न करती हैं। वागर्थ में सन्निविष्ट धर्म ही वाणी का पुष्प और ब्रह्म-ज्ञान ही उसका फल है। सामान्य रूप से भी वाग्-लता का पुष्प-स्थानीय शब्द और अर्थ उसका फल है। जिस प्रकार पुष्प फलोत्पादक हेतु है उसी प्रकार वेद के वचन से धर्म-ज्ञान उत्पन्न होता है और वही धर्मज्ञान ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा की भावना उत्पन्न करता है। 'यज्ञ दान तपः कर्म पावनानि मनीषिणाम्' कहकर गीता ने भी इसी अनुष्ठान की प्रतिष्ठा की है। जिस प्रकार फल तृप्ति का हेतु है इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान भी कृतकृत्यता का निष्पादक है। इस प्रकार के पुष्प-फल से रहित व्यक्ति अपनी माया-धेनु के साथ विचरण करता है। नव-प्रसूत गौ प्रीति का प्रीति पालन करने से धेनु (धिनोति इति) कहलाती है। केवल उलटे-सीधे पाठ मात्र करने वाले व्यक्ति तो माया-गौ के साथ विचरण करते हैं। यह गौ वास्तविक गौ नहीं है। यह तो इन्द्र जाल वाले व्यक्ति के द्वारा रचित कपट रूप गोसदृश है। इस माया-गौ से परम पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। न तो यथार्थ धर्मफल मिलता है और न तो ब्रह्म-ज्ञान की निष्पत्ति ही हो पाती है।

व्याकरण शास्त्र और निरुक्त शास्त्र शब्दार्थ निरुपण में बहुत सहायता करते हैं। निर्वचन के साथ-साथ देवों के विषय-विवेचन में यास्क ऋषि ने बहुत अच्छे ऊंचे आधार प्रस्तुत किये हैं। इसी कारण आचार्य शंकर ने निरुक्त-शास्त्र की देव-शास्त्र कहकर सराहना की है। छन्दः शास्त्र तथा काव्य-शास्त्र के लिए भी प्रेरणप्रद स्रोत वेद से अधिगत होते हैं।

धर्म—देवों के विषय में श्रद्धावनत होकर उनकी स्तुति-उपासना, यज्ञ-सम्पादन ही ऋग्वेद का मुख्य-विषय है। मंत्रों के जहां स्तुति-विधान किया गया है वहाँ इस बात की भी प्रेरणा मिलती है कि उन-उन देवों के गुणों पर ध्यानानुचिन्तन किया जाय। इससे व्यवहार की भी दीक्षा मिलती है। सत्य-सम्पादन तथा उनके पालन के लिए ऋग्वेद के ऋषि अधिक तत्पर तथा जागरूक दीखते हैं। ४-२४-९ में कहा गया है कि मान लीजिये कोई व्यक्ति अधिक मूल्य देकर तुच्छ-स्तर का वस्त्र क्रय करके ले गया मार्ग में वह सोच में पड़ जाता है कि यह सौदा तो घाटे का रहा। अब वह पुनः उस वस्तु को लौटा कर उत्तम वस्त्र पाने की इच्छा से दुकान पर जाता है। ऋग्वेद का कहना है कि अब कुछ नहीं हो सकता। पहले ही देख-परख तथा चयन करके वस्त्र आप ले गये थे अब उसे परिवर्तन नहीं किया जा

सकता । अर्थान्तरन्यास के माध्यय से वेद-सूक्ति है—दीन हो या दक्ष, अपनी-अपनी वाणी का सम्मान तो करना ही चाहिये । मंत्र है—

भूयसा वस्नमचरत्कनीयो—
ऽ विक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्—
दीना दक्षा विदुहन्ति प्रत्राणम् ।। ऋ० ४·२४·६ ।।

ऋग्वेद की यह मान्यता है कि सोम--पान करने से अपूर्व आनन्द की यह तथा अमरता की प्राप्ति होती है । देव गण ऋषियों द्वारा सम्पादित यज्ञ में सोम-रस का पान करते हैं और ऋषिगण अपनी मनीषा से उमा-सहित महेश्वर (उमया सहितं सोमम्, उमया सहितं महेश्वरस्य अनुध्यानम्) के आनन्द दयान चित्तन में सोम-रस का आनन्द लेते हैं । देवगण सदा मानव के उपकार में संलग रहते हैं । ओषधि-वनस्पतियों में रस भरना, वर्षा तथा पर्वतीय नदियों द्वारा कृषि को उपजाऊ बनाना, पृथ्वी को रोग-शोक से मुक्त रखना, हानिकारक वस्तुओं और शक्तियों का निवारण करना तथा मनुष्य को प्रेय-श्रेय से सम्पन्न करना उनका काम है । मनुष्य भी अपने शारीरिक अभ्मुदय, मानसिक विकास तथा आत्मिक शान्ति एवम् आनन्द के लिए इन वैदिक शक्तियों का सहारा लेते हैं । एक ही विश्वविधायिनी परा शक्ति के अनत्र रूप में यह देवगण उपस्थित तथा प्रतिष्ठित हैं ।

आजीविका—ऋग्वेद में निर्दिष्ट मंत्रों में नाना प्रकार से आजीविका के सम्पादन के लिए प्रेरण दी गयी है कृषि-कार्य की प्रशंसा और सराहना की गयी है। औषधियां, हिरय-अलङ्कार, स्वर्ष, अयस्कान्त (चम्बक), तथा कृषि-कार्य में आने वाले नाना प्रकार के उपकरणों का विवरण तथा वर्णन ऋग्वेद में मिलता है । वस्त्र उद्योग, मूंज, चक्की, रस्सी, कूप तथा जल-निकास के बारे में संकेत मिलते हैं वीणा, वाद्य, नृत्य, संगीत, आलेख्य, केश-प्रसाधन आदि ललित कलाओं का भी निर्देश किया गया है । जंगली पशुओं के पालन, युद्ध आदि का भी वर्णन यत्र तत्र मिलता है । भोज्य पदार्थों में दूध-घृत, गेहूं, चना, शाक, फल आदि के निर्देश दिये गए हैं । गुण-कर्म और स्वभाव के अनुसार चारों वर्ग अपने-अपने ढंग से आश्रम व्यवस्था के नियमों का पालन करते थे । नाना प्रकार से सुन्दर गृह-निर्माण की व्यवस्था तथा योजना का पता ऋग्वेद में चलता है । उन शालाओं को निर्मित करने वाले कारु या शिल्पी कहलाते थे । ब्रह्म तथा आन्तरिक आक्रमण अथवा कलह को दूर करने के लिए राज शक्ति के निर्माण तथा व्यवस्था का संकेत दिया गया है यह राजा प्रजा से ही चुना जाना चाहिये तथा राष्ट्र धर्म को चलाने के लिए इसकी पृथक् अपनी संसद् होनी चाहिये ।

समाज—ऋग्वेद द्वारा निर्दिष्ट समाज कृपाल उदार तथा यज्ञ-निष्ट है । आस्तिक, धर्म से रुचि रखने वाला तथा सेवा परायण है । स्त्रियों के प्रति उचित श्रद्धा तथा सम्मान का आग्रह किया गया है तेज स्वी, युद्ध-कौशल से युक्त, अनु

शस्त्र सज्जा यथा नाना प्रकार के आयुधों को वर्णन देखकर लगता है कि शरीर और समाज की रक्षा के लिए उच्चतम आर्य-चेतना दी गयी है। रथ, अश्व, सारथि, धनुर्बाण तथा अंकुश, वज्र आदि का ओजस्विता के साथ वर्णन किया गया है। राष्ट्र-भावना, स्वराज्य की अर्चना, पृथ्वी की स्तुति, भाई-बहन, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, वैद्य-रोगी, आर्य-शत्रु का बड़े विवेक के साथ वर्णन देखकर ऋषियों के व्यापक और विशाल दृष्टिकोण का पता चलता है। द्विपद्-चतुष्पद सभी प्राणियों के साथ सद्भाव से रहने की दीक्षा दी गयी है।

विज्ञान—ऋग्वेद के विषय में प्राचीन ऋषियों की साक्षी देकर ऋषि दयानन्द ने नाना प्रकार के विज्ञान-उपलब्धियों की ओर संकेत किया है। नौका, विमान, जलयान आदि के विषय में मन्त्रों के माध्यम से उच्च मनीषा का पता चलता है। आकाश में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले पक्षियों को मानव के उड़ने की प्रक्रिया में प्रेरणाप्रद स्रोत कहा गया है।

'वेदा यो वीनाँ पदमन्तरिक्षेण पतताम्।

वेद नावः समुद्रियः ॥ १·२५·७ ॥

औषधि—वनस्पतियों द्वारा चिकित्सा के विषय में बहुत ऊंची तथा अच्छी जानकारी दी गयी है। ऋभु लोग उच्च कोटि के शिल्पी थे। त्वष्टा ने ही इन्द्र के लिए संहारक शक्ति वाला वज्र बनाया है। अश्वि कुमारों की ओषधि-विज्ञान के विषय में बड़ी प्रशंसा की गयी है। केवल इतना ही, नाना प्रकार की शल्य-चिकित्साओं में भी अश्वि कुमारों की अत्यधिक ख्याति है। ज्योतिष्-शास्त्र के विषय में भी बहुत से संकेत और निर्देश मिलते हैं। बहुत से वैज्ञानिक इस विषय में एकमत हैं कि सूक्ष्म रूप से वेद मंत्रों में नाना प्रकार के विज्ञानों का रहस्य वर्णित है जिसकी व्याख्या और गवेषणा की आवश्यकता है।

मानव की बोध-मीमांसा की प्रक्रिया में ऋग्वेद का स्थान सर्वोपरि है। यह ज्ञान का आदि स्रोत तो है ही, इसकी उपलब्धि-प्रेरणा की दृष्टि से भी इसका महत्व है। संसार की समग्र सभ्य जातियाँ अपने आदि पूर्वजों की रीति-नीति, समाज व्यवस्था, राजनीतिक-विचार, सृष्टि-प्रक्रिया आदि विषयों को जानने के लिए ऋग्वेद का अध्ययन-मनन आवश्यक समझती हैं।

ऋग्वेद के अनुशील से ज्ञात होता कि इसमें मानव-ज्ञान की गहन-अनुभूति, भौतिक-ज्ञान के प्रेरणा-प्रद स्रोत तथा आत्मा सम्बन्धी गवेषणा के बारे में ऋषियों का महान् उत्साह परिलक्षित होता है। ऋग्वेद के ऋषि उच्च कोटि के मानवतावादी और सृष्टि-रहस्य के प्रगल्भ व्याख्याता प्रतीत होते हैं। भारतीय परम्परा के सूत्रकार, उपनिषत्कार तथ विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य वेदों के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं और ईश्वर-वाक्य कहकर ऋचाओं की व्याख्या करते हैं।

रचना-काल—भारतीय परम्परा के आचार्य ऋग्वेद को अपौरुषय वाणी मानते हैं। शब्द का ज्ञान से अविनाभाव सम्बन्ध है और ईश्वर सर्वज्ञ तथा दयालु

है। मानव कल्याण के लिए वेद रूप प्राप्त यह एक अक्षय-कोष है। पाश्चात्य विद्वान् भी ऋग्वेद की भाषा, ज्ञान तथा प्रतिपाद्य-विषय को लेकर एक लम्बे समय से रुचि-कर गवेषणा तथा व्याख्या करते आ रहे हैं। स्वाभाविक है कि मानव-जीवन के लिए अन्य उपकरणों के समान ऋग्वेद के भी रचना-काल, प्रतिपाद्य-विषय, ऋषि-वेद-छन्द आदि विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत करें।

१—मैक्समूलर ने वेदों की रचना और काल के विषय में प्राचीन-संस्कृत-साहित्य' में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। उनका कहना है कि तथागत बुद्ध का समय ईसा से ५०० वर्ष पूर्व का है। अतः ८०० ई० पू० से ६०० ई० पू० को सूत्रकाल, १०००—८०० ई० पू० तक मन्त्र-काल, १२००—१००० ई० पू० तक ब्राह्मण-काल तथा १२००० ई० पू० से प्रथम वेदों का अविभवि काल है। यह काल आनुमानिक है। आगे विभिन्न प्रकार की आलोचनाओं के प्रारम्भ होने पर मैक्स-मूलर ने स्वयं अपना विचार बदल दिया और घोषण की कि वेदों की रचना के सम्बन्ध में निश्चित निर्धारित समय नहीं दिया जा सकता।

२—मैक्डालल ने वेदों की रचना को ईसा की १३वीं शताब्दी से पहले का माना है। इन्होंने 'वैदिक--रीडर' की भूमिका में यह निर्देश किया है कि अवेस्ता की भाषा ८०० ई० पू० से लेकर ५०० ई० पू० तक की प्रतीत होती है। यदि देखा जाय तो वेद की भाषा को अवेस्ता की भाषा के रूप में अवतारित होने के लिए लगभग ५०० वर्ष की आवश्यकता पड़ सकती है। इस प्रकार वेदों की रचना का काल ई० पू० १३ सौ से पूर्व का निश्चित होता है।

मैक्डालल के इस मत की भी बड़ी समीक्षा की गयी और अन्त में इस मत को कल्पनाश्रित ही ठहराया गया क्योंकि यह कहना कठिन है कि अवेस्ता की भाषा ८०० ई०—पू० से ५०० ई० पू० के बीच की है और यह कहना तो नितान्त तुच्छ है कि ऋग्वेद की भाषा केवल ५०० वर्षों में ही अवेस्ता की भाषा के रूप में आ गयी।

३—जैकोबी ने तारा, नक्षत्र एवं ग्रहों की स्थिति पर गहन छान-बीन करके ऋग्वेद के काल के विषय में अनुसन्धान किया है। उनका कहना है कि विवाह-प्रकरण में 'ध्रुव इव स्थिरा भव' कल्प-सूत्रों के इस कथन से ध्रुव की स्थिरता तथा प्रकाश शालिता की सूचना उस समय की है जब कि ध्रुव उस समय अधिक स्थिर माना गया है। यह काल ईसा से २७०० वर्ष पूर्व का माना जा सकता है। ऋग्वेद की रचना इससे बहुत ही प्राचीन हैं। इस प्रकार जैकोबी ने ऋग्वेद की रचना का समय ईसा से ४५०० पूर्व निर्धारित करने की चेष्टा की है।

४—शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने शत० ब्रा० २-१-२ को उद्धत करते हुए अपने ढंग से व्याख्या करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि उस समय कृतिका-नक्षत्र पूर्वी बिन्दु से कुछ हट कर उत्तर की ओर उदित होता है। पूर्वीय बिन्दु पर कृत्तिका नक्षत्र के रहने का समय ईसा से २५०० वर्ष पूर्व में लगभग था। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण का समय ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व निर्धारित हो जाने से ऋग्वेद का

का समय निर्धारित ज्योति विज्ञान के सहारे किया जा सकता है। ऋग्वेद ब्राह्मण-ग्रंथों से बहुत ही प्राचीन रचना है। अत: ऋग्वेद का समय ईसा से ३५०० वर्ष से पूर्व ही होना चाहिये। इधर नहीं।

श्री दीक्षित ने एक तर्क और प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि शतपथ ब्राह्मण के समय में कृत्तिका नक्षत्र पर वसन्त-सम्पात था। तब से अब तक साढ़े चार नक्षत्र पीछे हटकर पूर्वाभाद्र पद के चतुर्थ चरण पर है। वसन्त-सम्पात के साढ़े चार नक्षत्र पीछे हटने में लगभग ४½ सहस्र वर्ष लगे हैं क्योंकि उसके एक नक्षत्र पीछे हटने में लगभग ९७२ वर्ष लगते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि शतपथ ब्राह्मण की रचना आज से ४½ सहस्र वर्ष पूर्व अथवा ईसा से लगभग ३००० वर्ष पूर्व की है। इस प्रकार भी वेदों की रचना ३५०० ई० पू० से पूर्व की है।

५—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने भी ज्योति विज्ञान के ही आधार पर ऋग्वेद की काल-गणना के विषय में अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। अपने 'ओरायन' ग्रन्थ में वसन्त-सम्पात के मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्रों पर स्थित होने का वर्णन किया है। यह समय लगभग ६००० ई० पू० पर पड़ता है। वैदिक ऋचाओं का रचना-काल यही हो सकता है। श्री तिलक ने अपने अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए यह व्यवस्था दी है कि अदिति-काल अर्थात् ६००० से ४००० ई० पू० में वसन्त सम्पात अदिति देवता वाले पुनर्वसु नक्षत्र पर था। यही काल वैदिक युग का आदि-काल माना जा सकता है। द्वितीय मृगशिर: काल ४००० ई० पू० से २५०० ई० पू० के मध्य का काल रचना-विकास की दृष्टि से यह काल बहुत महत्व का है। २५००—१४०० ई० पू० में वसन्त-सम्पात की स्थिति कृतिका-नक्षत्र पर थी। यह काल विभिन्न संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना का काल है। अन्तिम काल अर्थात् १४०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक विभिन्न कल्प सूत्रों तथा दर्शन सूत्रों की रचना हुई होगी।

इस प्रकार तिलक जी ने वेदों की रचना का समय ईसा से ४००० सहस्र वर्ष पूर्व निर्धारित करने का प्रयास किया है।

६— श्री अविनाशचन्द्र ने भी वैदिव—समय के निर्धारण में प्रयास किया है। उनका कहना है कि ऋग्वेद में चार ससुद्र का वर्णन मिलता है।[1], एक ऐसे समुन्द्र का भी वर्णन मिलता है जिसमें सरस्वती तथा सिन्धु नदियां गिरती थीं।[2] यह समुद्र अब विद्यमान नहीं है। भूगर्भ-शास्त्र के विद्वान् राजपूताना-

---

१— राय: समुद्रां श्चतुरो ऽस्मभ्यं सोम विश्वत: ।
आ पवस्व सहस्रिण: ।। ९· ३३·६ ।।

२— एकाचेत सरस्वती नदीनां ।
शुचि र्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
राम श्चेतन्ती भुवनस्य भूरे-
र्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ।। ऋ· ७· ९५·२ ।।

समुन्द्र की स्थिति ईसा से २५००० वर्ष पूर्व मानते हैं। इस कारण ऋग्वेद की रचना का समय ईसा से लगभग पच्चीस सहस्र वर्ष पूर्व का होना चाहिये।

इस प्रकार वेदों की रचना काल को लेकर विविध प्रकार से गवेषणा की जा रही है पर यह निरधारित नहीं किया जा सका कि निश्चित समय क्या हो सकता है। भारतीय भाष्यकार स्कन्द, सायण और दयानन्द आदि वेदों को अपौरुषेय तथा सृष्टि क्रम के आदि में ही वेदों का प्रादुर्भाव मानते हैं। दार्शनिक तथा उपनिषद् ग्रन्थों में वेदों को और वेदो के द्वारा प्रतिपाद्य ब्रह्म को निरन्तर अभ्यास में लाना निष्कारण-धर्म माना गया है। जो लोग काल-गणना की दृष्टि से समय निर्धारण की वात कहते हैं 'उनका भी कहना है कि ऋग्वेद मानव-सभ्यता की प्राचीनतम थाती है। साहित्य रूप में सुरक्षित इससे पुराना कोई ग्रन्थ नहीं है। अतः मानव-सभ्यता की मूल ऐतिहासिक सामग्री यहीं कहीं सुरक्षित है तो वह ऋग्वेद ही है।

४-- वेदों के भाष्यकार

प्रारम्भ में ऋषियों के गहन-विषय को देखते हुए वेद की व्याख्या को महत्व न देकर उसे गुरु-शिष्य परम्परा में अभ्यास का विषय मान इसी कारण व्याकरण की परम्परा वाले ऋषियों ने केवल वेद को समझने के लिए ही व्याकरण का परम प्रयोजन प्रतिपादित किया। निरुक्त-शास्त्र भी अति परोक्ष वृत्ति के शब्दों की प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार अन्वख्यान किया। इसी प्रकार शिक्षा कल्प और छन्दः शास्त्र तथा ज्योति शास्त्र की प्रवृति वेद-मूलक तथा वेद तक पहुंचा के लिए सोपान रूप में निर्धारित की गयी ।

इसके अतिरिक्त अथवा अवान्तर भूत गणित-साहित्य-रसायन-भूत-रस-क्ष राजनीति-अर्थ-आयुर्वेद आदि विद्यायें भी वेद के आश्रित अथवा वेद को ही समझ के लिए बनी।

ऋषियों का मत है कि समस्त विद्यायें वेदों का ही उपव्याख्यान मात्र वे सभी विद्यायें सूत्र रूप में कह दीं गयीं हैं जिनका उपव्याख्यान इस दुर्गम्य शास्त्र में किया गया है। सभी शास्त्र अपनी गरिमा का वर्णन करते हुए प्रतिपादन कर हैं। कि यदि वेद को समझना है तो हमारे शास्त्र को समझो। योग-विद्या अ वेदान्त विद्या तो वेद-चिन्तन का ही चरण लक्ष्य है।

वेदों की व्याख्या का प्रारम्भ हम ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और आरण्यक-ग्रन के माध्यम से पाते हैं। इस समय उपलब्ध सामग्री में यास्क का निरुक्त सबसे अधि आदरणीय समझा जाता है। यास्क ने बहुत से मंत्रों की व्याख्या की और मंत्र-व्याख्या का प्रकार समझाया, साथ ही वेदों देव-वाद को सुरुचि और भव्यतापूर्ण ढंग समझने के कारण प्राचीन शास्त्रों में निरुक्त को देव-शास्त्र भी कहा जाने लगा महर्षि यास्क ने अपने से पूर्ववर्ती गार्ग्य, गालव, वार्ष्यायणि कौत्स, शाकपू आदि व्याख्याकारों का नाम बड़ी श्रद्धा से अपने शास्त्र में अन्वित किया है।

कहा जाता है कि रावण ने भी वेद -भाष्य किये थे पर यह सामग्री अब उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध भाष्यकारों में स्कन्द स्वामी का नाम पहले आता है

इन्होंने लगभग विक्रम के ६८७ वर्ष उपराना ऋग्वेद पर भाष्य लिखा था। यह यह भाष्य कुछ खण्डित रूप में अब भी मिलता है। आचार्य सायण ने स्कन्द स्वामी का नाम कहीं-कहीं अपने भाष्य-ग्रन्थों में दिया है ।

स्कन्दस्वामी के अनन्तर वेंकट माधव, आनन्दनीर्थ, महधिर, उव्वट, हलायुध देवस्वामी और सायण आदि भाष्यकार हुए हैं। इस शताब्दी में पिछली परम्परा की मान्यता रखते हुए ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद का पूरा तथा ऋग्वेद के सातवें मण्डल के कुछ सूत्रयों तक भाष्य-रचना की ।

सायणाचार्य—प्राचीन भाष्यकारों में सायण का स्थान बहुत ऊंचा है। १४ वीं शताब्दी में विजयनगर महाराज बुक्क तथा हरिहर के राज्यकाल में प्रधानमंत्री रहे ।राजनीति में भारी उथल-पुथल के रहने पर भी इसी भाष्य-रचना का कार्य अबाध रूप से चलता रहा। यह बड़े शौर्य और श्रेय का कार्य था। चारों वेदों और ब्राह्मणों पर इनके भाष्य ग्रन्थ के उपलब्ध हैं ही, इनके अतिरिक्त भी इन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचनायें की हैं ।

ऋग्वेद पर इनका भाष्य बहुत ही गहन, बुद्धि-ग्राह्म एवं प्रमाणिक आधारों पर आधारित है। व्याकरण निरुक्त तथा प्राचीन परम्परा के ग्रन्थों साक्ष्य में इन्होने अपने भाष्य को बहुत ही सुबोध तथा भारतीय परम्परा के अनुरूप ही किया है। धातुज अर्थों की निष्पत्ति के साथ कर्म काण्ड को सायण बहुत महत्व देते हैं। सायण में पूर्ण आचार्यत्व की सृष्टि है। वे एक ही शब्द की प्रकरणानुसार सूक्त और देवता का ध्यान रखते हुए अनेक अर्थों की स्वीकृति प्रदान करते हैं और पौराणिक आख्यानों मूल रूप का वेदों में प्रतिपादन करते हैं। आश्चर्य है कि वेदों में इतिहास की मान्यता को स्वीकार करते हुए भी वेदों को अपौरुषेय मानते हैं।

आचार्य सायण ने प्राचीन भाष्यकारों की परम्परा की रक्षा की तथा आगे आने वाले भाष्यकारों के लिए प्रेरणा के स्रोत बने ।

सायण के अनन्तर वेद भाष्यकारों में सर्वोच्च नाम ऋषि दयानन्द का आता है। इनका जन्म टंकारा गुजरात में १८८१ वि० में हुआ था। बाल्यावस्था में ही सच्चे शिव की गवेषणा में निकल पड़े । निष्ठावान् और व्रत में दृढ़ रहने के कारण विविध गुरुओं से विद्याओं में प्रगल्भता प्राप्त की । अन्त में मधुपुरी (मथुरा) में गुरु विरजानन्द से दीक्षा लेकर वेदों के प्रचार में लग गये ।

ऋषि दयानन्द ने ऋषियों को प्रामणिक आधार मानते हुए अवान्तर के भाष्यकारों की आलोचना की। अपनी ऋषित्व बुद्धि से मंत्रों की वैज्ञानिक और अध्यात्मिक भावना से सुबोध भाषा में व्याख्या प्रस्तुत की ।

ऋषि दयानन्द के भाष्य की विशेषता—

(१) वेदों की अनादिता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया ।

(२) ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा मीमाँसा में जो विषय सूक्ष्य रूप से थे उन्हें स्पष्ट रूप से प्रतिपादिल किया ।

(३) वेदों में लौकिक इतिहास का अभाव सिद्ध किया।

(४) वेदों के शब्द यौगिक और योगरूढ़ हैं, रुढ़ नहीं, यही आधार-शिला है।

(५) उपनिषद, सूत्र ग्रन्थों के उदाहरण तथा उपपत्ति से सिद्ध किया कि अग्नि आदि शब्द परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

(६) अलङ्कार सामग्री के द्वारा अर्थों का स्पष्टी करण किया —वरुण के समान उपदेशक, मित्र के समान अध्यापक, उषा के समान कान्तिप्रद महिला आदि होनी चाहिये।

(७) वेदार्थ लौकिक-उपयोग में लाकर अनेक प्रकार के व्यवहार की शिक्षा का सूत्रपात किया।

(८) वैदिक उपासना के प्रचार से पुन: एकेश्वरवाद की स्थापना तथा अभयता का उपपादन किया।

(९) वैज्ञानिक-चिन्तन के लिए एक बड़ी देन।

(१०) यास्क के अनन्तर देवताओं के स्वरुप एवं प्रभाव की स्पष्ट व्याख्या तथा आलोचना की।

(११) व्याकरण-प्रक्रिया एव निर्वाचन के सम्मान की रक्षा की।

(१२) मंत्र, देवता, छन्द आदि की स्पष्ट व्याख्या करके वेदों के प्रति आस्था उत्पन्न करायी।

(१३) स्वरों की महत्ता की स्थापन करके मंत्रार्थ करने में स्वरों के योगदान को कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया।

(१४) 'ऋषयों मन्त्रद्रष्टार:' का प्रचार करके ऋषियों को मत्र कर्तव्य से प्रथक किया।

(१५) भाषा-विज्ञान के लिए नवीन आधार प्रस्तुत किया।

(१६) शब्द के भीतर शब्दात्मा को देखने में अपूर्व ऋषित्व का परिचय दिया।

(१७) भाष्य करते हुए शब्दों के धातुज-अर्थ की मीमांसा की।

(१८) सर्व सत्य-विद्याओं का मूल स्रोत वेदों को ही स्वीकार किया।

(१९) अग्नि वरुण, इन्द्र, आदि शब्दों को पारिभाषिक-शब्द मानकर प्रसंगानुसार अर्थ-मीमांसा की है। अध्यात्म सम्बन्धी अर्थों की जिज्ञासा और मीमांसा करते हुए उनके भौतिक अर्थ-विकास पर भी ध्यान दिया गया है। प्रकाश, आकर्षण, दाहकत्व, अन्धकार (अज्ञान) के विनाशक रूप में अग्नि को प्रतीक रूप से स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार ऐश्वर्य, वीज, भेदक 'मेघ-विदारक, आवरण-का विदारण करने वाला, तम को निवारण करने वाला, मेघ रूप में जल को घनत्व रूप देने वाला, गौ (इन्द्रिय, वाणी, जल, किरण, वीणा, गौ, वाण, वेणु आदि) में प्रखरता और निखार लाने वाला आदि अर्थ माना है। इसी प्रकार गुण दृष्टि से अन्य देवताओं की प्रक्रिया के अनुसार अर्थ किया है।

अशोक कुमार शर्मा एम० ए०

(२०) वेद में पुनरुक्त आदि उपस्थित होने पर व्युत्पत्ति के साथ उनकी काव्यगत सौन्दर्य दिखाते हुए अर्थ-चमत्कार दिखाया गया है साथ ही यह बताया गया है कि अनेकार्थक-प्रक्रिया के साथ अलंकृत रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

(२१) मंत्रों के पद पाठ की सुलभ योजना तथा उपयुक्त अन्वय के साथ अर्थ-निर्धारण किया गया है।

(२२) भारतीय-परम्परा एवं चिन्तन की पूर्ण रक्षा तथा गरिमा दी।

(२३) वेद को सरल-सुगमार्थ करके सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त और अनिवार्य बना दिया।

(२४) दैहिक, भौतिक राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, आदि सभी प्रकार की उन्नति और विकास के लिए वेद को ही सर्वाङ्गीण उपाय सिद्ध किया और तर्क, प्रमाण तथा युक्तियों से सिद्ध कर दिया कि वेद अपौरुषेय-रचना है जो कि सृष्टि के आदि में ही मनुष्यों के विकास और कल्याण के लिए ऋषियों के माध्यम से ईश्वर की ओर से प्राप्त हुई है।

पाश्चात्य भाष्यकार

वैज्ञानिक युग के इस प्रखर प्रकाश में वेदों का प्रचार भी बहुत हुआ। रेल, तार, विमान तथा अन्य-अन्य देशों के साथ व्यवसाय के माध्यम से भाषाओं और विविध साहित्य-ग्रन्थों की आलोचना प्रारम्भ हुई। वेदों के बारे में जर्मन, फ्राँस, रूस और इंगलैंड आदि देशों में महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए। वेदों के प्रकाशन तथा प्रचार में पाश्चात्य विद्वानों का बहुत बड़ा सहयोग रहा है।

कोल ब्रुक ने १८०५ ई० में 'एशियाटिक रिसर्चेज' में वेदों पर विवेचनात्मक लेख लिखे। उनके लेखों का पाश्चात्य जगत् में बहुत प्रभाव पड़ा।

एडोल्फ रॉथ ने इससे प्रोत्साहित होकर वेदों के बारे में अपनी गवेषणा प्रारम्भ की इन्होंने सायण आदि भाष्यकारों की व्याख्या को अग्राह्म ठहराया। इनका कहना था कि सायण आदि भारतीय भाष्यकार केवल परम्परावादी हैं जबकि हमारे पास भाषा विज्ञान का उपकरण उपस्थित है। उन्होंने एक ही शब्द को विविध स्थानों पर खोज करके उचित अर्थ की मीमांसा पर बल दिया। साथ ही विश्व की अन्य भाषाओं में वह शब्द कहां पर किस अर्थ में प्रयुक्त है, यह देखना आवश्यक माना। इस प्रकार सूक्ष्म एवं तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया का श्रेय रॉथ को प्राप्त है। इन्होंने वेद-अवेस्ता में शब्द-साम्य के साथ अर्थ की मीमांसा की और 'सेंट पीटर्स वर्ग' नाम से संस्कृत जर्मन कोष की रचना की। इस ग्रन्थ को इस युग में बहुत प्रशंसा प्राप्त है।

रॉथ तथा उनके शिष्यों ने इस प्रकार अनेक प्रकार से वैदिक भाषा का अनुमन्थन करके 'भाषा-विज्ञान' को जन्म दिया। इस प्रकार भाषा-विज्ञान ने भी ·दिक मन्त्रार्थ के विश्लेषण में बड़ी सहायता दी।

वैदिक-साहित्य के आलोचना में मैक्समूलर का भी बड़ा योगदान रहा है। सायण भाष्य का शुद्ध रूप में प्रकाशन करके इन्होने बड़ा श्रेय अर्जित किया है। वे स्वयं अपने को मोक्षमूलर आक्सफोर्ड नगर को गोतीर्थनगर कहते और लिखते थे। जर्मन देश को इन्होंने शर्मण्य देश लिखा है। इस प्रकार संस्कृत भाषा और भारत के प्रति इनकी श्रद्धा जानी जा सकती है।

इस प्रकार आफरेक्ट, प्रो० ह्राग, किडनर, स्टेंजलर, हिलब्रांट, ह्विटने आदि विद्वानों ने पश्चिम में वेद का प्रचार प्रसार का कार्य किया।

अंग्रेज विद्वान् विलसन ने सायण भाष्य को प्रमाण में मानकर ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान ग्रासमान ने ऋग्वेद का जर्मन में अनुवाद किया उनका अनुवाद काव्यमय तथा आर्कषक है। इन्होंने एक 'वैदिक-कोष' का भी निर्माण किया जिसको बड़ी प्रशस्ति मिली। लुडविग ने भी सायण भाष्य को प्रमाण में मानकर ऋग्वेद का भाष्य जर्मन भाषा में प्रकाशित कराया। श्री ग्रिफिथ ने भी ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस अनुवाद को भी बड़ी सराहना मिली। ओल्डेन वर्ग ने ऋग्वेद की व्याख्या की, जो दो भागों में बर्लिन से प्रकाशित हुई। ऋग्वेद के छन्दों पर भी इनकी विवेचन-पुस्तक उपलब्ध है।

इनके अतिरिक्त वेबर, आर्नाल्ड, श्रोदर, क्लायेर, कीथ, स्टेवेंसन, वर्नेल, विंटरनित्स, ब्लूमफील्ड, मैकडानल, पीटर्सन आदि विद्वानों ने भी वैदिक साहित्य के प्रचार में अपना महान् योगदान किया है। वेदों के प्रचार में जनरल ओटो का भी महान् योगदान माना जाता है। हम इन महान् मनीषी साहित्यकारों के प्रति अपनी प्रशंसा तथा कृतज्ञता प्रकट करते

(५) वेदों के देवता

७७

(१) इन्द्र—प्रभाव और क्षमता की दृष्टि से इन्द्र सर्वोपरि देवता माने जाते हैं। सर्वातिशायी विष्णु को भी 'उपेन्द्र' अर्थात् इन्द्र का छोटा भाई कहकर सराहा गया है। इन्द्र देवताओं के अधिराज हैं। पृथ्वी की रक्षा का भी भार इन्द्र पर ही है जो अपने मरुद्गण के सहारे युद्धों में रण-कौशल दिखाते हुए विजय प्राप्त करते हैं। मरुद्गण की सराहना 'इन्द्र मरुत्वान्' कह कर की जाती है।

आकार, आहार, वेष-भूषा, आयुध परिवार आदि की दृष्टि से अन्य देवताओं की अपेक्षा इन्द्र मानव-समाज के अति सन्निकट हैं। इन्द्र का सुन्दर वर्ण है। सुन्दर नासिका और चिबुक होने से इनको 'सुशिप्र' या 'शिप्री' कहा गया है। मस्तक पर मुकुट धारण करते हैं। सुन्दर ग्रीवा, चौड़ी छाती, भरे हुए उभरे शरीर, समाङ्ग,

विशाल-नयन तथा देदीप्यमान कलेवर के कारण इन्द्र को पृथक् पहचाना जा सकता है।

इन्द्र ऐश्वर्य और ज्योति के देवता है। विद्युत की गड़गड़ाट में इन्द्र के बल-वैभव को जाना जा सकता है। रण में दुर्मद-कार्य करने से इन्हें जिष्णु और प्रभविष्णु माना गया है। इन्द्र सोम-पान में अपनी तुलना नहीं रखने अतएव इन्हें 'सोमया' कहते हैं। सर्वदा ही अपने वज्र सदृश हस्त में वज्र धारण करते हैं, इस कारण इन्हें वज्रबाहु और वज्रहस्त कहा गया है। वृत्र का वध करने से इनका प्रसिद्ध नाम वृत्रहा हैं। शक्ति का स्वामी होने से इन्हें शचीपति और शक्र तथा शतक्रतु कहा गया है। अरि-नगरियों का विदारण करने से इनको पुरभित् अथवा पुरन्दर कहते हैं।

इन्द्र का रथ स्वर्णिम है। इस रथ का निर्माण ऋभुओं ने किया था। त्वष्टा ने इन्द्र के लिये सहस्त्र भृष्टि (अनेकों नोक वाले) वज्रका निर्माण किया। इन्द्र के घोड़े हरे रंग के हैं अतः इन्हें 'हरी' कहा गया है। अग्नि और पूषा को इन्द्र का भाई कहा गया है। वरुण, विष्णु, सोम भी इन्द्र के मित्रों और सहायकों में आते हैं। इन्द्र अथक युद्धाभ्यासी हैं। एक बार पणि नामक असुरों ने गायें चुरा लीं तब इन्द्र ने देवशुनी सरमा के द्वारा इसका पता लगा लिया और गायों का उद्धार किया।

वास्तव में ऊपर कही गयी विशेषतायें इन्द्र के प्राकृतिक और आध्यात्मिक रूप को अधिक चित्रित करती हैं। पाणिनि ने कहा है कि इन्द्रियों का अभिमानी देव होने से इन्द्र को इन्द्रत्व की श्री मिली है। मेघ का विदारण करके रुकी हुई जल धाराओं (गायों) का लाना ही इन्द्र द्वारा वृत्र-वध है क्योंकि वृत्र उसे कहते हैं जो वरण=आवरण करे। इसी कारण मेघ अथवा अन्धकार अथवा अज्ञान को आवरक वृत्र कहा गया है और वृत्रहा इन्द्र इनका विदारण करके सूर्य को ज्योतिष्मान् तथा आत्मा को योग-ज-समाधि से उमंगित करते हैं गौ उदक, किरण. पृथ्वी वाणी आदि का पर्याय है और इस प्रकार सर्वत्र इन्द्र का इन्द्रत्व प्रदर्शित हो जाता है।

इन्द्र ही ऊष्मा उत्पन्न करके वृष्टि करते हैं अतः वृष्टि के देवता इन्द्र हैं। किसानों के पूज्य इन्द्र हैं क्योंकि पृथ्वी में उत्पन्न करके इन्द्र ही बोये गए बीजों को प्रस्फुटित तथा अंकुरित करते हैं। चन्द्रमा में सूर्य-रश्मि का स्थापन इन्द्र के ही द्वारा होता है। रण-भूमि के देवता भी इन्द्र ही माने जाते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद के राष्ट्र-देवता इन्द्र हैं। इन्द्र के सम्मान तथा स्तुतियों में ऋषियों ने सर्वाधिक श्रम किया है। (विशेष अध्ययन के लिए ऋग्वेद में 'काव्य-तत्व' का देवतावाद—अध्याय ६ देखें)

(२) अग्नि—ऋग्वेद में अग्नि ही इन्द्र के अनन्तर सर्वाधिक प्रभावी देवता हैं। अग्नि, सोम तथा सरस्वती इन तीनों देवताओं को देवता रूप में कम पर भौतिक रूप में अधिक जाना जाता है। अग्नि का अभिनन्दन बड़ा उत्कृष्ट तथा कोमल है। कहीं-कहीं भयावह रूप में भी इनका वर्णन मिलता है। इन्हें कविक्रतु. कवि, सत्यधर्मा, यज्ञ

का देव, रत्नधा, ईडय, देवों तक हवि को ले जाने वाला, देव-दूत, अंङ्गिरा आदि कह गया है। देवों को भी 'अग्नि-मुख' कहते हैं क्योंकि देवता लोग अग्नि को ही मुख बनाकर हव्य ग्रहण करते हैं। ज्वाला-समूह ही इनके केश हैं। इनकी छोटी दाढ़ी का भी वर्णन मिलता है। इनकी दाढ़ बहुत ही तीक्ष्ण है। दाँत सुनहरे हैं अपने देदीप्यमान शिर के कारण वे सभी ओर चमकते हैं। इन्हें घृतपृष्ठ कहा जाता है।

अग्नि की तुलना अनेकों पक्षियों और पशुओं से दी गयी है। जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर अपना नीड बनाकर रहता है उसी प्रकार अग्नि भी काष्ठ में छिप रहता है। यह आकाश का श्येन (बाज) है। यह जल में क्रीडा करने वाला हंस है यह एक दहाड़ता हुआ वृषभ है। यह उत्पन्न होता हुआ गौ का वत्स-सा प्यारा-प्यार लगता है। यह देवों को यज्ञ तक लाने वाला अश्व है।

रात में चमकने से इनको चित्रभानु, समस्त ज्ञान से युक्त होने के कारण जातवेदा तथा सभी प्राणियों पर कृपा करने के कारण 'वैश्वानर' कहा जाता है इनका शरीर ज्योतिमान है और इन्हें पुरोहित भी माना जाता है। पर्वतीय जंगल को दग्ध करके स्वच्छ कर देने के कारण इनको पर्वतों का नायित कहा जाता है बहुत साहस से ही अग्नि का प्रादुर्भाव किया जाता है अतः इन्हें 'सहसः सुनुः' कह गया है। अग्नि देवता मानव के अति निकट हैं अतः इन्हें गृहपति और अतिथि कह गया है।

सर्वदा युवा रहने के कारण अग्नि को यविष्ठय, सदा पवित्र होने से मेध्य ऋषियों से प्रशंसा पाते रहने के कारण इन्हें कवि-प्रशस्त, गृहस्थ का परम हितै होने के कारण 'दमूना' कहा गया है। अग्नि को जलीय पुत्र होने से अपां नपात् क गया है। अवेस्ता में भी इन्हें 'अयाँ नेपो' कहा गया है। अग्नि आर्यों का पवि देव है। कोई अनुष्ठान अग्नि के बिना नहीं हो सकता। देवों तक हव्य ले जाने कारण इनको 'हव्य वाहन' कहा गया है। सभी नर इनकी प्रशंसा करते हैं अ इनका नाम नाराशंस भी है। इन्हें घृत जिह्व भी कहा जाता है क्योंकि घृत इन बहुत प्रिय है।

यह उत्पन्न होते ही अपने उत्पादक (काष्ठ) को खा जाता है। इनकी प का नाम स्वाहा है। इन्हें धूम केतु भी कहा जाता है क्योंकि धुआँ ही इनकी पता है। इसी कारण इन्हें कृष्णवर्त्मा भी कहा गया है।

यद्यपि अग्नि का जन्म नित्य होता है इस कारण वह नित्य ही शिशु है यह बहुत प्राचीन है क्योंकि आदि ऋषियों के सामने भी प्रकट हो चुका है। अ एक स्वयम्भू देवता हैं। मातरिश्वा देव इन्हें धरणी पर लाने में सफल हुए। उ होते हुए सूर्य के समान प्रतिदिन प्रातःकाल में अग्नि का जन्म होता है। अग्नि विविध चरित्र है। देवों ने इनको त्रिविध रूप दिया है। इनका प्रकाश विविध ये त्रिशिरा कहे जाते हैं। इनका तीन शरीर और तीन स्थान है। पृ

पर अग्नि रूप से, आकाश में विद्युत रूप से और द्युलोक में सूर्य रूप से अग्नि ही प्रकाशित हैं। यही भारतीय मित्यवाद की आधार शिला भी है। इन्द्र यदि क्षत्र-बल के प्रतीक हैं तो अग्नि हमारे ब्रह्म-बल का प्रतिनिधित्व करते हैं। अग्नि का एक नाम क्रव्याद भी है जिससे दूर रहने की शिक्षा दी गयी है क्योंकि यह प्रेत-भक्षक है। अग्नि को तपुर्मूर्धा भी कहते हैं क्योंकि इनकी मूर्धा तपती रहती है।

ईरानी बन्धु भी अग्नि की पूजा में आदर-भावना रखते हैं अग्नि के लिये सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, महान् उपकारी और प्रधान देव कहते हैं। ग्रीक, इटली तथा यूरोप के अन्य भागों में भी अग्नि के प्रति विशेष महत्व तथा आदर-भावना है। अग्नि को लैटिन में इग्निस्, स्लोवाक् में ओग्नि कहा गया है। 'अग्निः कस्मात् न क्नोपयति इति' ऐसा कहकर आचार्य स्थौलाष्ठीवि ने अग्नि के अनार्द्र रूप को दर्शाया है। 'क्नूयी शब्दे, उन्दे च' जो गीला करे और ध्वनि करे यही जलीय रूप है पर अग्नि-धर्म इससे विपरीत है। वह गीला नहीं करता = शोषण करता है तथा जलीय शक्तियों की भांति गर्जन भी नहीं करता इसी वृषाकपिः = वर्षणशोषणयोः कर्ता कहा गया है। कपिः कं जलं पिबति = शोषयिता।

(३) सूर्य—सूर्य-मण्डल के अभिमानी देव सूर्य हैं। समस्त ग्रहों के चक्रवर्ती यही हैं। ये सौर-मण्डल के अधिष्ठाता तथा ऋषियों के मन को कान्तिमान् बनाने वाले हैं। सूर्य सदा प्राणियों के उपकार में दत्तचित्त रहते हैं। देव कोटि में इनका रूप बहुत शुभ्र है। सुर्य के चक्षु का वर्णन अनेक बार ऋग्वेद में आया है पर सूर्य को ही मित्र और वरुण का नेत्र कहा गया है। कहीं-कहीं अग्नि का भी नेत्र सूर्य को कहा गया है। सूर्य भगवान् को देवगण भी अपना नेत्र मानते हैं।

सूर्य दूरदर्शी है, सर्वदर्शी है। समस्त भुवन के गुप्तचर यही हैं। जगत् का कोई रहस्य इनसे छिपा हुआ नहीं है। सूयं सभी प्राणियों को अपनी दृष्टि में रखते हैं। मनुष्यों के यही कर्म-साक्षी हैं। मनुष्यों को अशुभ से हटाकर शुभ की ओर चलने के लिये सदा सावधान करते रहते हैं। सबके संरक्षक तथा शुभ-चिन्तक हैं। समस्त चर-अचर प्राणियों की सूर्य ही आत्मा है।

सूर्य के रथ को एक घोड़ा जोतता है जिसे 'एतश' कहा गया है। सूर्य से सात-अश्वों का भी वर्णन आता है जिन्हें हरी कहा गया है। उषा देवियां सूर्य को जन्म देती हैं। उनकी गोद में बाल-सूर्य दमकते हैं। उषा को सूर्य की पत्नी कहा गया है। सूर्य की मां का नाम अदिति होने से इन्हें आदित्य कहा गया है। इनके पिता द्यौः हैं। देवों ने सूर्य को सागर में छिपा लिया था फिर उन्होंने ही विश्व के कल्याण के लिए सूर्य को प्रकट किया। देवगण ही सूर्य को आकाश में स्थापित करते हैं।

सूर्य को यह नियमित खग के रूप में चित्रित किया गया है जो विश्व की यात्रा पर निकल पड़ा है। सूर्य को श्येन (बाज), वृषभ अथवा श्वेत अश्व भी कहा

गया है जिसे उषा खींचकर ले आती है। यह एक मूल्यवान् मणि है जो कि आकाश में जड़ दिया गया है। यह एक देदीप्यमान रथ है अथवा एक आयुध है जिसे मित्र तथा वरुण वर्षा तथा मेघों से छिपाते रहते हैं। यह उनका 'पवि' है। कई स्थलों पर सूर्य के चक्र रूप में वर्णन आया है पर कहीं-कहीं सूर्य को ही चक्र कहा गया है।

सूर्य देवता तथा मानव दोनों के लिए चमकता है। यह अन्धकार को चर्मवत् लपेट लेता है। सूर्य की किरणें अन्धकार को समेट कर सागर में फेंक देती हैं। यह दिवस का माप-साधन है और प्राणियों के आयुष्य को बढ़ाता है। यह रोग, महामारी तथा दुस्वप्नों का विनाश करता है। सभी प्राणियों का अवलम्बन सूर्य ही है। वही सब का आधार और सहारा है। इसी कारण सूर्य को विश्व कर्मा कहा गया है। अपनी श्रेष्ठता और प्रभाव के कारण सूर्य देवताओं के पुरोहित कहे गए हैं। प्राण-दाता होने के कारण सूर्य को असूर्य कहा गया है। उदय होते ही सूर्य मानवों को निष्पाप कर्म करने के लिए तल्ललीन करते हैं और मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं को मानवीय कल्याण के लिए प्रेरित करते हैं। सूर्य के अश्व बहुत तीव्र और फुर्तीले हैं। जिन्दावस्था में सूर्य को अहुरामज्दा का नेत्र कहा गया है। 77, 81

(४) **वरुण**—इद्र के अनन्तर अन्य देवों में वरुण का स्थान बहुत ऊंचा है वरुण के सम्बन्ध में प्रताप, ऐश्वर्य एवं स्तुतियाँ महत्वपूर्ण हैं। वरुण के हस्त, चरण आदि का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है। हाथ घुमाना, चलना, रथ हांकना सोम-पान करना, भोजन करना, देखना आदि का वर्णन मानव—समीपता की दृष्टि से सुन्दर तथा अभिव्यक्त है। इनकी आंख सूर्य है। मस्तक पर मुकुट धारण करते हैं। यज्ञ में बिछे हुए आसन पर आसीन होते हैं। इनका रथ सूर्य की भांति चकाचौंध मचा देता है। स्फूर्ति युक्त सधे हुए घोड़े उसे खीचते हैं। स्वर्गीय पितृ-गण सदा वरुण की देख-रेख करते हैं समस्त प्राणियों का निरीक्षण-परीक्षण वरुण करते रहते हैं।

वरुण के गुप्तचर सदैव विचरण करते रहते हैं। स्वर्गिम पंख वाले सूर्य सदा सावधान होकर वरुण का दूतत्व सम्पादन करते हैं। वरुण क्षत्र-धर्म के पालक तथा क्षत्र-श्री से मंडित हैं। वरुण की माया—शक्ति से सारा विश्व चकित और मोहित रहता है। शारीरिक, भौतिक तथा पृथ्वी की नियम बहता वरुण के कारण है समस्त विधि-विधान के पूर्ति में वरुण ही सम्राट हैं। वरुण के ही नियमों की व्यवस्था में अमर तथा मर्त्य में अथवा स्वर्ग तथा पृथ्वी में भेद है। सूर्य के गमन तथा व्यवस्था के लिए विशाल मार्ग का निर्माण इन्होंने ही किया है।

वातावरण में पवन का उच्छ्वास वरुण का ही उच्छ्वास है। चमकते तारे तथा आह्लादक चन्द्रमा वरुण की ही देन है। समग्र प्रकाश-पुंज की व्यवस्था वरुण

ने ही की है। वरुण रात्रि के अभिमानी देव हैं और जल-राशि का भी नियंत्रण यही करते हैं। सारी व्यवस्थाओं को धारण तथा पोषण करने के कारण इनको धृत व्रत कहा गया है। आकाश को अरेणु, शीतल वरुण ही बनाते हैं समस्त नदियों को, आकाशीय जल-स्रोत को तथा गहरे सागर को वरुण ही व्यवस्थित रखते हैं।

देवगण की बड़े आदर के साथ वरुण की व्यवस्था का पालन करते हैं। वरुण समस्त ब्रह्माण्ड के प्रभावी नायक हैं। वरुण के साम्राज्य एवं प्रभाव की कोई सीमा नहीं है। सबका पूरा ज्ञान वरुण को है उनकी अज्ञानता में कोई पलक भी नहीं मार सकता।

पाप अथवा बुरे आचरण से वरुण कुपित हो जाते हैं। उनके आदेश का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। वरुण के पाश बहुत प्रसिद्ध हैं इनसे वे अपराधियों को बांध लेते हैं। वरुण उन लोगों पर कृपा रखते हैं जो अपने आप अपने किये पर शोक, पछतावा अथवा प्रायश्चित करते हैं।

वरुण अपने स्रोता के प्रति मैत्री भाव रखते हैं। वरुण सदा वरदान देते हुए पृथ्वी पर प्रशासन करते हैं। अवेस्ता में भी वरुण की चर्चा मिलती है। ग्रीक में भी वरुण का वर्णन मिलता है।

(५) **यम**—मृत प्राणियों के प्रधान यम हैं। अंगिरा की यम के साथ मैत्री है। अंगिरा—पितरों के साथ सोम-पान करने के लिए यज्ञ भूमि में पदार्पण करते हैं। यमी यम की भागिनी है। १०—१० में यम—यमी का परस्पर संलाप दिखाया गया है। यम विवस्वान् के पुत्र हैं। इनकी मां का नाम सरण्यू है। जो त्वष्टा की पुत्री है। यमी ने यम को मरणधर्मा कहा है। यम का वरुण और वृहस्पति से भी मैत्री—सम्बन्ध है। अग्नि के साथ यम की पुरानी मैत्री है। अग्नि को यम का पुरोहित भी कहा गया है। मृत व्यक्ति का सारा क्रिया—कलाप अग्नि से ही जुड़ा हुआ है। यम को मृत्यु का देवता माना गया है। पितरों से इनका सदा साहचर्य रहता है।

यम आकाश के दूर छोर पर रहते हैं। संगीत की मधुर-ध्वनि वंशी-रव इनकों बहुत प्रिय है। यम के लिए घृत, हव्य, सोम आदि सामग्री का निष्पादन किया जाता है। इनसे प्रार्थना की जाती है कि वे हमारे लिए दीर्घ-जीवन दें तथा देवों तक हमारी अर्चना पहुंचा दें। जीवन में शान्ति तथा आनन्द यम की कृपा से ही प्राप्त होता है।

यम ही उस मार्ग के ज्ञाता से जिस मार्ग से हमारे पूर्व पितर गए तथा जिस मार्ग से अन्य जाने वाले जायेंगे। जिस प्रकार वरुण का पाश प्रसिद्ध है उसी प्रकार यम की श्रृंखला है। उलूक तथा कपोत यम के दूत हैं पर चार आखों वाले, लम्बी नाक वाले मटमैले रंग के (शबल) दो कुत्ते इनके विशेष दूत हैं। इन कुत्तों की मां

का नाम सरमा है । अतः ये सारमेय कहलाते हैं । इनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है । मानव प्राणियों की गतिविधियों पर इनकी तीक्ष्ण दृष्टि रहती है । यम के साथ आमोद-प्रमोद में रहने वाले पितरों तक ये मृतक को पहुंचा देते हैं । सूर्य के सन्दर्शन में अधिक आयुष्य की प्राप्ति के लिए इनकी मनौति की जाती है ।

मानव के प्रथम पिता यम हैं जिन्होंने सर्व प्रथम मरणावस्था का दर्शन किया और मृत्यु के देवता बने । पृथ्वी से वियुक्त प्राणियों के यम ही अधिष्ठाता तथा व्यवस्थापक हैं । यम और यमी मानव जाति के आदि पूवज हैं । यहीं से मानव पीढ़ी का श्री गणेश हुआ । अवेस्ता में भी इस प्रकार के बहुत से सम्वाद यम के विषय में आये हैं । यिमा तथा यिमेह को पृथ्वी का सम्राट कहा गया है । ऋग्वेद में भी यम को स्वर्ग का अधिदेवता माना गया है ।

यम पुष्पात्मा लोगों को प्रकाश वाले स्थान में भेजते हैं । पितरों की पुत्रों द्वारा सेवा कराते हैं । इन पितरों की कई श्रेणियां हैं—अंगिरा, विरूप, दशग्व, नवग्व, अथर्वा, भृगु, वसिष्ठ आदि । कुछ विद्वानों का मत है कि प्राण शक्ति का अधिष्ठाता यम है तथा कुछ लोग दिन–रात के जोड़े को यम-यमी बतलाते हैं क्योंकि आयुष्य का नियमन इन्हीं के हाथ में है ।

(६) रुद्र—एक ही देव को विभिन्न नामों से पुकारा गया है । 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।' रुद्र स्वास्थ्य के देवता हैं । इस कारण 'रुद्र' शब्द का अनेक प्रकार से अर्थ निकलता है । 'रु शब्दे' रुतं शब्दं शब्दाश्रयं ज्ञानं राति ददाति', रुद्र ज्ञान के अधिष्ठाता हैं, अतः सबके गुरु हैं । वह एक अच्छे स्रोता, प्रकाशक तथा सुन्दर देव हैं । रुद्र दुःख के विनाशक हैं (रुत् दुःखं द्रावयति) । रुद्र शत्रुओं को रुलाते हैं अतः उनका रुद्र नाम है (रोदयिता) ।

रुद्र के माथे पर जटा-जूट है । रंग बादामी और आकार चमकीला है । वे प्रसिद्ध धनुर्धर हैं कभी-कभी वज्र भी धारण करते हैं । इनके आयुध अत्यन्त तीक्ष्ण और प्रभाव कारी हैं । रुद्र यद्यपि बहुत उग्र हैं पर शुचि और शक्ति भी कहे गए हैं । इनका हाथ शान्तिदायक, शीतल और दयालु हैं । इनका आग्नेय रूप रुद्र है तो जलीय रूप शिव है । इनके ओष्ठ सुन्दर बताये गए हैं । पृश्नि (पृथ्वी) के पुत्र मरुद्गण इनके पावन–पुत्र हैं । रुद्रों का अनन्तत्व तथा शंकर का एकत्व अनेक प्रकार से समझाया गया है ।

जल- अन्न, ओषधि-वनस्पति, बस्त्र–आच्छादन, शयन—आवरण आदि में नाना प्रकार के दोष हैं । रुद्र की कृपा से ही उन दोषों तथा दुःखों से बचाव हो सकता है । रुद्र अच्छे भिषक् तथा भैषज्य विद्या के गुरु हैं । रुद्र को काल अथवा महाकाल भी कहा गया है । रुद्र नीलग्रीव, शान्त शरीर तथा इषु-हस्त रहते हैं यक्ष्मा आदि रोगों से प्राणीयों को बचाते हैं । रुद्र का वर्ण कहीं-कही ताम्र—अरुण और कहीं पर बभ्रु बताया गया है । ऋषि-मुनि बताते हैं कि क्योंकि रुद्र शिवरूप हैं

जगत् का भरण करते हैं, अतः एव इन्हें प्रभु अथवा 'भूरि' कहा गया है। रुद्र को कपर्दी, युवा और सतत सावधान कहा गया है। रुद्र को प्रभु, मंत्री, वणिक्, स्थपति (राज), स्तेनपति (गुप्तचर), गिरिचर, सभापति और उष्णीष (पगड़ी) धारण करने वाला बताया गया है। रुद्र एक सुन्दर रथकार हैं और स्वर्णिम रथ पर बैठकर चलते हैं रुद्र के पास शुचि तथा आनन्ददायिनी ओषधियाँ सदा साथ रहती हैं जिनके कारण विविध प्रकार के रोग, दुःख तथा कष्टों का निवारण होता है तथा असीम सुख, आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। रुद्र अपने गले में मूल्यवान् हार (निष्क) धारण करते हैं। रुद्र के दीप्त नाम—जय का विधान है। रुद्र सदा ही कोमल-आशय वाले, और सुन्दर-सुमुख एवं रमणीय आकृति वाले हैं।

(७) मरुद्गण—पृश्नि (गौ, पृथ्वी, जलधर पटली) के पुत्र रूप में महान् चित्रित किये गए हैं। इनके पिता द्विव्य-हस्त तथा तेजस्वी वज्र वाले, नित्य युवक रुद्र हैं। ये सभी एक आयु, एक मत रखने वाले सहजात बन्धु हैं। देव-समूह के रूप में ही इनकी वन्दना की गयी है। इन्द्र के युद्ध में सदा सैनिक के रूप में भाग लेते रहते हैं। इनके रथ को 'मरुत्वान' कहा है। सुन्दर रथ पर सवार होते हैं। इनके रथ को 'लाल घोड़ियाँ (वडवा) खींचती हैं। रोदसी वधू के समान इस रथ पर बैठती हैं।

मरुत् वर्षा के अधिदेव हैं। यात्रा के समय जाने पर महिलाओं के समान अपने को सजाते हैं। चरण, हस्त, ग्रीवा तथा इनके शिर पर नाना-प्रकार से चमकदार आभूषण जगमगाते रहते हैं। चमकीली वर्छी (ऋषि) सदा इनके हाथों में जगमगाती रहती है। इनमें अथाह बल तथा अगाधज्ञान है। वर्षा की बौछार करते हुए जिस ओर को निकल जाते हैं टूटे हुए वृक्षों से इनके गमन-मार्ग की सूचना मिल जाती है। ये सभी एक ही स्थान पर एक ही वेष-भूषा में रहते हैं।

बड़े-बड़े पर्वतों, चट्टानों तथा वृक्षों को बड़ी ही सरलता से तोड़ते हुए ये निकल जाते हैं। एक ही इनका गणवेष है। मस्तक पर स्वर्ण-मुकुट, वक्षः स्थल पर चमकते हार धारण करते हैं। एक ही समान सदन में निवास करते हैं। मरुत महान् हैं तथा दूरदृष्टि रखते हैं। इनकी अपार शक्ति और दृष्टि के आगे नतमस्तक होना ही पड़ता है।

मरुद्गण को क्रीड़ा बहुत रुचिकर है। अवकाश के समय में मिलकर नाना प्रकार से खेल रचाते हैं। मनोरंजन करते हैं। बांसुरी बजाने में दक्ष हैं और वीणा-वादन में बहुत प्रवीण हैं। वीणा-वादन की सरसता तथा रण की कुशलता दोनों में ही इनको शोभा तथा विनय प्राप्त है। इनका आकार सुन्दर, आचार पवित्र तथा कार्य प्रशंसनीय है।

मरुद्गण गो-पालन में दक्ष तथा स्निग्ध दृष्टि रखते हैं। मरुद्गण के कार्य-

उल्लेख से वीरता पूर्ण तेज की आलोक-रेखा जगमगाने लगती है। इन्द्र के लिए स्तुतियों का गान करने में मरुद्गण विशेष रुचि रखते हैं।

मरुत् शब्द का अर्थ करते हुए ऋषियों ने समझाया है कि मर्-उत् मरने तक खड़े रहकर क्रिया शील रहने वाले, 'मा—रुत्' कभी न रोने वाले, मर्-उत्=अत्यन्त रूप माधुरी रखने वाले (कामदेव के लिए इसी हेतु 'मार' कहा गया है।)

मरुद्गण की मैत्री स्निग्ध तथा अक्षय है। अपने मित्र तथा भक्त के लिए स्पृहणीय रत्, औषधि तथा ऐश्वर्य धारणा करते हैं।

(८) **विष्णु**—विष्णु पालन और रक्षा के अधिदेव हैं। 'वेवेष्टि जगत्' इति विष्णुः' कहकर विष्णु की सर्वात्मकता बतायी गयी है। विष्णु को 'उरुगाय' कहा गया है क्योंकि सबकी गति विष्णु तक ही है अथवा विष्णु का ही यश—उद्गान सभी करते रहते हैं। दूसरा यशस्वी नाम उरु क्रम अथा त्रिविक्रम है। विष्णु शिशु रूप में मनोहर दिखायी देते हैं पर अपने विशाल-व्यापक चरण-विन्यास से तीनों लोकों (पृथ्वी—अन्तरिक्ष तथा द्युलोक) को आक्रान्त कर लेते हैं। सूर्य को ही विष्णु कहा गया है। इन्द्र का प्रिय भाई होने से इनको उपेन्द्र भी कहा गया है। युद्ध भूमि में विष्णु सदा इन्द्र के साथ रहते हैं। इनको ओजस्वी रूप को देखकर इन्द्र का भी तेज बढ़ता है। सखे विष्णु और पराक्रम दिखाओ (सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व ऋ. ४. १८. ११) कहकर इन्द्र भी बराबर विष्णु को उल्लसित करते रहते हैं।

विष्णु का चक्र चलता है। ९० घोड़े जुते होते हैं (दिवस) इनके चार नाम हैं (ऋतुएं) यही ९०×४=३६० सौर्य—वर्ष है। इससे यह स्पष्ट है कि सूर्य की ही गति विधियों का रूपकीकरण करके विष्णु नाम दिया गया है। मानव की स्थिति तथा विश्रान्ति के लिए ही यह त्रेधा विक्रमण है। यही स्थूल-सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक जिज्ञासा का भी विक्रमण है। इसी से होकर मानव शान्ति और समृद्धि का पात्र बनता है।

विष्णु के परम-पद का विस्तार से वर्णन किया गया है जहां पर मधु का उत्स परिपूर्ण है। इस पद को सब नहीं देख सकते केवल आत्म-रत, मुक्त पुरुष ही देख पाते हैं।

विष्णु के कर्म प्रशंसनीय हैं। विष्णु के वस्त्र, आभूषण, आयुध तथा आकार एवं शक्ति की तुलना इन्द्र से की जा सकती है। विष्णु की श्री में देवगण आनन्दित रहते हैं।

(९) **सोम**—सोम देवता रूप में तथा औषध रूप में स्तुति प्राप्त करते हैं। ऋग्वेद का नवाँ मण्डल सोम—स्तुति से परिपूर्ण है। अन्यत्र भी सोम की स्तुति में सूक्त (शोभन-कथन) हैं। यहाँ पर देवता रूप पर ही अधिक विचार रखना है।

सोम का वर्ण बभ्रु (भूरा) है। अच्छा नेतृत्व रखते हैं। आकार सुन्दर और आकर्षक है। निरन्तर तरुण करुणा-पूर्ण तथा शान्त-अन्तःकरण के देव हैं। स्वर्ण पूर्ण अलङ्करण में जगमगाते रहते हैं।

प्रमुखता और महात्म्य की दृष्टि से सोम का नाम अग्नि के अनन्तर आता है: अग्नि वरुण तथा इन्द्र की मानवीय प्रतिमा जितनी स्पष्ट है उतनी स्पष्ट मूर्ति सोम की नहीं मिलती है क्योंकि सोम का रसायनात्मक रूप ही अधिक स्पष्ट रहता है।

सोम के आयुध बहुत ही तीक्ष्ण है। उनके हाथ में धनुष् तथा अनेक फल वाले बाण भी रहते हैं। वे रथ में आसीन होते हैं तथा उस रथ को पवन जैसी शक्ति खींचती है। कहीं-कही इन्हें रथ पर इन्द्र अथवा अग्नि के साथ बैठे दिखाया गया है। सोम को एक अच्छे सारथि के रूप में भी चित्रित किया गया है। पूषा और रुद्र के साथ भी कहीं-कहीं इन्हें चित्रित किया गया है। मरुद्गण भी सहायक रूप में इनके साथ घटित किये गए हैं। यज्ञ की पवित्र वेदी पर सोम भी आते हैं और रवि को स्वीकार करते हैं।

सोम सौन्दर्य, कान्ति, शान्ति तथा आनन्द के देवता हैं। वे कोमल हैं तथा उनका रूप निखरा हुआ है। सोम—रस का निरापादन तीन बार होता है—प्रात: दोपहर (मध्याह्न) तथा सायंकाल: इसमें क्रमश: सोम, इन्द्र तथा ऋभु देवता बुलाये जाते हैं। अर्थात् प्रात: कालीन सोम-पान के देवता सोम ही हैं।

सोम के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति तथा उपमायें बहुत कहीं गयी हैं सोम पर रहस्यात्मक वाक्य भी बहुत हैं। अध्यातम पक्ष में 'उमया सहितं महेश्वरस्य ज्ञानं सोम–ससं ब्रह्म–रसायनम्' अर्थात् उमा के साथ महेश्वर के ज्ञान का ब्रह्म–रसायन ही सोम-पान है। ब्रह्म-वेला में चिन्तारहित होकर जो आनन्द, शान्ति, क्षमा सतयता, शुचिता आदि का चिन्तन ही अध्यात्म-पक्ष में वही सोम-पान कहलाता है। आप: को सोम की माता अथवा भगिनी कहा गया है। वह भी इसी शान्तिदायक उद्देश्य से है। यह निर्झरिणी का स्वामी है तथा पृथ्वी एवम् आकाश को शीतलता प्रदान करता है। जल तरंगें यदि गायें हैं तो सोम उनमें वृषभ है। सोम की तीव्रता को देखते हुए से समर के घोड़े से तुलना की जा सकती है।

सोम अमरता के स्वामी हैं। यही कारण है कि मानव इनकी प्रार्थना और अभिनन्दन में रत रहते है और देवगण भी इनको सदा अपनाये रहते हैं, इनसे वियुक्त नसीं हो पाते।

(१०) पुरुष–देव गण सृष्टि-उपकरण में प्रमुख-कारण हैं पुर पुरुष ही इस समस्त सृष्टि-प्रपंच का मूल कारण है। यह सृष्टि यज्ञ रूप है। सभी प्राणी, सभी वेद, सभी भोग्य-भोक्त-प्रपञ्च तथा सभी वर्ण इस पुरुष के कारण पूर्णत्व की उन्मुख हुए। इस सृष्टि का उपादान-कारण तथा निमित्त-करण पुरुष ही है। संसार के सभी अवयव इसी पुरुष के करण आविर्भूत हुए हैं।

इन मन्त्रों में चारों वर्णों, चारों वेदों तथा यज्ञमय पुरुष के कारण सृष्टि-प्रपञ्च में समस्त जड़-चेतन के प्रादुर्भाव का वर्णन बड़ी तेजस्विता के साथ किया

गया है । यह भी कहा गया है कि जो कुछ हुआ और जो कुछ होने वाला है, वह सब कुछ पुरुष ही था और वही एक अविनाशी, स्वयम्भू अवश्य रहेगा ।

पुरुष ही भूत है, वही भाव्य है, इत्यादि वेदान्त-प्रक्रिया की बातों का विवरण एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के संकेत यहाँ मिलते हैं । विशेषता पर प्रकाश डालते हुए उत्पत्ति-प्रक्रिया पर बहुत ही सुन्दर विवरण यहाँ मिलता है । बहु ईश्वर वाद का एकेश्वर वाद में समन्वय यहां समझाया गया है । यह बतलाया गया है कि वह पुरुष विराट् है और सारे संसार में—दृश्य-अदृश्य जगत् में परिव्याप्त है फिर भी यह सारी सृष्टि उसके एक अंश में ही अवस्थित है उसकी महिमा इतनी है पर केवल इतनी ही नहीं है । वह उससे भी ऊंचा है । महान् है और श्रेष्ठ है ।

इस शरीर की रचना की तुलना विश्व प्रपञ्च की रचना से दी गयी है । जिस प्रकार एक अवयव के अभाव में यह सारा शरीर निरर्थक है उसी प्रकार यह विश्व-शरीर भी एक अवयव या वर्ण के बिना निरर्थक और अपूर्ण है । लोक-व्यवस्था एवं कर्म-मीमांसा के लिए चारों वर्णों की भूमिका अनिवार्य है ।

(११) उषा—ब्रह्म-बेला की अभिमानिनी देवता उषा है । अनेक सूत्रों में उषा का वर्णन बड़े अलंकारिक ढंग से किया गया है । यह प्रभात-वेला में अत्यन्त प्रमुदित होकर आती है । सुन्दर वेष-भूषा में अलंकृत एक नर्तकी के समान अपने सुनहरे रथ पर जगमगाती हुई अपने वैभव का विस्तार करती है । उषा अन्धकार तथा अज्ञान का तिरस्कार करती हुई रात्रि के काले आवरण को हटाती है । उषा यद्यपि बहुत पुरानी है फिर भी सद्यः स्नात युवति-सी नित्य नवीन लगती है ।

उषा अपने जागरण के साथ ही पूर्व क्षितिज को संवारती है सजग सामन्ती रूप में सीमन्तिनी नायिका-सी उदित होती है । वह जागते ही स्वर्ग के द्वार को खोल देती है । टुकड़ों में विभक्त मेघ ऐसे लगते हैं मानों वह भेड़ें चरा रही हो । वह दुःखद स्वप्न, शोक पहुंचाने वाली दुरात्माओं को तथा आवरणों को दूर हटा देती है । छिपायी गयी धन-राशि का उदघाटन करती है तथा अन्यत्र उदार बन कर बांट देती है । प्रत्येक प्राणी को जगाना उसका काम है तथा जगे हुए प्राणी को जगाना उसका काम है तथा जगे हुए प्राणी को काम-धन्धे में प्रवृत्त करना उसका धर्म है ।

उषा भगवान् के निर्देश तथा पद्धति के नियमों का दत्तचित्त होकर पालन करती हैं । कभी अपने नियमों का उल्लंघन नहीं करती । प्रतिदिन उसी स्थान से प्रकट होती है जहाँ से पहले निकली थी । वह देवताओं का सबसे अच्छी सेविका है क्योंकि उसके सजग होते ही उपासक अपने यज्ञ-विधान का सम्पादन करने लगते हैं ।

उषा का घोड़ा बहुत ही सुन्दर है जिस पर बैठकर वह आती है । सूर्य उषा का बराबर पीछा करता है मानों कोई भावुक तरुण किसी तरुणी का पीछा कर रहा हो । उषा ही सूर्य के मार्ग को प्रशस्त करती है । सूर्य उषा का मनचाहा प्रियतम

है। वह अपने प्रियतम को देखकर फूली नहीं समाती। उषा रात की बड़ी बहन है। बाल-सूर्य उषा की गोद में प्रसन्नता के साथ खेलता है। उषा स्वर्ग की पुत्री तथा अग्नि पर प्रेम-दृष्टि रखती है। उषा जागते ही अश्वि-कुमारों को जगा देती है। अश्वि-युगल भी जागते ही सुनहरे वाणों के साथ अपनी यात्रा पर चल देते हैं। उषा अपने भक्तों के लिए जीवन और जीविका देती है। कवियों में प्रतिभा का सम्पादन उषा ही करती है। वह स्वभाव से ही अति उदार तथा स्नेहमयी है। उषा का श्वध्नी कहा गया है क्योंकि घोर अन्धकार पूर्ण गगन् कानन में वह अपने कुत्तों (तारों) के साथ बहेलियों की सरदारिन सी आखेट करती है। जो तन्द्रा रहित होकर सतत सावधान रहेगा वही बच पायेगा।

(१२) **पूषा**—पूषा गुप्तचर विभाग का श्रेष्ठ स्वामी है। तस्करों के समग्र रहस्यों का पता बड़ी सरलता के साथ लगा लेता है। यह समग्र मार्गों अथवा तथा पालक है। हर प्रकार निधियों का उपायों का ज्ञाता तथा उनके आगम न का प्रकार केवल पूषा को ही ज्ञात है।

इनके केश-कलाप घुंघराले तथा पटियादार हैं। इनकी दाढ़ी सुन्दर और आकर्षक है। इनके तलवार सुनहरी है। इनके हाथ में अंकुश भी रहता है। इनके रथ में बकरे जुड़ते हैं। भोजन में इनको दलिया या सत्तू (करम्भ) बहुत प्रिय है। सुनहरी बर्छी भी रखते हैं। परशु तथा नुकीले अस्त्र भी रखते हैं। इसकी दृष्टि इतनी निर्मल तथा तीक्ष्ण है कि एक ही निमेष में समस्त भुवन देख लेते है।

यह अपनी भगिनी उषा को बहुत प्यार करते हैं। सूर्य की वधू सूर्या को अपनी पत्नी बनाते हैं। इस प्रकार अपनी माँ से ही विवाह करते हैं' अपनी आकाशीय भेड़ों के साथ सूर्य के दूत बनकर विचरण करते हैं। पूषा जगत् के द्रष्टा तथा स्वच्छन्द गति से विचरण करते हैं। बहुत उत्तम सारथि इनको कहा गया है। सूर्य के रथ को ऊर्ध्व तथा निम्न दिशा में पूषा ही ले जाते हैं।

इन्हें विमुक्ति का पौत्र 'विमुचो नपात्' भी कहा गया है। इन्हें प्रसव का देवता भी माना जाता है। बहुत दयालु होने से इनको सदा 'आघृणि' कह कर पुकारा जाता है। सम्पन्नता अथवा समृद्धि के देव है अतः पोषण करने वाली धातु से इनका नाम सम्बन्धित है। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि पूषा भी सौर-मण्डल के ही देवता हैं जो सूर्य के उपकारक शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं और ब्रजभूमि को उर्वर तथा सम्पन्न बनाते हैं।

(१३) **पर्जन्य**—वर्षा कारी मेघ के अभिमानी देव को पर्जन्य कहा गया है। पर्जन्य वन, वृक्ष, पौधों, अनाज तथा पृथिवी के जीवन हैं। जलदान करना ही इनकी मुख्य विशेषता है। ये जलीय रथ में विचरण करते हैं। अपनी जलीय-त्वचा को बहुत शीघ्र छोड़ भी देते हैं। देवी पिता असुर के समान पर्जन्य भी जल के अधिष्ठाता हैं। अपनी शीतल वर्षा के द्वारा समग्र पृथ्वी को शान्त, तृप्त तथा कृतार्थ करते हैं। अशनि अथवा विद्युत् की कड़कभरी गड़गड़ाहट के साथ एवं चमक के साथ अपने

आगमन का पावन सन्देश देते हैं । समग्र प्रकार को ओषधि-वनस्पतियाँ इस सन्देश से पुलकित हो उठती हैं क्योंकि उनकी प्राण-यात्रा का मूल मंत्र पर्जन्य के ही पास है ।

नारी में सुशीलता, घोड़ों में स्फूर्ति तथा गायों में संजीवनी भर देना पर्जन्य का ही काम है । द्यु लोक इनका पिता तथा वसुन्धरा इनकी पत्नी है

(१४) **आप**—जलीय देवता को चार सूक्तों में अभिनन्दन किया गया है । कुछ और भी सूक्त हैं जहां पर निपात रूप से (गौण रूप से) आप की स्तुति की गयी है । ये देवों के मार्ग का अनुगमन करती हैं । इनकी माता, दिव्य देवियाँ तथा तरुण पत्नियों के रूप में वन्दना की गयी है ।

इन्द्र ने अपने वज्रसदृश हस्त में वज्र लेकर इनके मार्ग का निर्माण किया है इस कारण इन्द्र के आदेश तथा आदर्श का सदा पालन करती हैं। कभी उसका उल्लंघन नहीं करती । ये स्वर्गीय हैं पर पृथ्वी को चिर संगिनी हैं । देव-स्थान पर सदा मित्र और वरुण के साथ निवास करती हैं । सागर की ओर अभिगमन करना इनको सदा इष्ट रहता है । जो कुछ स्थावर- जंगम है, उसकी रक्षा का भार इन्हीं पर है । सबकी श्रद्धा तथा वन्दना को प्राप्त करती हैं अतः सबकी माता हैं । वरुण देव इन्हीं के सहारे प्राणियों के सत्य-असत्य का अवलोकन करते हैं जिससे मानव कभी प्रयादन करे ।

आयः देवियाँ मानवीय आक्रोश, द्रोह, अपराध तथा समसा पाप को बहा ले जाती हैं । ये मानव को स्वास्थ्य, रसायन, भैषज्य, धन तथा अमरता प्रदान करती हैं । उनके दान, वरदान तथा कृपा का अभिनन्दन किया गया है । यज्ञ भूमि में आकर सोमपान करने में देवों की सहायता करती हैं । इनका स्वर्गीय जल ही मधु, अमृत तथा रसायन में विद्यमान है । इनके जल की शक्ति ही सोम के माध्यम से इन्द्र में पहुंचती जिससे कि वीर कर्म करने में इन्द्र सक्षम होते हैं । इनके मधु का उल्लास ही देव तथा मानव को आनन्दित करता है । सोम आप की धारा में बहुत मद तथा आनन्द प्राप्त करते हैं । अवेस्ता में भी आपः का बहुत वर्णन एवम् अभिनन्दन मिलता है ।

(१५) **सविता**—ऋग्वेद के ११ सूक्तों में सविता का वर्णन मिलता है । अन्य भी बहुत से मत्रों में अन्य देवों के प्रसंग के साथ सविता का वर्णन आता है ।

सविता स्वर्णिम देव हैं । इन्हें स्वर्ण-नेत्र, हिरण्य हस्त, स्वर्ण-जिह्व तथा स्वर्ण-रथ कहे जाते हैं । इनके रथ के सभी अवयव स्वर्ण निर्मित हैं । इनके अश्व श्वेतचरण वाले तथा भूरे हैं । अपने आगमन से स्वर्ग, पृथ्वी तथा वातावरण को देदीप्यमान करते हैं । इनकी प्रभा बहुत ही प्रभावोत्पादक है । इनके हाथ विशाल हैं । ये सबको उत्साहित करते हैं, सहारा देते हैं तथा आशीर्वाद देते हैं । इनके हस्त दृढ़ तथा यशस्वी हैं ।

सविता सूर्य की किरणों में अपनी प्रभा भर देते हैं। सविता का मार्ग धूलि-धूसर नहीं है। अरेणु है। अपने इस प्राचीन मार्ग से प्रजाजनों की रक्षा करते हैं। दुःस्वप्न का नाश करके मानव को दोष-रहित बनाते हैं। राक्षसों, दस्युओं तथा दानवों को दूर भगाते हैं। जल तथा पवन पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। सभी प्राणी सविता की इच्छा का अनुगमन करते हैं। देवगण इनको अपना नेता मानते हैं।

सविता के प्रभुत्व में ही मानव विचारों में जागरण आता है। सविता मानवीय विचारों में ज्योति की स्थापना करते हैं। अतः इनकी गायत्री को सावित्री का मंत्र कहा गया है। सूर्य और सविता में विशेष अन्तर नहीं है। सूर्य को ही ब्रह्म-वेला में सविता कहा गया है। जबकि पृथ्वी पर अँधेरा हो और गगन में प्रकाश आ जाये, यही सविता का समय है। प्रसव और ऐश्वर्य का निदान सविता के ही हाथ में है। जगत् में जीवन, क्रियाशीलता तथा प्रगति देने के कारण प्रसविता को सविता कहा गया है।

(१६) **वात**—केवल दो सूक्तों में वात का अभिनन्दन किया गया है। वायु का अभिमानी देव वात है। वर्षा की झंझा के साथ सहयोग होने के कारण वात का सम्पर्क पर्जन्य से तथा वायु का सम्पर्क इन्द्र के साथ (इन्द्रवायू) जुड़ा हुआ है।

रुद्र की भांति वात भी स्वास्थ्य, जीवन तथा भैषज्य को प्रदान करते हैं। वात के निकेतन में अमरता का निवास है। गर्जन भरी विद्युत् (अशनि) में वात की सक्रियता की जानकारी मिलती है। वात के ही कारण प्रकाश में लाली तथा उषा में क्रान्ति का प्रादुर्भाव होता है। वात की गति अत्यन्त वेगवान् अश्व से दी जा सकती है।

(१७) **मित्र**—दिन के अभिमानी देव मित्र हैं। अधिकतर वरुण के ही साथ रहते हैं। कृषकों के सुख-दुःख के द्रष्टा हैं तथा प्रयास के लिये उन्हें प्रेरित करते रहते हैं। सविता भी मित्र के साथ ही पहचाने जाते हैं। श्रेष्ठ आदित्य तथा मित्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है। समस्त मानवों को एकता की दीक्षा देते हैं। मित्र के ही कारण सूर्य की यात्रा व्यवस्थित तथा निर्धारित होती है। मित्र सौर-मण्डल के अभिमानी देवता हैं। ईरान के धार्मिक ग्रन्थों के प्रमाण से भी यही बात सिद्ध होती है।

(१८) **अश्विनौ**—अश्वि-युग्म यमल-बन्धु (जुड़वां) हैं। ये अति प्राचीन होने पर भी नित्य युवा हैं। इनका मार्ग स्वर्णिम है। कमल-माला से सदा विभूषित रहते हैं। सुनहरी चमक मे सदा प्रसन्न रहते हैं। अदृश्य शक्तियों के स्वामी और अपरिमित बुद्धि रखते हैं। ये सत्य युक्त रहने के कारण नासत्या तथा विस्मयकारी होने के कारण दस्रा कहलाते हैं।

उषा और सूर्य के साथ सोम-पान करने के लिये अश्वि भी बुलाये जाते हैं। मधु इनको बहुत इष्ट है। ये जगमगाते रथ पर आसीन होते हैं। इनका रथ पवन

के समान वेगवान् है। इस रथ का निर्माण ऋभुओं ने किया है। इस रथ को सुन्दर पंखों वाले घोड़े खींचते हैं।

इनका रथ द्युलोक तथा भूलोक में विचरण करता है। ये स्वर्ग लोक, वा लोक अथवा समुद्र में निवास करते हैं। सूर्योदय से पूर्व पर उषा के आगमन अनन्तर इनका प्रादुर्भाव होता है। इन्हें विवस्वान् का पुत्र कहा गया है। इनकी सरण्यू है जो कि त्वष्टा की पुत्री है। सूर्या ने इन्हें पति रूप में वरण किया है।

अश्विनौ की उपासना से दुःख, दुर्भाग्य का अन्त हो जाता है। वे शा और दया के देवता हैं। वे अपने प्रभाव से भक्तों की रक्षा करते हैं। वे स्वर्ग वैद्य हैं। रोग तथा भय को दूर कर देते हैं। नये हाथ, पैर तथा आँखें देकर रा पुरुष को पुनः सम्बल देते हैं। देवताओं की शारीरिक दुर्बलता को दूर कर देते है भुज्यु नामक राजा का समुद्र में उद्धार इन्होंने किया।

प्रातः काल के अंधेरे और प्रकाश के मिलन काल को अश्विनौ का स कहा जाता है। वाम और दक्षिण नासा-पुटों को भी अश्विनौ कहा जाता है। यो की भाषा में इसे ही इडा-पिंगला भी कहते हैं।

(१९) वाक्—वाणी के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव को रहस्यमय ढंग बतलाया गया है। वाक् और ब्रह्म की एकरूपता समझायी गयी है। वाक् देव अपनी कृपा से अपने आश्रित को ब्राह्मण, ऋषि अथवा तेजस्वी बना देती है। व राष्ट्री और देवों का संगमन कराती है। दर्शन के गूढ़ सिद्धान्त का रहस्य बं यहाँ विद्यमान है। योगज-शक्ति से मानव के विकास का महान् विस्तार समझाया गया है। वाग् देवता अम्भृण की पुत्री तथा देवों की प्रेरक शक्ति सूर्य, चन्द्र तथा रुद्र को यही शक्ति धारण करती है।

(२०) वास्तोष्पति—सोम देवता के समान वास्तोष्पति भी हमारे सदन अभिमानी देव है। इस देवता के विषय में एक ही सूक्त है। यह हमारे गृह अग्नि के समान ही गृहपति है। जब मानव अपने नए गृह में प्रवेश करता है उसे वास्तोष्पति का पूजन, अभिनन्दन अवश्य करना चाहिये। वेद मन्त्रों में गया है कि हमारे गृह (वास्तु) के देवता (पति) हमारे लिये सदा स्वस्ति का सृ करें। हमारे धन तथा पशु एवं गृह-उपकरण को सम्पन्न तथा सुशोभित करें। उ गृहपति की गृहसिद्धि के लिये जिन आवश्यक वस्तुओं की कामना होती है सबकी पूर्ति वास्तोष्पति की ही कृपा से सम्भव है। सम्पदा की सुरक्षा तथा अभ्यु की कामना भी इसी देवता के आधीन हैं।

इस प्रकार विशेष देवों का वर्णन उनके आकार, प्रकार, स्वभाव मानवीय साहचर्य की दृष्टि के निरूपित किया गया। कुछ अन्य भी देव हैं जि स्पष्ट रूप से प्रतिपादन नहीं किया गया है अथवा जिनका स्वरूप ऊपर कहे देवों ही अधिकतर मिलता जुलता है। उनमें बृहस्पति देवता की उपासना का व प्रभाव और स्वतन्त्रता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कहीं-कहीं इनका वर्णन इन्द्र

साथ आया है। इन्हें ब्रह्मणस्पति भी कहा गया है। ये स्तोत्र-समूह के स्वामी तथा बुद्धि के देवता हैं। इनमें रण कौशल के साथ-साथ पौरोहित्य भी करना पड़ता है। इनमें ब्रह्म तथा क्षत्र दोनों के गुणों का समावेश है।

बृहस्पति मन्त्रों के प्रेरक हैं। इनके हाथ में धनुष-वाण तथा परशु रहता है। इनका वर्ण स्वर्णिम है। ये मनुष्यों को सुन्दर आयु और सौभाग्य प्रदान करते हैं।

नदियों में गंगा, यमुना, दृषद्वती, विपाशा, शुतुद्री आदि का वर्णन आता है पर सिन्धु और सरस्वती का नाम अधिक विस्तृत है। सरस्वती को अधिक महत्त्व और ममत्व मिला है। वेद की शुतुद्री ही आजकल सतलज और विपाशा व्यास कहलाती है। विश्वामित्र ऋषि का नदियों के साथ का वर्णन बड़ा ही मुग्धकारी तथा आलंकारिक है।

वेदों में पुरुष से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति का निर्देश मिलता है। हिरण्यगर्भ को प्रजापति, ब्रह्म तथा विराट भी कहा गया है। समस्त सृष्टि-प्रपंज का हिरण्यगर्भ ही एकमात्र स्वामी है। वही अपने बल से अन्तरिक्ष लोक को धारण करता है तथा पृथ्वी एवं द्युलोक का वही एक अवलम्बन है। उसके चरण में पृथ्वी तथा माल में द्यु लोक स्थित है। इसी की व्यापकता को लेकर वेदान्त के लिये 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का सूत्र-बीज मिला।

अदिति देवता मातृ-शक्ति की देवी है। वह असीम और असीमित सामर्थ्य वाली शक्ति है। वह बन्धनों (दिति) से रहित है। यह अनश्वर अन्तरिक्ष की ज्योति है। इन्द्र की कृपालु मां के रूप में भी इसे दर्शाया गया है। यह 'परमे व्योमन्' उच्च आकाश में निवास करती है और उषा के सदन में रहती है। अदिति को दक्ष की माता और पुत्री के रूप में भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड की यह चिरन्तन परम्परा चली आ रही है। कौन किसका पिता है और कौन पुत्र है, यह अध्यात्म की दृष्टि से स्पष्ट नहीं किया जा सकता, इस दार्शनिक पृष्ठभूमि का बीज-मंत्र यहाँ निहित जानना चाहिये।

आदित्यों को अदिति का पुत्र कहा गया है। मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् तथा मार्तण्ड आदि आदित्य कहलाते हैं।

(६) छन्दः

ऋग्वेद की रचना छन्दोबद्ध है। इसमें लय, माधुर्य तथा पठन में धरिता आती है। बृहद् आकार में अभ्यास करने पर छन्दों की संख्या तथा नाम अधिक हैं। सामान्य रूप से सात छन्दों की ही प्रमुखता है—गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, जगती और पंक्ति।

(१) **गायत्री**—यह छन्द २४ अक्षरों वाला होता है। न्यून या अधिक अक्षर होने पर गायत्री के अन्य-अन्य भेद माने जायेंगे। गायत्री को षड्ज स्वर में गाया जाता है। गायत्री त्रिपदा=तीन चरण की होती है और प्रत्येक चरण मे आठ अक्षर होते हैं।

(२) **अनुष्टुप्**—यह छन्द ३२ अक्षरों वाला होता है। इसका स्वर गान्धार है। इसमें आठ-आठ अक्षर के चार चरण होते हैं। इसमें भी न्यूनाधिक मात्रायें होती हैं।

(३) **त्रिष्टुप्**—इस छन्द में चार चरण तथा प्रत्येक चरण में ११ मात्रायें होती हैं। इस प्रकार पूरा छन्द ४४ अक्षरों का होता है। इस छन्द का स्वर धैवत है।

(४) **उष्णिक**—इस छन्द में तीन चरण होते हैं। पहले तथा दूसरे चरण में आठ-आठ अक्षर तथा तीसरे में १२ अक्षर होते हैं। इस प्रकार पूरे छन्द में २८ अक्षर होते हैं। इस छन्द का स्वर ऋषभ है।

(५) **बृहती**—इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में आठ-आठ अक्षर तथा तृतीय चरण में बारह अक्षर होते हैं। इस प्रकार इस छन्द में कुल छत्तीस अक्षर होते हैं और इसका स्वर मध्यम है।

(६) **जगती**—इस छन्द में बारह-बारह अक्षरों के कुल चार चरण होते हैं। ४८ अक्षरों का यह छन्द होता है। इस छन्द का स्वर निषाद है।

(७) **पंक्ति**—यह छन्द ४० अक्षरों का होता है। पूरे छन्द में पाँच चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में ८ अक्षर होते हैं। इस छन्द का स्वर पञ्चम है।

संक्षेप में गायत्री–सा, उष्णिक–रे, अनुष्टुप्–ग, बृहती–म, पंक्ति–प, त्रिष्टुप्–ध और जगती–नि, इस प्रकार छन्दों के स्वरों को सा–रे–ग–म–प–ध–नि के रूप में संक्षिप्त रूप से कहा गया है। इसी क्रम में गायत्री का वर्ण श्वेत, उष्णिक् का सारङ्ग, अनुष्टुप् का पिङ्ग, बृहती का कृष्ण, पंक्ति का नील, त्रिष्टुप् का लोहित और जगती का गौर वर्ण माना गया है। देवता की दृष्टि से इन छन्दों के क्रमशः–अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुणा, इन्द्र तथा विश्वेदेवाः हैं। इसी प्रकार इन छन्दों के ऋषि भी क्रमशः—आग्निवेश्य, काश्यप, गौतम, आङ्गिरस, भार्गव, कौशिक और वसिष्ठ माने जाते हैं।

विस्तार से जानने के लिये आचार्य पिङ्गल रचित छन्दः शास्त्र को देखना चाहिये। वहाँ पर लौकिक-वैदिक छन्दों का बड़े विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। षड् गुरु शिष्य ने वेदार्थ दीपिका में पिंगलाचार्य को पाणिनि का छोटा भाई बताया है।

वैदिक छन्दों का चित्र

		सा	रे	ग	म	प	ध	नि
		गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२	दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४	प्राजापत्मा	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

वैदिक छन्दों की विविधता है। यही छन्द लौकिक छन्दों के आदि स्रोत कहे जाते हैं। इस विषय में कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) 'लिगति प्रमाणि' यह प्रमाणी छन्द की परिभाषा है। प्राकृत में भी 'लहू गुरू गिरन्तरा पमाणि अट्ठ अक्खरा' कह कर यही बात दुहरा दी है। लघु-गुरु अक्षरों के मेल से प्रमाणी छन्द बनता है। ऋग्वेद में ऐसी बहुत सी ऋचायें हैं जिनमें इस क्रम का प्रारूप देखने को मिलता है—

(१) अधारयन्त बह्नयः (१-२०-८), (२) हिरण्यपाणिमूतये (१-२१-५), (३) ऋतेन यावृतावृधा (१-२३-५), (४) हृदिस्पृगस्तु शन्तमः (१-१६-७)।

इसी प्रकार इन्द्रवज्रा 'पूषण्वते ते चकृमा करम्भम्' (३-५२-७), उपेन्द्रवज्रा 'स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम्' (२-३३-११), 'उरुं हि राजा वरुणश्चकार (१-२४-८)',

उपजाति—'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद् दिवेयुः' (१-२४-१०),

वंशस्थ—'हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिः' (१-३५-६),

इन्द्रवंशा—'यूना ह सन्ता प्रथमं विजज्ञतुः' (६-६८-५),

वातोर्मि—आ देवानामभवः केतुरग्ने (३-१-१७),

नराच—ऊथा न इन्द्र सोमया गिरामुपश्रुति चर (१-१०-३),

अनुष्टुप्—इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्र पुरुष्टुतः (१-११-४)

शालिनी—इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूत् (७-१०४-७),

सभी ऋषियों और आचार्यों ने छन्दोज्ञान की महत्ता स्वीकार की है। महर्षि पाणिनि ने 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' कह कर छन्दों को आधार-शिला के रूप में माना है। छन्दोब्राह्मण में ऋषि-देवता-छन्द की उपयोगिता पर प्रभविष्णु ढंग से वर्णन किया गया है। बृददेवता में छन्दो ज्ञान से रहित व्यक्ति की निन्दा की गयी है।

मण्डल १

अग्नि सूक्तम्

सूक्त १

ऋषि:—मधुच्छन्दा: । देवता—अग्नि: । छन्द:—गायत्री ।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

पद-पाठ:—अग्निम् । ईळे पुर: ऽ हितम् । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् ।

होतारम् । रत्नऽधातमम् ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—यज्ञस्य देवपूजासङ्गतिकरणदानादिकर्मण: पुरोहितम् अभीष्ट सम्पादकम्=सहायकरूपेण पुरोऽवस्थितम् देवम् दानशीलम् । होतारम् आह्वतारम् । ऋत्विजम्-ऋत्विग्भूतम् । रत्नधातमम् रमणीयानां रत्नानाम् अतिशयेन धारकं तं तथाविधं पोषयितारम् अग्निं परमात्मानम् अहम् ईडे स्तौमि ।

टिप्पणी—अग्निम्—अगिधातो र्निप्रत्ययेऽग्निशब्द: सिद्धयति । पुरोहितम्—पुर: + धा + क्त । धातो र्हि: । रत्नधातमम्—रत्न + धा + क्विप् । रत्नधा शब्दात् तमप् ।

हिन्दी व्याख्या—मैं 'अग्निम् ईडे' प्रकाशस्वरूप परमात्मा की वन्दना करता हूं । अगले सभी शब्द विशेषण रूप में प्रयुक्त हैं—पुरोहितम्—जो परमात्मा सहायक-रूप से सदा सामने ही अवस्थित हैं अथवा जो पुरोहित के समान सदैव ही अभीष्ट की पूर्ति करते हैं । 'यज्ञस्य देवम्' देवपूजा—संगति आदि कार्यों के सम्पादक हैं । दानशील हैं और 'ऋत्विजम्' ऋत्विक् के समान हमारे पूज्य हैं । 'होतारम्' देवों की पुकार करके पृथ्वी तक उन्हें लाने की कृपा करने वाले हैं तथा 'रत्नधातमम्' रमणीय रत्नों के धारक हैं, उस तेज स्वरूप परमात्मा की हम वन्दना करते हैं ।

अग्नि: पूर्वेभि ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।

स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

पद-पाठ:—अग्नि: । पूर्वेभि । ऋषिऽभि । ईड्य: । नूतनै: । उत । स: ।

देवान् । आ । इह । वक्षति ।। २ ।।

संस्कृत व्याख्या—अयम् अग्निः पूर्वेभिः पूर्वपुरुषैः पितृपितामह प्रभृति नूतनैः इदानीन्तनैरस्मदादिभिरपि ईड्यः स्तुत्यः । सः अग्निः परमात्मा पूजितः स इह देवान् आवक्षति आवहतु ।

टिप्पणी—पूर्वेभिः—पूर्वैः । 'बहुलं छन्दसि' इति ऐस् भावो न । वक्षति-वहधातो र्लेट् । 'सिब्बहुलम्०' इहि सिप् प्रत्यये ऽडागमे सति निष्पन्नम् । ईड्यः-ईड् स्तुतौक्यत् ।

हिन्दी व्याख्या—यह अग्नि 'पूर्वेभिः ऋषिभिः' हमारे पूर्ववर्ती ऋषियो द्वारा 'ईड्यः' स्तुति प्राप्त कर चुका है और यही 'नूतनैः उत' नवीन ऋषियों भी द्वारा मान्य और पूज्य है । वह अग्नि भली प्रकार सत्कार पाने पर देवों को य पर लाने में समर्थ होता है ।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे ।

यशसं वीरवत्तमम् ।। ३ ।।

पद-पाठ—अग्निना । रयिम् । अश्नवत् पोषम् । एव । दिवे ऽ दिवे । य सम् । वीरवत् ऽतमम् ।। ३ ।।

संस्कृत व्याख्या—तेन स्तुत्येन निमित्तभूतेन अग्निना रयिं धनेश्वर्यम् अश्न पुरुषः प्राप्नोति । तच्च धनं दिवे-दिवे पोषम् पुष्टिकरं पोषकत्वेन अहर्निशं वर्ध नैव क्षीयमाणम् यशसं कीर्तिकरं दानादिना जायमानं शौर्यादिना सम्पाद्यं च वत्तमम् अतिशयेन वीर पुरुषोपेतम् । स्तुत स्तुष्टश्चाऽभिप्रायम् अग्निः प्रपूरयति ।

टिप्पणी—अश्नवत्—अश्नोते र्लेटि + तिप्, इकारलोपोऽडागमश्च । दिवे—दिवशब्दात् 'सुपां सुलुग्', इत्यादिना 'शे' 'नित्यवीप्सयोः' इति द्वित्वम्

हिन्दी व्याख्या— सभी सुखों का निमित्तभूत परमात्मा ही है । उसी कृपा और सहायता से पुरुष नाना प्रकार के धनैश्वर्य को प्राप्त कर सकता परमेश्वर के द्वारा दिया गया धन प्रतिदिन पुष्टि और वृद्धि को देता है, जो क्षीण नहीं होता । यह धन 'यशसम्' दानादि से निष्पन्न कीर्ति, प्रशंसित का तुष्टि तथा वीरकर्म से यश का सम्पादन कराता है । ऐसी सम्पदा एवं प्रभु की के कारण वीर और शुभ-द्रष्टा पुरुषों का प्रादुर्भाव होता है ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।

स इद्देवेषु गच्छति ।। ४ ।।

पद पाठ—अग्ने । यम् । यज्ञम् । अध्वरम् । विश्वतः । परिऽभूः । असि ।

सः । इति । देवेषु । गच्छति ॥ ४ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! त्वम् अध्वरं हिंसारहितं यज्ञं देवपूजासङ्गतिकरणादिधर्मयुक्तं शुभं यज्ञं यं विश्वतः सर्वतः परिभूः व्याप्तवान् असि । स इत् यज्ञः स एव यज्ञः तृप्ति हेतुः देवेषु तृप्तिसम्पादनार्थं गच्छति प्राप्नोति ।

टिप्पणी—अध्वरम्—ध्वरति हिंसाकर्मा, तत्प्रतिषेधः । हिंसारहितम् विश्वतः—विश्वशब्दात् सप्तम्यर्थे तसिल् ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्निस्वरूप परमात्मा ! आप जिस परम उदार अनुकम्पनीय हिंसा-रहित यज्ञ को सभी ओर से प्राप्त करते हैं, वह यज्ञ परमानन्द का सम्पादन करता हुआ देव-गण को प्राप्त होता है ।

अग्नि र्होता कविक्रतुः सत्य श्चित्र श्रवस्तमः ।

देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥

पद-पाठः—अग्निः । होता । कविऽक्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवःऽतमः । देवः ।

देवेभिः । आ । गमत् ॥ ५ ॥

संस्कृत व्याख्या— अयम् अग्रभूतः देवः दिव्यगुणः अग्निः अस्माकं होता आह्वाता होमनिष्पादकः कविक्रतुः क्रान्तप्रज्ञानः क्रान्तकर्मा सत्यः सदैव निष्पायः सत्यभूतः फलदाता चित्रश्रवस्तमः अतिशयेन विविधख्यातियुक्तः देवेभिः दिव्यकर्मभिः सह आगमत् आगच्छतु अस्मत्प्रीत्यर्थं कृतार्थयतु ।

टिप्पणी—चित्रश्रवस्तमः—श्रूयते इति श्रवः कीर्तिः । चित्र + श्रवः + तमप् । आगमत्—आगच्छतु । लोटि छत्वाभावः उकारलोपश्छान्दसः । सत्यः—सत्सु साधुः सत्यः । 'सत्यादशपथे' इति निपातनात् ।

हिन्दी व्याख्या— होम का निष्पादन करने वाला यह अग्नि 'कविक्रतु' अतीत—अनागत को जानने वाला 'सत्यः' सदा समरस रहने वाला 'चित्रश्रवस्तमः' विविध प्रकार से ख्याति-युक्त 'देवः' सदा प्रकाशमान 'देवेभिः' दिव्यगुण-कर्म वाले देवगण के साथ 'आगमत्' हमारे यज्ञ में आगमन करें ।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।

तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

पद-पाठः—यत् । अङ्ग । दाशुषे । त्वम् । अग्ने । भद्रम् । करिष्यसि । तव इत् । तत् । सत्यम् अङ्गिरः ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—अङ्ग अग्ने ! हे अग्ने ! त्वम् दाशुषे दानशीलाय पुरुषाय यत् भद्रं कल्याणं करिष्यसि तत् कल्याणरूपं कर्म 'तव इत्' तवैव नान्यस्य कस्य चित् । हे अङ्गिरः ! सत्यम् एतत् नात्र सन्देहावसरः ।

टिप्पणी—अङ्गिराः—गत्यर्थकाद् अगिधातोः इरच् । 'येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन् । दाशुषे—दाशृ दाने + क्वसुः । भद्रम—भदि कल्याणे + रः ।

हिन्दी व्याख्या— हे अग्निदेव ! आप हविष् का दान करने वाले उदार पुरुष के लिए सर्वदा कल्याण ही करते हैं, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। आप सदैव सत्य स्वभाव निष्कलङ्क, निरालस अंगारे के समान दिव्य स्वभाव हैं ।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्त धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

पद-पाठः—उप । त्वा । अग्ने दिवेऽदिवे । दोषाऽवस्तः । धिया । वयम् । नमः भरन्त । आ । इमसि ॥ ७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अग्ने ! वयम् उपासकः दोषा रात्रिः तद्गतं तमोऽपि दोषा; तस्य रात्रिगतस्य अज्ञानगतस्य वा तमसः वस्तः 'वस—आच्छादने' स्वप्रकाश दानेन निवारयितः, तमस आच्छादयितः अग्ने दिवेदिवे प्रतिदिनं वयं धिया मनीषया नमो भरन्तः नमांसि सम्पादयन्तः तव समीपम् एमसि प्राप्नुमः ।

टिप्पणी—भरन्तः—भृ + शप् + शतृ । एमसि—'इदन्तो मसि'

हिन्दी व्याख्या—हे दोषावस्तः ! अपने स्वप्रकाश से अज्ञान रूप अन्धकार को स्वप्रकाश से आच्छादित करने वाले अग्नि देव ! 'दिवे-दिवे' प्रतिदिन हम लोग आपके समीप नमन के साथ प्राप्त हो रहे हैं । अर्थात् हम सदा आपकी ही शरण में सानन्द विचरण करते हुए सन्तुष्ट रहें ।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।

वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

पद-पाठः—राजन्तम् । अध्वराणाम् । गोपाम् । ऋतस्य । दीदिविम् । वर्धमानम् । स्वे । दमे ॥ ८ ॥

संस्कृत व्याख्या—तम् राजन्तम् देदीप्यमानम् अध्वराणाम् हिंसारहितानां शुभकर्मणां यज्ञानां गोपाम् रक्षकम् ऋतस्य दीदिविम् सत्यस्य प्रकाशकं स्वे दमे स्वकीये गृहे वर्धमानं सदैव शोभमानम् तम् अग्निं वयं प्राप्नुमः ।

टिप्पणी—दीदिविम्—दिव् धातो र्यङ्‌लुङन्तात् कि प्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! आप सदा प्रकाशमान हैं । यज्ञों के रक्षक तथा कर्मफल के प्रकाशक हैं और अपने स्थान में निरन्तर वर्धमान रहते हैं ।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।

सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

पद-पाठः—सः । नः पिताऽइव । सूनवे । अग्ने । सुऽउपायनः । भव । सचस्व नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! त्वं नः अस्मदर्थं सूपायनः शोभनगमनः अनायासेन प्राप्तियोग्यः भव स्याः । अस्माकं च स्वस्तये कल्याणाय सचस्व अभिमतो भव । पितेव । यथा पुत्राय पिता सुप्रायो भवति कल्याणप्रदश्च । तथा त्वमपि भव ।

टिप्पणी—सचस्व—षच् + लोट् ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! आप कृपा करके हमारे लिए सहज दयालु और प्राप्ति के योग्य बने रहिए और हमारे कल्याण के लिये सदैव उपदेश करते रहिये जिससे अपने अभिमन पितृतुल्य आपको पाकर हम सदा ही आश्वस्त और प्रसन्न रहें ।

मण्डल १

सूक्त १९

देवता—अग्निर्मरुतश्च । ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः छन्दः—गायत्री

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।

मरुद्भिरग्न आगहि ॥ १ ॥

पद-पाठः—प्रति । त्यम् । चारुम् । अध्वरम् । गोऽपीथाय । प्र ऽ हूयसे

मरुद्ऽभिः । अग्ने आऽगहि ।। १ ।।

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (चारुं त्यम् अध्वरम्) सा
युक्तम् अङ्गवैकल्यरहितं त्यम् तथाविधं पवित्रं शुभं सौख्यकरम् अध्वरम् अ
प्रतिष्ठितम् अस्माकं यज्ञं स्वीकृत्य (गोपीथाय) प्रतिलभ्य सोमपात्रय रक्षणायः
न्द्रियतर्पणाय त्वं प्र हूयसे प्रकर्षेण आहूयसे । त्वं (मरुभ्दिः) मरुद्गणैः सह (आ
पदार्पणं कुरु । आगच्छ ।। १ ।।

टिप्पणी— चारुम्— चरतेरुण् प्रत्ययः । गोपीथाय—गो + पा + थ
'घुमास्था०' इतीत्वम् । रक्षणाय इति श्रीधरस्वामीः गोशब्दस्य इन्द्रियाँर्थोऽपि—
दयानन्दः । आ गहि=आ गच्छ । आङ्पूर्वस्य गच्छते मध्यमपुरुषे कवत्य
इत्यादेशः ।

(२) गोपीथ शब्द का अर्थ मैक्समूलर ने 'गंध का घूँट' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! प्रकाशस्वामी (त्यम् पारुम् अध्वरम्) अ
उस सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ में (गोपीथाय) सोम-पान के लिए, रक्षा के लिए (प्र
आदर-श्रद्धा के साथ बुलावा भेजा गया है—बुलाया गया है । आप (मरुभ्दिः)
गण के साथ (आ गहि) अवश्य पधारें । आने की कृपा करें ।

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।

मरुभ्दिरग्न आ गहि ।। २ ।।

पद-पाठः—नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तव । क्रतुम् । परः । म

अग्ने । आ । गहि । २ ।।

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! (तव महः क्रतुम्) तव सम्बन्धिनं महान्तं
व्यापारं क्रियमाणम् उल्लंघ्य (नहि देवः परः) नैव देवः परः उत्कृष्टो भवितु
(न मर्त्यः) नैव च तव कर्म उल्लङ्घ्य मानवः उत्कष्टो भवितुं शक्नोति ।
स्वभावस्य मानवस्य कथैव का ? यदा देवोऽपि जहाति देवत्वम् (मरुद्भिः अ
गहि) देवविशेषै र्मरुद्भिः सह हे अग्ने ! मदीयं कर्मजातं शोधयितुम् उ
आगच्छ ।

टिप्पणी— क्रतुम्—कृधातोस्तुन् । आगहि—गमधातो र्लोटि मध्यम
वचने । सेर्हि । 'बहुलं छन्दसि' शपो लोपः, 'अनुदात्तोपदेश०' अनुनासिकलो
'असिद्धवदत्राभात् इतिः 'अतो हेः' इति हे र्लुङन ।

(२) पर्टिर्सन कहते हैं कि "देवता या मनुष्य तुम्हारी शक्ति का उल्लङ्घन नहीं कर सकता।" इस प्रकार 'क्रतु' का अर्थ वे 'शक्ति' मानते हैं। 'शतक्रतु' शब्द का अर्थ भी इसी हेतु वे 'सौ मनुष्यों की शक्ति वाला' करते हैं।

हिन्दी व्याख्या—हे प्रकाश स्वरूप अग्ने! आपसे सम्बन्धित कर्म का परित्याग करके न तो देवता देवत्व की प्राप्ति कर सकता है और न तो मनुष्य ही उत्कृष्ट हो सकता है। हे अग्ने! आप मरुद्गण के साथ पधारें।

ये महो रजसो विदु विश्वे देवास अद्रुहः।

मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ३ ॥

पद-पाठः—ये। महः। रजसः। विदुः। विश्वेः। देवासः अद्रुहः। मरुत्-ऽभिः। अग्ने। आ। गहि ॥ ३ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने! ये मरुतः महो महतो रजसः उदकसंघातस्य वर्षणविधिं विदुः जानन्ति तैः मरुद्भिः त्वम् अस्मान् प्रति अनुकम्पया आयाहि आगच्छ। कीदृशाः मरुतः विश्वेदेव सः सर्वे दिव्यगणोपेताः 'सप्त गणा वै मरुतः' इति श्रवणात्। देवासः दिव्या विद्योतमानाः। अद्रुहः द्रोहरहिताः वर्षणविधिना सर्वोपकारित्वात्।

टिप्पणी—अद्रुहः—नञ्पूर्वस्य द्रुहधातोः क्विप्।

(२) पटिर्सन 'रजसः' का अर्थ आकाश करते हैं—'जो महान् आकाश लोक को जानते हैं। मैक्समूलर भी 'रजः' का अर्थ आकाश ही करते हैं।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने! जो मरुद्गण (महो रजसः) महान् जल-संघात की वर्षाविधि को जानते हैं। जो (विश्वेदेवासः) सभी प्रकाशमान देवता हैं (श्रुतियों में कहा गया है कि मरुद्गण सात-सात के गण में रहते हैं) और जो (अद्रुहः) वर्षा करके सर्वोपकारी होने के कारण निरन्तर द्रोह-रहित हैं, उन मरुद्गण के साथ हमारे यज्ञ को शोभायमान कीजिये।

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।

मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ४ ॥

पद-पाठः—ये। उग्राः। अर्कम्। आनृचुः। अनाधृष्टासः। ओजसा। मरुद्भिः। अग्ने। आ। गहि ॥ ४ ॥

संस्कृत व्याख्या— (ये) मरुतः उग्राः अत्यन्ततीक्ष्णाः सन्तः अर्कम् पूज्यं मुदकम् आनृचुः अर्चितवन्तः अर्चन्ति वा वर्षया सम्पादयन्ति । तै स्तथाविधै मरुद्भि स्त्वमागहि आगच्छ । ते मरुतः कीदृशाः ? ओजसा तेजसा बलेन च अनाधृष्टाः अनाभयिनः (आसमन्तात् बिभेति इति आभयी न आभयी अनाभयी ते अनाभयिनः) अतिरस्कृतस्वभावाः सर्वेश्वराः घर्षणशीलाः । प्रबलाः ।

टिप्पणी—उग्राः—उत्पूर्वस्य 'गुरी उद्यमने' 'गॄ निगरणे' वा धातुः । अर्कम् अर्चनीयं जलम् । आनृचुः—ऋच् धातो लिटि ।

(२) पटिर्सन ने 'अर्क' का अर्थ 'गान' किया है । 'आनृचुः' का अर्थ 'गाना गाते हैं' किया है । 'मरुतः स्वर्काः' ऋ–७–३५–६ में सायण ने भी 'मरुत स्तुतियों से युक्त' किया है । आयो वा अर्कः (शत० १०–६–५१) कह कर वाचक अर्क शब्द को माना गया है । कहा गया है—'अर्चतो वै मे कम् अभूत् तदेव अर्कस्य अर्कत्वम् ।'

हिन्दी-व्याख्या—जो मरुद्गण (ओजसा) अपने बल-वैभव से (अनाधृष्टाः) अतिरस्कृत हैं (निर्भय महाबली हैं) जो अत्यन्त उग्र स्वभाव के हैं (अर्कम् आनृचुः) जो अर्चनीय जल की अर्चना करते हैं=वर्षा के द्वारा सम्पादन करते हैं, उन के साथ हे अग्ने ! आप आइये ।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः ।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥

पद-पाठः—ये । शुभ्राः । घोरऽवर्पसः । सुऽक्षत्रासः । रिशादसः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आऽगहि ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—ये रुद्रपुत्रा मरुतः (शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासोरिशादसः) शुभ्राः शुचयो रागद्वेषविवर्जिताः घोरवर्पसः उग्रशरीराः रौद्रस्वभावाः सुक्षत्रासः नधनबलोपेताः रिशादसः ये रिशन्ति मुधैव रोषणस्वभावास्तान् अदन्तीति हिंसकानामपि हिंसकाः, तै रेवंविधै र्मरुद्भिः हे अग्ने त्वंमिहागच्छ ।

टिप्पणी— शुभ्राः— शुभधातो रक् । शोभन्ते इति शुभ्राः । घोरवर्पसः इति रूपनाम, घोरं वर्षो रूपं येषां ते घोर वर्पसः उग्ररूपधराः रिशादसः—रिशन्ति हिंसन्ति ते रिशाः, तान् अदन्ति इति ते रिशादसः हिंसकानां भक्षकाः, घातकाः, निवारकाः । सुक्षत्रासः=सुक्षत्राः, क्षत्रम्—बलम्, राज्यम्, धनम्, शोभनं क्षत्रं ते सुक्षत्राः. 'आज्जसेरसुक्' ।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण (शुभ्राः) शुद्ध सात्विक स्वभाव वाले (घोरवर्पसः) उग्ररूपधारी (सुक्षत्रासः) धन-बल-वैभव से सम्पन्न सथा (रिशादसः) हिं

भी हिंसक (रोगों के निवारक) हैं। ऐसे मरुद्गण के साथ हे प्रकाशमय प्रभो! आप हमारे अज्ञान का निवारण करें।

ये नाकस्याधिरोचने दिवि देवास आसते।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

पद-पाठः—ये। नाकस्य। अधि। रोचने। दिवि। देवासः। आसते।

मरुत्ऽभिः। अग्ने। आ। गहि ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—ये मरुतः नाकस्य सर्वानन्द प्रदस्य दुःखरहितस्य आदित्यस्य अधि उपरि दिवि द्योतनात्मके द्युलोके रोचने कान्तिप्रदे देवासः स्वयमपि प्रकाशित शरीरा आसते विद्यमानाः सन्ति, तैः मरुद्भिः सह हे अग्ने! त्वयस्मान् प्राप्नुहि।

टिप्पणी—नाकस्य—कं० सुखम्, नास्ति यस्मिन् तदकम्, न अकम्—नाकम्, नाको वा तस्य (६-३-७५ 'नभ्राण्नपात्० इत्यादिना नलोपाभावः। रोचनम्—रुच दीप्तौ इत्यस्मात् 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' ३-२-१४९ इत्यादिना युच् प्रत्ययः।

(२) पीटर्सन ने 'नाक' का अर्थ आकाश और 'रोचने' का अर्थ प्रकाशमान किया है। मैक्समूलर ने 'सूर्य द्वारा प्रकाशित स्थानों में निवास करने वाले 'देवगण' किया है।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण दुःखाभाव से युक्त सूर्य के द्वारा प्रकाशित द्युलोक में जगमगा रहे हैं, जो स्वयं भी प्रकाश करने वाले देवगण हैं, उन महान् मरुद्गण के साथ हे अग्ने! आप पधारें।

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥

पद-पाठः—ये। ईङ्खयन्ति। पर्वतान् तिरः। समुद्रम्। अर्णवम्। मरुत्ऽभिः।

अग्ने। आ। गहि ॥ ७ ॥

संस्कृत व्याख्या—ये मरुद्गणाः पर्वतान् पर्ववन्तो मेघान् ईङ्खयन्ति प्रेरयन्ति अर्णवं जलमयं समुद्रं तरङ्गोत्पादनैः तिरस्कुर्वन्ति कम्पाकुलं कुर्वन्ति। तैस्तथाविधैः मरुद्भिः हे अग्ने! त्वमिहाभव।

टिप्पणी—समुद्रम्—सम् पूर्वस्य 'उन्दी क्लेदने' इति धातोः रक् प्रत्ययः। पर्वतान्—मेघान्। मत्वर्थीयस्तकारः, पर्वत पर्ववान्। पर्व पुनः पृणातेः। अर्णवम्= अर्णांसि जलानि। मत्वर्थीयो वकारः अर्णांसि प्रचुराणि अतिशयानि सन्ति यस्मिन् सोऽर्णवः।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण घने जलार्द्र मेघों को इधर-उधर प्रेरि करते हैं तथा तरङ्गोत्पादन से समुद्र को भी तिरस्कृत करते रहते हैं, उन मरुद्गण साथ हे अग्ने ! आप यहाँ पधारें ।।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्र मोजसा ।

मरुद्भिरग्न आ गहि ।। ८ ।।

पद-पाठः—आ । ये । तन्वन्ति । रश्मिभिः । तिरः । समुद्रम् । ओजसा

मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ।

संस्कृत व्याख्या—ये खलु मरुतः रूद्रपुत्राः रश्मिभिः सूर्य-किरणैः सह तन्वन्ति आकाशं व्याप्नुवन्ति । अथ च ओजसा स्वसाहसेन समुद्रं तिरस्कुर्वन्ति, मरुद्भिः त्वं हे अग्ने ! अस्मान् आगच्छ ।। ८

टिप्पणी—रश्मयो रमणात् । ओजो मनोबलम् ।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण सूर्य की किरणों तथा अपने मनोबल के सह सारे आकाश में फैल जाते हैं तथा जो नयी-नयी तरंगों से उत्पादन से समुद्र कम्पाकुल करते रहते हैं, उन रूद्रपुत्रों (मरुतों) के साथ शीघ्र कृपा करके हे अग्ने आप पधारिये ।

अभि त्वा पूर्व पीतये सृजामि सोम्यं मधु ।

मरुद्भि रग्न आगहि ।। ९ ।।

पद-पाठः—अभि । त्वा । पूर्वऽपीतये । सृजामि । सोम्यम् । मधु । म

ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ।। ९ ।।

संस्कृत व्याख्या—पूर्वपीतये पूर्वकाले पानाय लब्धवृत्तये त्वा त्वां प्रति मधु सोम्यता सम्पादकं मधुरं सोमरसं हे अग्ने ! अभिसृजामि अभिमुखं सम्पाद त्वमपि मरुद्भिः सह आगहि आगच्छ ।

टिप्पणी— पूर्वपीतये— पूर्वा चासौ पीतिश्च पूर्वपीतिः तस्यै पूर्वपीत सोम्यम्—सोमम् अर्हति, इति यत् । मधु—'मनु अवबोधने' उप्रत्ययः, न का धकारः । छन्दः पूर्त्यर्थं 'सोम्यम्' इत्यत्र 'सोमियम्' इति पाठः करणीय; ।

हिन्दी व्याख्या—(पूर्वपीतये) सभी देवताओं में प्रथम-पान करने के लि अग्ने ! (त्वा अभि सृजामि) आप के ही लिये (सोम्यं मधु) सौम्य-गुणों को

ले सोमरस की मधुर सर्जना कर रहा हूं। अतः आप मरुद्गण के साथ अविलम्ब धारें।

मण्डल १

वरुण-सूक्तम्

सूक्त २५

ऋषि—शुनः शेष आजिगर्तिः। देवता वरुण; छन्दः—गायत्री

१— यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।

मिनीमसि द्यवि द्यवि ॥ १ ॥

पद-पाठः—यत्। चित्। हि। ते। विशः। यथा। प्र। देव। वरुण। तम्। मिनीमसि। द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! यथा विशः क्रियाकुशलाः खल्वपि प्रजाः शुभ र्मणि यदा कदा प्रमादं कृत्वा क्लेशं भजन्ते तथा वयमपि ते त्वद्विषये यच्चिद्धि ज्ञानवशाद् यत् किंचित् द्यवि द्यवि दिने दिने व्रतं प्रमिनीमसि प्रमादेन विनाश-मः। तत् समग्रं व्रतं प्रमादराहित्येन अस्माकं शुभं कुर्विति व्यज्यते।

टिप्पणी— मिनीमसि—मीञ् हिंसायाम् क्र्यादिः, उत्तम पुरुष बहुवचने मीनाते निगमे' इतीकारह्रस्वता। श्ना इत्याकारस्य 'ईहल्यधोः' इतीकारः। 'इदन्तो सि'।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! जिस प्रकार प्रमाद आदि के कारण (विशः) जानन प्रमाद-वश त्रुटियां करते तथा फलस्वरूप नाना प्रकार से पीड़ित होते हैं। सी प्रकार 'द्यवि द्यवि' प्रतिदिन हम लोग भी प्रमाद कर जाते हैं और आपके व्रत ो 'मिनीमसि' हनन कर देते हैं। अज्ञान के कारण (यत् चित् हि) जो कुछ ऐसा शुभ हमसे हो गया है या हो जाता है, उसे आप क्षमा करें तथा जिसमें हमारा भ हो उसे सम्पादन करके हमें आनन्दित करें।

२— मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।

मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

पद पाठ—मा । नः । वधाय । हत्नवे । जिहीकानस्य ।

रीरधः । मा । हृणानस्य । मन्यवे ।।२।।

संस्कृत व्याख्या– हे वरुण ! 'जिहीकानस्य हत्नवे' पापं कृतवतः मनुष्यं हन्तुः 'वधाय' त्वत्कर्तृकाय 'मा नो रीरधः' अस्मान् संसिहान् तत्परायणान् कुरु । हृणानस्य' कुपितस्य तव 'मन्यवे' मा अस्मान् रीरधः कोपपात्रतां न नय ।

टिप्पणी—वधाय—हन् धातोः अप् प्रत्ययः, वधादेशः । हत्नवे-हन्धा कुः प्रत्ययः औणादिकः, नकारस्य च तकारे हत्नुः । चतुर्थी । जिहीडानस्य– अनादरे लिटः कानच् । द्वित्वे लोये ह्रस्व–श्चुत्व–जश्त्वानि । एकारस्य च ईका छान्दसः । रीरधः—राधसंसिद्धौ लुङ् । मध्यम पुरुषैकवचने चङ्, गिलोपः । माङ्योगे' इत्यडमाक । हृणानस्य-हृणीङ् रोषणे लज्जायां च, शानच् ।

हिन्दी व्याख्या– हे वरुण ! 'जिहीडानस्य हतृवे' अनादर करने वाले व के प्रति हननशील स्वभाव वाले 'वधाय मा नो रीरधः आपके रोष का पात्र ह बने । हमको अपने क्रोध के लिये उपयुक्त न समझें । मा हृणानस्य मण्यवे हुये आपके मन्यु के वशीभूत हम न हों ।

३— विमृडीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् ।

गीर्भि र्वरुण सीमहि ।।३।।

पद पाठ—वि । मृडीकाय ते । मनः । रथीः । अश्वम् ।

न । संऽदितम् । गीर्ऽभिः । वरुण । सीमहि ।।

संस्कृत व्याख्या— हे वरुण ! 'मृडीकाय' प्रीतितृप्तिहेतवे 'ते, तव हृदयं 'गीर्भिः' स्तुताभिः जाग्भिः 'वि सीमहि' विबध्नीमः' प्रसाद सम्भृतं कुर्मः । त्वं कृपयाऽनुग्रहं करिष्यसीति तथा कुर्मः । यथा रथी रथ स्वामी संदितम् दूरादागमनेन । श्रान्तं व्यथितम् अश्वं घासाहारा दिना सुखयति, स्निग्धं करोति तथा वयं त्वाँ सुखोयोतं सम्पादयामः ।

टिप्पणी—सन्दितम्–दोऽवखण्डने, निष्ठा । 'द्यति स्यतिः इतीकारा विसीमहि–षिञ् बन्धने, लिङ् व्यत्ययेनात्मनेपदम् ।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! 'मडीकाय' सुख प्राप्ति के लिये गी प्रसन्न वा गिलास के द्वारा 'ते मनः' आपके हृदय को 'विसीमहि' हम बांधते

आनन्द अपनी ओर उन्मुख करते हैं। जिस प्रकार 'रथी:' रथ का स्वामी 'सन्दितम् अश्वम' हारे-थके खण्डित अपने अश्व को घास अन्न जल आदि से प्रसन्नातृप्त करता है उसी प्रकार हम भी आपको अपनी ओर परमानन्दित करना चाहते हैं।

४— परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये।

वयो न वसतीरुप ॥४॥

पद-पाठ—परा। हि। मे। विऽ मन्यवः। पतन्ति।

वस्य ऽ इष्टये। वयः। न। वसतीः। उप।

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण। मे मम विमन्यवः आक्षेप रहिता मतयः वस्य इष्टये वसीयसोऽतिशयेन धववतो जीवनस्य प्राप्तये परा पतन्ति अभिमुखा आवृतिर-हिता आश्रयन्ते। वयो न पक्षिण इव। ते यथा वसती नीडानि निवासस्थानानि प्रति पूर्ण विश्रामाप्तये गच्छन्ति। उदितायां वति तिमिरायां मतौ न कदापि सुखमयं जीवनं परिहीयते। इति व्यज्यते।

टिप्पणी—वस्यः वसुमत् शव्दादीयसुन् विन्मतो लुक्' यकार लोपश्छान्दसः। वसती:—'वहिवस्यर्तिम्य श्चित्' इत्यौणादिकः तिप्रत्ययः।

(२) राथ ने 'विमन्यवः' का अर्थ स्तुतियाँ अथवा कामनाये की है। वस्य का अर्थ ग्रासमान ने भाग्योदय किया है।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण! मेरी आक्रोश रहित भावनायें 'वस्य इष्टये' धनागम की प्राप्ति के लिये 'परा पतन्ति' आपकी ओर निरन्तर उन्मुख हो रही हैं। सुखमय जीवन निरन्तर ही बना रहता है। 'वयो न' पक्षियों के समान। जिस प्रकार सायं काल होने पर पूर्ण विश्राम के लिये पक्षी अपने (वसतीः उप) निवास की ओर अभिमुख होते हैं उसी प्रकार कषाय-रहित बुद्धि में भगवद् भक्ति के उदित होने पर निरन्तर सुख-शान्ति बनी रहती है।

५— कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।

मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥

पद-पाठ— कदा । क्षत्रऽश्रियम् । नरम् । आ । वरुणम् ।

करामहे । मृडीकाय । उरुऽचक्षसम् ॥ ५ ॥

संस्कृत व्याख्या—'क्षत्रश्रियम्' क्षत्रमिति बलनाम, बलाश्रयभूतम् 'उरुच बहदर्शिनम् 'नरम्' नेतारम् 'वरुणं' वरणीयं देवं कदा कस्मिन् समये 'मृडीकाय' 'आ करामहे' आत्मवशं स्वकीयं करवाम । कदाऽसौ अस्मदीयो भूत्वा सुखयिष् व्यजमते ।

टिप्पणी—क्षत्रश्रियम्—क्षत्राणि श्रयतीति क्षत्रश्रीः, क्विप दीर्घश्च क्षत्रश्रियम् । नरम्—नृ नये अप् । करामहे—व्यत्ययेन उप्रत्ययस्य स्थाने शप् । क्षसम्चक्षो बंहुलं श्चिच, इत्यसुन् । शिच्चेति ख्यादेशो न । मृडीकाय—मृड सुखे प्रत्ययः ।

(२) मैक्स मूलर और पीटर्सन 'क्षत्रश्रियम्' का अर्थ वीरजयी किया नरम् का अर्थ मनुष्य ही किया है ।

हिन्दी व्याख्या—'कदा' वह माननीय समय कब आवेगा जबकि 'उरुच समस्त जग के द्रष्टा, 'नरम्' नेता, 'क्षत्रश्रियम्'—महान् बलशाली वरुण 'मृडीकाय' आनन्द प्राप्ति के लिए 'आ करामहे अपना कह सकेंगे । वरुण सुख-सुविधा के लिए आत्मीय बन जायेंगे ।

६— तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।

धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

पद-पाठ— तत् । इत् । समानम् । आशातेइति । वेनन्ता । न ।

प्र । युच्छतः । धृतऽव्रताय । दाशुषे ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—धृतव्रताय धृतं व्रतं येन तस्मै दाशुषे हविर्दत्तवते वेनन्तौ कामयमानौ मित्रावरुणौ समानं तद् इत् दन्तं तदेव हविराशाते अश्नु प्रयुच्छतः न कदाचिदपि प्रमादं कुरुतः ।

टिप्पणी—आशाते—अशु व्याप्तौ लिट् प्रथम पुरुष द्विवचने नुडागमो न त्यमागमशास्त्रमिति वचनात् । वेनन्ता-वेनतिः कान्तिकर्मा, शतृ प्रथमा द्विवचने श्छन्दसः । दाशुषे-दाश्ट दाने क्वसुः । द्वित्वाभावोऽनिट्त्वं च निपातनात् । धृत धृतव्रत शब्दो भक्तार्थ प्रयुक्तः व्रतपालकाय ।

हिन्दी व्याख्या—'धृतव्रताय दाशुषे' नियमाचरण का पालन और दानशील व्यक्ति के लिए 'वेनन्ता' आनन्दायक कामना करने वाले मित्र और वरुण 'तद् इत् समानम् आशाते' सामान्य रूप से प्राप्त और सुलभ होते हैं। 'न प्र युच्छतः' हवि और प्रार्थना की स्वीकृति में कभी भी प्रमाद नहीं करते।

७— वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।

वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥

पद-पाठ— वेद । यः । वीनाम् । पदम् । अन्तरिक्षेण ।

पतताम् । वेद । नावः । समुद्रियः ॥ ७ ॥

संस्कृत—टीका—यः वरुणः अन्तरिक्षेण आकाशमार्गेण गच्छतां पतनशीलानां वीनां खगानां पदं लिङ्ग वेद जानाति तथा समुद्रियः समुद्राभिजनो वरुणः सलिले गच्छन्त्या नावः जलयानभूतायाः पदं चिन्हं वेद जानाति। स एवास्मान् भवबन्धनान् मोचयुत, इति व्यज्यते।

टिप्पणी—समुद्रियः–समुद्रे भवः इत्यर्थे 'समुद्राभ्राद्घ' इति घः।

हिन्दी व्याख्या—जो वरुण 'अन्तरिक्षेण' आकाशमार्ग से 'पतताम्' गतागति करने वाले 'वीनाम्' विहंगामों के 'पदम्' चिन्ह को 'वेद' यथावत् जानते हैं तथा जो 'समुद्रियः' समुद निवासी होने के कारण 'नावः' गतागति करने वाले जल-वाहनों को भी यथावत् जानते हैं। वह वरुण देवता हमें इस भव-बन्धन से मुक्त करें, ऐसी व्यञ्जना है तथा आकाश-मार्ग एवं जल-मार्ग के सम्बन्ध में विद्या-रुचि की प्रेरणा दी गयी है।

८— वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।

वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥

पद-पाठ— वेद । मासः । धृतऽव्रतः । द्वादश । प्रजाऽवत ।

वेद । यः । उपऽजायते ॥ ८ ॥

संस्कृत व्याख्या—स समग्रैश्वर्यसम्पन्नो वरुणः 'धृतव्रतः' धृतानि नाना विधानि शुभानि व्रतानि येनःसौ स्वीकृत शुभकर्मा 'प्रजावत द्वादश मासः वेद' यथा-काल मुत्पद्यामानान् संवत्सरे नियन्त्रितान् मासान् यथावज्जानाति। यश्च त्रयोदशोऽ-

धिको मास उपजायते स्वत एवोत्पद्यते तमप्यसावेव जानाति ।

टिप्पणी—मासः—'पदन्नो०' इति मासस्य मस् आदेश उपजायते—उप जनधातोः कर्मकर्त्तरि लट् कर्मवद्भावाद् आत्मने पदं यक् प्रत्ययः ।

(२) द्वादश को लेटिन में द्वादेसिम Du-o-de-cim कहते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—समग्र ऐश्वर्यों से परिपूर्ण वह वरुण ही नाना प्रकार शुभकर्मों का धारण-पोषण करने के कारण धृतव्रत हैं । वही प्रजावतः द्वादश वेद' सम्वत्सर में नियाद्वादश (१२) मासों को यथावत् जानते हैं और यह (जायते) उत्पन्न होने वाले तेरहवां मास (माह) (तीसरे-चौथे वर्षों में प्रादुर्भूत वाला) है उसे भी वह देव ही (वेद) सम्यक्) प्रकार से जानते हैं ।

९—

वेद वातस्य वर्तनिमुरो ऋष्वस्य बृहतः ।

वेदा ये अध्यासते ।। ९ ।।

पद-पाठः— वेद । वातस्य । वर्तनिम् । उरो । ऋष्वस्य । बृहतः ।

वेद ये । अधिऽआसते ।। ९ ।।

संस्कृत-व्याख्या— अयं खलु सर्वसम्पन्नो वरणीय वरुणः 'उरोः' विस्ती 'ऋष्वस्य' लोचनानन्ददायिनः 'वृहतः' अति महतः 'वातस्य' वायोः 'वर्तनिभ्' निज मार्गं वेद' सूक्ष्मतया जानाति । तथा च 'ये' देवाः तत्र 'अधि आसते' द्युलोके परिवहमार्गेऽवास्थिताः तानपि असौ देवो वरुणः (वेद) यथाक्रमं जानाति ।

टिप्पणी—वातः—वा धातोरौणादिकः तन् प्रत्ययः । वर्तनिः—'वृत्त इत्यौणादिकः अनिप्रत्ययः । वर्तते यस्मिन्निति वर्तनिः, मार्ग एकपदीवा । ऋष्व ऋषि गतौ मत्वर्थीयो वः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऋावंशक्तिसम्पन्न, सबसे वरणीय वरुण देवता विस्तीर्ण 'बृहत्' अत्यन्त विशाल 'ऋष्वस्य' सर्व सुन्दर 'वातस्य' वायु के 'वर्त मार्ग को 'वेद' सूक्ष्मता के साथ जानते हैं । और वहाँ पर 'अधि आसते' जो दे द्युलोक में अथवा वायु के परिवह मार्ग में अवस्थित हैं, उन्हें भी वह वरुण दे 'वेद' यथावत् जानते हैं ।

१०—

निषसाद धृतव्रतो वरुणः प्रस्त्याइस्वा ।

साम्राज्याय सुक्रतुः ।। १० ।।

पद-पाठः— नि । ससाद । धृतऽव्रतः । वरुणः । पस्त्यासु । आ ।

साम्राज्याय । सुऽक्रतुः ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या——स 'सुक्रतुः' सुन्दरकर्मा 'धृतव्रतः' व्रतधारको वरुणः स्त्यासु' दिव्यासु प्रजासु 'साम्राज्याय' साम्राज्यप्राप्तिहेतवे (आ नि ससाद) स्वकी-या जुष्टया स्थित्या निवासं विदधाति ।

टिप्पणी—निषसाद–षद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु लिट् 'सदिरप्रते' इति-त्वम् । पस्त्यासु–प्रजासु ।

हिन्दी-व्याख्या—'धृतव्रतः सुक्रतु' प्रजा के कल्याण की भावना से परिपूर्ण, दर कर्मों से विभूषित 'वरुण' वरुणदेवता 'साम्राज्याय' सुखकर स्वराज्य की प्राप्ति लिये 'पस्त्यासु' दिव्य प्रजा-जन में (आ नि ससाद) अपनी पावन मर्यादा के साथ वस्थित हैं । प्रजा के लोग अपने भीतर दिव्यता-भव्यता लाकर उत्तम स्वराज्य-सुख प्राप्त करें, यह व्यंग्य है ।

११— अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति ।

कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

पद-पाठः— अतः । विश्वानि । अद्भुता । चिकित्वान् । अभि ।

पश्यति । कृतानि । या । च कर्त्वा ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—वरुणकृपयाऽनुगृहीतः पुरुषः 'चिकित्वान्' चेतनावान् सन् तः' वरुणादेव 'विश्वानि अद्भुता' सर्वाणि आश्चर्यकराणि विषयवस्तूनि 'अभि यति' साक्षात्करोति । कानि तानि ? यानि 'कृतानि' श्रीवरुणेन निर्मितानि 'या च र्त्वा' यानि चाश्र्याणि करणीयानि ।

टिप्पणी—चिकित्वान्–कित ज्ञाने, लिट् क्वसुः । कर्त्वा–'कृत्यार्थे तवै केन०' त्वन् ।

हिन्दी-व्याख्या—श्री वरुण देवता की कृपा से अनुगृहीत पुरुष 'चिकित्वान्' वान् बन कर 'अतः' वरुण ही निर्मित 'विश्वानि अद्भुता' समग्र ऐश्वर्यपूर्ण र्थों को 'अभिपश्यति' प्रत्यक्ष रूप से देखता है । 'कृतानि या च कर्त्वा' जो चर्य निर्मित हो चुके हैं तथा जो अभी करणीय-श्रेणी में हैं ।

१२— स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।

प्र ण आयूंषि तारिषत ॥ १२ ॥

पद-पाठ—सः । नः । विश्वाहा । सुऽक्रतुः । आदित्यः ।

सुऽपथा । करत् । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ॥ १२ ॥

संस्कृत व्याख्या—सः सुक्रतुः शोभनकर्मा 'आदित्यः' तेजोमयः वरुणः विश्वाहा विश्वेषु अहःसु सर्वेषु दिनेषु 'नः सुपथा करत्' अस्मान् उचितेन मार्गेण शोभनैरुपायैः युतान् करोतु । अथ च 'नः' अस्माकम् 'आयूंषि' जीवनानि 'प्रतारिषत्' प्रवर्धयतु ।

टिप्पणी—सुपथा—'न पूजनान्' इति रच् प्रत्ययस्य निषेधः । आदित्यः—अदितेः पुत्रः । करत्—कृ + लेट् । उ इत्यस्य स्थाने शप् । 'इतश्च' इकारलोपः 'बहुलं छन्दसि' इति अट् निषेधः । तारिषत्—तृ + णिच् + लेट् । प्र णः—'उपसर्गाद् बहुलम्' इति नकारस्य णकारः ।

हिन्दी व्याख्या—'स विश्वाहा सुक्रतुः आदित्यः' वह सुन्दरकर्मकारी तेजोमय भगवान् वरुण सभी दिनों में 'सुपथा नः करत्' हमारे लिये उचितमार्ग से तथा सुन्दर उपायों से संयुक्त करें और 'नः' हमारे 'आयूंषि' जीवन को 'प्रतारिषत्' निरन्तर सम्पन्न बनायें ।

१३— बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।

परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥

पद-पाठः—बिभ्रत् । द्रापिम् । हिरण्ययम् । वरुणः । वस्त ।

निःऽनिजम् । परि । स्पशः । नि । सेदिरे ॥ १३ ॥

संस्कृत व्याख्या—स सर्वैं र्वरणीयः वरुणः 'हिरण्ययम्' सुवर्णमयं 'द्रापिम्' कवचम् 'बिभ्रत्' धारयन् 'निर्णिजम्' स्वकीयं बलाधानभूतं दृढं शरीरं 'वस्त' वासयसि आवृणोति । तस्य 'स्पशः' स्वर्णस्पर्शिनो रश्मयः किरणाः अस्य (परि) पारितः सर्वतः 'नि सेदिरे' अवस्थिताः ।

टिप्पणी—बिभ्रत्—भृ + शत् । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुम् निषेधः । द्रापिम्—द्रा + विन् + पुक् औणादिक इप्रत्ययः । द्रापयति इषून् विफलीकरोति इति द्रापिः

१२— स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।

टिप्पणी—बिभ्रत्—भृ + शत् । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुम् निषेधः ।
द्रा + विन् + पुक् औणादिक इप्रत्ययः । द्रापयति इषून् विफलीकरोति इति द्रा

रण्यय:-हिरण्यशब्दाद् विकारे मयट् । मकारलोपो निपातनात् वस्त—वस
च्छादने अदादि: । लङ् । शपो लुक् । अडभाव: । निर्णिजम्—नेनेक्ति परिमार्ष्टि
ते निजं शरीरम् । निरिति उपसर्ग: ।

(२) पीटर्सन के मत में 'स्पश:' का अर्थ यहाँ पर गुप्तचर होना चाहिये ।
घ ने भी स्पश का अर्थ दूत ही लिखा है—'शब्द विद्येव नो भाति
जनीतिरपस्पश ।'

हिन्दी व्याख्या—सभी से स्वीकार करने योग्य स्तुत्य वरुण 'हिरण्ययं द्रापिम्'
वार्णमय कवच को 'बिभ्रत्' धारण किये हुए 'निर्णिजम्' अपने बलिष्ठ शरीर को
भावृत (वस्त) रखते हैं । उनकी स्वर्णस्पर्शी (स्पश:) किरणें (परि) सभी ओर को
रेणा से घिरे) जगमगा रही हैं ।

१४— न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।

न देवमभिमातय: ॥ १४ ॥

पद-पाठ:—न । यम् । दिप्सन्ति । दिप्सव: । न द्रुह्वाण: । जनानाम् ।

न । देवम् । अभि ऽ मातय: ॥ १४ ॥

संस्कृत व्याख्या—यं वरुणं तेजोमयमिव दुर्धर्षमिव प्रभास्वरं दृष्ट्वा दिप्सवो
का: क्रूरा वैरिण: त्रस्ता: सन्त: 'न दिप्सन्ति' स्वकीयां दिप्सां हिंसाभावनां
त्यजन्ति । जनानां मध्ये ये 'द्रुह्वाण:' द्रोहपरायणा: ते ऽपि न दिप्सन्ति न
माचरन्ति । 'अभिमातय:' पापकर्माण: खल्वपि तं देवं वरुणमभिनिमाल्य संत्रस्ता:
ता भयविह्वला जायन्ते । वरुणस्य प्रकाशमानं परिधिं न स्पृशन्ति ।

टिप्पणी—दिप्सन्ति– दम्भ+सन् प्रथमपुरुषबहुवचने 'सनीवन्त:' इडभावपक्षे
म इच्च' । दत्वभावश्छान्दस:, अन्यथाधिप्सति । दिप्सव:–"सनाशंसभिक्षउ:' इति
यय: । द्रुह्वाण:—द्रुह—जिघांसायाम् इतिधातो: क्वनिप् । अभिमातय:–
भ्य मीनाति हिनस्ति इति अभिमाति: । मीम् हिंसायाम् क्तिन् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस तेजोमय दुर्धर्ष प्रभास्वर वरुण को देखते ही 'दिप्सवो
दिप्सन्ति' क्रूर शत्रु भी अपनी हिंसा-भावना का परित्याग कर देते हैं ।
ह्वाण:' द्रोहपरायण, तीक्ष्णस्वभाव वाले भी अपनी द्रोह-भावना को छोड़कर मृदु
जाते हैं 'अभिमातय:' तिरस्कार करके पापाचरण करने वाले भी त्रस्त होकर
विह्वल हो जाते हैं और वरुण के प्रकाशमान परिधि का स्पर्श नहीं कर पाते है ।
सर्वसंरक्षक और पालक हैं । ऐसा विश्वास करके उनकी उपासना करनी
है ।

१५— उत । यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।

अस्माकमुदरेष्वा ।। १५ ।।

पद-पाठः—उत । यः । मानुषेषु । आ । यशः । चक्रे । असामि । आ ।

अस्माकम् । उदरेषु । आ ।। १५ ।।

संस्कृत व्याख्या—यो वरुणः मानुषेषु जनेषु भोगापवर्गार्थं यशः शौर्यादि जायमानम् अन्नं चक्रे । यश्च असामि आचक्रे समयं सम्यक् कृतवान् न किमपि त न्यूनमस्ति । स एववरुणः अस्माक् उदरेषु अलपाकार्थ पाचनशक्ति स्थापितवान् ।

टिप्पणी—यशः—यशः शब्दोऽभान्नवाची । विषेषतस्तु शौर्यादिना जायमा प्रशंसा 'यशः' इति कथ्यते । दानादिना च जायमाना प्रशंसा कीर्तिरिति । असामि-सामि इत्यव्ययम् अर्धार्ये वर्तते । असामि—सम्पूर्णम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस वरुण ने भोग और अपवर्ग के लिए शौर्यादि से उत्प 'यश' अन्न को 'चक्रे' निर्मित किया और 'असामि आ चक्रे जो कुछ बनाया उ किसी प्रकार की अल्पता नहीं छोड़ी । उसे सभी प्रकार से पूर्ण और पूजित बनाय उसी वरुण ने (अस्माकम् उदरेषु आ) हमारे उदर में भी अन्न-पाक के लिए पाच शक्ति को स्थापित किया ।

१६— परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूती रनु ।

इच्छन्तीः रुरुचक्षसम् ।। १६ ।।

पद-पाठः—परा । मे । यन्ति । धीतयः । गावः । न गव्यूती । अनु ।

इच्छन्तीः । उरु ऽ चक्षसम् ।। १६ ।।

संस्कृत-व्याख्या—'उरुचक्षसम्' द्रष्टारं बहुभि र्द्रष्टव्यं च वरुणम् 'इच्छन्ती' कामयमानाः मे 'धीतयः' बुद्धयः 'परा यन्ति' निवृत्तिरहिताः प्राप्नुवन्ति । 'गावो' गाव इव । यथा गावः 'गव्यूतीः अनु' स्वकीयानि गोष्ठानि अनुलक्ष्य निवृत्तिरहि सपुलका गच्छन्ति तथा ।

टिप्पणी—गव्यूतिः—गो + यु + क्तिन् । उकारस्य दीर्घता पृषोदरादित्वा गावो यूयन्ते यत्र । उरुचक्षसम्—उरुभि चक्षणं दर्शनं यस्य स उरुचक्षाः, तम् ।

हिन्दी-व्याख्या—'उरुचक्षसम्' सब के द्रष्टा अत्यन्त दर्शनीय वरुण 'इच्छन्ती' अत्यन्त कामना से चाहने वाली हमारी 'धीतयः' चित्तव्यक्तियो 'परा यन्ति'

उन्मुख होकर प्राप्त हो रही हैं। 'गावो न' गायों के समान। जिस प्रकार गायें 'गव्यूती: अनु' अपने निवास-स्थान की ओर = गोष्ठ की ओर अनुलक्ष्य करके सानन्द जाती हैं उसी प्रकार मेरी चित्तवृत्तियाँ निवृत्ति रहित होकर वरुण की ओर ही सदा उन्मुख रहती हैं।

१७— सं नु वोचावहै पुन र्यतो मे मध्वाभृतम्।

होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥

पद-पाठ:—सम्। नु। वोचावहै। पुनः। यतः। मे। मधु।

आ ऽ भृतम्। होता ऽ इव। क्षदसे। प्रियम् ॥ १७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण ! एहि शीघ्रं प्राप्नुहि। आवां 'पुनःनु संवोचावहै' परस्परं वार्ता मिश्रयावः। 'यतः' यतोहि 'मे' मम 'मधु आभृतम्' मधुरं माधुर्योपेतं हविः भोज्यम् आभृतम्, सन्निहितं सम्पादितम्। त्वमपि 'प्रियं' रुचिकरं हविः 'क्षदसे' अश्नासि कथमिव ? होता इव। स यथा प्रचुरं मधूरं हविः शेषमासाद्य तृप्तिकरं रुचिपूर्णम् अश्नाति तथा। उभावावां तृप्तौ त्वं च अहं च। साम्प्रतं मंत्रान् हृदय निःस्टतान् निश्चितान् मिश्रयावः।

टिप्पणी—वोचावहै—ब्रुवो वचिरादेशः। 'उत्तमपुरुष द्विवचने' आभृतम्—द्रुभृञ्। धारणपोषणयोः, निष्ठा क्तः।

हिन्दी-व्याख्या—हे वरुण ! आप आइये 'पुनः नु संवोचावहे' हम दोनों मिल कर परस्पर कल-मधुर आलाप करें। 'यतः' क्योंकि 'मे' मेरे लिए 'मधु आभृतम्' अत्यन्त मधुर रुचिकर भोजन-सामग्री उपलब्ध है। गृहोपकरण—चिन्ता से मैं मुक्त हूं और आप भी 'क्षदसे प्रियम्' प्रिय हवि से प्रसन्न और तृप्त हैं 'होतेव' जिस प्रकार होता यज्ञशेष की प्रचुर-मधुर सामग्री से प्रसन्न और तृप्त रहता है, उसी प्रकार हम दोनों पूर्ण तृप्त और निश्चिन्त हैं। अब हृदय से, मन से, मनीषा से बुद्धि-मार्जन का ही प्रसङ्ग है।

१८— दर्शं नु विश्व दर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।

एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥

पद-पाठ—दर्शम्। नु। विश्व ऽ दर्शतम्। दर्शम्। रथम्। अधि।

क्षमि। एता। जुषत। मे गिरः ॥ १८ ॥

संस्कृत व्याख्या—अहं तं 'विश्वदर्शतम्' वरणीयं रमणीयं सर्वदर्शनीयं वरुण दर्शम् नु' दृष्टवान् ननु। नेत्रसाफल्यं मे लब्धम्। 'अधि क्षमि' अस्यां रमणीयायां क्षमायां पृथिव्यां 'रथम्' वरुणस्य शोभनं रथं बहुधा ऽ ह ऽ दर्शम्' दृष्टवानस्मि। 'एता मे गिरः' एतानि मे शंसनानि वरुणः प्रीत्या 'जुषत' स्वीकरोति।

टिप्पणी—दर्शम्—दृश—लुङ्। उत्तमपुरुषैकवचने। अडभावः जुषत—जुषी प्रीतिसेवकयोः।

हिन्दी व्याख्या—मैंने 'विश्वदर्शतम्' विश्व दर्शनीय वरुण को 'दर्श न' देख कर नयन-लाभ प्राप्त किया है। 'क्षमि' पृथ्वी पर 'अधि' अधिकता से 'रथम् दर्शम्' वरुण के कल्याण-रमणीय रथ को देखा है। वरुण ने 'एता में गिरः' मेरी स्तुत्य वाणी को 'जुषत' सर्वदा प्रीति से स्वीकार किया है।

१९— इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।

त्वामवस्यु राचके ॥ १९ ॥

पद-पाठ—इमम्। मे। वरुण श्रुधि। हवम् अद्य। च।

मृडय। त्वाम्। अवस्युः। आ। चके॥ १९॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण! 'इमं मे हवं श्रुधि' ममाह्वानं कृपया श्रृणु। अथ च 'अद्य मृडय' अस्मान् साधु-सम्मतान् सुखय। प्रवर्धय। 'अवस्युः' गतिकान्ति-प्रीति-रक्षणकामोऽहं 'त्वाम्' त्वामेव शरण्यं 'आ चके' शब्दयामि कामये।

टिप्पणी—श्रुधी-लोटमध्यमपुरुषैकवचने। हेर्धिः। अवस्युः-अवस् + क्यच् 'क्याच्छन्दसि' उप्रत्ययः। आ चके-चक तृप्तौ प्रथमपुरुषैकवचने।

हिन्दी-व्याख्या—'इमं मे वरुण श्रुधि हवम्' हे वरुण मेरी करुण-पुकार आप श्रवण करें। 'अद्य च मृडय' हम को अनुशिष्ट मानकर कृपया तृप्त और सुखी करें। 'त्वाम् अवस्युः आ चके' अपने परित्राण के लिए मैं आप की कामना में संलग्न हूं।

२०— त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।

स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

पद पाठ—त्वम् विश्वस्य मेधिर। दिवः। च। ग्मः। च।

राजसि सः यामनि। प्रति। श्रुधि ॥ २० ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण 'मेधिर' मेधाविन् ! त्वम् 'दिवश्च ग्मश्च' द्युलोकस्य भूलोकस्य 'विश्वस्य' समग्रस्य संसारस्य 'राजसि' मध्ये विराजमानोऽसि। 'स यामनि' त्वम् अस्मदीये कल्याण निमित्ते सति 'प्रति श्रुधि' प्रति श्रुतिं देहि, रक्षिष्यामीति सान्त्वनां देहि।

टिप्पणी—ग्म:—पृथ्वी वाची ग्माशब्द:। षष्ठयेकवचने। 'आतो धातो:' योगविभागात् आकारलोप:। यामनि–या प्रापणे–'आतो मनिन्०' याति प्राप्नोति इति यामन्।

हिन्दी व्याख्या—हे 'मेधिर' ! मेधा सम्पन्न वरुण ! आप ही 'दिवश्च ग्मश्च' द्युलोक तथा भूलोक मे प्रतिद्वन्द्व-रहित 'राजसि' शोभा-संयुक्त हैं। आप 'स यामनि' हमारी कल्याण-प्राप्ति के लिए 'प्रति श्रुधि' हमें आश्वस्त कीजिये।

२१— उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।

अवाधमानि जीवसे॥ २१॥

पद पाठ:—उत्। उत्ऽतमम्। मुमुग्धि। न:। वि। पाशम्।

मध्यमम्। चृत। अव। अधमानि। जीवसे॥ २१॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! 'उत्तमं पाशं नो उन् मुमुग्धि' अस्माकम् उत्तमं पाशं शिरोगतं बन्धनम् उन्मुमुग्धि उन्मोचय उत्कृष्टा विनाशय। मध्यमम् च उन्मुमुग्धि' मध्यमं करिदेशेऽवस्थितं च पाशम् उत्कृष्टा दूरी कुरु। 'अधमानि' चरण निगडावस्थितान् पाशानपि त्वं 'जीवसे अवचृत' अवकृष्य विनाशय।

टिप्पणी—जीवसे—जीवनाय। जीवधातो: 'तुमर्थे से०' सेन् प्रत्यय:। मुमुग्धि–मुच्लृ मोचने श्लु:। द्वित्वम्। हेर्धि:। चृत–चृती हिंसाग्रन्थमयो:, लोट् हे लुंक्।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! (उत्तम् पाशं न:) हमारे शिरोगत बन्धन को 'उन् मुमुग्धि' उनमुक्त कीजिये। 'मध्यमं पाशं वि चृत' कटिदेश के भी बन्धनों को खोल दीजिये। 'अधमानि अवचृत' पैर की बेड़ियों को भी काट दीजिये जिससे कि हम 'जीवसे' बाधारहित होकर निश्चिन्त आनन्द को प्राप्त करने में निरुपद्रव-जीवन-लाभ करें। उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि की सात्त्विक, राजस तथा तामस बन्धनों से मुक्ति की प्रार्थना और कामना करते हैं।

मण्डल १

इन्द्र-सूक्तम्

सूक्त ३२

ऋषि—आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप: । देवता-इन्द्र: । छन्द:—त्रिष्टुप् ।

१— इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं

यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द

प्रवक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ।। १ ।।

पद-पाठ:— इन्द्रस्य । नु । वीर्याणि । प्र । वोचम् । यानि । चकार । प्रथमानि । वज्री । अहन् । अहिम् । अनु । अप: । ततर्द । प्र । वक्षणा: । अभिनत् । पर्वतानाम् ।। १ ।।

संस्कृत-व्याख्या—'यानि वीर्याणि प्रथमानि वज्री इन्द्र: चकार' यानि पराक्रमकर्माणि प्रथमानि पूर्वसिद्धानि वज्री वज्रहस्त- इन्द्र: चकार कृतवान् तानि वीर्याणि वीरकर्मानि अहं 'प्रवोचम्' प्रख्यापयामि । प्रथम तावत् 'अहन् अहिम्' अहिं मेघं वृत्रं वा हतवान् (अनु अाय: ततर्द) तदनन्येरमस्य द्वितीयं प्रशंसनीयं कर्मयत् अप: मेघगर्भाणि जलानि पर्वतकुक्षौ विद्यमानानि तानि प्रवहणार्थ 'वक्षणा: प्राभिनत्' पर्वतानां पर्ववतां सम्बन्धिनी: नदी: प्रभिद्य प्रवाहाञ्चकार । तानि जलानि नदीरूपेण परिणतानि पुन: स्वयोनिं समुद्रमाविशन् ।

टिप्पणी—वीर्याणि—शूरवीर विक्रान्तौ ण्यन्तात् 'अचोयत्' 'णेरनिटि' विलोप: । वज्री-मतुबर्थे इति । अहिम्-आङ् पूर्वो हन्धातु । इण् प्रत्यय: । ह्रस्वश्च । अहन्-हन् + लङ् प्रथमपुरुषैकवचने । ततर्द-तृदलिट् प्रथम पुरुषैकवचने । वक्षण:-वक्ष रोषे 'क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च' इति युच् । 'युवोरनाकौ' नस्य णत्वम् । अभिनत्-भिद् + लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—'वज्री इन्द्रः' वज्रधारी इन्द्र ने 'यानि वीर्याणि-प्रथमानि' जिन प्रसिद्ध वीर-कार्यो का सम्पादन (चकार) किया है 'तानि उनको 'प्रवोचम्' उल्लास के साथ मैं वर्णन करता हूं। पहले तो 'अहन् अहिम्' आकाश में व्याप्त मेघ का वध किया। 'अनु अपः ततर्द' इसके अनन्तर मेघ-गर्भ में अवस्थित जल-राशि का निर्गमन कराया। यह द्वितीय प्रशंसनीय कार्य था। तृतीय वीर-कर्म यह है कि उस महान् जल राशि का निष्कासन कैसे हो, इस हेतु जल-मार्ग रूप में नदियों को प्रवाह सम्पन्न किया सारी जल-राशि पुनः समुद्ररूप अपने मूल कारण में प्रविष्ट हो गयी।

२— अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं

त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।

वाश्रा इव धेनव स्यन्दमाना

अञ्जः समुद्र मवजग्मुरापः ॥ २ ॥

पद-पाठः— अहन। अहिम्। पर्वते। शिश्रियाणाम्। त्वष्टा। अस्मै। वज्रम्। स्वर्यम्। ततक्ष। वा श्रा ऽ इव। धेनवः। स्यन्दमानाः। अञ्जः। समुद्रम्। अव। जग्मुः। आपः॥ २॥

संस्कृत-व्याख्या—'अहन् अहिम्' स प्रख्यातपराक्रम इन्द्रा अहिं मेघं हतवान्। कीदृशं मेघम्। 'पर्वते शिश्रियाणम्' पर्वतेप्रदेशे कृताश्रयम्। 'स्वर्यं वज्रं' अस्य इन्द्रस्य सुष्ठु अरोपेतं वज्रं त्वष्टा देवः 'ततक्ष' तीक्ष्णधारं सम्पादितवान्। मेघहनना-नन्तरं 'स्यन्दमाना आपः' समुद्रं प्रति प्रस्थिताः। 'वाश्राधेनव इव' यथा शब्दायमाना गावः गोष्ठं प्रति धावन्ति तथा जलधाराः समुद्रं प्रति इति।

टिप्पणी—शिश्रियाणाम्-शिञ् सेवायाम्, लिटः कानच्। स्वर्यम्—ऋगतौ सुपूर्वात् 'ऋहलोर्ण्यत्'। वृद्धयभावः। यद्वा स्वृ-शब्दोपतापयोरित्यहमान् ण्यत्। यद्वा स्वृ-शब्दोपतापयोरित्यस्मात् ण्यत्। सुष्ठु शत्रुषू प्रेर्यम्। सुष्ठ आरोपूतं वा। वाश्राः-वाश्यशब्दे 'स्फायितञ्च' इति रक्। जग्मुः—उसि 'गमहन०' उपधालोपः।

हिन्दी-व्याख्या—'पर्वते शिश्रियाणम् अहिम्' पर्वतों में आश्रय लेने वाले मेघ को इन्द्र ने 'अहन्' विनष्ट किया। 'अस्मै त्वष्टा' इस इन्द्र के लिये त्वष्टा देव ने 'स्वर्यं वज्रं ततक्ष' प्रेरक वज्र को तीक्ष्ण और सुन्दर बनाया। उसके अनन्तर 'समुद्रम् आयः अवजग्मुः' समुद्र की ओर जल की तीव्रधारायें चल पड़ी 'स्यन्दमानाः प्रवाह-

पूर्ण जलधारायें 'वाश्रा धेनव इव' रंभाती हुई गायों की भाँति कल-कल करती 'अञ्जः' सम्यक् बहने लगीं ।

३—

वृषायमाणो वृणीत सोमं

त्रिकद्रुकेष्वपिवत्सुतस्य ।

आ सायकं मघवा दत्त वज्र-

महन्नेवं प्रथमजा महीनम् ॥ ३ ॥

पद-पाठः— वृषयमाणः । अवृणीत । सोमम् । त्रिऽकद्रुकेषु । अपिब सुतस्य । आ । सायकम् । मघवा । अदत्त । वज्रम् । अहन् । एनम् । प्रथमऽजाम् अहीनाम् ।

संस्कृत-व्याख्या—'वृषायमाणः' वृष इवाचरन् स इन्द्रः 'सोमम् अवृ रुचिकरत्वेन । पानार्थ सोमं स्वीकृतवान् । तेन तस्य आत्मबलं प्रवृद्धम् । 'त्रिकद्रु सुतस्य' ज्योति गौशियुरिति त्रयो यागविशेषाः, तेषु अभिषुतस्य सोमस्य पानम् श्चक्रे । 'मघवा' धनवान् इन्द्रः बलवैभवसम्पन्नः 'सायकम्' बन्धकं वज्रम् 'आ स्ववज्रसदृशे तस्ते स्वीकृतवान् । 'एनं प्रथमजाम् अहीनाम्' तेनेमं मेघं वज्रेण मेघ मध्ये प्रथनोत्पन्नं 'अहन्' हतवान् ।

टिप्पणी—वृषायमाणः-वृष इवाचरन्, 'कर्तुः क्यङ्सलोपश्च' सायकाम् षिञ् बन्धने । सिनोति बन्धोति इति सायकः । ण्वुल् । प्रथमजाम्—प्रथम जा इति प्रथमजाः । 'जन सन०' इति विट् । 'विड्वनो०' इत्यात्वम् ।

(२) ग्रासमान् और पीटर्जन ने त्रिकद्रुक का अर्थ तीन प्यालें किये पीटर्सन के अनुसार फेंक कर मार करने वाले आयुध को 'सायक' कहा गया है।

हिन्दी-व्याख्या—'वृषायमाणः' एक महान् वृषभ की भांति शक्तिशाली ने 'त्रिकद्रुकेषु' ज्योतिः—गौः—आयुः नामक तीन महान् यज्ञों में 'सुतस्य' नि 'सोमम् अवृणीत्' सोम का वरण किया और उसे 'अपिबत्' आनन्द के साथ किया । सायकं वज्रम्' प्रतिबन्धक वज्र को 'मघवा' धन-बल-वैभव सम्पन्न 'आदत्त' अपने वज्र सदृश हस्त में स्वीकार किया और 'एनं प्रथमजाम् अहीनाम् में प्रथम उत्पन्न इस मेघ को जो कि प्रथमागामी था 'अहन्' विनष्ट किया ।

४— य दिन्द्राहन् प्रथमजामहीनां—

म न्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।

आत्सूर्यं जनयन् द्यामुषासं

तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥

पद-पाठः— यत् । इन्द्र अहन् । प्रथमऽजाम् । अहीनाम् । आत् । मायिनाम् । आत् । मायिनाम् अमिनाः । प्र उत । मायाः । आत् । सूर्यम् । जनयन् । द्याम् । उषसम् । तादीत्ना । शत्रुम् । न किल विवित्से ॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र! अहीनां प्रथमजाम्' मेघानां मध्ये प्रथमोत्पन्नं मेघं 'यद् अहन्' यदा हतवानसि 'आत्' अनन्तरं 'मायिनां मायाः' कूटप्रपंचानां मायाः 'प्रउत अभिनाः' विनाशितवानसि । 'आत्' अनन्तरं च 'सूर्यम् द्याम् उषासं' सूर्यम् आकाशम् उषसं च 'जनयन्' उत्पादयन समग्रभूतग्रामं प्रकाशयसि । 'तादीत्ना' तस्मिन् काले मेघान्धकाररहितत्वात् 'शत्रुं न किल विवित्से' नैव लब्धवानसि सर्वत्र शून्यत्वात् ।

टिप्पणी—'अहन्—हन् धातोर्लङि० हलङ्भ्यब्भ्यः' इति सिलोपः । अडायमः अडागमः । मायिनाम्-मायाशब्दात् मत्वर्थीय इनिः । अमिनाः मीञ् हिंसायाम् हिंसायाम् 'मीनाते निगमे' इति ह्रस्वत्वम् । तादीत्ना—तदानीमित्यस्म पृषोदरादित्वाद वर्णविपर्ययः । विवित्से—विद्लृ लाभे । लिट् मध्यमपुरुषैकवचने व्यत्ययेन इडभाव ।

हिन्दी-व्याख्या—'अहीनां प्रथमजाम्' हे इन्द्र ! मेघों में प्रथम उत्पन्न मेघ को 'यद् अहन्' जब आपने विनष्ट किया तब उसके अन्तर ही (आत्र मायिनाँ मायाः कूट-प्रपंच करने वालों के छल-छन्द को 'प्रउत अभिनाः' भी भली प्रकार से आपने विध्वंस कर दिया । 'आत्' इसके अनन्तर ही आपने 'सूर्य धाम् उषासम्' सूर्य लोक, आकाश तथा उषा का प्रादुर्भाव (जनयन्) कराते हुए विश्व को प्रकाशित किया करते हैं । 'तादीत्ना' उस समय 'शत्रुं न किल आ विवित्से' शत्रु को कहीं भी आय प्राप्त नहीं कर सके क्योंकि मेघों के हट जाने से अब सर्वत्र शून्य ही था ।

५— अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंस—

मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।

स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा—

ऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥ ५ ॥

पद-पाठः—अहन्। वृत्रम् वृत्रऽतरम्। विऽअंसम्। इन्द्रः। वज्रेण महता वधेन। स्कन्धांसिऽइव। कुलिशेन। विऽवृक्णा। अहिः। शयते। उपऽपृक्। पृथिव्याः ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—स एवं बहुभिः प्रख्यातैः कर्मभिः दृष्टशौर्यभावः इन्द्रः' वृत्रतरं वृत्रम्' लोकान् वृणोति इति वृत्रः, अतिशयेन लोकानाम् आवरक यद्वा वृत्रैः मायाबहुलैरावरणैस्तरति इति वृत्रः, तं वृत्रम् असुरं 'व्यंसम्' विगतांसं छिन्नभुजं 'महता वधेन वज्रेण' अतीव मारकेण संहारकारिणा वज्रेण 'अहन्' हतवान्। केन। प्रकारेण हतवान् -'स्कन्धांसीव विवृक्णा कुलिशेन' यथा कुलिशेन कुठारेण विवृक्णानि स्कन्धांसि तथा। यथा परशुना वृक्षस्य शाखाः प्रशांखा छिन्ना भवन्ति, वृक्षस्कन्धा छिन्ना भवन्ति तद्वत्। एवं भूते सति 'अहिः' स आवरको वृत्रः' पृथिव्या उपपृक्' पृथिव्या निकटे सम्पृक्तः शयते शयनं करोति। छिन्नबाहु निश्चेष्टो जायते।

टिप्पणी—वृत्रः—वृतु वर्तने + रक्। वृततरः—तरतेः पचाद्यच्। तरपि तु व्यत्ययेन। वधेन—'हनश्च वधः' इत्यप्। वधादेशः विवृक्णा—ओव्रश्चू छेदने। कर्मणि निष्ठा। ओदितश्च' निष्ठा-नत्वम्। 'चोः कुः' कुत्वम्। शेश्छन्दसि बहुलम् इति शेर्लोपः। उपपृक्-उप + पृच् + क्विप।

हिन्दी-व्याख्या—'वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम् अहन्' उस महान् इन्द्र ने आवरक असुर वृत्र को तथा आवरण की माया से शत्रु वर्ग को तैर जाने वाले महाण् मेघ को मार डाला उसकी भुजायें स्कन्ध छिन्न-भिन्न कर दिये। 'महता' वधेन वज्रेण' अपने महान् मारक वज्र से इन्द्र ने वृत्र को सर्वथा शिथिल कर दिया। जिस प्रकार 'कुलिशेन' कुठार या फर्से से वृक्ष के 'स्कन्धांसि' स्कन्ध' शाखा-प्रशाखा आदि 'विवृक्णा' छिन्न-भिन्न कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इन्द्र ने वृत्र का विध्वंस कर दिया वह (अहिः) वृत्र 'पृथिव्या उपपृक्' पृथ्वी का सम्पर्क पाकर 'शयते' निश्चेष्ट होकर सो रहा है।

६— अयोद्धेव दुर्मद आहिजुह्वे,

महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।

नातारीदस्य समृतिं वधानां,

सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

पद-पाठः— अयोद्धाऽइव । दुः मदः । आ । हि । जुह्वे । महाऽवीरम् । तुविऽबाधम् । ऋजीषम् । न । अतारीत् । अस्य । संऽऋतिम् । वधानाम् । सम् । रुजानाः । पिपिषे । इन्द्रऽशत्रुः ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—'तुविबाधम्' बहूनां बाधकं 'ऋजीषम्' शत्रूणां भयस्थानं 'महावीरम्' शौर्योत्साहसम्पन्नं महावीरम् इन्द्रम् अथ दुर्मदो वृत्रः 'अयोद्धेव' योद्धरहित इव युद्धाय 'आ हि जुह्वे' आह्वानं कृतवान् । परन्तु अस्य इन्द्रस्य भवने ये शत्रुबधाः सन्ति तेषां मारकबधानां 'समृतिम्' सहभावं 'न अतारीत्' तरणाय सामर्थ्यं न लब्धवान् । 'इन्द्रशत्रुः' इन्द्रः शत्रुर्यस्य वृत्रस्य तादृशो वृत्रः इन्द्रेण हतः सन् नदीषु पतितः । तेन वृत्रपातेन नद्यः खल्वपि 'रुजानाः' कूलानि रुजन्त्यः, ताः वृत्रः पिपिषे पिष्टवान् खलु ।

टिप्पणी—अयोद्धेव =अयोद्धा इव—न विद्यते योद्धाऽस्येति बहुव्रीहिः । जुह्वे ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च । 'अभ्यस्तस्य च' इति सम्प्रसारणम् । महावीरम्—महांश्चासौ वीरश्च । 'आन्महतः' इत्यात्वम् । तुविबाधम्—तुवीन् प्रभूतान् बाधते इति 'पचाद्यच्' रुजानाः—रुजन्ति कूलानि । नद्यः । व्यत्ययेन शानच् । पिपिषे—पिष्लृ+लिट् । इन्द्रशत्रुः—इन्द्रः शत्रुर्यस्य बहुव्रीहिः ।

हिन्दी-व्याख्या—'अयोद्धेव' मानो इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता इस हेतु 'दुर्मदः' दुर्दर्प वृत्र ने 'महावीरं तुविबाधम् 'ऋजीषम्' महान् वीर, बहुतों के बाधक, और बड़े-बड़े वीरों को खोखला कर देने वाले इन्द्र का (जुह्वे) समर के लिए आह्वान किया । परन्तु इन्द्र के 'बधानां' वज्रप्रहारों के सामने 'न अतारीत्' रण-संगम में तैर न सका अपितु धरणी पर धराशायी होता हुआ 'रुजानाः' नदियों को भी अपने दबाव से चूर्ण कर दिया । जल-प्रवाह से नदियाँ भी आपे में न रह सकीं ।

७— अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र—

मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।

वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्

पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ।। ७ ।।

पद-पाठः— अपात् । अहस्तः । अपृतन्यत् । इन्द्रम् । आ । अस्य । वज्रम् । अधि । सानौ । जघान । वृष्णः । वध्रिः । प्रतिऽमानम् । बुभूषन् । पुरुऽत्रा । वृत्रः । अशयत् । विऽअस्तः ।। ७ ।।

संस्कृत व्याख्या—'अपात् अहस्तः' द्रोहात्मतया स वृत्रः छिन्न-हस्तोऽपि पादाभ्यां रहितोऽपि 'इन्द्रम् अपृतन्यत्' युद्धं न परित्यक्तवानपितु युद्धमैच्छत् । इन्द्रोऽपि 'अधि सानौ' तस्य पर्वतसदृशे कठोरे स्कन्धे 'वज्रं जघान' वज्रं क्षिप्तवान् । 'प्रतिमानं बुभूषन्' इन्द्रस्य सादृश्यं कामयमानः स वृत्रः 'पुरुत्रा व्यस्तः अशयत्' बहुषु अंगेषु ताडितः सन् शिथलितदेहबन्धनः 'अशयत्' स्वापम् अभजत । यथा 'वृष्णः' रेतःसेचनसमर्थस्य कोपि 'वध्रिः' कृतनपुंसकभावः पुरुषः सादृश्यं कामयते तथा 'प्रतिमानं' सादृश्यमिच्छन् वृत्रः भूमौ निपपात ।

टिप्पणी—अपात्, अहस्तः—न पादौ यस्य, न हस्तौ यस्येप्युभयत्र बहुव्रीहिः । अपृतन्यत्—'सुप आत्मनः क्यच्' । बुभूषन्-भवितुमिच्छति—सन् । शतृ । व्यस्तः—वि + असु + क्तः ।

हिन्दी व्याख्या—'अपात् अहस्तः इन्द्रम् अपृतन्यत्' इन्द्र की वज्र-लीला के कारण हाथ—पैर भग्न हो जाने पर भी वृत्र इन्द्र से युद्ध करता ही रहा । इन्द्र ने 'सानौ' चट्टान सरीखे वृत्र के कन्धे पर 'वज्रं जघान' वज्र-प्रहार किया । इन्द्र का सादृश्य चाहने वाला वृत्र (व्यस्तः) शिथिल होकर 'अशयत्' भूमि पर असहाय-सा गिर पड़ा । जिस प्रकार 'वध्रिः' बधिया किया गया दुर्बल बैल 'वृष्णः' विषाणयुक्त वृषभ की ओजस्विता को समझे बिना युद्ध के लिए ललकारे, वही दशा वृत्र की हुई । वह परास्त और विगलित हुआ ।

८—

नदं न भिन्नममुया शयानं

मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।

याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्

तासामहिः पत्सुतःशी बभूव ।। ८ ।।

पद-पाठ— नदम् । न । भिन्नम् । अमुया । शयानम् । मनः । रुहाणा ।
ति । यन्ति । आपः । याः । चित् । वृत्रः । महिना । परिऽअतिष्ठत् । तासाम् ।
अहिः । पत्सुतःऽशीः । बभूव ॥ ८ ॥

संस्कृत व्याख्या—'अमुया' अमुष्यां पृथिव्यां 'शयानम्' असहायं क्षीणं कृतस्वायं
त्रं 'आपः' जलानि 'अति यन्त्रि' अतिक्रम्य प्रवहन्ति । 'भिन्नं नदमिव' नदी कूलं
भित्वा यथा ऽऽपः निर्गच्छन्ति तथा । 'मनो रुहाणाः' अयां विशेषणमेतत् चित्त
ारोहन्त्यः । वृत्रे प्रवर्धमाने सति मेघे पर्वते वाऽवस्थिता आपः निरुद्धा आसन् ।
दा साम्प्रतं तु निरोधरहितास्ताः स्वच्छन्दवेगाः कूलानि विदार्य कृतावेगा निष्पतन्ति ।
वृष्टिलाभेन मानवाः सस्य वृद्धिं कामयमानाः प्रसन्ना भवन्ति । 'वृत्रः महिना' स्वकी-
येन महिम्ना 'याः चित् अप्पः पर्यतिष्ठत्' यानि जलानि परिवृत्य अतिष्ठत्, निरुद्धानि
चकार । 'अहि' आहन्ता वृत्रः मेघः 'वत्सुतः शीः बभूव' पादस्याधः शयान आसीत् ।
पादाभावेऽपि नदीभिरतिक्रान्तत्वात् पादस्याधः शयन मुक्तम् ।

टिप्पणी—भिन्नम्—भिदिर विदारणे 'रदाभ्यां निष्ठातो नः' इति नत्वम् ।
अमुया—'सुपां सुलुगिति' सप्तम्या या जादेशः । रुहाणाः—रुह बीजजन्मनि, शानच ।
मुमभावः । महिना—मह पूजायाम् इन् प्रत्ययः । पत्सुतः शीः—पादस्याधः शेते इति
कृत्वा पत्सुतः शीः । सप्तम्यर्थे तसिल् । लुगभावः । क्विप् ।

हिन्दी व्याख्या—'असुया शयानम्' इस पृथ्वी पर असहाय सोते हुए वृत्र का
'अति यन्ति आपः' जल धारायें अतिक्रमण कर गयीं । 'नदं न भिन्नम्' जिस प्रकार
महानद नदी-नद का अतिक्रमण करता हुआ निकल जाता है । 'मनो रुहाणाः' सुहावनी
लगने वाली जलधारायें मनुष्यों के मन का अनुरंजन करने लगीं क्योंकि मेघ से वृष्टि
और वृष्टि से अन्त का तादात्म्य है । 'याः चित् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्' अपने
आवरक स्वभाव के कारण जिस जल-पुंज को वृत्र में मेघ में अथवा पर्वतों में निरुद्ध
कर रखा था वही वृत्र अब उन्हीं जल देवियों के चरण में पड़ा है ।

९— नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रे-

न्द्रो अस्या अव बधर्जभार ।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्

दानुः शये सह वत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

पद-पाठः—नीचाऽवयाः । अभवत् । वृत्रऽपुत्रा । इन्द्रः । अस्याः । अव

वधः । जभार । उत्ऽतरा । सूः । अधरः । पुत्रः । आसीत् । दानुः ।

शये । सहऽवत्सा । न । धेनुः ॥ ९ ॥

संस्कृत व्याख्या—'वृत्रपुत्रा' वृत्रस्य जननी 'नीचावयाः' न्यञ्चौ वयसौ यस्याः सा नीचातयाः पुत्रस्य रक्षणार्थं न्यग्भावितकरा 'अभवत्' येन पुत्रः संरक्षितः स्यात् । 'इन्द्रः' इन्द्रः खल्वपि 'अस्याः' वृत्रजनत्याः 'अव' अधोभागे 'व हननसाधनमायुधं 'जभार' प्रह्वतवान् 'तदानी' (उत्तरा सूः) वृत्रस्य माता उ उपर्यवस्थिताऽऽसीत् । 'अधरः पुत्रः आसीत्' पुत्रश्च वृत्रः अधरः अधोभागे आसीत् । एवं मृते पुत्रे हतार्या च मातरि यथा धेनुः नवप्रसूता गौः 'सहव वत्सयुक्ता शेते तथा वृत्रसहिता वृत्रजननी 'दानुः' दानवी शयनं करोति ।

टिप्पणी—नीचावयाः—वेति अश्नातीति वयः, नीचौ वयसौ यस्य दीर्घश्छान्दसः । वय इति करपर्यायः । सूः—षूङ् प्राणिगर्भविमोचने क्विप् । दानु दो अवखण्डने नु प्रत्ययः । जभार—हृग्रहोमश्छन्दसि । वधः—हन्यतेऽनेनेति व हन्ते र्वधादेशः ।

हिन्दी व्याख्या—'नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा' वृत्र की माता ने वृत्र की के लिए अपने दोनों हाथों से ढक लिया । फिर भी (इन्द्रो अस्या अव बधः ज इन्द्र ने मा के नीचे से सार्थक प्रहार कर दिया । 'उत्तरा सूः' अब तो ऊप आच्छादन बनी हुई माता थी और नीचे को 'पुत्र आसीत्' पुत्र था । दानवी ' अपने पुत्र के साथ ही 'धेनुः सहवत्सा न' बछड़े से मुक्त गौ के समान 'शये गयी ।

१०— अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां

काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।

वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो—

दीर्घन्तम आशयदिन्द्र शत्रुः ॥ १० ॥

पद-पाठ—अतिष्ठन्तीनाम् अनिऽवेशनानाम् । काष्ठानाम् । मध्ये ।

निऽहितम् । शरीरम् । वृत्रस्य । निण्यम् । वि । चरन्ति । आपः ।

दीर्घम् । तमः । आ । आशयत् । इन्द्रऽशत्रु ।। १० ।।

संस्कृत व्याख्या—प्रवहणस्वभावत्वात् 'अतिष्ठन्तीनाम्। विरामरहितानां 'अतिवेशनानाम्' प्रवहणमार्गं प्रति निरन्तरं स्यन्दनशीलानाम् 'काष्ठानाम्' जलधाराणां मध्ये वृत्रस्य शरीरम् 'निहितम्' नितरां रहस्यभूतं गुप्तमवस्थितमभूत्। तस्य वृत्रस्य शरीरं 'निण्यम्' जले मग्नत्वात् निर्नामधेयम्। न केनापि तदीयं नाम ज्ञातुं शक्यते। जलमध्ये शिप्रे सति 'इन्द्रशत्रु:' वृत्रः 'दीर्घन्तमः आशयत्' दीर्घं निद्रारूपं शयनं यथा भवति तथा ममार।

टिप्पणी—अनिवेशनानाम्—निविशन्तेऽस्मिन्निति निवेशनम्, स्थानम्। करणाधिकरणयोश्च' इति ल्यूट्। अनिवेशनानां निवेशनरहितानां। काष्ठाः—आपः, क्रान्त्वा स्थिता भवन्ति। पृषोदरादित्वात् साधु। शरीरम्—शृणातेः शम्नाते र्वा। निहितम्—नि + धा + क्त। दीर्घं द्राधतेः तमस्तनोतेः।

(२)—पीटर्सन ने दीघं तमः का अर्थ दुर्मेद्य अन्धकार फिया है।

हिन्दी-व्याख्या—निरन्तर प्रवाहरूप स्वभाव के कारण 'अतिष्ठन्तीनाम् क्षण-मात्र के लिए भी स्थित न रहने वाली, 'अनिवेशनानाम्' सदा बहती ही रहने वाली 'काष्ठानां मध्ये' जलधाराओं के बीच में 'वृत्रस्य निहितं शरीरम्। वृत्र का जल-मग्न शरीर छिपा है। 'निण्यं शरीरं पर्याक्रन्य आपः विचरन्ति' जल में मग्न होने के कारण वृत्र के आकार-प्रकार का पता नहीं चल पा रहा है, उसके ऊपर विशाल जल-प्रवाह चल रहा है। 'इन्द्रशत्रु' 'दीर्घ तम आशयत्। घार निद्रा रूप मरणान्धकार में प्रलीन हो गया है।

११— दासपत्नी रहिगोपा अतिष्ठन्

निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।

अपां बिलमपिहितं यदासीद्

वृत्रं जघन्वां अप तव्दवार।। ११ ।।

पद पाठ—दासऽपत्नी। अहिऽगोपाः। अतिष्ठन्। निऽरुद्धाः। आपः।

पणिनाऽइव। गावः। अपाम्। बिलम्। अपिऽहितम्। यत्।

आसीत्। वृत्रम्। जघन्नान्। अप। तत्। ववार।। ११ ।।

संस्कृत-व्याख्या—'दासपत्नी' दासः पतिर्यासां ता दासपत्नीः उपक्षय पालिकाः 'अहिगोपाः' अहिर्वृत्रो गोपा पालको यासामपां ताः । वृत्र एवावरक तासामपांनियन्ता । एवं वृत्रेणावरणात् ता आपः 'पणिना इव गावः निरुद्धाः। पणिना असुरेण बिले निरुद्धा गावोऽतिष्ठस्तथा प्राप्तनियन्त्रणा अतिष्ठन् । 'अपां यद् अपि हितमासीत्' अपां निःसरणद्वारं यत् निरुद्धमासीत् तद् द्वारं 'वृत्रं ज इन्द्रः' द्वारभूतं वृत्रम् इन्द्रः हतवान् । 'तद् अप ववार' अपवृतम् अकरोत् । ए वृत्रे विवृते च द्वारे गाव इवापः निःसृत्य स्वनिर्गमनमार्गान् अलभन्त ।

टिप्पणी—दासपत्नीः—दासःपति र्यासाम 'विभाषा सपूर्वस्य' इ नकारादेशश्च । दासयति इति दासः, दसु उपक्षये । अहिगोपाः अहि गोपा या निरुद्धाः—रुधिर आवरणे, निष्ठातकारस्य धकारः । जघन्वान्—हन्ते लिटि हकारस्य कुत्वम् । 'अभ्यासाच्च' । इडभावः ।

हिन्दी व्याख्या—दास के नियन्त्रण में रहने वाली और अहि से (दास और अहि दोनों वृत्र वाची अथवा मेघवाची हैं) जलधारायें पणि निरुद्ध गायों की भाँति गहरी गुहा में विकल हो रही थीं । 'अपां बिलम्' उस 'अपिहितम् आसीत्' निरुद्ध जल-द्वार को 'वृत्रं जघन्वान्' इन्द्र ने विध्व दिया । 'अप तद् ववार' और उस द्वारा को विवृत (फैला) कर दिया जि निर्गमन मार्गों के मिल जाने से गायों की भांति जल-नदियां निकल पड़ीं ।

१२— अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र

सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।

अजयो गा अजयः शूर सोम-

मवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून् ।। १२ ।।

पद-पाठ—अश्व्यः । वारः । अभवः । तत् । इन्द्र । सृके । यत् । त्वा

प्रतिऽअहन् । देवः । एकः । अजयः । गाः । अजयः । शूर । सोमम्

अव । असृजः । सर्त्तवे । सप्त । सिन्धून् ।। १२ ।।

संस्कृत व्याख्या—यदा 'एकः' सहायानपेक्षो वृत्रः (देवः) दीप्यमानः युधनिष्णातः 'त्वाम्' त्वां प्रति 'सृके' वज्रोपरि 'प्रति अहन्' प्रतिकूलत्वेन कृतवान् । तदा 'इन्द्र' हे इन्द्र ! त्वम् (अश्व्यो वारोऽभवः) अश्व

वालोऽभवः । यथा केशचामरादिना मक्षिकादिनिवारणे न प्रयासापेक्षा तथा त्वमपि सहजतया लीलयैव तं वृत्रं निराकृतवानसि । 'अजयः शूर सोमम्' हे शौर्यसम्पन्न इन्द्र ! त्वं सोमं जितवानसि । अथ च 'सर्तवे' प्रवाहरूपेण सरणाय 'सप्तसिन्धून्' स्यन्दनशीला नदीः 'अवासृजः' स्रष्टवानसि । वृत्रकृतं जल-निरोधं दूरीकृतवानसि ।

टिप्पणी—अश्व्यः—अश्वेभवः । यत् । वारः—वारयति इति वारः । पचाद्यच् । सर्तवे—तुमर्थे सेसेनः तवेन् प्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—हे इन्द्र 'यत्' जब आपके 'सृके' वज्र पर 'देव एकः' एक अद्वितीय देदीप्यमान वृत्र ने 'प्रत्यहन्' प्रतिकूल प्रहार किया तब 'अश्व्यो वारो अभवः' आप अश्व के बाल के समान अति कोमल हो गये । जिस प्रकार मक्षिका आदि को हटाने में बाल से निर्मित चामर आदि को विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ती इसी प्रकार कोमल प्रयास से लीला करते हुए भी इन्द्र ने वृत्र को परास्त कर दिया । इस प्रकार 'अजयः गाः' पणि असुर के द्वारा निरुद्ध गायों का इन्द्र ने उद्धार किया और उल्लास पूर्ण इन्द्र ने 'अजयः शूर सोमम्' सोम को विजय किया । और इस प्रकार 'सर्तवे' अभिसरण के लिए 'सप्तसिन्धून्' स्यन्दनशील जलधाराओं 'अवास्रजः' की सृष्टि की और वृत्र के द्वारा निर्मित जल-निरोध को समाप्त किया ।

१३— नास्मै विद्युन्न तन्यतु सिषेध

न यां मिहम किरद्ध्रादुनिं च

इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहि

श्चोतापरीभ्यो मधवा विजिग्ये

पद पाठः—न । अस्मै । विद्युत् । न । तन्यतुः सिषेध न । याम् । मिहम् ।

अकिरद् । ह्रादुनिं । च । इन्द्रः । च । यत् । युयुधाते । इति । अहिः

च । उत । अपरीभ्यः । मघऽवा । वि । जिग्ये ।। १३ ।।

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रवधार्थे यानि यानि शस्त्राणि वृत्रः प्रयुक्तवान् तानि तानि सर्वाण्येव निरर्थकानि जातानि तद्यथा 'विद्युत्' इन्द्रार्थं निर्मिता विद्युत न इन्द्रं 'सिषेध' जगाम । 'न तन्यतुः' वृत्रकृतो गर्जन व्यापारोऽपि 'न सिषेध' नैवाप्नोत् । 'न यां मिहम् अकिरत्' तमोमयीं मायावृष्टिमस्रजत् साऽपि नैव इन्द्रं चंचलं निराशां वाऽकरोत् 'ह्रादुनिं च' इन्द्रार्थं वृत्रः ह्रादुनिम् अशनिं प्रयुक्तवान् । साऽपि न समर्था

जाता । इत्थं प्रकारेण 'यद्' यदा 'इन्द्रश्च अहिश्च युयुधाते' इन्द्रश्च वृत्रश्च यु कृतवन्तौ तदा 'मघवा' ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रः 'अपरीभ्यः' वृत्रप्रयुक्तेभ्य आयुधे ऽन्येभ्यश्च तथा विद्येभ्यः मायाविषयेभ्यः अपरामृष्ट एव 'विजिग्ये' जितबान् । वि व्यक्तित्वसामर्थ्येभ्यः स इन्द्र एव दृढो मुक्तशक्तिप्रकर्षश्च ।

टिप्पणी—मिहम्—मिह—सेचने, मेहति सिंचतीति मिट् । क्विप् । अकि कृ थिक्षेपे । युयुधाते–युध संप्रहारे–लिट् । जिग्ये–'सनूलिटोर्जे!' जकारस्य कुत्व सिषेध–षिधुगत्याम् । लिट् ।

हिन्दी व्याख्या—इन्द्र को पराजित करने के लिए जिन-जिव आयुधों प्रयोग वृत्र ने किया, वे सभी निरर्थक प्रमाणित हो गए । जैसे उसने 'विद्युत् न सिषेध न तन्यतुः' विद्युत् का प्रयोग किया वह सफल प्रयोग नहीं हुआ । भीषण ग की, उससे भी इन्द्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा 'मिहम् अकिरत्' धनी तमोमयी पटली से वृष्टि का प्रयोग किया । इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला 'हादु फिर अशनि-पात किया पर यह वज्र-पात भी निरर्थक ही रहा । इस प्रकार 'इ यद् युयुधाते अहश्च' इन्द्र और वृत्र के इस भयावह युद्ध में इन्द्र ने वृत्र के स आयुध, माया तथा कौशल को निरर्थक कर दिया । (अपरीभ्यः) इसके अतिरिक्त जिन-जिन मायावी अस्त्रों को उपयोग में लाया, वे सब निष्फल रहे और अन्त में को ही वृत्र पर विजय प्राप्त हुई ।

१४— अहे॑र्यीता॒रं कम॑पश्य इन्द्र

हृ॒दि यत्ते॑ ज॒न्धुषो॒ भी रग॑च्छत् ।

न॑व च॒ यन्न॑व॒ तिं च॒ स्रवं॑न्तीः

श्ये॒मो न भी॒तो अत॑रो रजां॑सि ॥१४॥

पद-पाठः—अहेः॑ ! याता॒रं॑ । कम् । अ॒प॒श्यः । इ॒न्द्र । हृ॒दि । यत् । ज॒न्घुषः॑ । भीः । अगच्छत् । नवं॑ । च॒ । यत् । न॒व॒तिम् । च॒ । स्रवं॑न्तीः । श्ये न । भी॒तः । अतं॑रः । रजां॑सि ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र । अहेः । वृत्रस्य 'मातारम्' सपक्षभूतम् अनु यिनं 'कम् अपश्यः' कं दृष्टवानसि । 'यत् ते जन्धुषः' वृत्रं हतवतो यस्मात् हृदि 'भीः अगच्छत्' भयं व्यान्पोत् । 'नव च यन् नवतिं च स्रवन्तीः' यस्मात्

एकोन शत संख्याकाः नदीः 'श्येनो न भीतः' श्येन पक्षीव त्रस्तः सन् 'अतरःरजांसि' उदकानि तीर्णवानसि ।

टिप्पणी—जन्घुषः—हन्ते लिटि कूसुः । 'गमहनः' उपधालोपः । स्रवन्तीः—स्रु गतौ । 'शप्श्यनो नित्यम्' नुमागमः । यातारम् या+तृच् । अतरः तृ पल्वन-संतरणयोः । लङ् ।

हिन्दी—टीका—हे इन्द्र ! वृत्र-वध के अनन्तर 'अहे र्यातारम्' वृत्र को अनुगामी (कम् अयश्यः) रूप में किसको आपने देखा । 'यत्ते जन्घषो हृदि भीः अगच्छत्' जो आप जैसे वृत्रहा के भी हृदय में भय का अभिनिवेश हो गया । 'यत् नव च नवतिंच स्रवन्तीः' जिसके कारण आपने निन्यानवे नदियों' के महान् (रजाँसि) जल-राशि को 'श्येनो न भीतः' त्रस्त श्येन पक्षी (बाज) के समान (अतरः) तैर कर पार कर लिया ।

१ — इन्द्रों यातोवसितस्य राजा

शमस्य च शृङ्गियो वज्रबाहुः ।

सेदु राजा क्षयति चर्षणीना-

मरान्न नेमिः परिता बभूव ॥१५॥

पद-पाठः—इन्द्रः । यातः । अवऽसितस्य । राजा । शमस्य । च । शृङ्गिणः वज्रऽबाहुः । सः । इत् । ऊं इति । राजा । क्षयति । चर्षणीनाम् । अरान् । न । नेमिः । परि । ता । बभूव ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—स 'वज्रबाहुरिन्द्रः वृत्रे नियंत्रिते सति अजातशत्रुः समजनि । स 'यातः अबसितस्य राजा' यातः गच्छतः जंगमस्य अवसितस्य स्थातुश्च स्थावरस्य 'शमस्य च शङ्गिणश्च' शृंगादिराहित्येन शान्तस्य निरुपद्रवस्य प्रहरणादौ प्रवृत्तस्य शङ्गोयेतस्य च सहायनिरपेक्षो राजा । स । (सेदु राजा चर्षणीनाम्) एवं मानवानामपि राजा 'क्षयति' सर्वोत्कर्षेण वर्तते । 'परि ता बभूव' तानि सर्वाणि स्थावरजंगम निरुपद्रव सोपद्रव जन्तुमनुष्यादीनि स इन्द्रः परिव्याप्तवान् । 'अरान्न नेमिः' यथा रथस्य नेमिः परिधिः सर्वतो व्याप्य अरान् निपाति तथा सर्वतो व्याप्य तानि इन्द्रो रक्षति ।

टिप्पणी—(१) यातः—या प्रापणे, याति गच्छतीति यात्। लटः
षष्ठी। बभूव–भवते लिटि णलि भवतेरः। वुगागमश्च। 'इन्धि—भवतिभ्यां
इति लिटः कित्तवाद् वृद्धयभावः। अवसितस्य—अव+षो+क्त। क्षयति
निवासे।

(२) चर्षणीनाम्—क्रियाशील व्यक्ति अथवा कृषिकर्म करने वाले
को चर्षणि' कहा गया है।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार वृत्र वध सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र शत्रु
हो गया है। वह 'यातः अवसितस्य' जंगम तथा स्थावर प्राणियों का 'शमः
शृंगिणः' शगरहित अश्व-गर्दभ आदि निरुपद्रव प्राणी तथा शंगयुक्त वृषभ-
आदि सोपद्रव प्राणियों का वही एक शक्तिशाली 'राजा' राजा है। 'परि ता
ऊपर कहे गए स्थावर, जंगम, निरुपद्रव, सोपद्रव प्राणियों को सभी ओर से
व्याप्त होकर वह रक्षा कर रहा है। 'सेदु' वही 'चर्षणीनां राजा' मनुष्यों का
मात्र पति पालक राजा है। 'अरान् न नेमिः' जिस प्रकार रथ की अराओं के
नेमि (पहिये का घेरा) सशक्त रहता हैं।

मण्डल १

सवितृ-सूक्तम्

सूक्त ३५

ऋषि—हिरण्यस्तूपः। देवता—सविता—छन्द १० ६ जगती
त्रिष्टुप्।

१—

ह्वया॑म्यग्निं प्रथमं स्वस्तये

ह्वया॑मि मित्रावरुणा विहाव॑से।

ह्वया॑मि रात्रीं जग॑तो निवेश॑नीं

ह्वया॑मि देवं स॑वितार॑मूतये॑ ॥१॥

पद-पाठः— ह्वया॑मि । अ॒ग्निम् । प्र॒थ॒मम् । स्व॒स्तये॑ । ह्वया॑मि । मि॒त्रा

वरु॑णौ । इ॒ह । अव॑से । ह्वया॑मि । रात्री॑म् । जग॑तः । नि॒ऽवेश॑नीम् । ह्वया॑मि ।

दे॒वम् । स॒वि॒तार॑म् । ऊ॒तये॑ ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—'प्रथमं स्वस्तये' आदौ तावत् स्वस्तये कल्याणार्थम् 'अग्निम् ह्वयामि' प्रकाशकम् अग्नि देवं ह्वयामि आह्वयामि। 'अवसे च' रक्षण-गति-कान्ति प्रीत्यर्थं 'मित्राववणौ इह ह्वयामि' मित्रावरुणौ ह्वयामि। 'जगतो निवेशनीं रात्रीं ह्वयामि' जगतः जं.माः सर्वे प्राणिनः स्वस्वव्यापारान् दिवसे कुर्वन्ति रात्रौ च विश्रामार्थ निविशन्ति अतः रात्रिदेवतां निवेशन हेतुभूतां मंगलार्थं स्मरामि। 'ऊतये' रक्षणार्थं च 'देवं सवितारं ह्वयामि' प्रसवितारं भगवन्त स्मरामि।

टिप्पणी—रात्रीम्—'रात्रेश्चाजसौ' इतिऽणप् । निवेशनीम्—निविशतेः 'करणाधिकरणयोश्च' इति ल्युट्। ङनप्। ऊतये—अवतेः क्तिन्। ऊठ्=ऊतिः। चतुर्थी।

हिन्दी-व्याख्या—सबसे आदि में 'प्रथमं स्वस्तये' कल्याण के लिये मैं 'अग्नि ह्वयामि' तमो-निवारक अग्नि देवता का स्मरण करता हूं। 'अवसे' अपनी रक्षा तथा गति प्रीति के लिये मैं 'मित्रावरुणौ ह्वयामि मित्रावरुण देवों का स्मरण करता हूं। सभी चेतन प्राणी दिन में इधर-उधर अपने-अपने व्यापार में व्यथित रहते हैं अतः विश्रामदायिनी 'ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीम्' और जंगम-जगत् को शान्ति देने वाली रात्रि देवता को स्मरण करता हूं और 'ऊतये' सुरक्षा के लिये 'सवितारं देवं ह्वयामि' मैं जगत के जनक सविता देव का आह्वान करता हूं।

२—

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो

नि॒वे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च ।

हि॒र॒ण्यये॑न स॒वि॒ता रथे॒ना

दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥२॥

पद-पाठः—आ । कृ॒ष्णेन॑ । रज॑सा । वर्त॑मानः । नि॒ऽवे॒शय॑न् । अ॒मृत॑म् ।

मर्त्यम् । च । हिरण्ययेन । सविता । रथेन । आ । देवः । याति । भुवनानि । प

येन् ।।२।।

संस्कृत-व्याख्या—सूर्योदयात् प्राक् समग्रो लोकः ऋष्णवर्ण एवासीत् अ 'कृष्णेन' अन्धकार पूर्णेन लोकेन 'आयर्तमानः' पुनः पुनरावृतिं कुर्वन् । रज इ लोकनाम । 'अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्' मरणरहित मात्मानं मरणधर्माणं देहं स्वस्वस्थाने प्रापयन् 'हिरण्येयेन रथेन' स्वर्ण दीप्तेन रथेन 'भुवनानि पश्यन्' अत तया समग्राणि भुवनानि अभिनिभालयन् 'सविता देवो याति' सविता देव=स उत्कृष्टतया वर्तते । तं प्रति प्रणतोऽस्मि इति गम्यते ।

टिप्पणी—मर्त्यम्—मृ+यत् । वर्तमानः —वृत+शानच् । आने मुक् हिरण्ययेन—मयट्, मकारलोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—सूर्योदय से पहले सभी भुवन अन्धकारग्रस्त था 'आकृष्णे रजसा वर्तमानः' अन्धकार से आच्छन्न लोक से आवर्तन करते हुये 'अ मर्त्य च निवेशयन् मरणधर्मा तथा अमृतधर्मा प्राणियों को यथास्थान व्यवस्था करते हुये 'हिरण्ययेन रथेन' अपने स्वर्णमय रथ से 'भुवनानि पयन' जगत्-स्था भुवनों पर दृष्टि रखते हूये यकिता देवो याति' सविता देवता आगमन कर रहे हैं उनके प्रति प्रणति व्यंग्य है ।

३—

याति देवः प्रवता यात्युद्वता

याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।

आ देवो याति सविता परादतो—

ऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ।।३।।

पद-पाठः— याति । देवः प्रऽवता । याति । उत्ऽवता । याति । शुभ्

भ्याम् । मजतः । हरिभ्याम् । आ । देवः । याति । सविता । पराऽवतः । अप

विश्वा । दुः ऽ इता । बाधमानः ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—अयं 'देव:' दीप्यमान: सविता 'उद्वता याति' उत्कृष्टेन उदयानन्तर भूर्ध्वं मार्गेण याति आरोहणं करोति। तदनन्तरं 'प्रवता' आसायं प्रवणेन मार्गेण गच्छति। 'यजत:' यष्टव्य: पूज्य प्रशंसित: स देव: शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति' श्वेताभ्यामश्वाभ्यां देवयजन प्रदेशम् आक्रमते। सविता देव: 'परावत:' दूरदेशात् दुरिता बाधमान: विश्वानि दुरितानि विनाशयन् 'आ याति' आश्वासयन् आगच्छति।

टिप्पणी—प्रवता—प्रवणेन मार्गेण, प्र+वन्+क्विप्। उद्वता—उद्+वन+क्विप्। ऊर्ध्वदेशयुक्तेन मार्गेण।

हिन्दी-व्याख्या—सविता देव 'उद्वता प्रवता मार्गेण' ऊपर की ओर तथा ऊपर से नीचे की ओर=मध्याहन तक तथा उसके अनन्तर अपने नियमित मार्ग से 'शुभ्राभ्यां हरिभ्याम्' अपने शुभ्र कान्ति प्रद अश्वों के साथ निरन्तर 'याति' गमन करते रहते हैं। 'परावत:' बहुत दूर देश से आते हुये सविता देव (विश्वा दुरिता अपबाधमान:' समस्त पापों का विनाश करते हुए 'आ याति' तथा ... प्राणियों को आश्वासन देते हुए आते हैं।

४—

अभीवृतं कृशनै विश्वरूपं

हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।

आस्थाद्रथं सविता चित्रभानु:

कृष्णा रजांसि नविषीं दधान: ॥४॥

पद-पाठ:— अभिऽवृनम्। कृशनै:। विश्वऽरूपम्। हिरण्यऽशम्यम्। यजत:

बृहन्तम्। आ। अस्थात्। रथम्। सविता। चित्रऽभानु:। कृष्णा। रजांसि।

तविषीम्। दधान: ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—'यजत: चित्रभानु: सविता' यष्टव्य: पूजनीय: चित्रभानु: चित्रामानवो यस्य स: विविध रश्मियुक्त: सविता देव: 'रथम् अस्थात्' रथम् आरूढवान्। कीदृशं रथम्? 'अभीष्टतम् अभित: शोभमानम्। 'कृशनै: विश्वरूपम् स्वर्ण मयै: कृत्रिमै: उपायै दर्शितनानारूपम्। 'बृहन्तम्' विशालम्। 'हिरण्यशम्यम्' स्वर्ण शङ्खलायुक्तम्। 'कृष्णा रजांसि' कृष्णानि रजांसि अन्धकारा वृतत्वात् कृष्णान्

लोकान् अभिलक्ष्य तमो निवारणार्थ स्वकीयां प्रकाशरूपाँ 'तविषीम् दधानः' शक्तिं धारयन् देवः प्रक्रमते इति शेषः ।

टिप्पणी—अभीवृतम्—अभि + वृ + क्तः । दीर्घत्वम् । यजतः—यज + अतच् । दधानः—धा + शानच् । अस्थात्—स्था + लृङ् । तविषीम्—तवि + टिषच् + ङीप् । कृशनैः—कृशनेति हिरण्यनाम । निघण्टौ ।

हिन्दी-व्याख्या—'चित्रभानुः' अदभुत तेज वाले 'यजतः' अत्यन्त पूजा और प्रशंसा के योग्य 'सविता' सविता देवता अपने 'बृहन्तं रथम् आस्थात्' दर्शनीय विशाल रथ पर आसीन होते हैं । वह रथ 'अभीवृतम्' सभी ओर से शोभायमान है । 'कृशनैः विश्वरूपम्' स्वर्णमय विविध आकृतियों से शिल्प मण्डित है । 'हिरण्यशम्यम्' स्वर्णमय लगाम से आकर्षक लगता है । सविता देव 'कृष्णा रजांसि' अन्धकार के निवारण के लिये प्रकाश हीन लोकों के प्रति अभिमुख होकर 'तविषीं दधानः' अपनी प्रकाश रूप शक्ति के साथ अग्रसर हो रहे हैं ।

५— वि जनाऽछ्यावाः शितिपादो अख्यन्

रथं हिरण्य प्र उ गं वहन्तः ।

शश्वद्विशः सवितु दैंव्यस्यो–

पस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ।। ५ ।।

पद पाठः—वि । जनान् । श्यावाः । शितिऽपादः । अख्यन् । रथम् ।

हिरण्य ऽ प्र उ गम् । वहन्तः । शश्वत् । विशः । सवितुः । दैव्यस्य ।

उपऽस्थे । विश्वा । भुवनानि । तस्थुः ।। ५ ।।

संस्कृत-व्याख्या—'श्यावाः' सूर्यस्य कृष्णवर्णाः 'शितिपादः' शुभ्रचरणा अश्वा 'जन न् वि अख्यन्' 'जनान् प्राणिनः विशेषेण अख्यन् प्रभाशितवन्तः । 'रथं वहन्तः' कीदृशं रथम् ! 'हिरण्य प्रउगम्' हिरण्यमयं युगवन्धनस्थानं यस्य तथा विधं रथम् 'सवितु दैव्यस्य उपस्थे शश्वद् विशः तस्थुः' शश्वत् सर्वदा विशः प्रजाः दैव्यस्य देवसम्बन्धिन सवितुः प्रेरकस्य उपस्थे समीपे तस्थुः । न केवलं विशः प्रजा एव अपि विश्वा भुवनानि तस्थुः' समग्राणि भुवनानि प्रकाशाय सूर्यं प्रति तस्थुः ।

टिप्पणी—अख्यन्—ख्याप्रकथने । लङ् । उपस्थे–उप + स्था + कः । हिरण्यप्रउगम्–हिरण्यम्-स्वर्णम्, प्रउगम्–रथमुखेऽवस्थितं युगबन्धनस्थानम्, हिरण्यमयं

प्रउगम् हिरण्यप्रउगम्, हिरण्यप्रउगम् । शितिपादः—शितयः श्वेताः पादा येषां ते बहुव्रीहिः ।

हिन्दी व्याख्या—सविता देव के शितिपादः' श्वेतचरण वाले 'श्यावाः' कृष्णवर्ण के अश्व 'हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तः' स्वर्णमय मुख वाले कान्तिप्रद रथ का वहन करते हुए 'जनान् वि अख्यन्' प्राणियों को प्रकाशित करते हैं जिसमे समस्त प्राणी परस्पर अपरिचित न रहें । 'सवितु र्दैव्यस्य उपस्थे' प्रेरक सविता देव के सान्निध्य में 'शश्वत्' निरन्तर 'विशः' समस्त प्रजायें अपने ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार 'तस्थु' अपने जीवनीय-वर्धनीय तत्त्वों की व्यवस्था करती हैं और साथ ही समस्त जड़-चेतन जगत् तथा 'विश्वा भुवनानि' समग्र-भुवन अपने विस्तीर्ण विकास के साथ उल्लास करते हैं ।

६— तिस्रो द्यावः सवितु द्वा उपस्थां

एका यमस्य भुवने विराषाट् ।

आणिं न रथ्यममृताधि तस्थु-

रिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ।। ६ ।।

पद-पाठः—तिस्रः । द्यावः । सवितुः । दौ । उपस्थां । एका । यमस्य । भुवने । विराषाट् । आणिम् । न । रथ्यम् । अमृता । अधि । तस्थुः । इह । ब्रवीतु । यः । ऊं इति । तत् । चिकेतत् ।। ६ ।।

संस्कृत व्याख्या—'तिस्रो द्यावः' द्योतनात्मकतः सवितुः त्रयो लोकाः, तेषु दौ लोकौ सुर्यस्य प्रसवितुः 'उपस्थाँ' समीपवर्तिनौ भजेते । 'एका यमस्य भुवने' तत्र चैका भूमिः लोको यमस्य प्रेतप्राणिवर्गनियन्तु र्यमस्य भुवने गृहे 'विराषाट्' विरान् प्रेतान् पुरुषान् अन्तरिक्षमार्गेण गमकान् सहते । एवं त्रयोलोकाः सवितु र्देवस्य प्रकाशे ऽवस्थिताः । 'अमृता अधि तस्थुः' एवमेतानि चन्द्र–ग्रह–नक्षत्रादीनि स्थूल परमाणुरूपाणि वा रजांसि जालानि वा सवितुरधिष्ठानेऽधितस्थुः अधिकृत्यावस्थितानि । 'य उ तत् चिकेतत्' यः कोपि तादृशः चेतनावान् प्राज्ञः तत्समग्रं रहस्यभूतं सवितुरवस्थापनं जानाति 'स इह ब्रवीतु' स्वकीयां ज्ञानप्रतिभामुद् घातगतु । न कोऽपि समर्थः एतानि स्थूल परमाणु रूपाणि जड़चेतनमयाणि जीवनमरणरहस्यानि यथावत् वक्तुम् । तानि एतानि नश्वरानश्वरानि अमृतानि 'आणिं न रथ्यम् अधितस्थुः' यथा रथाद् बहिः अक्षस्य च्छिद्रे प्रक्षिप्तः कीलकः रथं व्यवस्थापयति तथा सवितु राणौ रथकीलके समग्रमेतत् दृढीभूतं व्यवस्थितम् ।

टिप्पणी—उपस्थाँ—उप + स्था + कः । सप्तम्येकवचने । अनुनासिकः प्रकृतिभावः । विराषाट्—विरा + सह + ण्वि । रथ्यम्—रथ + यत् । अमृता—अमृतानि । तस्थुः—स्था, लिट् । चिकेतत्—कित + लेट् । ब्रवीतु—ब्रू + लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—'तिस्रो द्यावः सवितुः । सविता देवता के तीन प्रकाशात्मक लोक हैं । उनमें से 'द्वा उपस्थाँ' पृथिवी और द्युलोक ये दोनों सूर्य की समीपता से प्रकाश, आकर्षण तथा चेतना प्राप्त करते हैं और 'एका यमस्य भुवने विराषाट्' तृतीय लोक अन्तरिक्ष नामक है जो नियन्त्रक यम के आधीन हैं जहां पर प्रेत अपने गगनागमन से भरता रहता है । 'अमृता अधि तस्थुः' इस प्रकार चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र जल आदि समग्र पदार्थ अमश्वर रूप से सविता देव की छाया में निवास करते हैं । 'आणि न रथ्यम्' जिस प्रकार रथ के धुरे की कील रथ को व्यवस्था से बाहर नहीं जाने देती इसी प्रकार सविता देवता के अमरबन्धन में समस्त जड़चेतन, स्थूल परमाणु जगत् व्यवस्थित है । 'य उ तच्चिकेतत् इह ब्रवीतु' जो इसे यथावत् जान सकता है, वही कुछ वक्तव्य भी दे सकती है । सविता की रहस्यमयी जीवन व्यवस्था को समझ पाना बहुत ही कठिन है ।

७— वि सुपर्णो अन्तरिंणाण्यख्यद्–

गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।

क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत

कतमां द्याः रश्मिरस्या ततान ।। ७ ।।

पद-पाठ—वि । सुऽपर्णः । अन्तरिक्षणि । अख्यत् । गभीरऽवेपाः । असुरः । सुऽनीथः । क्व । इदानीम् । सूर्यः । कः । चिकेत । कतमाम् । द्याम् । रश्मिः । अस्य । आ । ततान ।। ७ ।।

संस्कृत-व्याख्या—'सुपर्णः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्' सूर्यस्य सुपर्णः सुपतनीयो रश्मिसमूहः तानि त्रिविधान्यपि अन्तरिक्षाणि लोकत्रयस्थानानि वि अख्यत् विशेषेण ख्यापितवान् प्रकाशोपेतानि तानि अन्तरिक्षाणि कृतवान् । कीदृशः रश्मिसमूहः 'गभीरवेपाः । गभीरकम्पनः । न केनापि द्रष्टुं शक्यते । 'असुरः' प्राणदः 'सुनीथः' शोभननयनः । अभीष्टदेशप्रापणसमर्थः ताद्दशरश्मिसमूहसमन्वितः 'सूर्यः इदानीं' सूर्यं रात्रौ कुत्र गच्छति ? 'क श्चिकेत' तद् रहस्यं को जानीयात् ? अस्य कतमां द्याम् आ ततान' अस्य सर्वप्रेरकस्य सवितुः स रश्मिप्रपंचः कतमां द्यां

द्युलोकं रात्रौ आततान इत्यपि कोऽपि न जानाति। अध्यात्मदिशाऽपि तथा व्याख्येयम्।

टिप्पणी—गभीरवेपाः—गभीरः वेपः कम्पनंयस्य। वेपः—वेप + असुन्। असुरः–असून् प्राणान् राति ददाति असु + रा + कः। चिकेतकित ज्ञाने लिट्। सुपर्णः—सुपतनः, सूर्यरश्मिः सुनीथः—नी + क्थन् — नीथः, शोभनो नीथो यस्यास्ति असौ सुनीथः सुनयनः ततान—तनु लिट्।

हिन्दी-व्याख्या—'सुपर्णः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्' सूर्य का किरण-समूह तीनों लोकों को—(द्युलोक-अन्तरिक्ष लोक-भूलोक) अपने प्रबल प्रताप से विख्यापित (प्रकाशित) करता है। यह रश्मि-समूह 'गभीरवेपाः' अतिसूक्ष्म कम्पन वाला है। 'असुरः' सबके लिये प्राण-प्रद कारण है। 'सुनीथः' प्रकाश—दान के कारण सबकी नेत्र-ज्योति को पुलकित करता है। 'क्व इदानीम् सूर्यः' इस घोर मायामय रजनी में वह विश्व प्रकाशक कहाँ है? 'कः चिकेत' इसे कौन जानता है? 'अस्य रश्मि' इस सूर्य का रश्मि-समूह 'कतमां द्याम्' किस चमकीले भाग्यशाली लोक को 'आ ततान' अपने रश्मि-दान से कृतार्थ कर रहा है, इसे भी कौन जानता है?

८— अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्याः

स्त्रीधन्व योजना सप्तसिन्धून्।

हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्—

दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि॥ ८॥

पद-पाठ—अष्टौ। वि। अख्यत्। ककुभः पृथिव्याः। त्री। धन्व। योजना। सप्त। सिन्धून् हिरण्यऽअक्षः। सविता। देवः। आ। अगात्। दधत्। रत्ना। दाशुषे वार्याणि॥ ८॥

संस्कृत-व्याख्या—'अष्टौ कभः व्यख्यत्' सविता देवः प्राच्याद्या श्चतस्रः दिशः आग्नेयाद्याश्च चतस्रः प्रदिशः एवमष्टौ दिशः स्वीकीयाचमनेन व्यख्त् प्रकाशितवान्। त्रि 'योजना' भोग्य भोक्तृ प्रयोज्चेन तानि 'धन्व' त्रिसंख्याकानि पृथिव्यन्तरिक्ष-द्युलोकोपलक्षितानि यथासंख्यं योजनानि कृतवान्। 'सप्त सिन्धुन्' सरणशीलान् 'सुन्दान् सिन्धुनपि असौ देवः यथा त्रिषु लोकेषु निर्ममे तथा पिण्डेऽपि ब्रह्माण्डवन् निर्ममे। 'हिरण्याक्षः सविता देवः' हितरमणीयचक्षुः हिरण्याक्षः सविता देवः 'आ अगात्' इहागच्छतु। स दाशुषे हविर्दत्तवते यज्ञपतये वार्याणि वरणीयानि रत्नानि दधत् धारयन्।

टिप्पणी—त्री—त्रीणि । 'शेश्छन्दसि०' इतिलोपः । वार्याणि—वृ + ण्यत्
रत्ना—रत्नानि । दाशुषे-दाशृदाने । क्वसुः । चतुर्थी । योजना—युज् + णिच् । ल्यु
धन्व—धवि + कनिन् । व्यख्यत्—वि + ख्या + लुङ् दधत्—धा + शतृ । आगत्-
'इणो गा लुङि' ।

हिन्दी-व्याख्या—सविता देव ही पूर्व आदि चार तथा आग्नेय आदि च
दिशाओं और विदिशाओं को अपने शुभागमन से प्रकाशित करते हैं और 'योजना'
भोग्य एवं भोक्तृ प्रपञ्च के लिए पृथिवी-अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को नियोजित कि
है । सप्त सिन्धुन' इन अवलोकन के लिए बने तीनों लोकों में सविता देव ने सत
शील नदी-नद नाद आदि बनाये हैं । इसी बिन्दु में भी ब्रह्माण्ड की अनुकृति की
है । हित रमणीय दृष्टि वाले सविता देव 'आ आगात्' सदा हमसे सम्बद्ध रहें ।
दानशील व्यक्ति के लिए 'वार्याणि' वरण के योग्य पदार्थों को सदा अपने पास धा
किये रहें ।

९— हिरण्य पाणिः सविता विचर्षणि—

रुभे द्यावापृथिवी अन्तारीयते ।

अपामीवा बाधते वेति सूर्य—

मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

पद-पाठः—हिरण्यऽपाणिः । सविता । विऽचर्षणिः । उभे इति द्यावा पृथि

इति । अन्त ईयते । अप । अमीवाम् । बाधते । वेति । सूर्यम् । अभि । कृष्णेन

रजसा । द्याम् । ऋणोति ।

संस्कृत-व्याख्या—'हिरण्यपाणि' स्वर्णहस्तः 'सविता विचर्षणिः' सविता दे
सर्वदा प्रदानाय हस्ते हिरण्यं निदधाति । स च विश्वप्रकाशकत्वेन विश्वदर्शनः । '
द्यावापृथिवी अन्तः ईयते' उभयो र्लोकियो मंध्ये स्वप्रकाशात्मकं वैभवं प्रापयति
'अमीवाम् अप बाधते' रोग चिन्तादिबाधाम् अपबाधते परिहरति । 'सूर्य वेति' अ
र्यामित्वेन सदैव सूर्य व्याप्रोति । 'कृष्णेन रजसा च द्याम् अभि ऋणोति' कृष्ण
अन्धकारस्य कर्षणेन पृथग् अवस्थापनेन स्वकीयेन रजसा तेजसा द्याम् द्युलोकम् अ
ऋणोति अभिव्याप्य तिष्ठति ।

टिप्पणी—द्यावापृथिवी—द्यौश्च पृथिवी च, दिवः द्यावा इत्यादेशः । वेति
वी + लट् । ऋणोति—तनादेः ऋणधातो र्लट् । बाधते—बाध + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—'हिरण्यपाणिः' सुनहरे हाथों वाले सविता देव 'विचर्षणि' आकर्षक और प्रकाशक होने के कारण सभी प्राणियों के लोक चक्षु हैं। 'उभे द्यावीपृथिवी अन्तरीयते' वे पृथिवी लोक तथा द्युलोक को प्रकाशित करते हुए अपना चङ्क्रमण कर रहे हैं। वे सविता देव 'अमीवाम् अपबाधते' विविध रोग और चिन्ताओं का अपहरण करते हैं 'वेति सूर्यम्' अन्तर्यामी बनकर सूर्य का भी नियमन करते हैं। 'कृष्णेन' अन्धकार का विकर्षण करने के कारण 'रजसा' अपने प्रकाशात्मक तेज से 'द्याम् अभिऋणोति' द्युलोक को अभिव्याप्त करके अपनी ही महिमा में अवस्थित हैं।

१०— हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः

सुमृळीकः स्ववां यात्वर्वाङ् ॥

अपसेधन्रक्षसो यातुधानान्—

स्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

पद-पाठः—हिरण्यऽहस्तः। असुरः। सुऽनीथः। सुऽमृळीक्। स्वऽवान्। यातु। अर्वाङ्। अपऽसेधन्। रक्षसः। यातुऽधानान्। अस्थात्। देवः। प्रतिऽदोषम्। गृणानः ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या—'हिरण्यहस्तः' हितरमणमिपाणिः 'असुरः' प्राणदः 'सुनीथः' सुष्ठुप्रणयनः 'सुमृडीकः' सुखयिता 'स्ववान्' प्रभूतधनधान्यवान् स सविता देवः 'अर्वाङ्' अस्मान् प्रति अभिमुखः सन् नय्नानन्ददायी भूयात् 'यातु' ओयातु च। अथ च रक्षणबाधकान् 'यातुधानान्' असुरान् 'अपसेधन्' दूरीकुर्वन् 'प्रतिदोषम्' प्रतिरात्रि 'गृणानः' अस्माभिः स्तूयमानः सन् 'अस्थात्' सर्वोत्कर्षेण वर्तते।

टिप्पणी–सुनीथः—सु + नी + क्थन्। शोभन् नीथः यस्य स सुनीथः। स्ववान् स्व + मतुप्। प्रतिदोषम्—दोषां दोषां प्रति—प्रतिदोषम्—अव्ययीभावः। गृणानः–गॄ + शानच्। यातुधानान्—यातु + धा + ल्युट्। अपसेधन्—अप + षिधु गत्याम् + शतृ। अस्थात् स्था + लुङ्।

हिन्दी-व्याख्या—'हिरण्यहस्तः। हितानन्ददायक हस्त वाले 'असुरः' प्राणप्रद 'सुनीथः' अच्छे नेता, सुमृद्वीकः। सभी प्रकार के सुखों को सुलभ बनाने वाले 'स्ववान्' धनधान्य से परिपूर्ण सवितादेव 'अर्वाङ् यातु' सर्वदा हमारे लिये मनोहारी और सुप्रदाता बने रहें।'रक्षसो यातु धानान्' राक्षस स्वभाव वाले रक्षणकार्य के बाधक असुरों को 'अपसेधन्' दूर करते हुए 'प्रतिदोषम्' प्रति सायं काल में 'गृणानः' प्रत्येक वैभव दृष्ट-नष्ट रूप में अवस्थित हैं, यह उपदेश करते हुये 'देवः अस्थात्' सविता देव सर्वदा हमें ऐहिक और पारलौकिक सुखों से संयुक्त करें और हमारी हृदय—ऋचाओं से स्तुति पाते रहें।

११— ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो—

ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।

तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी

रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

पद-पाठः—ये । ते । पन्थाः सवितरिति । पूर्व्यासः । अरेणवः ।

सुऽकृताः । अन्तरिक्षे । तेभिः । नः । अद्य । पथिऽभिः ।

सुगेभिः । रक्ष । चः।नः । अधि । च । ब्रूहि । देव ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सवितः । 'ये पुर्व्यासः अरेणवः पन्थाः' भवतः ये पूर्वसिद्धा धूलरहिताः 'सुकृताः' सुष्ठु सम्पादिताः मार्गाः 'अन्तरिक्षे' अन्तरिक्षे अभिव्याप्ताः सन्ति । 'तेभिः सुगेभिः पथिभिः' तैः सुष्ठु गमनयोग्यैः मार्गैः समागत्य 'अद्य' अस्मिन् दिने 'नः' अस्मान् 'रक्षच अधि ब्रूहि च' हे देव । दिव्यस्वभाव । रक्ष, त्वदीया वय मित्यनुगृहाण । अथ च अस्माकं कल्याणार्थम् आनन्दोपयम्धिकृत्य कथय । येनास्माकम· भ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स्यात् ।

टिप्पणी—पूर्व्यासः—पूर्वे भवः यत् । 'आज्जसेरसुक्' । सुगेभिः—सुगैः सु+ गम+ऽः । तृतीया बहुवचने । सुकृताः—सु+कृ+क्तः । ब्रूहि—ब्रू+लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सवितः जगत् के आदि कारण देव । ये पूर्व्यासः अरेणवः पन्थाः' जो आपके पूर्वसिद्ध, धूलि-रहित, पवित्र मार्ग हैं । 'अन्तरिक्षे सुकृताः' जो अन्तरिक्ष में भली प्रकार सम्पादित हैं' तेभिः सुगेभिः पथिभिः' उन सुलभ, सुन्दर मार्गों से 'अद्य' आज 'नः' हमको 'रक्ष' अनुग्रहपूर्वक अपनाइये और हमें 'देव अधि ब्रूहि च' हे देव । हमारी सुख-सुविधा, आनन्द और निरुपद्रवता के लिये अपने आदेश और अनुशासन में रखिये ।

मण्डल १

उषः सूक्तम्

सूक्त ४८

ऋषि :—प्रष्कण्वः   देवता—उषाः—छन्दः—बृहती ।

१—

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहित दिवः ।

सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

पद-पाठ :— सह । वामेन । नः । उषः । वि । उच्छ । दुहितः दिवः । सह । द्युम्नेन । बृहता । विभाऽवरि । राया । देवि । दास्वती ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वीतान्धकाराया दिवो दुहितः पुत्रि ! उषः ! प्रभाताभिमानि देवते ! वामेन कमनीयेन धनेन सह व्युच्छ विभानं कुरु । हे विभावरि ! अनुद्वेजकतेजस्के बृहता द्युम्नेन सह द्योतनात्मकेन रत्नादिना धनेन सह व्युच्छ प्रभातरमणीया भव । त्वं दास्वती दान युक्ता सती राया बाह्यवैभवसम्पन्नेनान्त वैभवयुक्ततया च व्युच्छ । अन्धकारमज्ञानलक्षणं विवासय ।

टिप्पणी—उच्छ-उच्छी विवासे । विभावरी–भा दीप्तौ 'आतोमनिन्०' इति वनिप् । 'वनोरचेति' ङीप् । तत्सन्नियोगेन न कारस्य रेफादेशः । सम्बुद्धौ च ह्रस्वत्वम् । दास्वती—डुदात्र् दानें । भावे असुन् प्रत्ययः । दाः दानमस्या अस्तीनि दास्वती । भादुपधाया इति मतुपो वत्वम् । उगितश्चेति ङीप् । वामेन–वाधातोः मन् प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे आकाश की प्रकाशक पुत्रिके ! उषा देवि ! हमारे लिए 'वामेन' कान्ति प्रद धन के साथ आप 'व्युच्छ' अन्धकार का निर्वासन कीजिये । 'सह द्युम्नेन बृहता विभावरि' हे उद्वेजन-रहित तेज को धारण करने वाली उषा देवि । आप बृहता द्युम्नेन ऐश्वर्य सम्पन्न यशस्वी धन से हमें युक्त कीजिये । हे देवि । 'दास्वती' दान शीले ! 'राया' समस्त प्रकार के वैभव तथा विभुता से हमें सम्पन्न बनाइये ।

२— अश्वावती गोमती विश्व सुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।

उदीरय प्रति मा सूनृता उष श्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

पद-पाठ :— अश्वऽवती: । गोऽमती: । विश्वऽसुविदः । भूरि । च्यवन्त । वस्तवे । उत् । ईरय । प्रति । मा । सूनृता: । उषः । चोद । राधः । मघोनाम् ॥ २

संस्कृत-व्याख्या—अस्माकं 'वस्तवे' निवासाय 'अश्ववती: गोमती:' बृहद्‌रश्वै युक्ता: पुष्टाभि र्गोभि युक्ता इमा उषस: 'विश्वसुविद:' विश्वस्य सुष्ठु प्रा संज्ञाना: धनस्य लाम्भयित्र्यो वा 'भूरि च्यवन्ते' ता इमा: प्रभूतं प्राप्ता: । हे उ देवते ! मां प्रति सूनृता: प्रियां हितां सत्यां च वाचम् 'उदीरय' प्रेरय । 'मघोना वैभवसम्पन्नानां यानि राध: राधांसि सन्ति तानि धनानि अस्मभ्यमपि चोद चो प्रेरय । येन वयमपि पूर्णा: पूर्णकाया: सतया भुवि सानन्दं जीवेम ।

टिप्पणी—अश्वावती:—'मंत्रे सोमाश्वेन्द्रिय विश्वदेव्यस्य मतौ' इति पदस्य दीर्घत्वम् । विश्वसुविद:—विश्वं सुष्ठु वेत्ति विन्दति । विश्व+सु+वि +क्विप् । प्रथमा बहुवचने । वस्तवे—वस धातो: 'तुमर्थेसेसेन्०' इति तवेन् प्रत्यय च्यवन्त—च्युङ् गतौ । लङि । अडभाव: । ईरय—ईर गतौ कम्पने च । हेतुमति णिच् । राध:—राध+असुन् ।

हिन्दी-व्याख्या—हमारे 'वस्तवे' निवास के लिए अश्व—गाय—धन—धान्य ज्ञान से सम्पन्न उषा देवियाँ 'भूरि च्यवन्त' विशाल वैभव के साथ हमें प्राप्त हुई हे उषा देवि ! हमारे लिए 'सूनृता:' प्रिय—मधुर और सत्य-वचन की प्रेरणा दीजि 'मघोनाम्' धन-वैभव से सम्पन्न महानुभावों के पास जो 'राध:' ऋद्धि-सिद्धियाँ उन्हें हमारे लिए भी 'चोद' प्रेरित कीजिये जिससे पूर्ण मनोरथ होकर हम लौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त करें ।

३— उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

पद-पाठ :—उवास । उषा: । उच्छात् । च । नु । देवी । जीरा । रथानाम् । ये । अस्या: । आऽचरणेषु । दध्रिरे । समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—उषा देवी उवास । विभानं कृतवती । तमो विवासयामास । नु अद्यापि उच्छात् व्युच्छति । तमो विवासयति । इयं हि देवी रथानां रमणीयानां रथानां कल्याण साधनानां शरीराणां च 'जीरा' । प्रेरयित्री । अस्या उषसः आचरणेषु आगमन विधानेषु ये रथाः दध्रिरे सज्जीकृताः प्रेर्यन्ते । तत्र दृष्टान्तः । समुद्रे न श्रवस्यवः । यथा श्रवस्यवः धनेच्छुकाः समुद्रे जलयानादि साधनैः स्वकीयानि मानानि सज्जीकृत्य प्रेरयन्ति तथा रथाः प्रेर्यन्ते ।

टिप्पणी—उवास–वस निवासे । लिट् । अभ्यासस्य संप्रसारणम् 'लिटयभ्यास-स्योभयेषाम् ।' जीरा–जु गतौ । 'जोरी च' रक् प्रत्ययः । उकारस्य ईकारादेशः । जीर+टाप् । आचरणेषु—आ+चर+ल्युट् । दध्रिरे–धृङ अवस्थाने । लिट् । कित्त्वाद् गुणाभावे यणादेशः श्रवस्यवः—श्रूयते इति श्रवः । धनम् । असुन् । तदात्मने इच्छन्तीति श्रवस्यवः । क्या च्छन्दसीति उप्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—'उवास उषाः' उषा देवी ने चमकते हुए प्रभात का दर्शन कराया है । 'उच्छाच्च देवी' यह दिव्य देवी आज भी प्रभात को विकसित करती है । 'जीरा रथानाम्' यह उषा देवी रथों के लिए प्रेरक शक्ति है । इसी की प्रेरणा से यह शरीर-रथ भी चलता है । उषा के आचरण विधान पर ही हमारे रथों की गता-गति अवलम्बित है । जिस प्रकार 'श्रवस्यवः' धन की कामना वाले व्यक्ति समुद्र में अपने जलयानों को प्रेरित करते है इसी प्रकार उषा के आगमन पर स्थल भाग में भी प्रेरणा पाकर रथ चल पड़ते हैं ।

४— उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।

अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

पद-पाठ :— उषः । ये । ते । प्र । यामेषु । युञ्जते । मनः । दानाय । सूरयः । अत्र । अह । तत् । कण्वः । एषाम् । कण्वऽतमः । नाम । गृणाति । नृणाम् ॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषः ! तव यामेषु आगमनसमयेषु ये सूरयः विद्या ज्योतिषा सम्पन्ना विद्वांसः 'मनो दानाय युञ्जते' स्वकीयं मनः दानार्थं प्रयुञ्जते प्रोत्साहयन्ति । अन्न दान विषये दान-शीलानां ख्याति गतं नाम कण्वतमः अतिशयेन मेधावी महर्षिः कण्वः आह । कथयति । उषः काले मयोस्यमो नाम गृणाति उच्चार-यति । यो दित्सु दातुमिच्छति यश्च नामग्राहं प्रशंसति ।

टिप्पणी—यामः—या धातोः मन् प्रत्ययः । गृणाति-गृ शब्दे । क्र्यादिः । 'प्वादीनां ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा देवि ! आपके शुभागमन की ब्रह्मवेला में लोग अपने मन को दान के लिए प्रेरित करते हैं। ऋषियों में श्रेष्ठ कण्व ऋषि कहते हैं कि यह ब्रह्मवेला ही उपयुक्त समय है। इस उषः काल में जो उदार दान करते हैं अथवा जो कल-मधुर ध्वनियों में दानशील की प्रशंसा करते हैं; उन के लिए उपयुक्त समय ब्रह्मवेला वाली उषा ही है।

५—

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

पद-पाठः—

आ । घ । योषाऽइव । सूनरी । उषाः । याति । प्रऽभुञ्जती ।

जरयन्ती । वृजनम् । पत्ऽवत् ईयते । उत् । पातयति । पक्षिणः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यथा काचन सूनरी योषः सुष्ठु ग्रहकर्म कुशला प्र प्रभुञ्जती प्रकर्षतया सर्वं कुटुम्ब पालयन्ती दक्षतया प्रतिदिन प्रभातवेलायां यास्थिता भवति। तथा सुनरी उषाः प्रतिदिन कालमनतिक्रम्य पालयन्ती आयाति इयम् उषा वृजिनं गतिशीलं भोक्त प्रपञ्चं जरयन्ती जरां प्रापयन्ती सर्वातिशा प्रवर्तते। पदज्जगत् पादयुक्तः जगत् उषाकाले ईयते स्वस्वकर्मसु चेष्टते। इयम् पक्षिणश्च उत्पादयति। प्राप्तायामुषसि पक्षिणो दिग्दिशं प्रयान्ति।

टिप्पणी—सूनरी—नृनये। अच्। नर। सुष्ठु नयतीति सूनरी। ङी प्रभुञ्जती—भुज पालनाभ्यवहारयोः। शतृ। 'रुधादिव्वात्श्नम्। 'श्नसोरल्लो' इति अकारलोपः। 'उजितश्च' इति ङीप्। वृजनम्—वृजी वर्जने। वर्ज्यते वृजनम्। भोक्तृप्रपञ्चः। क्यु प्रत्ययः। पद्वत्—पादः पत्, तदस्यास्ति पद्वत्।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार गृह कुशल महिला बड़ी दक्षता से कुटुम्ब पालन पोषण करती हुई समय का अतिक्रमण किये बिना गृह भार का संच करती है इसी प्रकार उषा भी समय का अतिक्रमण किये बिना प्रतिदिन समय यथावत् आती है। उषा 'वृजिनम्' गतिशील भोक्त प्रपंच को धीरे धीरे जीर्ण क हुई बृहत्व की ओर ले जाती है। द्विपत् चतुष्पद को गतिशील बनाती है ब्रह्मवेला में ही दिग् दिशाओं की ओर पक्षियों को उड़ने के लिये उन्मुख क है।

६—

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।

वयो न किष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥६॥

पद-पाठ—

वि । या । सृजति । समनम् । विअर्थिनः । पदम् । न । वेति । ओदती ।

वयः । नकिः । ते । पप्तिऽवांसः । आसते । विऽउष्टौ । वाजिनी ऽ वति ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—'या समनं विसृजति' या उषाः समनं समनस्कं पुरुष समूहं सृजति यद्वा समनं सप्राणं चेष्टा बहुलं जन लोकं निर्माति । प्राप्तायाम् उषसि सर्वे प्राणिनश्चेष्टावन्तो जायन्ते । अर्थिनः विसृजति–अर्थिनः पुरुषान् प्राप्तव्यापाराणां पुरुषाणामपि उषसि गृहदर्शन योगात् विसृजति ते तलोपलभेरन् इति विसृष्टान् करोति । इयम् ओदती तुषारकणैः क्लिन्ना इयम् उषा पदं न वेति न कामयते । नैव क्षणमपि विश्रामं लभते । दृष्ट नष्टः खलु प्रभात समयः, अल्पकालाव स्थायी । 'पप्तिवांसः उत्पतन परायणाः 'वयः' पक्षिणः 'न किः आसते' नैव उषसि स्वनीड एव अभिरमन्ते अपितु समारूढाद् वृक्षात् दिग्दिशं समुत्पतन्ति' हे वाजिनीवति ! धनधान्य सम्पन्ने उषो देवते व्युष्टौ त्वदीये वैयुष्टे काले समग्रः संसारः प्राणवान् इव 'देहि गृहण' इति कोलाहलपर इव पक्षिभि र्विपक्षिभिश्च दत्तावधान इव स्नान परो ध्यान परः प्रगतिशील इव जायते । वाचामिनाः वाजिना तद्वतीयम उषाः ।

टिप्पणी—ओदती—उन्दी क्लेदने । उनत्ति सर्वं नीहारेण । शतुः स्थाने शप्' अनुनासिकलोपः । 'उगितश्च' ङीप् । नुमभावः । पप्तिवांसः—पत्लृ गतौ लिटः क्सुः । इट् । 'तनिपत्योश्छन्दसि' इत्युधालोपः । 'द्विवचनेऽचि' इति द्विर्भावः । वाजिनीवति—वाजोऽन्नमस्या अस्तीति वाजिनी । मत्वर्थीय इनिः । 'ऋन्नेभ्यः' इति ङीप् । तादृशी क्रिया यस्याः सा 'तदस्यास्तीति मतुप् । संज्ञायाम् इति मतुपो वत्वम्' समनम्—सम्+अन्+अच् । व्युष्टौ—वि+वस्+क्तिन् । व्युष्टिः । सप्तम्येकवचने ।

हिन्दी व्याख्या—'या समनं विसृजति' जो उषा मानव को समनस्क और प्राणवान् बनाती है । समस्त अभिलाषी लोगों को सक्रिय करती है । ओस-कण से भींगी हुई उषा विश्राम के लिये कहीं भी नहीं रुकतीं । उत्पतन शील पक्षी उषा के आगमन पर अपने नीड में बैठे नहीं रहते । धन सम्पदा से मुक्त उषा के आगमन

पर समस्त संसार अपना आलस्य छोड़कर सक्रिय हो उठता है। ज्ञान के अधिष्ठा
महेश्वर लोग भी जय-ध्यान परायण होकर विनय समाधि में दत्तचित्त र
हैं।

७—

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि।

शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वियात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

पद-पाठः—

एषा। अयुक्त। पराऽवतः। सूर्यस्य। उत्ऽअमनाद्। अधि।

शतम्। रथेभिः। सुऽभगाः। उषा। इयम् वि। याति। अभि। मानु-

षान् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—इयं सुभगा ऐश्वर्य वैराग्य श्री विभूषिता उषाः परा
अतिदूरदेशात् 'सूर्यस्य उदयनात् अधि' सूर्योदयस्थानात् अधि अधिकारसम्पन्ना '
मानुषान्' मनुष्यन् अभिलक्ष्य शतं रथेभिः असंख्यातसंख्यैः रथैः अयुक्त 'योगि
वती। एवमियं जगत आदि कालादेव 'वि याति' प्राजिनो बोधयन्ती विशे
याति।

टिप्पणी—अयुक्त—युजधातोः। लुङि। झलो झलि इति सिचो लो
उदयनात्—उदेत्यत्र इति उदयनम्। इण् गतौ। अधिकरणे ल्युट्। सुभगा—शो
नो भगो यस्याः। मानुषान्—मनोः पुत्राः 'मनोर्जाता वत्यतौ षुक् च' इति अ
षुगागमश्च।

हिन्दी-व्याख्या—'इयं सुभगा' ऐश्वर्य वैराग्य श्री विभूषित यह उषा
दूर सूर्य के उदय स्थान से अभिकार सम्पन्न होकर 'अभिमानुषान्' मनुष्यों
लक्षित करके शतं रथेभिः 'सैकड़ों रथो को 'अयुक्त' संयुक्त करती है और जगत
आविर्भाव समय से ही प्राणियों को प्रबद्ध करती हुई 'वि याति' विशेष प्रकार
चेतना दे रही है।

८—

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कणोति सूनरी।

अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप सिधः ॥८॥

पद-पाठ :— विश्वम् । अस्याः । ननाम । चक्षसे । जगत् । ज्योतिः । कृणोति । सूनरी । अप । द्वेषः । मघोनी । दुहिता । दिवः । उषाः । उच्छत् । अप । स्रिधः ॥ ८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्या उषसः चक्षसे प्रकथन योग्याय प्रकाशाय विश्वं समग्रं जगत् नमाम । नमस्करोति । अभिनन्दयति । इयं सूनरी सुन्दरावयवा अभिनेत्री स्वकीयान्यलंकृतानि अभिनयकुशलानि अंगानि जगते ज्योतिः प्रदानार्थं कृणोति आविष्करोति । इयं दिवः आदित्यस्य दुहिता कुल-पुत्री उषा मघोनी धनैश्वर्य युक्ता द्वेषयुक्तान् द्वेषः अपबाधते । उच्छत् तमो विवासयन्ती च स्रिधः शोषकान् अपि अपबाधते । रमणीय भीषण स्वभावेयमुषा इति गम्यते ।

टिप्पणी—ननाम—अभ्यासस्य दीर्घत्वम् । ज्योतिष्कृणोति–'इसुसोः सामर्थ्ये' इति षत्वम् । मघोनी—मघं वनति संभजते इति मघोनी । मघवन् शब्दः कनिन् प्रत्ययान्तो निपात्यते । 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप् । उच्छत्–उच्छी विवासे । लङ् । अडाभावः । स्रिधः–स्रिधु शोषणे । क्विप् । द्वेषः–द्विष् अप्रीतौ । विच् प्रत्ययः । उपधाया गुणः । द्वितीय बहुवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—इस उषा के प्रशंसित प्रकाश के प्रति समग्र संसार सदा से अवनत होता आया है । यह सुन्दरी अपने सुन्दर अंगों को आभरणों तथा अभिनय-कौशल से जगमगाहट उत्पन्न करती हुई प्रकाशित करती है । यह सूर्य–पुत्री धन-धान्य सम्पन्न होकर द्वेष करने वालों को दूर हटा देती है तथा जगत् में शोषण-परायण लोगों को भी क्षमा नहीं करती है । इस प्रकार इस सुन्दर तथा भीषण आकृति वाली उषा के माध्यम से तीन बातों की ओर संकेत किया गया है । उषा उदार रमणीयाकृति होने से समस्त कला–विधियों की अभ्यास–जननी है । (२) जो उच्च-उर्वर संवेदना-प्रधान और कुशल लोग हैं उनके प्रति द्वेष करने वालों का विनाश करती है और जो कला–विद्या आदि का शोषण करके निन्दिताचार वाले हैं उन्हें भी कलाकृत् कोप से दण्ड देती है—क्षमा नहीं करती ।

९— उष आभाहि भानुना चन्द्रेण दुहति दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

पद-पाठ :— उषः । आ । भाहि । भानुना । चन्द्रेण । दुहितः । दिवः । आऽवहन्ती । भूरि । अस्मभ्यम् । सौभगम् । विऽउच्छन्ती । दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे दुहति दिवः सूर्यस्य पुत्रिके उषः ! त्वं चन्द्रेण कान्तिप्रदेन ज्योतिषा आ भाहि दीप्यस्व । अस्मभ्यं दिविष्टिषु दिवसेषु सौभगम् सौभाग्यम् आवहन्ती प्रापयन्ती तथा व्युच्छन्ती तमो विवर्जयन्ती आ भाहि । प्र पेता भव ।

टिप्पणी—आवहन्ती—वह प्रापणे । शतृ । ङीप् । भूरि—भू + क्रि सौभगम्—सुभगस्व भावः । हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च । इति उभय पदवृद्धि विधयश्छन्दसि विकल्पन्ते इति वचनाद् उत्तरपदवृद्धि र्न । व्युच्छन्ती — उच्छी वि शतृ । ङीप् । दिविष्टिषु-दिव् आदित्यः । तात्स्थ्यात् । तस्य इष्टय एषणानि गम येषु दिवसेषु ते दिविष्टयः । तेषु दिविष्टिषु दिवसेषु । भानुना—भा दीप्तौ नु प्र चन्द्रः—चदि आह्लादने । प्रत्ययः । नुमागमः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दुहित दिवः ! सूर्य की भाग्यशालिनी पुत्रिके ! तुम 'चन्द्रेण भानुना' चन्द्र-सदृश आनन्द दायक कान्ति से 'आ भाहि' मुस्का दो । हमको 'दिविष्टिषु' दिनों के सौभाग्य का आवाहन करती हुई आनन्दित हमारे लिए 'व्युच्छन्ती' नैराश्य रूप अन्धकार का निवारण करती हुई सदा प्र का सञ्चार करो ।

१०— विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनटि ।

सा नो रथेन वृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥

पद-पाठ :— विश्वस्य । हि । प्राणनम् । जीवनम् । त्वे इति । वि । उच्छसि । सूनटि । सा । नः । रथेन । वृहता । विभाऽवरि । श्रुधि । चित्रऽमघे । हवम् ॥ १० ॥

संस्कृत व्याख्या—हे सूनरि ! सुन्दरि ! यद् उच्छसि यदा त्वम् प्रकाशयसि तदा तवाभाममात्रेण विश्वसस्य प्राणानं जीवनं च सञ्चारं लभते त्वयि एव संसारस्य प्राणधारणम् आधीनम् । सा त्वं वृहता रथेन अस्मान् आयाहि । हे विभावरि ! नयनानन्द दायिनि ! चित्रमघे ! विचित्र धनयु अस्माकं ह्वम् आह्वानं श्रुधि शृणु ।

टिप्पणी—प्राणनम्—अन प्राणेन । ल्युट् । योरना देशः । नकारस्य णत्व उच्छसि—उच्छी विवासे । सूनरी—सुष्ठु नयतीति सूनरी । नृ नये । इत्यौणादिक ड प्रत्ययः । 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीप् । विभावरी-विशिष्टा भा सा । मत्वर्थीयो वनिप् । 'वनोरच' इति ङीप् । तत्सन्नियोगेन नकारस्य रेफः ।

र्धिः । चित्रमघा-मघमिति धन नाम । चित्रं मघं यस्याः सा चित्रमघा । हवम्-ह्वे॒ञ् स्पर्धायां शब्दे च । 'भावेऽनुपसर्गस्य । इति अप् प्रत्ययः । सम्प्रसारणाम् । गुणोऽवा-देशश्च ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सूनरि ! अभिनेत्रि ! जब तुम 'व्युच्छसि' अपने अवयवों प्रकाश का विस्तार करती हो तब तुम्हारे आभासमात्र से संसार में जीवन और ष्टा का सञ्चार हो उठता है। संसार का प्राण-संधारण 'त्वे' तुम्हारे ही आधीन । हे विभावरि ! आनन्ददायक ज्योतिः पुञ्ज वाली उषा ! अपने विशाल रथ में ठकर रेदीप्यमान बनो रहो । हे चित्रमघे ! विचित्र धनानन्द वाली उषाः ! हमारे ह्वान को प्रीति और कीर्तिदायिनी बन कर श्रवण करो ।

११— उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।

तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

पद-पाठ :— उषः । वाजम् । हि । वस्व । यः । श्चित्रः । मानुषे । जने ।

। आ । वह । सुऽकृतः । अध्वरान् । उप । ये । त्वा । गृणन्ति । वह्नयः ॥ ११ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे उषः ! यश्चित्रो वाजो मानुषे जने विद्यते तं हविर्लक्षणं जम् अन्नम् मानवैः प्रशंसित मस्माभि र्दत्तं वंस्व स्वीकुरु । तेन सुकृतो जनान् वरान् यज्ञान् प्रति आ वह । सुष्ठु प्रापय । ये त्वां वह्नयः वहनसामर्थ्योपेताः सुकृतः र्माणः गृणन्ति स्तुवन्ति ।

टिप्पणी—वाजम्—वज गतौ । कर्मणि ।घञ् । कुत्वाभावः । वंस्व–वनु यांचने हुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक् । सुकृत् । करोते र्भूतार्थे क्विप् । तुगागमः । वरान्–ध्वरो हिंसा, हिंसा नास्त्यस्मिन्नित्यध्वरः । 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इति कर्म । गृणन्ति–गृ शब्दे । 'क्र्यादिभ्यः श्ना' । प्वादीनां ह्रस्वः । इति ह्रस्वत्वम् । भ्यस्वयोरातः' इत्याकार लोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा देवि ! 'यश्चित्रो वाजो मानुषे जने' जो कुछ सुन्दर कर धन मानव-सामर्थ्य में सुप्राप्य है । उस प्रशंसित छवि रूप धन को स्नेह और धिकार के साथ स्वीकार करो । हमारे 'अध्वरान् प्रति' पावन यज्ञों के प्रति तृ वह्नयः' कर्म–धुरा का वहन करने वाले शुभ सज्जनों को लाने का कष्ट करो 'अव त्वा गृणन्ति वह्नयः' जो महापुरुष आपके अभ्युदयं का अभिनन्दन करते हैं, वही ठ पुरुष हमारे भी उन्नायक हैं ।

१२—

विश्वान् देवां आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।

सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य । मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

पद-पाठ—

विश्वान् । देवान् । आ । वह । सोमऽपीतये । अन्तरिक्षात् । उषः । त्वम्

सा । अस्मासु । धाः । गोऽमत् । अश्वऽवत् । उक्थ्यम् । उषः । वाजम्

सुवीर्यम् ।

संस्कृत व्याख्या—हे उषः ? सोम पीतये सोम रस पानार्थम् अन्तरिक्षात् अन्तरिक्ष लोकात् विश्वान् देवान् सर्वान् दिव्य गुणकर्मस्व भावान् आवह । प्रापय अथ च तादृशी त्वम् गोमन गोमन्तम् अश्वावत बहुभिरश्वैः परिपूर्ण सुवीर्य बल युक्तम् उक्थ्यं प्रशंस्थ योग्यं वाजं शोभनम् अन्नयस्मासु धाः धारय ।

टिप्पणी—धाः—दधातेः प्रार्थनायां लूङ् । 'गातिस्था०' सिचोलुक् । अ भावः । गोमत्—गो + मतुप् । 'सुपां सु लुक्०' विभक्ते—लुक् । अश्वावत्—मतु दीर्घत्वम् । उक्थ्यम्—उक्थं स्तोत्रम् । 'तत्र भवः' भवे यत् । सुवीर्यम्—शो वीर्यं यस्व सोम पीतये—पा + क्तिन् । चतुर्थी ।

हिन्दी व्याख्या—हे उषा देवि ! 'सोम पीतये' सोम के रस-पान के लि अन्तरिक्ष लोक से समग्र देवों को अपने साथ लिषा लाइये जिससे हमारा सुवाषित वन जाय ।' 'गोमत्—अश्ववत्' गायों और अश्वों से परिपूर्ण, बल और नीरोगता को देने वाले 'उक्थ्यम्' प्रशंसनीय 'वाज' धन से हमें सम्प बनाइये ।

१३— यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।

सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा देदातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥

पद-पाठ—यस्याः । रुशन्तः । अर्चयः । प्रति । भद्राः । अदृक्षत । सा । नः

रयिम् । विश्वऽवारम् । सुऽपेशसम् । उषाः । ददातु । सुग्म्यम् ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्या उषसः अर्चयः दीप्तयः रुशन्तः शत्रुद्वेजन स्वभावाः तथा स्वसेवकानुद्दिश्य भद्राः सुखप्रद्राः । अदृशत प्रतिदृश्यन्ते । सा तादृशी अधृष्याभिगमन स्वभावा उषा अस्मभ्यं 'विश्ववारं' विश्वै र्वरणीयं 'सुपेशसम्' 'सुग्म्यम् शुभप्रदम् 'रयिम्' धनविभवं ददातु । प्रयच्छतु ।

टिप्पणी—रुशन्तः—रुश हिंसायाम् । शतृ । अदृशत—दृशेः कर्मणि लुङ् । 'लिङ्सिचावात्मने पदेषु' इति कित्वाद् गुणाभावः विश्ववारम्—विश्व + वृ + अण् । सुपेशसम्—पेश इति रूपनाम । शोभनं पेशो यस्य । सुग्म्यम्—सुष्ठु गन्तव्यः सुग्मः । गमे घञर्थे कविधानम् इति कप्रत्ययः । 'गम हन०' इत्यादिना उपधालोपः । भवे छन्दसि यत् ।

हिन्दी-व्याख्या—'यस्या उषसः अर्चयः रुशन्तः' जिस उषा की दीप्तियां शत्रुओं के लिये उद्वेजक हैं तथा सेवकों के प्रति 'भद्राः' सुखप्रद हैं । अदृक्षत—ऐसी देखी जाती हैं । ऐसी अधृष्या और अभिगमन स्वभाव वाली उषा है । वह 'विश्वारम् सबसे वरणीय, 'सुपेशसम्' सुन्दर आकार वाले तथा 'सुग्म्यम्' शुभप्रद 'रयिम्' धन-वैभव को हमारे लिये 'ददातु' प्रदान करे ।

१४— ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

पद-पाठः—ये । चित् । हि । त्वाम् । ऋषयः । पूर्वे । जुहूरे । अवसे । महि । सा । नः । स्तोमान् । अभि । गृणीहि । राधसा । उषः शुक्रेण । शोचिषा ॥ १४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे महि पूजनीये ! उषः ! पूर्वे ऋषयः भद्रमिच्छन्तो ये ऽस्माकं गुरवः श्रेष्ठा द्रष्टारस्त्वां 'ऊतये अवसे' रक्षणार्थं प्रतियथं च जुहूरे जुह्विरे आहूतवन्तः । ऋचाभिः स्तुतवन्तः । हे उषः ! सा त्वं तादृशी त्वं शुक्रेण शोचिषा ऽज्ञान निवारणाय समर्थेन तेजसा राधसा उपमुक्तेन हविषा च नोऽस्माकं स्तोमान् स्तुतिसमूहान् अभिगृणीहि । स्वीकृत्य स्नेहेन चक्षुषा पश्यन्ती 'साधु स्तुतमिति प्रशंसय ।

टिप्पणी—ऊतये=अव धातोः क्तिन् । 'ज्वरत्वरण' इति वकारस्यो—पधाया श्चोठ् । ऊतिः । चतुर्थी । जुहूरे—ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च । लिटि । ह्वयतेः सम्प्रसारणम् । 'इरयो रे' रे आदेशः । मही—मह पूजायाम् । औणादिक इप्रत्ययः । 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीष् । सम्बुद्धौ । गृणीहि—गृ शब्दे । प्वादीनाँ ह्रस्वः । इति ह्रस्वत्वम् । राधसा—राध्नोत्यनेनेति राधः । असून् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे महि ! महत्व शालिनि उषः ! कल्याण की कामना से जिन हमारे पूर्व ऋषियों ने प्रशस्त ऋचाओं से कपनी रक्षा तथा प्रति के लिये 'जुहूरे' आपका आह्वान किया और आपने उनकी पुकार सुनी उसी प्रकार 'शुक्रेण शोचिषा'

अन्धकार निवारक तेज से और 'राधसा' ऋद्धि-सिद्धि देने वाले अन्य और मनोव… से आप हमारे द्वारा सम्पादित स्तुति-समूहों को स्वीकार करते हुये सराहना का पा… हमें भी बनाइये।

१५— उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः।

प्र नो यच्छतादवृकं पृथुच्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥

पद-पाठः—उषः यत् । अद्य । भानुना । वि । द्वारौ । ऋणवः । दिव । प्र । नः । यच्छतात् । अवृकम् । पृथु । छर्दिः । प्र । देवि । गोऽमती । इषः ॥ १५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषेः ! यत् अद्य भानुना स्वकीयेन तेजसा दिवः अन्ध… कार पूर्णस्याकाशस्य द्वारौ द्वाररूपौ पूर्वापरभागौ विऋणवः विश्लिष्य प्रकाशयसि। तेनैव अनुग्रहपरेण हेतुना त्वमस्मभ्यं 'छर्दिः ऊवकं यच्छतात्' क्षति रहितं गृहं शरण स्थानं देहि। तच्च शरण स्थानं गृह परिपूर्ण धन धान्यैः विशालं 'पृथु' च स्यात्। अयि च हे उषो देवि ! गोमतीः गवादि पूर्णा इषः नोऽस्मभ्य प्रयच्छ। त्वदागमन… स्यास्मद्रक्षणार्थमेव कारणम्।

टिप्पणी—छर्दिः—छर्दिरिति गृह नाथ । ऋणवः—ऋणगतौ । लङ्। अडभावः। तनादित्वाद् उः व्यत्ययेन शपि गुणावादेशौ। प्र नः—बहुलवचनात् णत्वाभावः। यच्छतात्—दाण दाने। यच्छादेशः। अवृकम्—नास्ति वृकोऽस्मिन्। पृथु—प्रथ प्रख्याने। कु प्रत्ययः संप्रसारणं च।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा देवि ! द्यु लोक के दोनों द्वार जो कि तम के कारण आच्छादित थे। पूर्व ओर पश्चिम भाग में अन्धकार ही अन्धकार था तब आपने अपने प्रशंसनीय 'भानुना' उज्ज्वल तेज से 'व्यृणवः' अन्धकार को विश्लेषित करके प्रकाशित कर दिया। हे उषः! हमारी रक्षा के कारण आपका नित्य शुभागमन होता है अतः आप कृपा करके हमारे लिये विशाल शरण स्थान गृह के निर्माण में हमें सहारा दीजिये। ऐसा भवन जिसमें अवृकता रहे। किसी प्रकार की अल्पता या अल्पज्ञता अथवा क्षति न होने पाये। हे उषो देवि ! गौ आदि उपकारी पशुओं से तथा धन-धान्य से परिपूर्ण हमारा भवन हो जिससे हम अनिन्दित और आनन्दित रहें।

१६— सं नो राया बृहता विश्व पेशसा मिमिक्ष्वा समिप्ताभिरा।

सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजै र्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

पद-पाठ—सम् । नः । राया । बृहता । विश्वऽपेशसा । मिमिक्ष्व । सम् । इलाभिः । आ । सम् । द्युम्नेन । विश्वऽतुरा । उषः । महि । सम् । वाजैः । वाजिनीऽवति ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषः ! त्वं बृहता विशालेन 'विश्वपेशसा' विविधरूपयुक्तेन 'इलाभिः' प्रसन्नाभिः गोभिः नोऽस्मान् सम्यक् 'मिमिक्ष्व' संयोजय । संयुक्तान् कुरु । हे महि ! महनीये उषः ! अस्मान् द्युम्नेन द्योतनात्मकेन शौर्य सम्पन्नेन यशसा संयोजय । 'विश्वतुरा' शत्रून् प्रति अभिभवसामर्थ्येन चास्मान् संयोजय । तथा चास्मान् हे वाजिनीवति ! महताऽन्नसाधनेनापि 'वाजैः' विविधै विविधोपायैश्च धनैः संयोजय ।

टिप्पणी—विश्वपेशसा—विश्वानि पेशांसि यस्यासौ विश्वपेशाः । तेन विश्व पेशसा । पेशः इति रूप नाम । मिमिक्ष्व—मिह् सेचने । व्यत्ययेनात्मने पदम् । लोटि । क्षः शत्रुः । ढत्व कत्वं षत्वानि । विश्वतुरा—तुर्वतीति तूः । तुर्वी हिंसार्थः । क्विप् । विश्वेषां तूः । विश्वतूः । तृतीया । वाजिनीवति—वाजोऽन्न मस्यास्तीति वाजिनी क्रिया । तादृशी क्रिया यस्याः सा वजिनीवती । समबुद्धौ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा ! आप 'बृहता' विशाल 'विश्वपेशसा' नाना रूपों से युक्त 'इलाभिः' । प्रसन्न पुष्ट गायों से भी परिपूर्ण ऐश्वर्य से हम लोगों को 'मिमिक्ष्व' संयुक्त कीजिये । हे महि ! महनीय कीर्ति वाली उषा ! हमें द्योतनात्मक शौर्य—सम्पन्न 'द्युम्न' यश भी प्राप्त हो । 'विश्वतुरा' शत्रुओं के प्रति हमारा प्रताप सदा प्रभावी बना रहे और हे 'वाजिनीवति !' अन्न-धन से परिपूर्ण उषा ! आप हमें विविध प्रकार के तथा विविध-उपाय से प्राप्त होने वाले आय से संयुक्त कीजिये ।

इन्द्र-सूक्तम्

ऋषि—गोतमः, छन्दः—पंक्तिः, स्वरः—

१—

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।

शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिम् ।

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१॥

पद-पाठ—इत्था । हि । सोमे । इत् । मदे । ब्रह्मा । चकार । व

शविष्ठ । वज्रिन् । ओजसा । पृथिव्याः । निः । शशाः । अहिम् । अर्चन् ।

स्वऽराज्यम् ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या—हे वज्रिन् ! शविष्ठ ! इन्द्र ! त्वमतिशयेन बलैः
वज्रधारी चासि । 'मदे सोमे' सोमपानानन्तरं हृष्टे प्रवृद्धे तृप्ते त्वयि ब्रह्मा स्तोम ।
वर्धनं चकार । त्वदर्थं तुष्टिप्रदं स्तुतिसमूहं प्रेरितवान् । इत्थमेव प्रकारेण
त्वदर्थं स्तुतिसमूहं सम्पादयामः । त्वमपि पृथिव्याः सशाद् अहिम् आगत्य
मेघं तं चावरकं वृत्रं निः शशाः । प्रभविष्णुना शासनेन निष्काशय । किं
स्वराज्यं स्वस्य राजत्वं प्रकाशकत्वं प्रकटयन् अर्चन् दीपयन् । त्वमेव स्वा
दीप्तोऽसीति प्रबोधयन् ।

टिप्पणी—शशाः—'शशु अनुशिष्टौ' लङ् । 'बहुलं छन्दसि' शपः
स्वराज्यम्—स्वस्य राज्यम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अतिशय बल श्रेष्ठ इन्द्र ! आप वज्रधर हैं ।
सोम-पान के अनन्तर उत्पन्न ओजस्वी मद के कारण आपको प्रसन्न, तृप्त तथा
देखकर उदात्त-स्तुति वचनों द्वारा स्तोता 'चकार वर्धनम्' अभिनन्दन और
करते हैं । इसी प्रकार हमारे स्तुति-वचनों से प्रसन्न होकर आप 'अहिम्' हिंस

'पृथिव्या:' पृथ्वी का कंटक न बनने दें और उसे दूर भगा दें। स्वराज्यम् अनु
न्' इस प्रकार अपने प्रदीप्त स्वामित्व को प्रकाशित करके स्वराज्य की प्रतिष्ठा
स्थापित कीजिये।

२—

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

पद-पाठ—सः। त्वा। अमदत्। वृषा। मदः सोम। श्येन। आभृतः।
ः। येन। वृत्रम्। निः। अद्भ्यः। जघन्थ। वज्रिन्। ओजसा। अर्चन्
। स्वराज्यम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र! यः सोमः वृषा आनन्दवर्षणस्वभावः मद
तिकरः सुतः निष्पादितः 'श्येनाभृतः' श्येनाकाररूपया गायत्र्याऽऽहृतः संभृतोऽस्ति।
त्वा त्वाम् अमदत् आनन्दं प्रापयत्। हे वज्रधारिन्! येन सोम मदेन त्वं वृत्रम्
द्भ्यः अन्तरिक्षजलात् 'निर्जघन्थ' निष्काश्य हतवानसि। अर्चन् अनु स्वराज्यं
महिम्ना स्वराज्यस्य महिमानं ख्यापयन्। त्वमेव सम्राडसीति विज्ञापयन्।

टिप्पणी—अमदत्—'मदी हर्षे' णिचि। 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वे लङि
न्द्रंस्युभयथा' शप आर्धधातुकत्वे 'णेरनिटि' णि लोपः। अद्भ्यः—आप इत्यन्तरिक्ष-
म। 'अपोभि' इति पकारस्य तत्वम्। नियम प्राप्तस्य इटः 'उपदेशेऽत्वतः'
ति प्रतिषेधः। 'अभ्यासाच्च' इति हकारस्य घत्वम्।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र! वह सोम-रस आपको निरन्तर आनन्दित करता
जिसे कि श्येन (बाज पक्षी) रूप आकार वाली गायत्री ने आहरण किया था, जो
षा' आनन्द वृष्टि करने वाला तथा 'मदः' तृप्तिकर है। जिस सोममद को प्राप्त
के आपने वृत्र को 'अद्भ्य' अन्तरिक्ष-जल से निष्कासन करके 'निर्जघन्थ' मार
ला। इस प्रकार आपने 'अर्चन्' अपने स्वराज्य की महिमा को विस्तृत तथा
विख्यात किया।

३—

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—प्र । इहि । अभि । इहि । धृष्णुहि । न । ते । वज्रः । नि ।
यसते । इन्द्र । नृम्णम् । हि । ते । शवः । हनः । वृत्रम् । जयाः ।
अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! 'न ते वज्रो नियंसते' न केनापि ते तव
नियंसते नियन्तुं शक्यते अतः प्रेहि अभीहि तांश्च अवरोधकान् धृष्णुहि विन
हे इन्द्र ! तव 'शवः' नृम्णम् मानवेभ्यो हितकारी बलं ते नामकं च । तव ते
निरीक्ष्य सर्वे भयान् नमन्ति । अतः वृत्रं मेघं 'हनः' जहि अपश्च उदकानि च
वशे स्थापय । वृत्रं मेघं विनाश्य तत उदकानि प्रापय । अर्चन् अनु स्वराज्यम्

टिप्पणी—यंसते—यमधातोः 'सिब्बहुलं लेटि । इति सिप् । हनः—
लङ् । जयाः—जयतेः, लेटि आडागमः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! आपका वज्र किसी भी अपघातक से
नहीं हो सकता । इस कारण हन्तव्य शत्रुओं के प्रति प्रहार कीजिये और
करके उनका विनाश कीजिये । आपका 'शवः' बल 'नृम्णम्' मनुष्यों में
अनुशासन और कल्याण का सम्पादन करने वाला है, इस कारण वृत्र (
विनाश करके जल-शक्ति पर 'जयाः' अपना प्रभुत्व स्थापित कीजिये और
स्वराज्य की महिमा का जयघोष होने दीजिये ।

४—

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।

सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—निः । इन्द्र । भूम्याः । अधि । वृत्रम् । जघन्थ । निः ।
सृज । मरुत्वतीः । अव । जीवऽधन्याः । इमाः । अपः । अर्चन् ।
स्वऽराज्यम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! भूम्या अधि पृथिव्या उपरि निवर्तमानं वृत्रं त्वं निर्जघन्थ निःशेषेण हतवानसि । निर्दंव द्युलोकादपि पलायमानं मेघं त्वं हतवानसि । अथानन्तरं चेमा जीवधन्याः प्राणिनां तर्पणा स्वभावाः 'मरुत्वतीः' मरुद्गण संश्लिष्टाः (अपः) जलानि 'अवसृज' अवसृष्टवानसि । एतावान् महिमा तवास्तीति स्वराजत्वं प्रकटयं ।

टिप्पणी—भूम्याः—पञ्चम्यन्तं पदम् । जघन्थ—हन् धातोः लिटि । 'अभ्यासाच्च' इति हकारस्य घत्वम् । अधि—उपरिभावे । जीवधन्याः—जीवाः प्राणिनः धन्याः प्रसन्ना यामिस्ताः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! आपने भूमि के ऊपर तथा द्युलोक से भी घेर कर वृत्र=मेघ का विनाश किया और 'जीवधन्याः' प्राणियों को तृप्त करने वाली मरुद्गण से संश्लिष्ट जलधाराओं का सृजन किया । ऐसी और इतनी ख्याति से युक्त आपकी प्रशंसा है, इस प्रकार अपने विशाल व्यक्तित्व के तेज को प्रकट कीजिये ।

५—

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।

अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—इन्द्रः । वृत्रस्य । दोधतः । सानुम् । वज्रेण । हीळितः ।

अभिऽक्रम्य । अव । जिघ्नते । अपः । सर्माय । चोदयन् । अर्चन् अनु ।

स्वऽराज्यम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अयम् बलबुद्धिप्रकर्षयुक्तः स इन्द्रः हीळितः प्रकुपितः सन् दोधतः कम्पाकुलस्य वृत्रस्य सानुम् उच्छ्रितं स्थानं वज्रेण अभिक्रम्य आक्रम्य अव जिघ्नते अवहन्ति । किमर्थम् ? अपः वृष्टिजलानि सर्माय सरणाय चोदयन् प्रेरयन् । स्वमहिमानं च चेतयन् ।

टिप्पणी—दोधतः—धूञ् कम्पने, यङ् लुगन्तात् शतृ । हीळितः—हेळते इति क्रुध्यतिकर्मा । निष्ठा । वर्णव्यत्ययः जिघ्नते—हन्ते लटि । व्यत्ययेन आत्मनेपदं बहुवचनं च शपः श्लुः । 'गमहन०' इत्युपधालोपः । सर्माय—सृ गतौ भावे मन् प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—बल और मेधाशक्ति की प्रकर्षता से प्रकाशमान इन्द्र प्रकुपित होकर कम्पाकुल मेघ के उच्च स्थान को अपने वज्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न

कर देता है। ऐसा किसलिए ? इस हेतु कि अपः—वृष्टि की जल धारायें सरणशील होकर जगत् कल्याण के निमित्त प्रेरित हों। इस प्रकार अपने तेज को प्रशस्त करता हुआ इन्द्र अपने साम्राज्य को प्रकट करता है और ऐश्वर्य को ख्यापित करता है।

६—

अधिसानौ निजिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।

मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वऽराज्यम्॥

पद-पाठ—अधि। सानौ। नि। जिघ्नते। वज्रेण। शतऽपर्वणा। मन्दानः। इन्द्रः। अन्धसः। सखिऽभ्य। गातुम्। इच्छति। अर्चन्। अनु। स्वऽराज्यम्॥

संस्कृत-व्याख्या—शतपर्वणा वज्रेण अनेकधारायुक्तेन वज्रेण इन्द्रो मेघस्य सानौ प्रदेशे उच्छ्रिते देशे निजिघ्नते निर्हन्ति। स च इन्द्रः मन्दानः मन्द स्तूयमानः सन् शखिभ्यः समानाख्यानेभ्यः मित्रवत्प्रियेभ्यः स्तोतृभ्यः अन्धसः अ प्राप्त्यर्थं गातुं मार्गमुपायम् इच्छति। धनोपलब्ध्युपायान् निर्दिशति। एवं तेजोबलं विस्तारयन्।

टिप्पणी—मन्दानः—मदि स्तुतौ, कर्मणि शानच्। 'छन्दस्युभयथा' शानच आर्धधातुकत्वात् अकारयकारयो लोपः। अन्धसः—अन्ध इति अन्न नाम

हिन्दी-व्याख्या—अनेकों धारों वाले वज्र से इन्द्र वृत्र के उच्च स्थान आघात करता है। इस प्रकार अपने उन्नत गुणों तथा कर्मों के कारण मित्रवत् प्रि स्तुतिकर्त्ताओं से स्तुति पाता हुआ वह प्रतापी इन्द्र मित्रों के लिए अन्न प्राप्ति के अनेकों उपायों का सृजन करता है। अपने राजत्व को प्रकट करता है।

७—

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।

यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं मायया वधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

पद-पाठ—इन्द्र। तुभ्यम्। इत्। अद्रिऽवः। अनुत्तम्। वज्रिन्। वीर्यम्।

वृत् । हं । त्यम् । मायिनम् । मृगम् । तम् । ऊँ इति । त्वम् । मायया । अवधीः ।

अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अद्रिवः अद्रिवन् मेघरूपवाहनोपेत ! वज्रिन् वज्रधारिन ! तुभ्यं वीर्यं तव सामर्थ्यं किल अनुत्तम् शत्रुभिः अतिस्कृतम् षष्ठर्थे चतुर्थी । तं च मृगं मार्गणशीलं मायिनं मायाप्रपञ्चेन वञ्चयितारं वृत्रं माययैव अवधीः हतवानसि । अर्चन् अनु स्वराज्यम् । स्वस्य राजत्वं प्रकटयन् ।

टिप्पणी—अद्रिवः—अद्रिरिति मेघनाम । तद्वान् इन्द्रः । तत्सम्बुद्धौ । तम्—'नसत्त निषत्त०' इति निपातनात् । निष्ठा । नत्वाभावः । अवधीः—हन् हिंसागत्योः—'लुङि च' इति वधादेशः । अदन्तत्वात् तस्य अतो लोपे सति स्थानिवद्भावात सिचि वृद्धयभावः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मेघरूप वाहन वाले ! वज्रिन् ! वज्रहस्त इन्द्र ! आपका अनुपम सामर्थ्य है जिसे शत्रु तिरस्कृत नहीं कर सकते । आपने उस मार्गणशील मायावी वृत्र को अपनी अनन्त माया शक्ति से ही पराजित किया है । इस प्रकार वृत्र वध करके अपने ऐश्वर्य का आपने विस्तार किया है ।

८—

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या इ अनु ।

महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वो स्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—वि । ते । वज्रासः । अस्थिरन् । नवतिम् । नाव्याः । अनु ।

महत् । ते । इन्द्र । वीर्यम् । बाह्वोः । ते । बलम् । हितम् । अर्चन् । अनु ।

स्वऽराज्यम् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—नाव्याः नावा तार्याः नवतिं नवति संख्याकाः वृत्रेण निरुद्धाः नदीः अनु अभिलक्ष्य तव वज्राः खल्वपि अनन्ता जाताः । सर्वत्र व्यापक त्वात् । सर्वत्र प्रगतिशीलं वृत्रं प्रति एकोऽपि वज्रोऽनन्त इव दृश्यते । हे इन्द्र ! महत् ते वीर्यम् । तव सामर्थ्यं वर्णनातीतम् । बाह्वोस्ते बलं हितम् । तव बलिष्ठयो र्भुजयो र्महद् बलं निहितम् । त्वं स्वस्य राजत्वं प्रकटयन् सर्वातिशसन राजसे ।

टिप्पणी—अस्थिरन्—स्था + लुङ् । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्म 'मंत्रे घस०' च्ले लुंक् । 'स्थाघ्वोरिच्च' इति इत्वम् । नाव्याः—नावा ता यंत । वज्रासः—वज्राः, 'आज्जसेरसुक्' ।

हिन्दी-व्याख्या—सहस्रों नौकाओं से आच्छादित नदियों में नाना प्र प्रपञ्च दिखाने वाले वृत्र को लक्षित करके आपके वज्र भी अनन्त हो गए। प्रगतिशील वृत्र के प्रति एक ही वज्र अनेक रूपों में दिखायी देता था। हे आपका सामर्थ्य महान् है और आपकी वज्र सदृश भुजाओं में अनन्त बल है हेतु अपने स्वराज्य की अर्चना को विभुता दीजिये ।

६—

सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः ।

शतैनमन्वनोनवु रिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६

पद-पाठः—सहस्रम् । साकम् । अर्चत । परि । स्तोभत । विंशतिः ।

एनम् । अनु । अनोनवुः । इन्द्राय । ब्रह्म । उत्ऽयतम् । अर्चन् । अनु स्वऽराज्यम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—एनम् इन्द्रं सहस्रं साकम् अर्चत परः सहस्रः मिलिता अर्चत अर्चामकुर्वन्निति कुर्वन्ति च । विंशतिः ऋत्विजो यजमानः सदस्यः शमित्रादयश्च एनमेव इन्द्रम् अनोनवुः पुनः पुनः स्तुतिममधारयन् शतसंख्याका ऋषय श्चैनमेव अभ्यनन्दन् । अस्मा एवेन्द्राय दातुं ब्रह्म अन्नं स्तोत्रं च उद्यतम् अवधृतं दरीदृश्यते । अयमेवेन्द्रः स्वराजतां प्रकाशयति ।

टिप्पणी—परिष्टोभत—स्तोभति स्तुतिकर्मा । 'उपसर्गात् सुनोति०' षत्वम् । अनोनवुः—'णु स्तुतौ' अस्मात् यङ्लुगन्त्रात् लुङ् । 'सिज विदिभ्यश्च' इति झेः उस् । उद्यतम्-उत्पूर्वात् 'यम उपरमे' कर्मणि निष्ठा ।

हिन्दी-व्याख्या—सहस्रों महापुरुषों ने एक साथ जिस इन्द्र की अर्चना और करते हैं । १६ (सोलह) ऋत्विज्, यजमान, पत्नी, सदस्य तथा शमिता बीस जिस इन्द्र की सर्वदा स्तुति करते रहते हैं । 'शता' सैंकड़ों ऋषि-मुनि पराक्रमी इन्द्र की बारम्बार स्तुति-उपासना-अर्चना में लीन रहते हैं, उसी इ

लिये सदा ब्रह्म (स्तुति, अन्न, व्रत, हवि आदि) उद्यत तत्पर रहता है। यही एक ऐश्वर्यशाली इन्द्र सदैव अपने स्वराज्य की महिमा का प्रख्यापन करता रहता है।

१०—

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।

महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वऽराज्यम् ॥१०॥

पद-पाठ—इन्द्रः। वृत्रस्य। तविषीम्। निः। अहन्। सहसा। सहः। महत्। तत्। अस्य। पौंस्यम्। वृत्रम्। जघन्वान्। असृजत्। अर्चन्। अनु। स्वऽराज्यम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—अयम् साक्षात् शक्ति साहससम्पन्नः इन्द्रः वृत्रस्य तविषीं समस्तं बलं निरहन् विनष्टं चकार। तस्य वृत्रस्य यदवरोधकं सहः आयुधं तदपि स्वकीयेन सहसा शक्ति-सम्पन्नेनायुधेन जघन्वान् हतवान्। असृजत् वृत्रेण निरुद्धानि जलानि च नीचैरवागमयत्। अस्य इन्द्रस्य पौंस्यं बलम् महत् अतिप्रभूत खलु। अर्चन् अनु स्वराज्यम्। एवं स्वस्थ राजत्वं प्रकटयन् असौ इन्द्रः चमत्कुरुते।

टिप्पणी—पौंस्यम्—'पुंस अभिवर्धने'। 'अचोयत्' इति यत्। जघन्वान्—हन्ते लिटः क्वसुः। 'विभाषा गम हन विद०, इति इटो विकल्पादभावः। 'अभ्यासाच्च' इति हकारस्य घत्वम्।

हिन्दी-व्याख्या—शक्ति और साहस से महान् इन्द्र सदा सम्पन्न है। उसने वृत्र की 'तविषी' शक्ति-बल को 'निरहन्' क्षीण कर दिया और उसके 'सहः' आयुध को अपने 'सहसा' आयुध से निरर्थक बना दिया। इन्द्र ने अवरोधक वृत्र का विनाश कर दिया तथा अवरुद्ध जल 'असृजत्' का सृजन किया। इन्द्र का पौरुष महान् और अर्चनीय है। इस प्रकार इन्द्र ने अपने तेज और साहस को प्रकट करते हुए स्वराज्य की श्री को प्रकट किया।

११—

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।

यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधरिर्चन्ननु स्वराज्यम्॥११॥

पद-पाठ—इमे इति । चित् । तव मन्यवे । वेपेते इति । भियसा ।

इति । यत् । इन्द्र । वज्रिन् । ओजसा । वृत्रम् । मरुत्वान् । अवधीः । अर्च

अनु । स्वऽराज्यम् ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—हे इन्द्र । मरुत्वान् मरुद्भिः युक्त त्वं यदा ओजसा बलेन वृत्रम् अवधीः तदा त्वदीयं रूपं निभाल्य इमे मही महत्यौ द्यावापृथिव्यौ भियसा भयेन वेपेते कम्पेते । कम्पाकुले जाते । एवं स्वस्य राजत्वं प्रकटयन् महान् राजते ।

टिप्पणी—वेपेते—'टुवेपृ कम्पने' । भियसा—भिञ्भीभये कसि प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! मरुद्गण से युक्त आपने जब वृत्र पर प्रहार किया तब आपके तेजस्वी स्वरूप को देखकर यह पृथ्वी और यह आकाश काँप गये । इस प्रकार अपने महान् साम्राज्य को प्रकट करके इन्द्र ने अपने को प्रख्यापित किया ।

१२—
न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो विबीभयत् ।

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—न । वेपसा । न । तन्यता । इन्द्रम् । वृत्रः । वि । बीभ

अभि । एनम् । वज्रः । आयसः सहस्रऽभृष्टिः । आयत । अर्चन् । अनु । स्व

राज्यम् ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—वृत्रः स्वकीयेन वेपसा कम्पनभयेन इन्द्रं न विभी भयत्रस्तं नाकरोत् । स्वकीयेन तन्यता घोरगर्जनेन च भीतं न चकार । एतस्मि न्नन्तरे इन्द्रेण प्रयुक्तः सहस्रभृष्टिः अनेकधारोपेतः वज्रः तथाविधं वृत्रं प्रति आगच्छत् । एवं स्वराजभावं प्रकटयन् महान् इन्द्रो राजते ।

टिप्पणी—तन्यता—''स्तन शब्दे' 'तनोतेः यंश्च' बहुलवचनात्

भवति । सलोपश्च । 'सुपां सुलुक्०' इति तृतीयाया डादेशः । बीभयत्—'ञिभी भये' 'हेतुमति च' इति णिच् । लुङि च्लेश्चङ् । आयत–अगच्छत्, आत्मनेपदी ।

हिन्दी-व्याख्या—वृत्र ने अपने अङ्ग-कम्प दिखा कर इन्द्र को भयभीत करना चाहा और अपने घोर गर्जन से भी त्रस्त करने में प्रवृत्त हुआ पर किसी प्रकार उसे सफलता नहीं मिली । इतने में सहस्रों धार वाला वज्र वृत्र के प्रति उन्मुख हुआ । इस प्रकार वृत्र-वध के साथ इन्द्र ने अपने राजत्व के कौशल को प्रकट किया ।

१३–

यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।

अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—यत् । वृत्रम् । तव । च । अशनिम् । वज्रेण । सम् ऽअयोधयः ।

अहिम् । इन्द्र । जिघांसतः । दिवि । ते । बद्बधे । शवः । अर्चन् । अनु ।

स्वऽराज्यम् ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! त्वं यदा तं तथाविधं महाशक्तं वृत्रं तेन प्रेरितां प्रहाराविष्टाम् अशनिं च स्वकीयेन वज्रेण समयोधयः सम्यक् अयोधयः तदा तम् अहिम् आगत्य हन्तारं वृत्रं जिघांसतः हन्तुमिच्छतः ते शवः बलं दिवि बद्बधे । व्याप्तम् आसीत् । तथाविधस्त्वं स्वराज्यम् अर्चन् कीर्तयन् प्रवृद्ध ऽसि ।

टिप्पणी—जिघांसतः–हन्तेरिच्छायां सन् । 'अज्झनगमां-सनि' इति उपधा-दीर्घत्वम् । बद्बधे—'बध बन्धने' कर्मणि लिटि व्यत्ययेन हलादिशेषो न ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! आपने वृत्र तथा वृत्र-प्रेरित आयुधों पर अपने वज्र के साथ भली प्रकार संप्रहार किया । आकर हनन करने की इच्छा वाले वृत्र का जब आपने विध्वंस किया उस समय आकाश में भी आपकी महाशक्ति का ओज प्रकट हुआ । इस प्रकार अपनी गरिमा का आपने राजत्व रूप में प्रदर्शन किया ॥१३॥

१४–

अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—अभिऽस्तने । ते । अद्रिऽवः । यत् । स्थाः । जगत् । च । रे

त्वष्टा । चित् । तव । मन्यवे । इन्द्र । वे विज्यते । भिया । अर्चन । अनु ।

राज्यम् ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! 'स्थाः' स्थावरं भोग्य प्रपञ्चजातं जड
जगत् च जंगम रूपं भोक्तृ प्रपञ्चाख्यं च सर्वं जडचेतनात्मक जगत् तव अ
गर्जने सति रेजते कम्पाकुलं जायते । त्वष्टा चित् वज्रनिर्माणकर्ता खल्वपि
तव मन्यवे वृत्रहननयोग्याय कोपाय वेविज्यते ऽत्यर्थं कम्पते । तथा विध
स्वराज्यम् अर्चन् स्वस्य राजभावं भावयन् प्रकाशितो ऽसि ।

टिप्पणी - स्थाः—तिष्ठतेः क्विप् । वे विज्यते—'ओविजी भय –चल
क्रियासमभिहारे यङ् । 'सन्यङो' इति द्वित्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! 'स्थाः' सारा स्थावर जगत् तथा 'जगत्'
गतिशील चेतन जगत् आपके 'अभिष्टने' गर्जन से 'वेपते' भयत्रस्त होकर
लगता है । वज्र जैसे आयुध का निर्माता त्वष्टा भी आपके वृत्र–हनन योग्य
सामर्थ्य को देखकर भयाकुल होकर काँपने लगता है । ऐसे बल सम्पन्न आप
राजत्व को प्रकट करते हुए प्रकाशमान हैं ।

१५–

न हि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि संदधुरर्चन्ननु स्वराज्य

पद-पाठ—नहि । नु । यात् । अधिऽइमसि । इन्द्रम् । कः । वीर्या ।

तस्मिन् । नृम्णम् । उत । क्रतुम् । देवाः । ओजांसि । सम् । दधुः । अर्चन् ।

स्वऽराज्यम् ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या—वयम् अल्पमतयः तं तथाविधं प्रशस्तम् इन्द्रं य
जानीमः । तम् 'यात' यान्तं सर्वत्र अतिक्रम्य वर्तमानम् इन्द्रं अधीमसि' न
सम्यग् अवगच्छामः । अतोऽयि परः परस्तात् अतिदूरे ऽज्ञाते स्थाने प्रकाशमा

वीर्या स्वीकीयेन वीर्येण बलसामर्थ्येन दीप्यमानं को नु खलु विजानीयात् न कोऽपि अवगाहितुं समर्थः। कस्माद् हेतोः ? तस्मिन् खलु इन्द्रे नृम्णं नृभ्योहितं धनं क्रतुं कर्मसामर्थ्यम् ओजांसि च देवाः संदधुः स्थापयामासुः। अस्मात् कारणात् अयमिन्द्रोऽन्यान् देवान् अतिक्रम्य वर्तते।

टिप्पणी—यात्—'या प्रापणे' शतृ। 'सुपां सुलुक्०' इति द्वितीयाया लुक्। अधीमसि—'इणगतौ'। 'इदन्तो मसिः'। वीर्या—'सुपां सुलुक्०' इति तृतीयाया आकारः।

हिन्दी-व्याख्या—हम लोग अल्प सामर्थ्य रखते हैं अतः 'यात्' सर्वत्र विद्यमान इन्द्र को सम्यक् नहीं जान पाते। 'परः' परस्तात् बहुत दूर देश में अपने तेज और सामर्थ्य से अलंकृत इन्द्र को भला कौन जान सकता है? इसका प्रबल कारण यही है कि देवों ने इन्द्र के ही अन्तराल में मानव-हितसाधन तथा 'क्रतु' श्रेष्ठ कर्म एवम् 'ओजांसि' प्रभूत बलों की स्थापना की है। अतः इन्द्र न केवल सर्वोपरि है अपितु अपने स्वराज्य के माहात्म्य को भली प्रकार प्रकट कर रहा है।

१६—

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम्॥

पद-पाठ—याम्। अथर्वा। मनुः। पिता। दध्यङ्। धियम्। अत्नत। तस्मिन्। ब्रह्माणि पूर्वऽथा। इन्द्रे। उक्था। सम्। अग्मत। अर्चन्। अनु। स्वऽराज्यम्॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्र एवं वृत्रवधादिभिरर्चनीयैः कर्मभिः स्वाधिपत्यं प्रकटी करोति। अथर्वा, सर्वेषां पितृस्थानीयो मनुः दध्यङ् अथर्वणः पुत्रः एते तत्र भवन्त ऋषयः यां स्वध्येयम् अत्नत यत् पूजनीयं कर्म प्रकाशितवन्तः तस्मिन् प्रशस्ते कर्मणि यानि ब्रह्माणि पूज्यानि हवींषि यानि च 'उक्था' उक्थरूपाणि स्तोत्राणि सर्वाणि वस्तूनि स्तुतयश्च तस्मिन्नेव इन्द्रे समग्मत संगतानि भवन्ति। स एव एतेषामुपायानां समुद्भूतः।

टिप्पणी—अत्नत—'तनु विस्तारे' 'तनिपत्योश्छन्दसि' इति उपधालोपः। 'बहुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक्। पूर्वथा—इवार्थे पूर्वशब्दात् थाल्। उक्था—

'शेश्छंदसि—बहुलम्' इति शेलेपिः । समगमत—'समो गम्यृच्छिभ्याम्' इत्मात्म पदम् । लुङि । 'मंत्रे घस०' इलिच्लेर्लुक् । 'गम हन०' इति उपधालोप: ।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र ही वृत्र-वध आदि स्वकीय शुभकर्मों से अपने स्वामि से प्रकट कर रहें हैं । अथर्वा—ऋषि, सबके पिता मनु, अथर्वा के पुत्र दध्यङ् आ पूजनीय ऋषियों ने जिस 'धियम्' अर्चनीय कर्म को प्रकाशित किया है, उस पवि कर्म में जितनी पूजा-सामग्री है और जितनी 'उक्था' प्रकाशित करने योग्य स्तुति हैं । सभी इन्द्र में ही समाहित हो जाती हैं । ऐसे इन्द्र ने ही स्वराज्य की अर्च में अपना महान् योगदान दिया है ।

मण्डल १

मरुत्-सूक्तम्

सूक्त ८५

ऋषि—गौतमः—देवता—मरुतः—छन्द ५, १२ त्रिष्तुप् । शेष जगती ।

१— प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो

यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।

रोदसी हि मरुत श्चक्रिरे वृधे

मदन्ति वीरा विदथेषु धृष्वयः ।।१।।

पद-पाठ—प्र । ये । शुम्भन्ते । जनयः । न सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य सूनवः । सु ऽ दंससः । रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे । मदन्ति । वीराः विदथेषु । धृष्वयः ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या—ते रुद्रस्य परमेश्वरस्य सूनवः पुत्राः सुदंससः शोभनानि दंसांसि कर्माणि वर्तन्ते येषां ते शोभनकर्माणः सप्तयः सर्पणस्वभावाः यामन् या

गमने निमित्तभूते सति जनयो न कामिन्य इव शुम्भन्ते शोभयन्ति स्वकीयानि शरीराणि अगानि वस्त्रालंकारादिभिः भूषयन्ति। एते मरुतः वृष्टि प्रदानादिभिः कर्मभिः रोदसी द्यावापृथिव्यौ वृधे संवर्धनाय चक्रिरे कृतवन्तः। ते च वीराः विशेषण शत्रून् ईरयन्ति प्रक्षिपन्ति शत्रुकम्पन स्वभावाः। घृष्वयः—घर्षण शीलाः विदथेषु रणयज्ञेषु। मदन्ति रणमदेन मोदन्ते।

टिप्पणी— शुम्भन्ते–शुम्भधातो र्लटि। जनयः—जायन्त आसु अपत्यानि इति जनयः जायाः। जन इति पारसीकभाषायाम्। इन् सर्वधातुभ्यः इति इन् प्रत्ययः। यामन्। या प्रायणे मनिन् प्रत्ययः। सप्तम्या लुक्। धृष्वयः—घृषु संघर्षे विन् प्रत्ययः। रुद्रस्य—रोदेर्णिलुक् च रक्।

हिन्दी-व्याख्या—'सुदंससः' प्रशंसनीय कर्म वाले, 'सप्तयः' सर्पणशील रुद्स्य सूनवः परमेश्वर के पुत्र जब कहीं 'यामन्' गमन का प्रसङ्ग उठता है तब 'जनयो न ये शुभन्ते' अपने आपको कमनीय कामिनियों की भाँति सजाते हैं। इन मरुद्गण देवताओं ने अपने वृष्टि-प्रदान आदि शुभ कार्यों से पृथ्वी लोक तथा द्युलोक का 'वृधे' सम्वर्धन किया है। ये मरुद्गण 'घृष्वयः' घर्षणशील 'विदथेषु वीराः' संग्राम यज्ञ में शत्रुओं का प्रक्षेप करने वाले हैं। मरुद्गण रण-मद से सदा ही आनन्द-मग्न रहते हैं।

२—

ते उक्षितासो महिमान आशत

दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।

अर्चन्तो अर्क जनयन्त इन्द्रियम्

अधिश्रियों दधिरे पृश्निमातरः॥२॥

पद-पाठ—ते। उक्षितासः। महिमानम्। आशत। दिवि। रुद्रासः। अधि। चक्रिरे। सदः। अर्चन्तः। अर्कम्। जनयन्तः। इन्द्रियम्। अधि। श्रियः। दधिरे। पृश्नि ऽ मातरः॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—ते रुद्रपुत्रा मरुतः उक्षितासः अभिषिक्ताः सन्तः महिमानम् स्ववैभवम् आशत व्याप्नुवन्। दिवि द्योतमाने आकाशे रुद्रासः रुद्र इव महोत्साहा

सदः अधि चक्रिरे । स्थानं निष्पादितवन्तः । अर्कम् अर्चनीयं सूर्यम् अर्चन्तः
इन्द्रियम् इन्द्रियाणां तेज उत्पादयन्तः पृश्निमातरः नानावर्णाया भूमेः पुत्रा
मरुतः अधिश्रियो दधिरे, आधिक्येन श्रियः शोभाः सम्पदश्च आधारयन् ।

टिप्पणी—उक्षितासः—उक्ष सेचने । कर्मणि क्तः । 'आज्जसेरसुक्' । पृश्नि-
मातरः—प्राश्नुते रूपाणि इति पृश्निर्भूमिः, सा माता येषां ते । नानारूपाया
पुत्राः । अर्कः—कृ दा धा रा चि कलिभ्यः कः' अर्चयति इति अर्कः इन्द्रियम्—
लिंगम् । इन्द्र आत्मा स चक्षुरादिना इन्द्रियेण अनुमीयते ।

हिन्दी व्याख्या—वे रुद्र-पुत्र मरुद्‌गण 'उक्षितासः' अभिषेक पाने पर
'महिमानम् आशत' ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं । इन्होंने द्युलोक में अपना प्रति
स्थान बना रखा है । अपने प्रताप और असीमित बल के कारण ये रुद्र के ही तुल्य
'अर्कम् अर्चन्तः' अर्चनीय सूर्य की अर्चना करते हुए तथा इन्द्रिय—तेज का नि
करते हुए अत्यधिक शोभा तथा सम्पदा का संभरण करते हैं । 'पृश्निमातरः,
वर्णों वाली भूमि के ये मरुद्‌गण पुत्र हैं ।

३— **गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभि-**

स्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।

बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप

वर्त्मा न्येषामनु रीयते घृतम् ॥३॥

पद-पाठ—गोऽमातरः । यत् । शुभयन्ते । अञ्जिऽभिः । तनूषु ।
दधिरे । विरुक्मतः । बाधन्ते । विश्वम् । अभिऽमातिनम् । अप ।
एषाम् । अनु । रीयते । घृतम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—'गोमातरः, गौरेव माता येषां ते गोमातरः
यदा ते अञ्जिभिः स्वरूपाभिव्यञ्जकैराभरणैः स्वकीयानि अंगानि शुभयन्ते
तदा तनुषु स्वशरीरेषु शुभ्रा दीप्ताः सन्तः विरुक्मतः दधिरे विशेषेण
अलङ्कारान् धारयन्ति । विश्वं समग्रम् अभिमातिनम् अभिमुखीभूय आया

हि ते ऽपबाधन्ते । एषां वर्त्मानि अनु घृतं रीयते यत्र मरुतो गच्छन्ति तदनुसारेण मुदकं परिस्रवति ।

टिप्पणी–अञ्जिभिः-'खनिकषि' इ प्रत्ययतः । विरुक्मतः विशिष्टा रुक् विरुक् । भत्वाद् जश्त्वाभावः । अयस्मयादित्वेन पदत्वात् कुत्वम् । रीयते-रीङ् स्रवणे, न् । शुभ्राः—शुभ दीप्तौ—स्फायितञ्चि०, रक् प्रत्ययः । अभिमातिनम्—मीञ् हायाम् । भावे क्तः । अभिमात + इनिः । अभिमुखी भूय हिनस्ति इति अभिमाती ः । गोमातरः—गोरूपा पृथ्वी माता एषां ते गोमातरः । घृतं जिघर्त्तेः ।

हिन्दी व्याख्या–मरुद्गण गोरूपा पृथ्वी के पुत्र हैं । जब ये अपने को विभूषित ने लगते हैं तब 'अञ्जिभिः' अपने-अपने स्थानों पर रुचिकर लगने वाले अलङ्करणों अपने अंगों को भली प्रकार अभिव्यक्त करते हैं । 'विश्वम् अभिमातिनं बाधन्ते' स्त प्रकार के शत्रुओं की बाधाओं को दूर करते हैं । 'एषां वर्त्मानि अनु घृत ते' जिधर को ही मरुद्गण निकल जाते हैं उन मार्गों में अनुकूल वृष्टि हो ती है ।

४–

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः

प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।

मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा

वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४॥

पद-पाठ—वि । ये । भ्राजन्ते । सुऽमखासः । ऋष्टिभिः । प्रऽच्यावयन्तः । ता । चित् । ओजसा । मनःऽजुवः । यत् मरुतः । रथेषु । आ । वृषेऽव्रातासः । ः । अयुग्ध्वम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—एते 'सुमखासः' शोभनकर्याणः मरुतः 'ऋष्टिभिः' स्वकीयैः 'विभ्राजन्ते' विशेषेण शोभन्ते । एते अच्युता चिदपि च्यावयितुमशक्यानि पर्वतादीन्यपि स्वकीयेन ओजसा प्रच्यावयन्तः प्रकर्षेण च्यावयितारः । एते मरुतः वः मन इव वेगवन्तः वृशव्रातासः वृष्टयुदक सेचन समर्थ संघातमकाः यदा एते

रथेषु पृषती: श्वेत विन्दुयुक्ता मृगी: अयुग्ध्वम् यूयं नियुक्ता: कुरुथ तदा वेगव
सर्वान् प्राणिन: सुखिन: संपादयथ ।

टिप्पणी—मनोजुव: – जु धातो: क्विप् । मरुत:—'मृगोरुति:'—
एतदेव ज्ञापकं यत् मृङ् धातु: कुत्रापि कान्तावपि वर्तते । अतएव भ्राजन्ते,
शुम्भन्ते इत्यादय: प्रयोगा: साधव: ।

हिन्दी व्याख्या–'ये ऋष्टिभि:' जो मरुद्गण अपने आयुधों के साथ
शोभन-यज्ञ-सम्पादक के रूप में अवस्थित है । जो वहुत दृढ़ चट्टानों, पर्वतों
जो कि हिलाये नहीं जा सकते, स्थान से प्रच्युत कर देत हैं । अपने ओज और
कारण जो अभूतपूर्व साहस के देवता हैं । 'मनोजुव:' जो मन के समान वेग
अपने रमणीय रथ में जव श्वेत बिन्दु वाली मृगी (मृगियों) को जोड़ते
इनकी संघातमक शक्ति वृष्टि—सेचन में पूर्ण समर्थ होती है ।

५–

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं

वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्त: ।

उतारुषस्य विष्यन्ति धारा-

श्चर्मेवोदभि र्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

पद पाठ—प्र । यत् । रथेषु । पृषती: । अयुग्ध्वम् । वाजे । अ
मरुत: । रंहयन्त: । उत । अरुषस्य । वि । स्यन्ति । धारा: । चर्म ऽइव । उद
वि । उन्दन्ति । भूम ॥५॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुत: ! वाजे अन्ने निमित्त भूते सति यदा यूय
मेंघं रंहयन्त: प्रेरयन्त: रथेषु गमन साधनेषु पृषती: मृगी: अयुग्ध्वम् संयोज
अरुषस्य अरोचमानस्य वैद्युताग्रे: सकाशात् जलधारा विष्यन्ति स्यन्दन्ते ।
उदकैश्च भूम समस्तां पृथ्वीं चर्म इव व्युन्दन्ति । भवन्त: पृथ्वीं क्लेदयन्ति
नम्रां च संपादयन्ति ।

टिप्पणी—रंहयन्त:—रहि गतौ । णिच् । शतृ । विष्यन्ति षोऽन्तक
दिवादि: । श्यन् । 'ओत: श्यनि' ओकारलोप: । 'उपसर्गात्सुनोति॰' इति

…युन्दन्ति—उन्दी क्लेदने—बहुवचने । भूम—भूमिशब्दात् 'सुपां सुलुगिती' डादेशः छान्दसं ह्रस्वत्वम् ।

हिन्दी व्याख्या—हे मरुदगण ! जब आप 'अद्रिं रंहयन्तः' मेघों को प्रेरणा देते हुए 'वाजे' अन्न-धन की प्राप्ति के लिए 'पृषतीः' श्वेत बिन्दुः धारण करने वाली 'मृगियों' को 'अयुग्ध्वम्' रथ में नियुक्त करते हैं तब प्रकाश-हीन सूर्य =(अथवा विद्युद्-अग्नि) के सान्निध्य से जलधारायें स्पन्दन करने लगती हैं । साथ ही यह पृथ्वी भी चर्म के समान 'उदभिः' जल-क्लेदन से आर्द्र हो उठती है ।

६—

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो

रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।

सदीता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं

मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥६॥

पद पाठ—आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुऽस्यदः । रघुऽपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुऽभिः । सीदत । आ । बर्हिः । उरु । वः । सदः । कृतम् । मादयध्वम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतः ! रघुष्यदः संघृत लघुगतयः सप्ततः सर्पणशीला अश्वाः वः युष्मान् आ वहन्तु अस्मत्पूजा स्थानं संप्रापयन्तु । यूयं रघुपत्वानः शीघ्रं पतन्तः स्वबाहुभिः वहन साधनैः हस्तैः । 'प्रजिगात' अस्मभ्यं दातव्यानि दत्वा स्व स्थानं शोभयत । युष्माकं सदः सदनं बर्हिः विस्तीर्णं कृतम् सम्पादितम् । तत्र कृपया उपविश्य अस्मान् सनाथयत । मधुरस्य अन्धसः सोमलक्षणस्य पानेन मादयध्वम् । तृप्ता भवत ।

टिप्पणी—रघुष्यदः—स्यन्दू प्रस्रवणे 'क्विप् च' इति क्विप् । न लोपः । रघुपत्वानः—पत्लृ गतौ । वनिप् । मादयध्वम्—मद तृप्ति—योगे । चुरादिः । जिगात—गा स्तुतौ । जुहोत्यादिः । लोट् । मध्यमपुरुष बहुवचने । अन्धसः—अन्ध इति अन्न नाम ।

हिन्दी व्याख्या—हे मरुद्गण ! 'रघुष्यदः सप्तयः' अत्यन्त वेगवान् अश्व आप लोगों को 'आ वहन्तु' हमारी यज्ञभूमि के सान्निध्य में लावें और सभी पत्वानः' शीघ्र आगमन करके अपने वहन के साधन भूत बाहुओं से हमारे दातव्य धन-राशि का दान करके अपने पावन-स्थान को सुशोभित करें। आपके नासीन होने के लिए विस्तीर्ण-स्थान का कुशा आदि से निर्माण किया गया है। 'सीदत' उस पर विराजमान होकर हमें अनुगृहीत करें। 'मध्वः अन्धसः' सोम रूपी मधुर अन्न-सेवन से आप तृप्त हों और हमें कृतार्थ करें।

७—

तेऽ वर्धन्त स्वतवसो महित्वना

नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।

विष्णु र्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं

वयो न सदीन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७॥

पद पाठः—ते। अवर्धन्त। स्वऽतवसः। महिऽत्वना। आ। नाकं। तस्थुः। उरु। चक्रिरे। सदः। विष्णुः। यत्। ह। आवत्। वृषणम्। मदऽच्युतं। वयः। न। सीदन्। अधि। बर्हिषि। प्रिये ॥७॥

संस्कृत टीका—ते मरुतः 'महित्वना' स्वकीयेन महिम्ना 'स्वतवसः' स्वकीयेव तवांसि बलानि येषां ते स्वतवसः स्वशौर्य गुप्ताः 'अवर्धन्त' समृद्धिं प्राप्ताः सदः स्वकीयं सदनं स्थानम् उरु चक्रिरे विस्तीर्णं नभोरूपं कृतवन्तः। नाकं तस्थुः दुःख शोक विवर्जितं स्वर्गं लोकं स्थिताः। यत् एतान् मरुतः प्रति समागत्य विष्णुः 'आवत्' रक्षाविधानं विदधाति तं च मरुद्गणं मदच्युतं हर्ष—निर्भरं वृषणं कामानां वर्षकं मानवेभ्यो नितरां करोति। 'वयो न' यथा वयः विहंगमाः स्वकीये नीडे बर्हिषि सानन्दं समतन्ति तथैव महतोऽपि प्रियानन्ददायिनी यज्ञबर्हिषि सीदन्ति।

टिप्पणी—मदच्युतम्—मदं च्योतति 'च्युतिर् आसेचने' क्विप्। सदिन्—लेट्। यत्—येभ्यः। चतुर्थ्या लुक्। आवत्—अव+लङ्। महित्वना—महि शब्दात् ना उपजनः। विष्णुः—आदित्यः। वेवेष्टि जगत्। सदः—सीदन्त्यत्र सदः। 'सर्वधातुभ्योऽसुन्'।

हिन्दी व्याख्या—वे मरुद्गण स्वयं स्वाश्रित बल से अपनी ही शक्ति और कौशल से 'अवर्धन्त' समृद्धि को प्राप्त हुए। 'उरु सदः चक्रिरे' अपने निवास के लिए उन्होंने विस्तीर्ण आकाश को आवास के रूप में निर्धारित किया और दुःख रहित 'नाक तस्थुः' स्वर्गलोक में अधिष्ठित हुए। इन हर्ष निर्भर वर्षा के देवों की रक्षा स्वयं भगवान् विष्णु ही करते हैं, जो कि समस्त प्राणियों के लिए आश्रय हैं। जिस प्रकार पक्षी अपने आश्रय की ओर सानन्द विश्रान्ति के लिए उत्पतन करते हैं इसी प्रकार मरुद्गण भी प्रिय और आनन्ददायक अपनी यज्ञ-स्थली की ओर शुभागमन करते हैं।

८—

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः

श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।

भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भयो

राजान इव त्वेषसन्दृशो नरः ॥८॥

पद-पाठ—शूराःऽइव। इत्। युयुधयः। न जग्मयः। श्रवस्यवः। न। पृतनासु। येतिरे। भयन्ते। विश्वा। भुवना। मरुत्ऽभ्यः। राजानःऽइव। त्वेषऽसन्दृशः। नरः ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—एते मरुतः 'शूरा इव इत्' संप्रहारमिच्छन्तो युद्धकायाः पुरुषा इव 'युयुधयः' युध्यमानाः 'जग्मयः' लघुहस्ताः स्फूर्तिमन्तः 'पृतनासु' संग्राम स्थलेषु 'श्रवस्यवः' कीर्तिकामाः धनकामा वा 'येतिरे' निरन्तरं प्रयासमाचरन्ति। एतेभ्यो हि मरुद्भ्यः विश्वा भुवना समग्राण्येव भुवनानि भयन्ते भयात् कम्पन्ते। एते मरुतः नरः नेतारः राजानः इव त्वेषसन्दृशः त्वेषसन्दर्शनाः। तेजोमयदर्शनाः। न द्रष्टुं शक्यन्ते।

टिप्पणी—युयुधयः—युध संप्रहारे क्विन्। द्विर्भावादिः। श्रवस्यवः—श्रव इच्छति श्रवस्यति 'क्याच्छन्दसि' उप्रत्ययः। भयन्ते—'ञिभी भये' बहुलं छन्दसि' श्लोरभावः। त्वेषसंदृशः—त्विष् दीप्तौ पचाद्यच्। दृशिर प्रेक्षणे। संपूर्वात् क्विप्। बहुव्रीहिः।

हिन्दी व्याख्या—'शूरा इव' मरुद्गण शूर-वीर कार्य करने वाले पराक्रमी

पुरुषों के समान युद्ध-भूमि की ओर 'जग्मयः' स्फूर्ति के साथ और 'युयुधयः' रण... भरे हुए आनन्द के साथ जाते हैं। वे 'श्रवस्यवो न' धन और कीर्ति की का... 'पृतनासु' संग्राम की रण-भूमि में 'येतिरे' महान् प्रयास दिखाते हैं। मरुद्गण... भीत होकर समस्त भुवन ही काँपता है। वे राजाओं के समान विजयशील ने... 'त्वेषसंदृशः' देखने में देदीप्यमान हैं।

६—

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं

सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।

धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे----

ऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥६॥

पद पाठः—त्वष्टा । यत् । वज्रम् । सुऽकृतम् । हिरण्ययम् । सहस्रऽभृ... सुऽअपाः । अवर्तयत् । धत्ते । इन्द्रः । नारि । अयांसि । कर्तवे । अहन् । वृ... निः । अपाम् । औब्जत् । अर्णवम् ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—यद् वज्रं सहस्रभृष्टि सहस्रधारोपेतं हिरण्ययं स... सुकृतं शोभनशिल्पयुक्तं 'स्वपा त्वष्टा' शोभनकर्मा त्वष्टा अवर्तयत् निर्... इन्द्राय दत्तवान्। तद्वज्रायुधम् मरुत्वान् इन्द्रो नरि संग्रामस्थलेवूअपांसि ... मरुद्भिः सह रणकौशल प्रदर्शनार्थं धत्ते। तेन च वज्रेण मरुद्भिःस्तुतः सन् वृत्रं... वरकं तम् अर्णवं जलाधारभूतं मेघं शक्तिशाली इन्द्रः अहन् हतवान् 'अपाम् निरौ... जलधाराश्च निःशेषेणऽधोऽपातयत्।

टिप्पणी— हिरण्ययम्— हिरण्य + मयट्। निपातनान् मकारलोपः। ... 'तुमर्थे से सेन्०' इति तवेन् प्रत्ययः। सहस्रभृष्टिः—सहस्राणि भृष्टयो धाराः... स सहस्रभृष्टिः औब्जत्—उब्ज आर्जवे। लङ्। अर्णवम्—अर्णांसि अस्य सन्ति... मत्वर्थीयो वः। स लोपश्च। अर्णवः समुद्र। अत्र तु मेघः। औचित्यात्।

हिन्दी व्याख्या—त्वष्टा देवता ने जिस वज्र को 'सुकृतम्' शोभन शि... निर्मित किया। 'सहस्रभृष्टिम्' सहस्रों धारों वाला तथा 'हिरण्ययम्' सुवर्णम... दिया; उस 'स्वपाः' कुशल शिल्पी ने उस वज्र को स्नेह और आदर के साथ इ... लिए अर्पित किया। 'नरि' संग्राम-भूमि में 'अपांसि कर्तवे' रण-कौशल दिखा... लिए मरुद्गण का सेनानी इन्द्र उस वज्र को अपने वज्र सदृश हस्त में धारण ...

'अहन् वृत्रम् अर्णवम्' जलावरण करने वाले मेघ का विध्वंस करता है और 'अपाम्' जलधारा को 'निरौब्जत्' नीचे स्पन्दन कराता है।

१०—
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा

दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम्।

धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो

मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥

पद पाठः—ऊर्ध्वम्। नुनुद्रे। अवतम्। ते। ओजसा। ददृहाणम्। चित्। बिभिदुः। वि। पर्वतम्। धमन्तः। वाणम्। मरुतः। सुऽदानवः। मदे। सोमस्य। रण्यानि। चक्रिरे ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—ते मरुतः अवतं मेघरूपं कूपं जलाधानम् ऊर्ध्वम् उपरि भागे ओजसा स्वकीयेन उत्पन्न प्रतापेन नुनुद्रे प्रेरितवन्तः। मध्ये ददृहाणं दृढं गति-निरोधकं वृत्रं पर्वतरूपं शिलोच्चयं विबिभिदुः बभञ्जुः। एतेन उत्सिच्य गोरूपं ऋषिं पृथ्वीरूपं प्राणं वा तर्पयामासुः। समस्तं प्राणिसमुदायं तृप्तं कृतवन्तः। अन-न्तरं धमन्तो वाणम् तन्त्रीलयसमन्वितां वीणां वादयन्तः सोमस्य मदे जातहर्षे सति रण्यानि रमणीयानि युद्धकार्याणि रणसम्बन्धीनि 'सुदानवः चक्रिरे' शोभन दर्पाः कृत-वन्तः।

टिप्पणी—ददृहाणाम्—दृह वृद्धौ। लिटः कानच्। रण्यानि—रणेभवानि। यत्। धमन्तः। शतृ। वाणम्—वण शब्दे। घञ्।

हिन्दी व्याख्या—'तेऽवतम् ऊर्ध्वं नुनुद्रे' वे मरुद्गण कूप रूप मेघ को ऊपर की ओर उस दिशा की ओर ले गये जहाँ पर गौतम ऋषि तृषा से व्याकुल थे। उन्होंने 'दादृहाणम्' अत्यन्त दृढ़ गतिरोधक वृत्र तथा वृत्रम्' शिलाओं की भाँति मेघ-खण्डों को 'विभिदुः' विदीर्ण कर दिया। 'सोमस्य मदे' अपने सेनानी इन्द्र के साथ सोम-रस के मद में 'सुदानवः' सुन्दर दान-दर्प वाले मरुद्गण ने 'धमन्तो वाणम्' तन्त्रीलय के साथ वीणा-वादन करते हुए 'रण्यानि चक्रिरे' रमणीय रण-कर्म से मेघों को पृथ्वी पर बिखेर दिया।

११—
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा—

सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।

आगच्छन्तो मवसा चित्रभानवः

कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११॥

पद पाठः—जिह्मम् । नुनुद्रे । अवतम् । तया । दिशा । असिञ्च
उत्सम् । गोतमाय । तृष्णऽजे । आ । गच्छन्ति । ईम् । अवसा । चित्रऽभानवः
कामम् । विप्रस्य । तर्पयन्त । धामऽभिः ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—एते मरुतः तं निर्दिष्टम् अवतं कूपमाहावमिति य
'तया दिशा जिह्मं नुनुद्रे' यस्यां दिशि ऋषिर्महत्तपश्चरति तस्यां दिशि वक्रं कू
मेघं नुनुद्रे प्रेरितवन्तः । गोतमाय गच्छतीति गौः, अतिशयेन गौः, गोतमः, तस्मै
माय गतिशीलतमाय ऋषये तृष्णजे तृषिताय उत्सं जल-प्रवाहम् असिञ्चन् । ए
ऋषिं चित्रभानवः चित्रा भानवो दीप्तयो येषां ते विचित्रदीप्तयः अवसा रक्षणसा
सह आगच्छन्ति । आश्वासन प्रदानेन अनुग्रहविषयतामानयन्ति । विप्रस्य ऋषेः गो
स्य काममभिलाषं धामभिः आयुषो धारकै रुदकैः तर्पयन्त अतर्पयन् ।

टिप्पणी—तृष्णजे—जनेर्डः । आकारस्य ह्रस्वत्वम् । तृष्णा—'तृषिशुषि
रसिभ्यः कित् ।' नः प्रत्ययः । चित्रभानुः—चित्रा भानवो यस्य । दाभाभ्यां नुः
नुः प्रत्ययः । विप्रः—वपति धर्ममिति विप्रः । विशेषेण पृणातीति वा । धाम—द
तीति धाम तेजः । धा+मनिन् । उत्सः—उनत्ति क्लिद्यतीति उत्सः । जल
स्थानम् । आहावः । हौज, 'टकी' इति भाषायाम् । 'उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च'
औणादिकः सः ।

हिन्दी व्याख्या—इस प्रकार उस निर्दिष्ट 'अवतम्, मेघ रूप कूप (आहाव-हौ
टंकी,) को उस दिशा की ओर 'जिह्मम्' टेढ़ा करके ले गए जिस दिशा में गौतम ऋ
कठिन तप कर रहे थे । इस तृषित ऋषि भूलोक के लिए 'उत्सम् असिञ्चन्' म
ने जल-प्रवाह को स्पन्दित किया और ऋषि की तृष्णा शान्ति की । अपनी वि

कान्ति और दीप्ति के साथ रमणीय और भीषण आकृति वाले मरुद्गण ने 'अवसा' अपने रक्षण-साधनों के साथ 'आगच्छन्ति ईम्' उस ऋषि को आश्वासन देते हुए प्राप्त होते हैं और अपने 'धामभिः' जल-राशि से 'विप्रस्य' उस ब्राह्मण की 'कामम्' अभिलाषा को परिपूर्ण करते हैं।

१२–

या वः शर्म शशमानाय सन्ति

त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त

रयिं नो धत्त वृषण सुवीरम् ॥१२॥

पद पाठः—या । वः । शर्म । शशमानाय । सन्ति । त्रिऽधातूनि दाशुषे । यच्छत । अधि । अस्मभ्यम् । तानि । मरुतः । वि । यन्त । रयिम् । नः । धत्त । वृषणः ।सु ऽवीरम् ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतः युष्माकं यानि शर्म शर्माणि शरणभूतानि गृहाणि तत्रावस्थितानि हव्यानि सुखहेतूनि सन्ति। यानि शशमानाय भजमानाय स्तोत्रे सम्पदातानि सन्ति, यानि त्रिधातूनि तृथिन्यादिषु त्रिषु स्थानेष्ववस्थितानि यानि च दाशुषे दानशीलाय धर्मात्मनेऽधियच्छत साधिकारं प्रयच्छत । तानि अस्मभ्यमुपासकेभ्यः 'वियन्त' स्नेहार्द्रभावनया प्रयच्छत। हे वृषणः वर्षितारः मरुतः ! सुवीरं पुत्रपौत्रादि—संयुक्तं कुशलपरिवारं रयिम् धनविभवं नोऽस्मभ्यं धत्त धारयत।

टिप्पणी—शशमानाय—शश प्लुतगतौ। चानश् यन्त—यम लोट्। तबादेशः। वृषणः—वृष धातोः कनिन्। दीर्घाभाव दीर्घाभाव छान्दसः। दाशुषे— दाश्टदाने क्वसुः। अद्विर्वचनमनिट् त्वं च निपातनात् त्रिधातूनि त्रिषु पृथिव्यादिषु स्थानेषु वर्तमानानि।

हिन्दी व्याख्या—हे मरुद्गण ! आपके जो 'शर्म' शरण-स्थान तथा वहाँ पर अवस्थित भोग्यपदार्थ 'शशमानाय' सेवा परायण यजमानों के लिये सम्पादित हैं। जो भोग्य-पदार्थ 'त्रिधातूनि' पृथिवी, वायु और आकाश में अवस्थिति हैं। जिन्हें आप दानशील धर्म-परायण व्यक्तियों के लिये व्यवस्थिति करते हैं 'तानि'

उन शरण स्थानों और भोग्य पदार्थों को 'अस्मभ्यम्' हम उपासनाशील व्यक्ति के लिये भी स्नेहार्द्र होकर 'वि यन्त' दीजिये । 'हे वृषणः ! आनन्द की वृ करने वाले मरुद्गण ? 'सुवीरं रयिं नो धत्त' हमारे लिये पुत्र-पौत्रादि समन्वि धन-वैभव को सदैव सुरक्षित रखिये ।

उषः सूक्तम्

ऋषिः—गौतमः, देवता— उषाः, १६, १७, १८ अश्विनौ, छन्दः १, २, ३, ४ जागती, ५—१० उष्णिक्, ११—१८ त्रिष्टुप्

१–

एता उ त्या उषसः केतु मक्रत

पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।

निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः

प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ।।

पद-पाठः—एताः । ऊँ इति । त्याः । उषसः । केतुम् । अक्रत ।

अर्धे । रजसः । भानुम् । अञ्जते । निःऽकृण्वानाः । अ युधानिऽइव । धृष्ण

प्रति । गावः । अरुषी यन्ति । मातरः ।।

संस्कृत-व्याख्या—रजसः अन्तरिक्षस्य पूर्वेऽर्धे प्राच्यां दिशि भानुं हि अञ्जन्ति अभिव्यञ्जयन्ति । ता एता उषसः प्रभातकालाभिमानिन्यः उषसः तमसाच्छन्नस्य संसारस्य केतुं प्रचेतनाय प्रकाशं ज्योतिः अक्रत कुर्व 'आयुधानीव धृष्णवः' यथा धर्षणशीला रणकुशला आयुधानि रणात् स्वकीयानि रणसाधनानि 'निष्कृणवानाः' संस्कृतानि कुर्वन्ति तथा उषसोऽपि गमनशीलाः अरुषीः रोचन स्वभावाः मातरः सूर्यप्रकाशस्य जनन्यः प्रतियन्ति प्र यन्ति प्रेरणाप्रदानमाचरन्ति । तेजसामाधारभूताः कारणभूताश्च उषस एताः स्तुत्या भवन्ति ।

टिप्पणी—अक्रत – कृञ् + लुङि । 'मंत्रे घस०' च्लेर्लुक् । निष्कृण्वा 'कृषि हिंसा करणयोश्च' अस्मात् चानश् । 'धिन्विकृण्व्योर च' इति उप्र

'इदुपधस्य०' इति षत्वम् । धृष्णवः—'ञिधृषा प्रागल्भ्ये' 'त्रसि गृधिधृषि०' इति क्नुः । 'रषाभ्यां० इति णत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—अन्तरिक्ष के पूर्वभाग में महान् प्रकाश अपनी विशालता के साथ तत्पर हो रहा है । अन्धकारावृत जगत् की चेतना के लिये उषा देवियाँ अपना प्रकाश वैभव फैला रहा हैं । समर-भूमि में जाने से पहले जिस प्रकार शूर-वीर अपने अस्त्र-शस्त्रों की देख-भाल करके उन्हें तीक्ष्ण और प्रखर बना लेते हैं उसी प्रकार उषा देवियाँ भी निरन्तर गमनशील होकर सूर्याविर्भाव करती हुई जगत् में चमत्कार पूर्ण प्रेरणा प्रकट करती हैं । तेजस्विता का आधार उषा देवियां ही हैं अतः हम उनके प्रति अवनत होते हैं ।

२

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा

स्वायुजो अरुषी र्गा अयुक्षत ।

अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा

रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥

पद-पाठः—उत् । अपप्तन् । अरुणाः । भानवः । वृथा । सुऽआयुजः । अरुषीः । गाः । अयुक्षत । अक्रन् । उषासः । वयुनानि । पूर्वऽथा । रुशन्तम् । भानुम् । अरुषीः । अशिश्रयुः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—एता भानवः उषोदीप्तयः वृथा अनायासेनैव अरुणाः अरुण्यः अरुणवर्णाः 'अरुण्यो गाव उषसामि' त्युक्तेः उत् अपप्तन् सर्वतो विस्तारम् अभजन् । स्वायुजः स्वत एव रथे युक्ताः अरुषीः दीप्तवर्णाः गावः गाव इव किरणाः, ता एता उषसः अयुक्षत—स्वहिरण्यवत् प्रकाशिते रथे अयोजयन् । पूर्वथा पूर्वेषु दिनेषु इव उषसः उषसः वयुनानि प्रज्ञानानि अक्रन् अकुर्वन् । उषः कालो हि ब्रह्मवेलासमयः । तस्मिन् समये सर्वे प्राप्तचेतना भवन्ति । ततः एताः अरुषीः रोचनवर्णा उषसः भानुं भास्वरं सूर्यम् अशिश्रयुः सेवन्ते । तेन सह अविभागा जायन्ते ।

टिप्पणी—अपप्तन्—'पतॢ गतौ' लुङि । ऌदित्वात् च्लेः अङ् । 'पतः पुम्' इति पुमागमः । अक्रन्—'मन्त्रे घस०' च्ले र्लुक् पूर्वथा—'प्रत्नपूर्व' इति

थाल्। अशिश्रयुः—'श्रिञ् सेवायाम्'। बहुलं छन्दसि' इतिशपः श्लुः।—'सिज
विदिभ्यश्च' इति झेर्जुस। 'जुसिच' इति गुणः।

हिन्दी-व्याख्या—अनायास ही प्राची दिशा में घना प्रकाश फैल गया
अरुण वर्ण के इस भींगे प्रकाश में प्राची दिशा अरुण-वर्ण में जगमगा र
स्वायं रथ में जुड़ जाने वाले बैंलों के समान किरणों को उषा देवियों ने
सुनहले रथ में संयुक्त कर लिया है। पूर्व दिनों के ही समान प्राणियों में
और चेतना आ गयी है। अब उषा देवियाँ सूर्य के साथ मिलकर एकीभा
आनन्द ले रही हैं।

३—

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः

समानेन योजनेना परावतः।

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे

विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥

पद-पाठ—अर्चन्तिः। नारीः। अयसः न। विष्टिऽभिः समानेन। योज
आ। पराऽवतः। इषम्। वहन्तीः। सुऽकृते। सुऽदानवे। विश्वा। इत्।
यजमानाय। सुन्वते ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—एताः नारीः नेतृधर्मोपेता उषसः विष्टिभिः भा
कुशलैः तेजोभिः समस्तम् आकाशम् अर्चन्ति पूजायोग्यं विदधति। 'अ
यथा अप्सरसः=अप्सु संग्रामकर्मसु कुशलाः अल्पेनैव समयेन समस्तं संग्राम
व्याप्नुवन्ति तद्वत्। परावतः दूरद आर्त समानेन योजनेन एकेनैव समुच्चयेन।
उषसः सुकृतवे देशकालपात्र विचारदानकुशलाय सुकृते शोभनकर्मवते यज
संकलन व्यवकलनरूपयज्ञकुशलाय सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते विश्पा इत्
इषं वहन्तीः अन्नं प्रयच्छन्त्यः सर्वोपरि विराजन्ते।

टिप्पणी—विष्टिभिः—भारवाहकैः। कहार इति प्रसिद्धैः।

पिनस ढोने वाले । नारी:—'नृनये' । ऋदोरप् । 'नृनरयोवृद्धिश्च' । शङ्गरवादिषु पाठात् ङीन् । जसि । 'वा छन्दसि' इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् । अपस: अप: शब्दात् 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्येच् । विष्टिभि:—'विश प्रवेशने ।' विशन्ति प्रविशन्ति इति विष्टय: किरणा: । 'क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्' इति क्तिच् । विश्वा—'सुपां सुलुक्०' इति डादेश: ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार लाल-पीले रंगों में वेष्ठित पालकियों में बैठी सुन्दरियों को (विष्टिभि:) कुशल कहार ढोकर लाते हैं, उसी प्रकार इन नेतृत्व-कुशल उषा देवियों को (विष्टय:) तेजस्वी किरणें ढोकर लाती हैं। बहुत दूर देश से बिना देरी किये ही एक ही उद्योग में सभी उषा देवियाँ जगमगाने लगती हैं। जिस प्रकार कि 'अपस: न' अप्सर (अप्सर) लोग बिना विलम्ब किये ही समस्त रण-क्षेत्र को सुपूजित और विशेषित बना देते हैं उसी प्रकार उषादेवियों से समस्त आकाश पूजित और प्रशंसनीय हो रहा है। यह उषा देवियाँ शुभकर्मों से युक्त अच्छे दानशील, यज्ञ-क्रिया में निष्ठावान् और सोमाभिषव करने वाले = आह्लादक अध्यात्म विद्या का रस-पान करने वाले यजमानों के लिये 'विश्वा इष:' समग्र धन-धान्य को 'वहन्ती:' लाकर प्राप्त कराती हैं।

४—

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा—

पोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।

ज्योति र्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती

गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥

पद-पाठ:—अधि । पेशांसि । वपते । नृतू: ऽइव । अप । ऊर्णुते । वक्ष: । उस्राऽइव । बर्जहम् । ज्योति: । विश्वस्मै । भुवनाय । कृण्वती । गाव: । न । व्रजम् । वि । उषा: । आवरित्याव: । तम: ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—नृतू: इव नायित इव । स यथा नॄन् मनुष्यान् तूर्वति श—व्यतिरिक्तान् करोति तथा इयम् उषा: खल्वपि पेशांसि जगति संश्लिष्टानि मांसि वपते समुच्छिनत्ति । अथवा नृतू: इव मर्तनशीला नर्तकीव इयम् उषा

पेशांसि स्वकीयान् रूपावयवान् अधि आधिक्येन वपते प्रकाशयति । एवं
प्रकाशोपेतं विधाय पुनः वक्षः स्वकीयम् उरः स्थलं स्वर्णाभरणभूषितम् अपो
स्वत एव उद्धारयति । उस्रेव । गौ यथा । धेनुर्यथा पयोधरान् आविष्क
तथा बः दुग्धत्यागकाले=पयः त्यागकाले उषाः खल्वपि स्वकीयम् उर=
प्रकटयति । इयमुषा विश्वस्मै भुवनाय समस्ताय संसाराय ज्योतिः कृण्वती प्र
कुर्वती तमः अन्धकारं विवृतं करोति । 'गावो न व्रजम्' यथा गावः स्व
स्वयं शीघ्रमेव व्याप्नुवन्ति तथा उषसोऽपि प्राचीं प्राप्य शीघ्रमेव प्रका
भवन्ति ।

टिप्पणी—नृतूः—'तूर्वी हिंसायाम् । 'क्विप् च' इति क्विप् । राल्लोपः
वकारलोपः । 'र्वोरुपधायाः' इति दीर्घत्वम् । अथवा—'नृती गात्रविक्षेपे 'नृतिशृ
कूः' इति कूः । बर्जहम्—वृणीते इति बः पयः । विच् । तज्जहातीति बर्जहं
बर्जहं वक्षः—दुग्धक्षरणसमर्थं वक्षः । आवः—वृञ् वरणे' । लृङि । 'मंत्रेघस०'
च्ले र्लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—'नृतूः इव' जिस प्रकार नापित सिर से केशों को
कर देता है, उसी प्रकार आकाश-मण्डल से समस्त अन्धकार को उषा उच्छिन्न
देती है । अथवा 'नृतूः इव' जिस प्रकार उत्तम कोटि की नर्तकी भावाभि
के लिये अपने समस्त अवयवों का प्रकाशन करती है । जिस प्रकार 'बर्जहं
दूध से भरे हुये अपने पयोधरों को गौ प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा
अपने स्वर्णिम रूप का प्रकाशन करती है और समस्त भुवन के लिये ज्योति
करती है । जिस प्रकार गायें अपने गोष्ठ में शीघ्र प्राप्त हो जाती हैं, उसी
उषा देवियाँ आकाश में शीघ्र ही व्याप्त हो जाती हैं और अन्धकार का उ
कर देती हैं ।

५—

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि

वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।

स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्—

चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥

पद-पाठः—प्रति । अर्चिः । रुशत् । अस्याः । अदर्शि । वि । तिष्ठ

बाधते । कृष्णम् । अभ्वम् । स्वरुम् । न । पेशः । विदथेषु । अञ्जन् चित्रम् ।

दिवः । दुहिता । भानुम् । अश्रेत् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—सर्वैः खलु प्राच्यां दिशि अस्या उषसः रुशत् कमनीयं प्रकाशमानम् अर्चिः दीप्तं तेजः अदर्शि दृश्यते । वितिष्ठते इयम् उषा विविधम् अवतिष्ठते नानाप्रकारेणात्मनं प्रकाशयति । अभ्वं कृष्णं बाधते विपुलं कृष्णवर्णं तमः दूरीकरोति । स्वरुं न यज्ञयूपम् इव यज्ञेषु इयं स्वकीयं पेशः रूपं व्यनक्ति अनन्तरम् इयमुषाः दिवः दुहिता चित्रं भानुं सूर्यम् अश्रेत् आश्रयति ।

टिप्पणी– वितिष्ठते—'समव०' इति आत्मनेपदम् । अश्रेत्—'श्रिञ् सेवायाम्' । लङ् । 'बहुलं छन्दसि' इतिशयो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या— इस प्रभावपूर्ण उषा का सुनहला रूप प्रभात वेला में पूर्व की ओर सभी देखते हैं । यह उषा अपने तेज के विविध रूप को नाना प्रकार से प्रकाशित करती है और विस्तीर्ण अन्धकार को अपसारित करती है । यज्ञ भूमि में जगमगाते स्वर्णस्तम्भों के समान उषा का विविध रूप प्रकाशित हो रहा है । यह द्यु लोक की राजकुमारी अपने आनन्ददायक सूर्य का आश्रय लेकर अपने को एक कर देती है ।

६—

अतारिष्म तमसस्पारमस्यो-

षा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।

श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती

सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥

पद-पाठः—अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य । उषाः । उच्छन्ती । वयुना । कृणोति । श्रिये । छन्दः । न । स्मयते । विऽभाति । सुऽप्रतीका । सौमनसाय । अजीगरिति ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य रात्रिसम्बन्धिनोऽन्धकारस्य पारम् अतारिष्म उत्तीर्णा वयम् । इयमुषा उच्छन्ती तमो विवासयन्ती वयुनानि प्रज्ञानानि कृणोति कुरुते । 'श्रिये छन्दो न स्मयते' इयमुषाः सर्वेषां पुरतः हसन्तीव दृश्यते यथा कोऽपि कविः स्वकीयेन आह्लादकेन काव्यच्छन्दसा धनाढ्यप्रीत्यर्थं ततः श्रिये धनाय स्वप्रति- भानं प्रकटयति तथा विभाती विशिष्टप्रकाशा उषाः सौमनसाय सुप्रतीका शोभनाङ्गी यथा अन्धकारं सम्यग् अजीगः आत्मसात् कृतवती ।

टिप्पणी:—अतारिष्म—'तॄ प्लवनसंतरणयो' । लुङि । सिचि वृद्धिः स्मयते—'ष्मिङ् ईषद् हसने' । अजीगः—'गॄ निगरणे' । लङि । 'बहुलं छन्दसि' इति शपः श्लुः । अभ्यासस्य इत्वम् । तुजादित्वाद् दीर्घः ।

हिन्दी-व्याख्या—इस भयावह रात्रि के अन्धकार से हम परे पार चले आये हैं । यह उषा अन्धकार का विनाश करती हुई नाना प्रकार से प्रज्ञान को प्रकट कर रही है । जिस प्रकार कोई प्रतिभापूर्ण कवि अपनी चारु वचनावली के छन्दोमय वितान से धनाढ्य को प्रसन्न करता हुआ धन की प्राप्ति के लिये उदार-प्रसन्नता को प्रकट करता है उसी प्रकार से उषा खुले गगन में अपना हास्यपरिधान प्रकट कर रही है । यह शोभनाङ्गी जगत् की प्रीति और प्रसन्नता के लिये ही मानो अन्धकार को निगल गयी है ।

७—

भास्वती नेत्री सूनृतानां

दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्या-

नुषो गो अग्राँ उप मासि वाजान् ॥

पद-पाठः—भास्वती । नेत्री । सूनृतानाम् । दिवः । स्तवे । दुहिता । गोतमेभिः । प्रजाऽवतः नृऽवतः । अश्वऽबुध्यान् । उषः गोऽअग्रान् । उप । मासि । वाजान् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषाः भास्वती प्रभावस्वररूपा सूनृतानां प्रियमधुर

यस्वरूपाणां वाचां नेत्री प्रणेत्री । उषसि हि वीतान्धकारायां सर्वे प्राणिनः प्रियां च वाचमुच्चारयन्ति । सेयं दिवो दुहिता अस्माभिः गोतयेभिः प्रकृष्टवाग्भिभिः स्तवे स्तूयते । एवं स्तुता त्वं हे उषः वाजान् अन्नानि उपमासि । सि । कीदृशान् वाजान् ? 'प्रजावतः नृवतः अश्वबुध्यान् गो अग्रान्' प्रकृष्टाः पुत्रपौत्रादयः येषु तान् । नृवतः प्रशस्ता नेतारो येषु तान् । अश्वबुध्यान् ः बोहव्या येषु तान् । अश्वमूलं हि राष्ट्रधनम् । तै हि धनानि परदेशात् हियन्ते । गोऽग्रान् गावोऽग्रे येषां तान् ।

टिप्पणी—भास्वती—'भा दीप्तौ' । असुन् । 'माधुपधायाः०' । इति मतुपोव 'उगितश्च' इति ङीप् । नेत्री—'ऋन्नेभ्यो ङीप्' । स्तवे—'ष्टुञ् स्तुतौ' कर्मणि 'बहुलं छन्दसि' इति यको लुक् । 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' इति तलोपः । दस्युभयथा' इत्यार्धधातुकत्वे ङित्त्वाभावात् गुणोऽवादेशश्च । नृवतः—व्यत्ययेन र्वत्वम ।

हिन्दी-व्याख्या—यह उषा प्रभास्वर रूप होने के कारण भास्वती और प्रिय- य वाणी का प्रेरक होने के कारण सूनृत—नेत्री है । उषः काल में ही सभी णी मधुर वचनों का उच्चारण करते लगते हैं । अत्यन्त उत्कृष्ट वाणी वाले तम—ऋषियों के द्वारा यह सूर्य-पुत्री प्रशंसनीय और स्तुत्य रही है । हे उषा ! षियों के द्वारा प्रिय स्तुतियों के कारण आप उन्हें उत्तम पुत्र-पौत्र, अच्छे उत्कृष्ट ता, अच्छे वंश के अश्व, सुशील गायें तथा अन्य अभिप्सित धनों से परितृप्त रती हो ।

८—

उष स्तमश्यां यशसं सुवीरं

दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।

सुदंससा श्रवसा या विभासि

वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥

पद-पाठः—उषः । तम् अश्याम् । यशसम् । सुऽवीरम् । दासऽप्रवर्गम् ।

रयिम् । अश्वऽबुध्यम् । सुऽदंससा । श्रवसा । या । विऽभासि । वाज

सुऽभगे । बृहन्तम् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषो देवते ! यं बृहन्तं रयिं विभासि स्वकीयेन शोभनेन कर्मणा श्रवसा स्तुति समूहेन च प्रीता सती प्रकाशयसि, या वाजप्रसूता दत्तधना सती सुभगा लब्धैश्वर्याऽसि । सा त्वं तं रयिं वैभ देहि । तद् धनम् अहं प्राप्नुयाम् । यशसम् । यशः पूर्णम् । सुवीरम् पुत्रादिभिः युक्तम् । दासप्रवर्गम् । कर्मकरवर्गोपेतम् । अश्वबुध्यम् । अश्वाः बोद्धाव्या येन तादृशम् ।

टिप्पणी—अश्याम्—'अशू व्याप्तौ' । व्यत्ययेन परस्मै पदम् । छन्दसि' इति विकरणस्य लुक् । यशसम्—'अर्श आदित्वात् मत्वर्थीयोऽच् प्रवर्गम्—दासयति उप क्षपयति शत्रून् इति दासो भृत्यः । 'दसु— अस्मात् ण्यन्तात् अच् । या—'सुपां सुलुक०'-इति अमः डादेशः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषाः ! आपकी कृपा से मैं उत्तम रयि=धन को प्राप्त करूं जिसके कारण मुझे तेजस्वी यश तथा शूर-वीर पुत्र-पौ प्राप्ति हो । अच्छे अवसर-कुशल भृत्य-गण मिलें । अच्छे अश्व आदि पशु प्राप्त हमारे शुभ कर्म तथा स्तुतियों से प्रसन्न होकर आप धन धान्य की उपलब्धि रहें और अपने विशाल ऐश्वर्य को 'विभासि' सदा प्रकाशित करती रहें ।

९—

विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या

प्रतीची चक्षुरुर्विया विभाति ।

विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती

विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥

पद-पाठ—विश्वानि । देवी । भुवना । अभिऽचक्ष्य । प्रतीची च

उर्विया । वि । भाति । विश्वम् । जीवम् । चरसे । बोधयन्ती । विश्वस्य । वाच

अविदत् । मनायोः ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—विश्वानि भुवनानि भूतजातानि अभिचक्ष्य सम्यक् प्रकाश्य इयम् उषा देवी द्योतनस्वभावा स्वकीयेन चक्षुः चक्षुषा प्रकाशेन उर्विया विस्तीर्णा सती विभाति विभानं कुरुते । विश्वं समस्त च जीव चरसे स्वस्वव्यापाराय बोधयन्ती प्रवर्तयन्ती मनायोः मननसमर्थस्य समग्रस्य वाचं स्तुतिम् अविदत् अलभत ।

टिप्पणी–अभिचक्ष्य—'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि'। अयं प्रकाशनेऽपि । क्त्वा प्रत्ययस्य ल्यबादेशः । प्रतीची-प्रतिपूर्वात् 'अञ्चतेः 'ऋत्विक्०' इति क्विन् । 'अनिदिताम्०' इति न लोपः । 'अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम्' इति ङीप । उर्विया—इयाजादेशः । मनायोः—क्यच् । क्याच्छन्दसि' उः । यद्वा क्यङ सकारलोपश्च । 'अकृत सार्वधातुकयोः' दीर्घः ।

हिन्दी व्याख्या—यह उषा देवी अपने प्रख्यापित प्रकाश के माध्यम से अपने को विस्तीर्ण करती हुई समस्त भुवनों में अवलोकन-सामर्थ्य भर कर जगमगा रही है । अपने-अपने व्यापार में प्रेरित होने के लिये समस्त प्राणिवर्ग को यह उषा सचेत कर रही है । इस प्रकार 'मनायोः' मननशील प्रबुद्ध समाज से निरन्तर 'वाचम् अविदत्' स्तुति-वचनों से प्राप्त करती रहती है ।

१०—

पुनः पुन र्जायमाना पुराणी

समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।

श्वघ्नीव कृत्नु र्विज आमिनाना

मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥

पद-पाठ—पुनः ऽ पुनः जायमाना । पुराणी । समानम् । वर्णम् । अभि । शुम्भमाना । श्वघ्नी ऽ इव । कृत्नुः । विजः आऽमिनाना । मर्तस्य । देवी । जरयन्ती । आयुः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषा यद्यपि पुराणी पुरातनी तथापि पुनः पुनः जायमाना नवं नवं रूपं धारयन्ती अभिनवेव दृश्यते । यद्यपि अस्या एकमेव परिचितमिव

रूपं तथापि शुम्भमाना अलंकृतावयव। इयं देवी द्यूतकरीव देवनशीला
मरणधर्मवतो जनस्य आयु र्जरयन्ती न्यूनयन्ती दृश्यते। सा तु पुनः पुन
जायते प्राणिनस्तु जीवनं प्रतिदिनं हीयत एव। यथा श्वघ्नी व्याधस्त्री कृत्नुः
शीला विजः चलतः पक्षिणः आमिनाना पक्षादि कर्त्तनेन हीनान् विधाय तान्
तथेयम् उषा प्रतिदिनं प्राणिजातस्य आयु र्जरयन्ती दृश्यते।

टिप्पणी-पुराणी—'सायं चिरं०' इति ट्युः। योरनादेशः। टित्वात्
शुम्भमाना—शुम्भ दीप्तौ'। शानच्। श्वघ्नी—श्वभि मृगाम् हन्तीति
हन्तेः क्विप्। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्'। 'अल्लोपोऽनः' इति अकारलोपः। 'हो हन्तेः०'
घत्वम्। कृत्नुः—'कृती छेदने'। क्नु प्रत्ययः औणादिकः। विजः—'ओ
भयचलनयोः'। विजन्ति चलन्ति इति विजः पक्षिणः। आमिनाना—मीञ् हिंसा
'प्वादीनां ह्रस्वः'। शानच्।

हिन्दी-व्याख्या—यद्यपि यह उषा देवी अत्यन्त प्राचीन है तथापि यह
पुनः प्रकट होती रहती है अतएव नित्य नवीन ही रहती है। यद्यपि उषा का
ही रूप सामने दृष्टिगोचर होता है तथापि यह प्रति दिन अलंकृत होकर अ
रूप में ही प्रस्तुत रहती है। यह उषा प्राणिवर्ग के आयु को निरन्तर क्षीण क
जा रही है। जिस प्रकार व्याध की क्रूर स्त्री स्वच्छन्द विचरण करने
विहंगमों के पक्ष-कर्त्तन करके उन्हें क्षीण कर देती है तथा उनका विनाश कर
है उसी प्रकार यह उषा इस पृथ्वी के प्राणियों की अमरता का विनाश
रही है।

११—

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्य—

प स्वसारं सनुत र्युयोति।

प्रमिनती मनुष्या युगानि

योषा जारस्य चक्षसा विभाति॥

पद-पाठ—विऽऊर्ण्वती। दिवः अन्तान्। अबोधि। अप। स्वसा
सनुतः। युयोति। प्रऽमिनती। मनुष्या। युगानि। योषा। जारस्य। चक्ष
वि। भाति॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषा दिवः अन्तान् सीमान्त प्रदेशान् 'वि ऊर्ण्वती' तमो रहितान् सम्पादयन्ती अबोधि सर्वैर्ज्ञायते। स्वसारं स्वयमेव सरन्तीं रात्रिं च स्वसारं सनुतः अन्तर्हिते स्थाने युयोति पृथक् स्थापयति। जारस्य रात्रे जरयितुः सूर्यस्य योषा पत्नी इयम् उषाः स्वागमननिर्गमन व्यवहारेण 'मनुष्या युगानि' मनुष्य सम्बन्धीनि युगानि 'प्रमिनती' प्रहिंसन्ती विभाति विशेषेण शोभते।

टिप्पणी—**व्यूर्ण्वती**—'अर्णुञ् आच्छादने'। शतृ। 'उगितश्च' इति ङीप्। सनुतः—'अव्ययादाप्सुपः' इति सप्तम्या लुक्। युयोति—'यु—मिश्रणामिश्रणयोः'। शपः श्लुः। मनुष्या—'सुपां सुलुक्०' इति डादेशः। युगानि—युजेःघञ्। 'चजो कु घिण्यतोः' इति कुत्वम्। गुणाभावः। कालविशेषे रथाद्युपकरणे चङ उच्छादिषु युगशब्दः पठ्यते।

हिन्दी व्याख्या—यह उषा आकाश के रमणीय प्रान्तभागों को अन्धकार रहित करके जगमगाती हुई सभी मनुष्यों से जानी-पहचानी जा रही है। स्वयं सरकने वाली अपनी भगिनी रात्रि को एकान्त में छिप जाने के लिए विवश कर कर रही है। यह उषा रात्रि के विध्वंसक सूर्य की हृदय-प्रिय दयिता है। यह स्वयं 'चक्षसा' अपने ही प्रकाश से मानवीय युगों का गमन-निर्गमन के माध्यम से विनाश करती है और स्वतः ही अपनी रूप-माधुरी से कमनीय रहती है।

१२—

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना

सिन्धुर्न क्षोदउर्विया व्यश्वैत्।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि

सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना॥

पद-पाठ—पशून्। न। चित्रा। सुऽभगा। प्रथाना। सिन्धुः। न। क्षोदः। उर्विया। वि। अश्वैत्। अमिनती। दैव्यानि। व्रतानि। सूर्यस्य। चेति। रश्मिऽभिः। दृशाना॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषाः चायनीया पूजनीया सुभगा सुन्दरी प्रथाना स्वकीयानि तेजांसि विस्तारयन्ती शोभते। यथा गोपालकः अरण्ये सम्पन्ने कानने पशून् विस्तारयति। तथा किरणान् विस्तारयति। उर्विया उर्वी सम्पन्ना इयं समस्तं भुवनं 'व्यश्वैत्' सम्यग् व्याप्नोति। 'सिन्धु नं क्षोदः' यथा शीलं जलं स्वत एव समस्तं निम्नं भूभागं व्याप्नोति तथैयमुषाः समस्तं गगन क्षिप्रमेव व्याप्नोति। सूर्यस्य रश्मिभिः सह दृशाना दृश्यमाना सेयमुषाः चेति प्रज्ञा दैव्यानि व्रतानि देवसम्बन्धीनि कर्माणि अनुष्ठातुं पुरुषान् तत्परान् कुर्वती कुशला विराजते। पूर्वं मंत्रे 'प्रमिनती मनुष्या युगानि' उक्तम्। अधुना नती-दैव्यानि व्रतानि' इत्युच्यते। महती सूक्ष्मेक्षिका विद्यते। मानवान् रहितान् देवतत्परांश्च विधातुमिति।

टिप्पणी—प्रथाना = 'प्रथ प्रख्याने' चानश्। सिन्धुः—'स्यन्दू 'स्यन्दे सम्प्रसारणं धश्च' इति उः। अश्वैत्—दुओश्वि गतिवृद्ध्योः इडभावः। 'सिचि वृद्धिः०' अनिडादित्वात् 'ह्यन्तक्षण०' इति वृद्धिप्रतिषेधा चैति—'चिती संज्ञाने'। कर्मणि लुङि। 'बहुलं छन्दसि०' इत्यडभावः। दृशा लटः शानच्। 'बहुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक्।

हिन्दी-व्याख्या—यह सुन्दर सौभाग्य वाली उषा समस्त भुवनों में होकर अपने को विख्यापित कर रही है। जिस प्रकार गो-पालक अपने कानन-प्रदेश में अपने पशुओं को फैला देता है। उसी प्रकार उषा भी किरणों का विस्तार करके फैला देती है। यह उषा विशाल प्राङ्गण में अप्रतिम रूप के साथ व्याप्त हो रही है। जिस प्रकार जल स्पन्दनशील समस्त निम्न प्रदेश में फैल जाता है, उसी प्रकार उषा सारे गगन-प्रदेश में ही अपनी प्रकाशक किरणों के सहारे फैल जाती है। यह उषा सूर्य की के साथ ही दृश्यमान होकर पहचानी जाती है। यह वही उषा है जो देव कार्यों के अनुष्ठान में मनुष्यों को प्रेरित करती हुई उनका विनाश नहीं देती।

१३—

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।

येन तोकं च तनयं च धामहे॥

पद-पाठः—उषः। तत्। चित्रम्। आ। भर। अस्मभ्यम्। वाजिनी येन। तोकम्। च। तनयम्। च। धामहे॥ १३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वाजिनीवति उषः ! हविर्लक्षणेन अन्नेन परिपूर्णं उषो देवते ! तत् चित्रं चायनीयं धनं बहिर्वैभवम् अन्तर्वैभवं चास्मभ्यम् आ भर आहर। देहि । येन सम्यक् सम्पन्ना स्तृप्ताश्च वयं तोकं तनयं च पुत्रं तत्पुत्रं च धामहे। धारयामः । कुशल पुत्रपौत्र समर्था वयं सदैव तृप्ताः प्रसन्नाश्च भवेम ।

टिप्पणी—धामहे—दधाते लंटि । शपो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वाजिनीवति ! उषा ! आप बाहर के तथा भीतर के वैभवों से तृप्त और परिपूर्ण हो । कृपा करके हमारे लिये उन समग्र ऐश्वर्यों को प्रदान करो जिससे कि पुत्र और पौत्र आदि सम्पदा से पूर्ण होकर हम सब मंगलमय कुशल-जीवन व्यतीत करें ।

१४-

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।

रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥

पद-पाठ—उषः । अद्य । इह । गोऽमति । अश्वऽवति । विभाऽवरि । रेवत् । अस्मे इति । वि । उच्छ । सूनृताऽवति ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे विभावरि ! विशिष्टदीप्ति युक्ते उषः ! त्वं गोमती, अश्ववती प्रियसत्यवाक्स्वरूपा शिवा चासि । अतः अस्मभ्यं शोभना गाः प्रदेहि । वाजिराजान् प्रयच्छ । विवेकमयी प्रतिभाम् उद्घाटय । प्रियां सत्यां मधुरां स्वाध्यायशीलां वाचं च धारय । 'रेवत् अस्मे व्युच्छ' । रेवत् धनयुक्तं कर्म यथा दीप्तं भवति तथा त्वं शीघ्रमेव अन्धकारं विवासय । निवृत्तान्धकारा वयं स्वे स्वे व्यापारे लग्ना भवेम ।

टिप्पणीनि—अश्वावति—'मंत्रे सोमाश्व०' इति मतो दीर्घत्वम् । रेवत्—'रयेर्मतौ बहुलम्' इति सम्प्रसारणम् । उच्छ—'उच्छी विवासे' । विवासः—निवारणम् । विवासय—निवारय ।

हिन्दी-व्याख्या—हे विभावरि । विशिष्ट विभा वाली उषा देवि ! तुम्हारे ही कारण उत्तम गायें, श्रेष्ठ अश्व तथा प्रिय-मधुर वाणी के कौशल हमें प्राप्त होते हैं। अतः आप ही इन सब रत्नों की धात्री हैं । कृपा करके श्रेष्ठ सबल गायें, उच्चकोटि के अश्व तथा स्वाध्याय-निर्भर वाणी से हमें युक्त कीजिये । आप ऐसी कृपा कीजिये कि धन-सम्पन्न कर्म में हम शीघ्र तत्पर हों और इसके लिये अन्धकार का निवारण अत्यावश्यक है । कृपया शीघ्र ही अन्धकार को दूर कीजिये ।

१५— युक्ष्वा हि वाजिनी वत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।

अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥

पद-पाठ—युक्ष्व । हि । वाजिनीऽवति । अश्वान् अद्य । अरुणान्

उषः । अथ । नः । विश्वा । सौभगानि । आ । वह ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वाजिनीवति । हवि लंक्षणेन धनेन परिपूर्णे उषो देवते ! अरुणान् अश्वान् अद्य पुन र्योजय । अनन्तरं विश्वा विश्वानि सौभगा सौभाग्यानि नो ऽस्मभ्यम् आ वह प्रापय ।

टिप्पणीः—अश्वान्—'दीर्घादटि समानपादे' इति नकारस्य रुत्वम् । आतोऽटि नित्यम्' इति सानुनासिक आकारः । सौभगानि—'प्राणभृज्जातिवयो वचन०' इति अञ् प्रत्ययः । 'हृद्भगसिन्धु०' इति सूत्रेण उभयपदवृद्धिप्राप्तौ छन्दसि विकल्पितत्वात् उत्तरपदवृद्धिर्न ।

हिन्दी व्याख्या—हे हवि आदि धन से परिपूर्ण उषा देवि! आज पुनः अपने अरुणवर्ण वाले क्षिप्रगामी अश्वों का संयोजन कीजिये । और हमारे लिये समग्र सौभाग्यप्रद एश्वयर्मों को ले आइये ।

१६— अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्

पद-पाठ—अश्विना । वर्तिः । अस्मद् । आ । गोऽमत् । दस्रा ।

हिरण्यऽवत् । अर्वाक् । रथम् । सऽमनसा । नि । यच्छतम् १६॥

संस्कृत-व्याख्या--उषः साहचर्यादिदानीम् अश्विनौ स्तुतिपात्रं गच्छतः । हे दस्रा शत्रूणां क्षपयितारौ अश्विनौ व्यापनशीलौ युवाम् अस्मत् अस्माकं वर्तिः वर्तनयोग्यं गृहं प्रति समनसा शोभनमनस्कौ गोमत् हिरण्यवत् गोभिः युक्तं हित——

रमणीयं च धनं नियच्छतम् । आनीय प्रयच्छतम् तदर्थं च नंजं रथम् अर्वाक् अर्वाचीनम् अस्मदीयं गृहं प्रति प्रवर्तयतम् ।

टिप्पणी–अश्विना—'सुपां सुलुक्०' इत्याकारः । वर्तिः—वर्ततेऽस्मिन् इति वर्तिः गृहम् । इसि प्रत्यय औणादिकः । अस्मत्—'सुपां सु—लुक्०' इति षष्ठ्या लुक् । समनसा—समानं मनो ययोः तौ । समानस्य सभावश्छान्दसः ।

हिन्दी व्याख्या—अब उषा के साहचर्य के कारण अश्विनौ की स्तुति की जा रही है । हे अश्विनौ । आप व्यापनशील हैं और 'दस्रा' शत्रुओं का क्षय करने वाले हैं । आप 'समनसा' सौमनस्क=प्रसन्न मन वाले होकर अपने उस रमणीय रथ को हमारे सदनों की ओर प्रवर्तित कर दें जो गौ आदि पशुओं का तथा हिरण्य आदि रमणीय ऐश्वर्य-प्रसाधनों का साधक और प्राप्त कराने वाला है ।

१७—

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥

पद-पाठः—यौ । इत्था । श्लोकम् । आ । दिवः । ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः ।

आ । नः । ऊर्जम् । वहतम् । अश्विना । युवम् ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ । सूर्याभिमानिनौ चन्द्राभिमानिनौ च देवौ ! युवां दिवः सकाशात् श्लोकम् उपश्लोकनीयं कीर्तनीयं ज्योतिः आनीय जनाय चक्रथुः अनुभूयमानं कृतवन्तौ । तेन प्रशंसनीयेन ज्योतिषा सर्वे जनाः कार्यतत्परा जाताः । इदानीं युवं युवाम् ऊर्जं बलहेतुभूतम् अन्नम् आ वहतम् आनयतम् ।

टिप्पणी—श्लोकम्—'श्लोकृ संघाते' । अयं स्तुत्यर्थोऽपि । कर्मणि घञ् ।

हिन्दी व्याख्या—जो अश्वि देवता द्युलोक से सूर्य रूप में तथा चन्द्र रूप में प्रभाप्रद और कान्तिप्रद ज्योति को लाकर जन-कल्याण के लिये वितरित करते हैं, जिस ज्योति की प्रशंसित व्यवस्था में जगत् व्यवस्थित रहता है । हे अश्वि देवता । आप दोनों हमारे मनोबल तथा वैभव को धारण करने के लिये उचित भोग्य सामग्री तथा सामर्थ्य प्रदान करें ।

१८—

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।

उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥

पद-पाठ:—आ इह देवा । मयःऽभुवा । दस्रा । हिरण्य वर्तनी इति हिरण्य-वर्तनी । उषःऽबुधः वहन्तु । सोमऽपीतये ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—इह अस्मिन् विभान समये देवा विजिगीषा हेतवः उषर्बुधः उषसि प्रबुद्धा अश्वाः सोम पानाय मयोभुवा मयसः आरोग्यस्य भावयितारौ दस्रा शत्रूणां क्षपयितारौ हिरण्यवर्तनी हिरण्मयः स्वर्णमयो वर्तनी रथे। ययो वर्तते तौ हिरण्यवर्तनी देवौ आ वहन्तु आनयन्तु ।

टिप्पणी:—मयः—मय इति सुख नाम । 'अश्विनौ वै देवानां भिषजौ। हिरण्यवर्तनी—वर्ततेऽनेनेति वर्तनिः । वर्तनिशब्देन रथ उच्यते । हिरण्यमयः स्वर्णमयो वर्तनि विद्यते ययो स्तौ । देवा—देवौ । दस्रा—दस्रौ, मयोभुवा—मयोभुवौ इति सर्वत्र 'सुपां सुलुक्०' इति आकारः । सोमपतिये—'पा पाने' भावे क्तिनि। 'घुमा—स्था०' इति ईत्वम् । सोमस्य पीतिः ।

हिन्दी-व्याख्या—जो अश्वि देवता दिव्य-विजय से युक्त हैं, जो आरोग्य-सुख के प्रदाता और प्रसन्नता के विधाता हैं, जो निरन्तर स्वर्णमय रथ पर यात्रा करते हैं और जो 'दस्रा' शत्रुओं को क्षीण और विनाश करते हैं, उन अश्वि देवों का इस प्रभात वेला में 'उषबुर्ध:' प्रबुद्ध होने वाले अश्व अवश्य ही सोम-पान के निमित्त आवहन करें और हमारे घरों को सुख-सुविधाओं से सम्पन्न करें ।

मण्डल १

सूर्य-सूक्तम्

सूक्त ११५

त्रिष्टुप् छन्द—सूर्यो देवता, ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्

सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च ॥१।

पद-पाठ—चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः । आ । अप्राः । द्यावापृथिवी । इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—अयं सूर्यः उदगात् उदयं प्राप्तवान् । कीदृश सूर्य-मण्डलम् ? देवानाम् दिव्यानां किरणानां वाऽनीकम् बलभूतं समूहरूपम् । मित्रस्य अहरभिमानिनो देवस्य वरुणस्य रात्र्यभिमानिनो देवस्य समग्रस्य वा जगतः चक्षुः प्रकाशकत्वात् नेत्रस्थानीयम् । स च देवः उदयाचलं प्राप्य द्यावा पृथिवी द्युलोकं पृथिवी लोकम् अन्तरिक्ष च स्वकीयेन प्रकाशात्मना तेजसा आ अप्राः सम्यग् आ अपूरयत् पूरितवान एवं सूर्य मण्डलाभिमानिनी देवता ऽन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरिका सती जगतो गतिशीलस्य जंगमस्य तस्थुषश्च स्थावरस्य च आत्मा स्वरूपभूता सा हि देवता जडात्मकस्य संसारस्य चेतनात्मकस्य च कारणरूपिणी ।

टिप्पणी—उदिते हि सूर्ये मृतप्रायं जगत् पुनश्चेनामिव प्राप्नोति । कारणाच्च कार्यं न पृथक् "तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः" ब्रह्मसूत्र २-१-१४ ।

देवा—आदित्य रश्मयः, दीव्यन्ति प्रकाशन्ते । अगात्—इण् धातो—र्लुङि 'इणो गा लुङि ।' अप्राः—'प्रा पूरणे' लङ् । सूर्यः—सरतीति, क्यप् । जगतः—गम + क्विप् । गमे र्द्वे, अनुनासिकलोपः तस्थुषः—स्था + क्वसु, वसोः संप्रसारणम् 'आतो लोप इटि च' षत्वम् अनीकम्—अन् प्राणने' ईकक् प्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—यह सूर्य-मण्डल उदित हो रहा है जो (चित्रम्) आश्चर्य जनक तेज से युक्त है, मित्र, वरुण तथा अग्नि का भी प्रकाशक होने से नेत्र रूप है, द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक को अपने प्रकाश से पूर्ण करने वाला है और समस्त स्थावर-जंगम जगत् की आत्मा है ।

२— 1971 ९८

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां

मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि

वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२॥

पद-पाठ—सूर्यः । देवीम् । उषसम् । रोचमानाम् । मर्यः । न । योषाम्

अभि । एति । पश्चात् । यत्र । नरः । देवऽयन्तः । युगानि । विऽतन्वते । प्रति ।

भद्राय । भद्रम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—रोचमानां दीप्यमाना मुषसं देवीं पश्चात् अभ्येति अनुसरति । मर्यो न योषाम् यथा कश्चन युवा युवति ममिलक्ष्य शोभयाकृष्टः सरति । यत्र यस्यामुषसि प्रसन्नायां नरो नेतारः युगानि स्वकीयानि शास्त्रविहित कर्माणि वितन्वते विस्तारयन्ति तन्तुवाया इव । कृषका इव वा । एवं भगवन्तं कल्याणप्रदं सूर्यं प्रति भद्राय कर्मफलाय वयं स्तुमोऽभिनन्दाय: । देवयन्त आत्म देवत्वं कामयमाना वा यजमाना यस्यां प्रसन्नायामुषसि जातायां युगानि युग्मं पत्नीभिः सहिता भद्रं कर्म यज्ञादिकं वितन्वते विस्तारयन्ति ।

टिप्पणी—रोचमानाम्—रुच + शानच् + टाप् । मुगागमः । मर्यः—'मृङ् प्राणत्यागे' यत् निपातनात् । युगानि—युज् + घञ्, गुणाभावश्छान्दसः । (२) का अर्थ हल जोड़ना लुडविग तथा राथ करते है ।

हिन्दी व्याख्या—अपने सुन्दर उदार रूप से जगमगाने वाली उषा देवी के पीछे-पीछे सूर्य भगवान् अनुगमन कर रहे हैं मानो किसी आकर्षक युवति के पीछे कोई युवक अनुगमन कर रहा हो। जिस उषा के प्रसन्न होने पर सभी द्रष्टा नेता अपने-अपने कार्य में संलग्न होते हैं। उसी प्रकार आनन्ददायक सूर्य के प्रति सभी अपना अभिनन्दन प्रस्तुत करते हैं ।

३—

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य

चित्रा एतग्वा अनुमाद्या सः ।

नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः

परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः ॥३॥

पद-पाठ—भद्राः । अश्वाः । हरितः । सूर्यस्य । चित्राः । एतऽग्वाः अनुऽमाद्यासः । नमस्यन्तः । दिवः । आ । पृष्ठम् । अस्थुः । परि । द्यावापृथिवी इति । यन्ति । सद्यः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—भद्राः मङ्गलमयाः सुखकारिणः अश्वाः व्यापनशीलाः हरितः हरणशीलाः सूर्यस्य चित्राः विचित्राः विस्मयकराः एतग्वाः एतं शबलवर्णं प्राप्नुवन्तोऽश्वाः । अनुमाद्यासः अनुक्रमेण मादनीयाः स्तुत्याः । नमस्यन्तः अस्माभिः नमस्यमानाः पूज्यमानाः दिवोऽन्तरिक्षस्य पृष्ठम् उपरिप्रदेशम् आ अस्थुः सम्यक् प्राप्नुवन्ति । आ तिष्ठन्ति । स्थित्वा च द्यावापृथिव्यौ सद्यः एकेनैव दिवसेन परियन्ति परितः प्राप्नुवन्ति । रसहरणशीलाः सूर्यस्य रश्मय एतेन वाग्विलासेन स्तूयन्ते ।

टिप्पणी—अश्व—अश व्याप्तौ क्वन् । एतग्वाः—इण् गतौ तन् प्रत्ययः, 'इ' इत्यस्य गुणः । गम् धातो ड्व प्रत्ययः । एतं गमनम् एतव्यं प्रति ग्वः गमनं येषां ते एतग्वाः । एत शब्दः शबले वर्णे वर्तते वा, शबलं वर्णं प्रति गमनं येषां ते एतऽग्वाः । सूर्यरश्मयः । अनुमाद्यासः—मदी हर्षे, स्तुतौ च णिच् । अचोयत् । अनुमाद्यन्ति अनुमन्दन्ते, अनुमादयितुं योग्याः । नमस्यन्त—नमस् क्वच् । अस्थुः स्था + लङ् । 'गातिस्था० सिचो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—'सूर्यस्य अश्वा भद्राः, सूर्य की किरणें मंगलदायक हैं । इन्हीं का अश्व रूप में विशेषण दिया गया है—'हरितः' हरे वर्ण वाले अश्व अथा 'हरितः' नाम है इनका क्योंकि ये रस-हरण करते हैं । 'चित्राः'—विचित्र= विस्मयकारी । 'एतग्वाः' चितकबरे वर्ण को प्राप्त करने वाले अथवा गन्तव्य-पथ पर ही अग्रसर होने वाले । 'अनुमाद्यासः—अनुमादनशील=सदा प्रशन्न और आनन्दित रहने वाले—सबसे स्तुति—प्रशंसा प्राप्त करने वाले । 'नमस्यन्तः'—सबसे स्तुति–मोद-मद प्राप्त करने वाले 'दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः' अन्तरिक्ष के पीठ पर आकर विराजमान हो जाते हैं । 'सद्यः' एक ही दिन में 'द्यावापृथिवी परियन्ति' समस्त द्युलोक तथा पृथ्वी लोक में प्रवेश कर जाते हैं । सूर्य के अश्वों (किरणों) की यह महिमा है, उस सूर्य भगवान् के प्रति में प्रणत हूं, यह व्यंग्य है ।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं

मध्या कर्तोर्वितंतं संजभार ।

यदेदयुक्त हरित: सधस्था

दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥४॥

पद-पाठ—तत् । सूर्यस्य । देवऽत्वम् । तत् । महिऽत्वम् । मध्या । कर्तोः ।
विऽततम् । सम् । जभार । यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सधऽस्थात् । आत् ।
रात्री । वासः । तनुते । सिमस्मै ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—सूर्यस्य सरणात्मकस्य देवस्य सूर्याभिमानिनः तत् देवत्वं दिव्यत्वं तद् महित्वं महित्वं महत्वम् माहात्म्यम् । यत् कर्तोः कर्मणः मध्या मध्ये एव विततं विस्तीर्णं रश्मिसमूहं संजभार उपसंहारं करोति । कर्मकराश्च अस्तं गच्छन्तं सूर्यं दृष्ट्वा स्वकीयानि विस्तीर्णानि कर्माणि उपसंहरन्ति । असमाप्तान्यपि कर्माणि त्यक्त्वा ग्रामाभिमुखा भवन्ति । यदा च सधस्थात् सहस्थानात् पृथिवी-सम्बन्धिनो लोकात् हरितः रसहरणशीलान् स्वरश्मीन् आदाय अयुक्त अन्यत्र संयोज-यति आद् अनन्तरमेव रात्रिः इयं इयं संयमिनी विभावरी वासः आच्छादयित्री सिमस्मै सर्वस्मै तनुते विस्तारयति यद्वा वासरं दिनमपनीय रात्री तमः विस्तारं तनुते ।

टिप्पणी—महित्वम्—'मह पूजायाम' इन् । भावेत्व प्रत्ययः । मध्या—मध्ये सप्तम्या डादेशः । जभार – जहार, हृग्रहोभश्छन्दसि । रात्री—रात्रेश्चाजसौ इति ङीप् । सधस्थात्—सह+स्था 'घञर्थेक विधानम्' सहस्थाने 'सध' आदेशः । सिमस्मै—सर्वस्मै । कर्तोः—'कृ+तुन्' षष्ठी । तोसुन् प्रत्यय इति सायणः । कार्यारम्भ एव विततं विस्तीणम् अन्धकारं सूर्यः संहृतवान् इति सूर्यस्य देवत्वम् इति केचन ।

हिन्दी-व्याख्या—(मध्या कर्तोः) कार्य के बीच में ही (विततम्) अपने

हुए किरण जाल को यह सूर्य 'संजभार' समेट लेता है और सभी व्यक्तियों को अपना-अपना कार्य बीच में ही छोड़कर समेटना पड़ता है। यही 'सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्' सूर्य की दिव्यता और भव्यता है। 'यदा' जब 'सधस्थात्' इस सहस्थानीय पृथ्वी लोक से 'हरितः अयुक्त' अपने रस-हरण शील किरण समूह को सूर्य भगवान् समेट लेते हैं (आत्) इसके अनन्तर ही 'सिमस्मै' सबके लिये रात्रि 'वासः तनुते' अपने आच्छादक अन्धकार को विस्तीर्ण कर देती है।

५—

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे

सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।

अनन्तमन्यद्रु शदस्य पाजः

कृष्ण मन्यद्धरितः संभरन्ति ॥५॥

पद-पाठ—तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽचक्षे । सूर्यः । रूपम् । कृणुते । द्योः । उपऽस्थे । अनन्तम् । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णम् । अन्यत् । हरितः । सम् । भरन्ति ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—सूर्यः रूपं द्योः उपस्थे कृणुते—प्रेरकः सूर्यो देवः द्योः आकाशस्य उपस्थे उपस्थाने मध्ये रूपं तन् निरुपणीयं तेजः कृणुते करोति। प्रकाशयति। तत् तदानीम् उदयसमये मित्रस्य दिनाभिमानिनो देवस्य वरुणस्य रात्र्यभिमानिनो देवस्य च एतयो र्लक्षितस्य समग्रस्य संसारस्य अभिचक्षे आभिमुख्येन प्रकाशनाय। अस्य अन्यत् पाजः अनन्तं रुशत्—अन्यत् पाजः तेजः तमसो विलक्षणं बलम् दिवसे स्वकीयागमनेन उत्पादयन्ति। कीदृशं तत् ? अनन्तम्, रुशत्। अस्य सूर्यस्य हरितः रसहरणशीला रश्मयः किरणाः हरिद्वर्णा वा। अनन्तम् अन्तरहितम्। अवसानरहितम्। रुशत्—दीप्यमानम्। अन्यत् कृष्णं संभरन्ति—कृष्णं कृष्णवर्णं तमः स्वकीयापगमनेन रात्रौ कुर्वन्ति।

टिप्पणी—पाजः--बलयुक्तम्। बलयुक्तस्यापि रात्रितमसो निवारणे समर्थम्।

अभिचक्षे—अभि + चक्ष + क्विप् । उपस्थे–उप + स्था + क । पाजः—'पा—रक्षणे' पा + असुन् 'पाते बले जुट' । रुशत्–'रुशदीप्तौ' शतृ । सूर्यकिरण एव दिनस्य रात्रेश्च नियामकाः ।

हिन्दी-व्याख्या—मित्र और वरुण के रूप में दिन और रात्रि के नियामक भगवान सूर्य अपने निरूपणीय प्रकाश को समग्र आकाश में प्रकट करते हैं । इस सूर्य के अनन्त—सीमाहीन देदीप्यमान प्रकाश को दिवस के रूप में तथा रसहरणशील किरणें स्वकीय—अनागम से रात्रि के रूप में प्रकट करती हैं । सूर्य भगवान ही अपनी उपस्थिति तथा अनुपस्थिति से दिवस का प्रकाश तथा रात्रि का अन्धकार प्रकट करते हैं । इससे सूर्य का महान् माहात्म्य प्रकट होता है ।

६— **अद्या देवा उदिता सूर्यस्य**

निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्

अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

पद-पाठ—अद्य । देवाः । उत्ऽइता । सूर्यस्य । निः । अंहसः । पिपृत । निः । अवद्यात् । तत् नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य अस्मिन् काले सूर्यस्य उदिता आदित्यस्य उदये हे देवाः ! हे सूर्यरश्मयः यूयं सर्वे अंहसः पापात् निष्पिपृत निष्कृष्य पालयत अवद्याच्च निष्पिपृत । निन्दायोग्याच्च कर्मणः पालयत । यदिदं चास्माभिः ... तन्मित्रादयो देवा मामहन्ताम् । अनुमन्यन्ताम् । गौरवान्वितं सम्पादयन्तु ।

टिप्पणी—उदिता – उत् + इण + क्तिन् । सप्तमी । वैदिक प्रयोगः । ... निपातस्येति दीर्घः । पिपृत—' पृ पालनपूरणयोः' लोटि । शपः श्लुः । द्वित्वे उरत् । 'अर्तिपिपर्त्योश्च' इतीत्वम् । 'ऋचितुनु०' इति दीर्घः ।

(२) पटिर्सन ने अंहस् का अर्थ 'भय' तथा अवद्य का अर्थ लज्जा किया है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न लज्जा।

हिन्दी-व्याख्या—'सूर्यस्य उदितौ' आज इस सूर्योदय की रमणीय वेला में (देवा: अंहस: निष्पिपृत) हे देवगण (सूर्य की किरण) आप अपराधों से मेरी मुक्ति दिलायें। 'अवधात् च निष्पिपृत' पाप जन्य निन्दनीय अपवादों से भी मेरी रक्षा करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी, द्यौ आदि देवगण भी सदा शुभकर्मों के लिये मुझे प्रोत्साहन देते रहें जिससे मेरी गरिमा दिनों दिन समृद्ध हो।

मण्डल १

अग्नि-सूक्तम्

सूक्त १४३

ऋषि—दीर्घतमा:। देवता—अग्नि:। छन्द: त्रिष्टुप् ८, जगती—१, २, ३, ४, ५, ६, ७।

१—

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये

वाचो मतिं सहस: सूनवे भरे।

अपां नपाद्यो वसुभि: सह प्रियो

होता पृथिव्यां न्यसीददृत्विय: ॥१॥

पद-पाठ—प्र। तव्यसीम्। नव्यसीम्। धीतिम्। अग्नये। वाच:। मतिम्। सहस:। सूनवे। भरे। अपाम्। नपात्। य:। वसुऽभि:। सह। प्रिय:। होता। पृथिव्याम्। नि। असीदत्। ऋत्विय: ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अहम् 'अग्नये' अतितरां दीप्ताय अग्नये 'तव्यसीम्' अतिशय वर्धयित्रीं 'नव्यसीम्' नवीनामद्भुतां 'धीतिम्' प्राप्तावधानां क्रियां 'भरे' सम्पादयामि 'सहसः सूनवे' तस्मै साहसनिर्माणकुशलाय अग्नये 'वाचो मति भरे' स्वकीयां स्तु वाचः वाग्देवताया मनीषां निष्पादयामि। यो हि अग्निः 'अपां नपात्' अद्भ्य ओष ततश्चाग्निरिति अपां नप्ता, अथवाऽग्निर्विद्युद् रूपेणावस्थितोऽपां न तातयितां। 'प्रियः' प्रीणयिता 'वसुभिः सह' धनधान्यैः सह 'पृथिव्याम् न्यसीदत् ऋत्वि अधिगतप्रदानसमयः पृथिव्यां हि साधुत्वेनावस्थितो विराजते ।

टिप्पणी—तव्यसीम्—नव्यसीम्—तुवृद्धौ इति धातोः तृच् । अति ईयसुन् प्रत्ययः। 'तुरिष्ठे०' इति तृलोपः। तवीयस् इति जाते। छान्दस ईकारलो नव शब्दादीयसुन। वसुभिः—निवास—योग्यैः धनैः।

हिन्दी-व्याख्या—अहम् 'अग्नये' अग्निदेवता के लिये 'तव्यसीं नव्यसीं' अत्यन्त संवर्धनशील, अभिनव 'धीतिम्' क्रिया को 'भरे' धारण करता हूं। 'सह सूनवे' उस शक्ति के सुपुत्र के लिये (वाचो मतिम्) उत्तम वाङ्मय की मनीषा अभिव्यक्त करता हूं। 'योऽपानपात्' जो अग्निदेवता जलीय नप्ता हैं। =जल ओषधि—वनस्पति और उनसे अग्नि, इस प्रकार जल का नप्तृत्व सिद्ध हुआ अ विद्युत रूप में अवस्थित अग्नि जल का स्तम्भन करता है। (अपां न पातयिता)। सबके 'प्रिय' शुभ चिन्तक हैं। 'ऋत्वियः' प्रत्येक ऋतु काल तथा अवसर विज्ञापित करने वाले हैं और वसुभिः सहः धन-धान्य मणि-माणिक्य आदि के 'पृथिव्याम्' पृथ्वी पर 'न्यसीदत्' सर्वथा सर्वदा अधिष्ठित रहते हैं।

२—

स जायमानः परमे व्योम—

न्याविरग्निरभव न्मात रिश्वने।

अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना

प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२॥

पद-पाठ—सः। जायमानः। परमे। विऽओमनि। आविः। अ अभवत्। मातरिश्वने। अस्य। क्रत्वा। संऽइधानस्य। मज्मना। प्र। द्यावा

शोचिः । पृथिवी इति । अरोचयत् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—'सः जायमानः' सोऽग्निरुत्पद्यमानः 'परमे व्योमनि' उत्कृष्टे रक्षणात्मके प्रदेशे 'मातरिश्वने आविः अभवत्' अन्तरिक्षसंचारिणे वायवे पूर्वम् आविरभवत् । वायु संयोगं प्राप्य उज्ज्वलितः । यद्वा फलनिर्मातरि यज्ञे श्वसिति कामनया उच्छ्वसिति उल्लासं तनुते इति मातरिश्वा पुरुषः । स एनं प्रथमं साक्षात्करोति । 'अस्य समिधानस्य मज्मना क्रत्वा—' अस्य इन्धनैः सम्यक् प्रवर्धमानस्य बलवता कर्मणा 'शोचिः' दीप्तिः । द्यावा पृथिवी प्र अरोचयत्' द्युलोकं पृथ्वीलोकं चादीपयत् ।

टिप्पणी—समिधानस्य–इन्धी दीप्तौ । शानच् नकारलोपश्छान्दसः । व्योमनि-वि+अव+मनिन् । सप्तम्येकवचने । क्रत्वा—क्रतुना इति प्राप्ते ।

हिन्दी व्याख्या—'सः जायमानः' वह उत्पन्न होता हुआ 'परमेव्योमनि' उत्कृष्ट रक्षणात्मक स्थान में 'मातरिश्वने आविः अभवत्' मातरिश्वा वायु अथवा यजमान के लिए प्रकट हुआ । इन्होंने ही प्रथम-प्रथम साक्षात्कार किया । 'अस्य समिधानस्य' ईधन-शक्ति के द्वारा निरन्तर प्रवर्धमान इस अग्नि के 'मज्मना क्रत्वा' शक्तिशाली कार्य से उत्पन्न 'शोचिः' दीप्ति समस्त पृथिवी लोक तथा द्युलोक को 'अरोचयत्' अभिव्यक्त करती है । बिना ज्ञानग्नि के कोई भी पदार्थ प्रकाशित नहीं रहता ।

३—

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः

सुसंदृशः सु प्रतीकस्य सुद्युतः ।

भात्वक्षसो अत्यक्तु र्न सिन्धवो—

ऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥३॥

पद-पाठः—अस्य । त्वेषाः । अजराः । अस्य । भानवः । सुऽसंदृशः । सुऽप्रतीकस्य । सुऽद्युतः । भाऽत्वक्षसः । अति । अक्तुः । न । सिन्धवः अग्नेः । रेजन्ते । असंसन्तः । अजराः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्याग्ने: त्वेषा दीप्तय: अजरा जरारहिता: । न के
ज्जीर्यन्ते । तथाऽस्य सुप्रतीकस्य सुन्दराकारस्य भानव: रश्मय: सुसन्दृश: नक्
रामा: । सुद्युत: सर्वतो द्योतमाना: । अस्याग्ने: भात्वक्षस: प्रभाशक्तय: सिन्धु
स्पन्दनशीला: किरणा इव अत्यक्तु: अक्तु जगदञ्जनभूतं नैशं तम: अति
वर्तन्ते । एतेऽग्ने: किरणा अजरा जरारहिता: असस्न्त: स्वदाहपाकप्रकाशाद्यधि
पारेषु अस्वपन्त: अगृहीतविरामा: न रेजन्ते न कम्पन्ते । नान्यैश्चाल्यन्ते ।

टिप्पणी—भात्वक्षस:—भा एव त्वक्ष: बलं यस्यासौ भात्वक्षा:, ते
क्षस: । अक्तु:—अनक्ति लिम्पति जगत् तमसा इति अक्तु: रात्रि: । सुसं
दृश् + क्विप् । सुद्युत:—द्युत् + क्विप् । असस्न्त:—षस—षसने + शतृ ।

हिन्दी-व्याख्या—इस अग्नि की 'त्वेषा:' दीप्तियाँ 'अजरा:' जरा-
हैं । 'अस्य भानव: सुसन्दृश:' इसके विस्फुलिंग बहुत ही रमणीक हैं । 'सुप्रती
सुन्दर मुख वाले इस अग्नि की 'सुद्युत:' चमक-दमक अतीव मनोहर है । 'अ
रात्रि के तम का अतिक्रमण करने वाली 'सिन्धव:' इस अग्नि की स्यन्दनशील
'भात्वक्षस:' चमक से पूर्ण बलवती हैं । यह अग्नि की 'अजरा:' जरारहित दी
'असस्न्तो' निरन्तर सावधान रहकर सर्वत्र 'रेजन्ते' कम्पाकुल होकर विरा
रहती हैं ।

४—

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं

नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।

अग्निं तं गीर्भि हिनुहि स्व आदमे

य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥४॥

पद-पाठ:—यम् । आऽईरिरे । भृगव: । विश्वऽवेदसम् नाभा । पृथि
भुवनस्य । मज्मना । अग्निम् । तम् । गीःऽभि: । हिनुहि । स्वे । आ । दमे ।
एक: । वस्व: । वरुण: । न । राजति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यम् अग्निं भृगव: पापस्य भर्जका: भुवनस्य मज्मना

पृथिव्या नाभौ वेद्याम् ईटिरे प्रेरितवन्तः स्थापितवन्तः । कीदृशम् अग्निं विश्ववेदसम् विश्वधनम्, यद्वा विश्वप्रज्ञम् । तमग्निं स्वे दमे स्वकीय एव गृहे गीर्भिः स्तुतिभिः आ हिनुहि प्राप्नुहि । यथा वरुणः तमोनिवारक आदित्यः सर्वस्य ईश्वरस्तथाऽग्निरपि एको मुख्यः वस्वः विभवस्य राजति ईश्वरो भवति ।

टिप्पणी—हिनुहि–हि गतौ लोट् । मध्यमपुरुषैकवचने । हेर्लोपो न । वरुणः—आदित्यः । निवारयति तमः । विश्ववेदसम्—वेद इति धन नाम । सर्वधनम् । विश्वं वेत्तीति वा विश्ववेदाः तम् विश्ववेदसम् । भृगवः—भृगुगोत्रोत्पन्नाः । यद्वा भृगवो भर्जनात् । दमः—दम इति गृहनाम दमनात् । वस्वः—वसुनः ।

हिन्दी-व्याख्या—'विश्ववेदसम्' सभी प्रकार धन और विद्या से सम्पन्न जिस अग्नि को 'भृगवः' पाप के भर्जक भृगुगोत्रीय ऋषियों ने 'नाभा पृथिव्याः' पृथ्वी की वेदी में 'आईटिरे' प्रेरित किया और 'भुवनस्य मज्मना' प्राणिमात्र की शक्ति से जिसे सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित किया । उस अग्नि को अपने संयमयुक्त भवन में स्तुतियों से प्राप्त करो । जो अग्नि 'वस्वः' धन-वैभव का एक मात्र ईश्वर है, जिस प्रकार कि सभी प्रकार के धनैश्वर्य के स्वामी वरुण = आदित्य देवता हैं ।

५–

न यो वराय मरुतामिव स्वनः

सेनेव सृष्टा दिव्या यथा शनिः ।

अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति

योधो न शत्रून् स वना न्यृञ्जते ॥५॥

पद-पाठ—न । यः । वराय । मरुताम् ऽ इव । स्वनः । सेना इव । सृष्टा । दिव्या । यथा । अशनिः । अग्निः । जम्भैः । तिगितैः । अत्ति । भर्वति । योधः । शत्रून् । सः । वनानि । ऋञ्जते ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यो अग्निः 'न यो वराय' वराय वरणाय निग्रहाय नैव योग्यः । न केनापि मरुतां स्वन इव, तेजस्विनी सेना इव, दिव्या अशनिः इव ग्रहीतुं

शक्यते यमग्नि: । मरुतां पवनाभिमानिनां देवानां स्वनो गर्जनं को ग्रहीतुं शक्नोति शत्रुक्षयार्थं प्रेषिता सेना यथा सर्वातिशायिनी भवति तथैवायमग्नि: । दिवि भवा विद्युत् यथा भूमौ पर्वते वा पतन्ती न केनापि निवार्यते तथा ऽयमग्निर्न केन वराय निवारणाय उपयुक्तो भवति तेजसाधिक्यात् सर्वातिशयाद् दिव्यभावात् सोऽयमग्नि 'तिगितै: जम्भै: अत्ति' अत्यन्ततीक्ष्णै: जम्भै दन्तस्थानीयै: ज्वालाभि अत्ति विरोधिनो भस्मसात्करोति । सोऽग्नि: 'योधो न शत्रून्' यथा संप्रहारकुशल: शूर: शत्रून् विनाशयति तथा ऽग्नि: भर्वति शत्रून् हिनस्ति । 'स वना ऋञ्जते' सोऽग्नि: वृक्षसमूहान् ऋञ्जते दग्धान् करोति ।

टिप्पणी—तिगितै:—तिज—निशाने + क्त: । इडागम: कुत्वं च । वरा वरीतुं योग्याय । दिव्या-दिविभवा । सृष्टा—सृज विसर्गे + क्त: । भर्वति—हिंसायाम् । लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—यह अग्नि 'न वराय' कभी भी ग्रहण की परिधि में आ सकता । यहाँ तीन दृष्टान्त हैं—'मरुतां स्वन इव' मरुद्गण की गर्जना प्रकार पकड़ में नहीं आ सकती । 'सृष्टा सेना इव' प्रकर्षारुढ सेना जिस प्र निरोध-रहित होकर अग्रसर होती है और 'दिव्या अशनि: यथा' मेघोदर से नि हुई बिजली जिस प्रकार बेरोक-टोक गिरती है इसी प्रकार अग्नि की गति निरोध नहीं हो सकता । 'तिगितै: जम्भै: अग्नि अत्ति' अपनी तीक्ष्ण ज्वाला अग्नि विरोधियों को भस्मसात् कर देता है और 'योधो न शत्रून्' संप्रहार शूर के समान 'सर्वति' शत्रुओं का विध्वंस करता है । 'स वनानि ऋञ्जते' अग्नि वृक्ष-समूहों का प्रसाधन करता है—पर्वत के केश-कलाप को देता है ।

६—

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्

वसुष्कु विद्वसुभि: काममावरत् ।

चोद: कुवित्तुतुज्यात्सातयेधिय:

शुचिऽ प्रतीकं तमयाधिया गृणे ।।६।।

पद-पाठ—कुवित् । न: । अग्नि: । उचथस्य । वी: । असत् । वसु: ।

वसुऽभिः । कामम् । आऽवरत् । चोदः । कुवित् । तुतुज्यात् । सातये । धियः ।

शुचि ऽ प्रतीकम् । तम् । अया । धिया । गृणे ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अयमग्निः अस्माकमुचथस्य उक्थस्य स्तुतिसमूहस्य कुवित् प्रीत्या वीः कामयिता असत् भवेत् । अयं वसुः वासयिता वसुभिः धनैः कामं प्रभूतं कुवित् अत्यर्थम् अवरत् प्रदानेन कामान् प्रपूरयतु । अयमग्निः चोदः प्रेरकः सन् 'धियः सातये' कर्मलाभाय 'कुवित्, अत्यर्थ 'तुतुज्यात्' त्वरयतु । शुचिप्रतीकं शोभन-स्वरूपम् अग्निमहम् अनया धिया स्तुतिरूपया गृणे स्तौमि ।

टिप्पणी—असत्—भवतु । लेट् । आवरत्—वृञ् लेट् । तुतुज्यात्—तुज प्रेरणे । शपः श्लुः । चोदः चुद प्रेरणे । घञ् । अया-अनया । सातये—सनोतेः 'जनसनखनाम्०' इत्याकारादेशः । चतुर्थी ।

हिन्दी-व्याख्या—'अयमग्निः उचथस्य नः वीः' यह उदारप्रेरणाप्रद अग्नि हमारे स्तुति-समूहों को प्रीति पूर्वक स्वीकार करें । 'वसुः वसुभिः कामम् आवरत्' सबके निवास-भूत अग्नि अपने धन-साधन के उपायों से हमें पूर्ण-मनोरथ करें । 'चोदः' अत्यन्त प्रेरक बनकर 'धियः सातये' कर्म की प्राप्ति के लिये 'कुवित् तुतु-ज्यात्' निरन्तर हमें त्वरायुक्त करते रहें । शुचि प्रतीकम्' सुन्दर—स्वरूप से प्रशंसित इस अग्नि देव की हम 'अया' स्तुतिपूर्ण वाणी में 'धिया' मनीषा पूर्वक 'गृणे' स्तुति करते हैं ।

७—

घृत प्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम्

अग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।

इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्

शुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७॥

पद-पाठ—घृत ऽ प्रतीकम् । वः । ऋतस्य । धूः ऽ सदम् । अग्निम् । मित्रम् ।

न । सम्ऽइधानः । ऋञ्जते । इन्धानः । अक्रः । विदथेषु । दीद्यत् । शुक्रऽवर्णा

उत् । ऊ इति । नः यंसते । धियम् ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या—'घृत प्रतीकम्' प्रदीप्तज्वालास्वरूपम् 'ऋतस्य धूर्षदं' यज्ञस्य धुटि प्रमुखे स्थाने विराजमानम् 'मित्रं न' मित्रम् इव प्रियं समिधानः लक्षणैः इध्मैः दीप्यमानः अग्निं यजमानः प्रसाधयति । सोऽयमग्निः इत्थम् 'इन्धानः' दीप्तः सन् 'अक्रः' अन्यैः अनाक्रान्तः 'विदथेषु' स्तोत्र निमित्तेषु दीद्यत् स्वयं दीप्यमानो भवति । सोऽग्निः अस्माकं 'शुक्रवर्णां धियम्' रागद्वेषरहितां निर्मलां प्रज्ञां तेजयति ।

टिप्पणी—घृतप्रतीकम्—घृक्षरणदीप्त्योः । प्रदीप्तज्वालास्वरूपम्, धूर्षदम्—धू + सद + अच् । अक्रः—अन्यैनराक्रान्तः । नञ् + क्रम । ऋञ्जते प्रसाधनकर्मा । विदथेषु—रुविदिभ्यां ङित् । वेत्ति इति विदथः ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रदीप्त ज्वाला रूप अंग वाले 'ऋतस्य धूर्षदम्' यज्ञ धुरा को धारण करने वाले अग्नि की हम 'मित्रं न' मित्र के समान 'समिधानः ऋञ्जते' स्तुतियों से सम्वर्धन करते हैं। स्तोत्ररूपी इन्धन से 'इन्धानः' दीप्त अग्नि 'अक्रः' अनाक्रान्त होकर 'विदथेषु दीद्यत्' सर्वदैव यज्ञ-वेदी में अभिवृद्धि पाते रहें। अग्नि देवता हमारे लिये शुक्लवर्णा राग-द्वेष रहित निर्मल वाणी 'धियम्' को प्रदान करते रहें।

८—

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने

शिवेभि र्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।

अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे

ऽनिमिषद्भिः परिपाहि नो जाः ।।८।।

पद-पाठ—अप्र ऽ युच्छन् । अप्रयुच्छत्ऽभिः । अग्ने । शिवेभिः ।

पायुभिः । पाहि । शग्मैः । अदब्धेभिः । अदृयितेभिः । इष्टे । अनिमिषत्ऽभिः ।

परि । पाहि । नः । जाः ।

संस्कृत-व्याख्या—हे अग्ने ! शिवेभिः कल्याणोपायैः अप्रयुच्छद्भिः अप्रमाद्यद्भिः सावधानैः शग्मैः निरूपद्रवैः पायुभिः रक्षणसाधनैः त्वम् अप्रयुच्छन् अप्रमाद्यन् अनवधानरहितः सन् नः अस्मान् पाहि सततं रक्ष । अथ च अदब्धेभिः अहिंसितैः अदृपितेभिः अनभिभूतैः अनिमिषद्भिः निमेषरहितैः निरालसैः हे इष्टे ! अग्ने ! सर्वैरेषणीयाग्ने ! नोऽस्माकं जाः प्रजाः पुत्रपौत्रादीन् परिपाहि परितः पालय ।

टिप्पणी—शिवेभिः—शिवैः, अदब्धेभिः—अदब्धैः, अदृपितेभिः—अदृपितैः । एतेषु भिसः ऐस् भावो न । अप्रयुच्छन्—युच्छ प्रमादे । शतृ । अदब्धेभिः—दम + क्तः । पायुभिः—पाति रक्षतीति पायुः । पा + उण् । तैः । इष्टेः—इष्टिः सम्बुद्धौ ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्निदेवता: आप प्रमाद-रहित कल्याणमय साधनों से सदा 'पाहि नः' हमारी रक्षा कीजिये । हम सदा उन निरूपद्रव और आप के द्वारा दिये गये आनन्ददायक साधनों से शान्त, प्रसन्न और प्रगतिशील रहें । 'परि पाहि नो जाः' हमारे पुत्र, पौत्र आदि सन्ततियों की भी 'अहयितेभिः अदब्धेभिः, अभिमिषद्भिः पायुभिः' अपने सिद्ध शौर्य-सम्पन्न, प्रतापपूर्ण, निरालस रक्षा-साधनों से सदैव रक्षा कीजिये ।

मण्डल १

विष्णु सूक्तम्

सूक्त १५४

ऋषि—दीर्घतमा । देवता—विष्णुः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं

यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं

विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥

पद-पाठः—विष्णोः । नु । कम् । वीर्याणि । प्र । वोचम् । यः । पार्थिवानि ।

वि ऽ ममे । रजांसि । यः । अस्कमायत् । उत् ऽतरम् । सध ऽ स्थम् । विऽचक्रमाणः ।

त्रेधा । उरुऽगायः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मनुष्याः ! विष्णोः वेवेष्टि जगत् इति विष्णुः तस्य सर्वव्यापकस्य वीर्याणि प्रशस्तानि वीर कर्मांणि नु कं प्रवोचम् अत्यादरेण प्रब्रवीमि । यः विष्णुः पार्थिवानि रजांसि पृथिवीसम्बन्धिनो रञ्जनात्मकाँल् लोकान् अथ तत्राभिमानिनो ऽग्निवायुसूर्यरूपान् देवांश्च विममे निर्ममे । यश्च विष्णुः उत्तरं सधस्थं सहस्थानं लोकाश्रयभूतमन्तरिक्षम् अस्कमायत् स्तम्भितवान् । लोकत्रयात्मकरूपम् अन्तरिक्षमपि दिष्टवान् । तच्च ध्रुवं कृतवान् । त्रेधा त्रिप्रकारं स्वस्थ लोकान् क्रममाणः उरुगायः उरुभि र्बहुभि र्महद्भिश्च गीयमानः अतिप्र गीयमानो वा । एवं भूतस्य विष्णो र्वीरकर्माणि प्रब्रवीमि ॥१॥

टिप्पणी—विष्णोः—'विष्लृ व्याप्तौ' नु । प्रवोचम्—प्र + वच + लङ् उत्तमपुरुषैकवचने छन्दसि । पार्थिवानि—पृथिवी + अण् । पृथिव्याः सम्बन्धीनि । अस्कमायत्—स्कम्भ + लङ् + शायज् छन्दसि । विचक्रमाणः—वि + क्रम + लिट् कानच् । उरुगायः—उरुभिर्गीयते—उरु + गै + अच् । रजांसि—लोकाः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मनुष्यों ! भगवान् विष्णु के वीरकर्मों को मैं कह रहा हूं जिन्होंने अग्नि-वायु और आदित्य रूप से पृथिवी सम्बन्धित लोकों की रचना की है, जिन्होंने विस्तीर्ण सहस्थानभूत आश्रय रूप में अवस्थित अन्तरिक्ष लोक का निर्माण किया है, जो स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण रूप से अवस्थित होकर इन स्वर्गादि लोकों में सदा विद्यमान रहते हैं और महान् पुरुषों से अभिनन्दन पाते रहते हैं।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु

अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२॥

पद-पाठः—प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण । मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः । यस्य । उरुषु । त्रिषु । विऽक्रमणेषु । अधि ऽक्षियन्ति । भुवनानि । विश्वा ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—विष्णुरेव वीर्येण स्वकीयेन प्रभुकर्मणा सर्वत्र हि स्तवते स्तूयते मृगो न भीमः यथा भयकारी सिंहः कुचरः क्वायं न चरतीति सर्वत्र गतिकर्मा गिरिष्ठाः उन्नत-प्रदेशस्थायी, स यथा ऽऽकृतिविशेषात् प्रशंसामाप्नोति तथा अप्रतिहतगतिरयं विष्णुः स्तुतिं भजते । यस्य विष्णोः त्रिषु विक्रमणेषु पादप्रक्षेपेषु विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि अधिक्षियन्ति आश्रित्य निवासं भजन्ते । स स्तूयते ।

टिप्पणी—स्तवते- स्तूयते, यक् स्थाने व्यत्ययेन शप् । गिरिष्ठाः गिरिषु तिष्ठति क्विप् । मृगः—मृगयिता, अन्वेष्टा । मृज् + क । कुचरः—कु + चर + ट ।

(२) पटिर्सन ने कुचर का अर्थ 'स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने वाला' किया है। 'गिरिष्ठाः' का अर्थ 'पर्वतों में विचरण करने वाला' किया है। ग्राहामान ने 'वीर्येण' का अर्थ 'बल' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'वीर्येण' अपने पराक्रमयुक्त शुभ कार्यों से विष्णु की ही सर्वत्र प्रशंसा होती आयी है । 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः' विष्णु का तेजस्वी मस्तक भयंकर सिंह जैसा है । दोनों उन्नत प्रदेशों में रहने वाले तथा निर्बाध गति से विचरण करने वाले हैं । विष्णु की ही तीन विस्तीर्ण चरणों की सीमा में समग्र भुवन शान्तिपूर्वक आश्रय तथा विश्रान्ति पाते हैं । अतः महानुभाव एवं प्रभावपूर्ण विष्णु ही स्तुति-प्रशंसा के लिये अभिनन्दनीय पात्र हैं ।

३—

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म

गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थम्

एको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥

पद-पाठ—प्र । विष्णवे । शूषम् । एतु । मन्म । गिरि ऽ क्षिते । उरु

गायाय वृष्णे । यः । इदम् । दीर्घम् । प्र ऽ यतम् । सध ऽ स्थम् । एकः

विऽममे । त्रिऽभिः । इत् । पदेभिः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्माकं स्तुतिजन्यं मन्म मननीयं शूषं शोषकं बलं विष्णवे व्यापकाय देवाय प्र एतु प्राप्नोतु । कीदृशाय विष्णवे गिरिक्षिते गिरिवदुन्नते प्रदेशे स्थिताय वाचि स्थिताय वा । उरुगायाय उरुभि र्महात्मभि र्गीयमानाय । वृष्णे वर्षित्रे । यो विष्णुरिदं दीर्घमति विस्तीर्णं प्रयतं संयतं सधस्थं सहस्थानं भुवनत्रयम् एकः एक एवासहाय एवाद्वितीयः सन् त्रिभिःपदेभिः पादै विममे निर्मितवान् विशेषेणान्तर्गतं करोति ।

टिप्पणी—शूषम्—शूष + घञ् । गिरिक्षिते—गिरौगिरि वा क्षियति, तत्र 'क्षिनिवासे' क्विप्, तुगागमः । वृष्णे—वृष् + कनिन् । चतुर्थी । उरुगायाम । उरु गा + युक् + अण् । सधस्थम्—सह + स्था + क । हकारस्य धकारः । विममे—वि + मा + लिट् । शूषम्—शोषकं बलम् ।

हिन्दी-व्याख्या—सर्व व्यापक विष्णु भगवान् के लिये हमारी स्तुतियों से उत्पन्न मननीय, शोषक शक्ति प्राप्त होती रहे । वह विष्णु निरन्तर वाग्—बल अथवा गिरि=उन्नत प्रदेशों में निवास करने वाले हैं । जो 'उरुगायाय'—श्रेष्ठ पुरुषों से निरन्तर प्रशंसनीय हैं और 'वृष्णे' सुखों की आनन्द-वृष्टि करने वाले हैं जो 'त्रिभिः इत् पदेभिः' अपने तीन चरणों में एक अकेले ही इस दीर्घ विस्तृत सहस्थान रूप भुवनत्रय का निर्माण करते हैं । जो कि लोकत्रय 'प्रयतम्' अपने नियम और उपक्रम में विधिवत् संयत और अनुशासित है ।

४—

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि—

अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।

अशोककुमार

य उ त्रि धातु पृथिवीमुत द्याम्

एको दाधार भुवनानि विश्वा ।।४।।

पद-पाठ—यस्य । त्री । पूर्णा । मधुना । पदानि । अक्षीयमाणा । स्वधया । मदन्ति । यः । ऊँ इति । त्रिऽधातु । प्रथिवीम् । उत । द्याम् । एकः । दाधार । भुवनानि । विश्वा ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—यस्य विष्णोः अक्षीयमाणानि मधुना पूर्णानि त्रीणि पदानि स्वधया स्वकीयया प्रधानशक्त्या मदन्ति सुखयन्ति । य उ त्रिधातु पृथिव्यप्तेजोरूपं धातुत्रयं दाधार धृतवान् । पवनाकाशयोरपि त्रिवद्ग्रहणे ग्रहणम् । य एवेमां प्रथिवीम् अपि च द्यां द्युलोकं भुवनानि चान्यानि समग्राणि प्रभुत्वेनावस्थितः संधारयति ।

टिप्पणी—अत्र त्रिधातु इति त्रिवृत् करणात् सृष्टिरुत्पादिता । त्री—त्रीणि । जस् लोपः । दीर्घत्वम् । अक्षीयमाना—अक्षीयमाणानि = क्षि + यक् + मुक् + शानच् । न क्षीयमाणानि अक्षीयमाणानि । त्रिधातु—त्रयाणां धातूनां समाहारः ।

हिन्दी-व्याख्या— जिस विष्णु के कभी न क्षीण होने वाले माधुर्य पूर्ण पद अपनी स्वधाशक्ति से प्रधान-पुरुष की संश्लिष्टि से आनन्दित करते हैं । जो विष्णु भगवान् पृथिवी-जल तथा तेज को धारण करते हैं तथा आकाश और वायु का भी नियमन करते हैं । यह सत्य है कि एक ही विष्णु समस्त भुवनों के धारक और पोषक हैं ।

५—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां

नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था

विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

पद-पाठ—तत् । अस्य । प्रियम् । अभि । पाथः । अश्याम् । नरः । देवऽयवः । मदन्ति । उरुऽक्रमस्य । सः । हि । बन्धुः । इत्था । विष्णोः । पदे । परमे । मध्वः । उत्सः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य विष्णोः प्रियं पाथः पेयं ब्रह्मलोकम् अभि व्याप्नुयाम् । यत्र देवयवः देवत्वं कामयमानाः नरः नेतारः मदन्ति तृप्तिं प्राप्नुवन्ति उरुक्रमस्य अधिकं क्रममाणस्य विष्णोः व्यापकस्य परमे पदे उत्कृष्टे स्थाने मधुरस्य उत्सः निष्यन्दो वर्तते । अनेन प्रकारेण स विष्णुः सर्वेषां बन्धुः स्नेहा- ऽस्ति ।

टिप्पणी—देवयुः—देव + यु + क्विप् । प्रथमा बहुवचने । इत्था—इत्थं मध्वः—मधुनः । षष्ठी । पाथ—पा + असुन् । थुडागमः । अश्याम्—अश् + लिङ् उत्तमपुरुषैकवचने ।

(२) पिशेल ने 'इत्था बन्धुः' का अर्थ किया है—'मित्रों का समाज ।'

हिन्दी-व्याख्या—विष्णु जगत् के विधाता-बन्धु हैं, उनके पद को प्राप्त कर लेने पर फिर दुःख-जन्म आदि की पुनरावृत्ति नहीं होती । जहाँ पर भूख-प्यास जरा-मरण-पुनरावृत्ति आदि का भय नहीं है, वह विष्णु का परम पद = श्रेष्ठ स्थान है । सारे संसार को अपने पद-विक्रम से व्याप्त करने वाले विष्णु के उत्तम पद में माधुर्य का निष्पन्द झरता रहता है । मैं भी उस विष्णु के प्रिय 'पाथ' पात्र ब्रह्मलोक का आनन्द प्राप्त करूँ । यज्ञ-दान-शुभकर्म आदि से 'देवयवः' देवत्व की कामना वाले 'नरः' नेतृवृन्द जिस अनश्वर सुख की प्राप्ति करते हैं, वह आनन्द मुझे भी प्राप्त हो ।

६—

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै

यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः

परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥

पद-पाठ—ता । वाम् । वास्तूनि । उश्मसि । गमध्यै । यत्र । गावः । भूरिऽशृङ्गाः । अयासः । अत्र । अह । तत् । उरुऽगायस्य । वृष्णः । परमम् । पदम् । अव । भाति । भूरि ।।६।।

संस्कृत-व्याख्या—वाम् युवयोः इन्द्राविष्णवोः ता तानि वास्तूनि निवास-योग्यानि स्थानानि गमध्यै गमनाय उश्मसि वयं कामयामहे । येषु लोकेषु भूरिशृङ्गाः प्रभूतविषाणाः प्रभूतकान्तयः अयासः अयनशीलाः गमनस्वभावाः क्रियावन्तः गावः धेनवः किरणावा लसन्ति । अत्र ह एषु लोकेषु उरुगायस्य श्रेष्ठपराक्रमस्य महायशसः वृष्णो मनोरथपूरकस्य विष्णोः तत् परमम् उत्कृष्टं पदं स्थानम् अवभाति ।

टिप्पणी—उश्यसि—कामयामहे—'वश कान्तौ' लट्, सम्प्रसारणम् । अयासः—अयाः 'आज्जसेरसुक्' । गन्तारः । वाम्—युवयोः युष्मदर्थं वा । गमध्यै—तुमर्थेऽध्यै । वृष्णः—वृष + कनिन् भूरिशृङ्गाः—बहुभिराश्रयणीयाः, अत्यन्तोन्नताः । अयासः—यासः—गन्तारः, अतादृशाः, अत्यन्त प्रकाश युक्ताः ।

हिन्दी-व्याख्या—महान् गतिशील विष्णु की परम प्राप्ति का स्थान अपनी ही महिमा से स्फुरित हो रहा है । आप सबके लिए उन प्रसिद्ध स्थानों तथा प्रवेश के लिए 'उश्मसि' हम कामना करते हैं जिन स्थानों पर 'गावः' किरणें बहुतों को आश्रय देती हुई प्रवेश करती हैं । कामनाओं की वृष्टि करने वाले और उन्हें पूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु के आधार रूप द्युलोक में स्तुत्य निरतिशय—आनन्द को देता है ।

मण्डल १

द्यावापृथिवी-सूक्तम्

सूक्त १६०

ऋषि—दीर्घतमाः, छन्दः—जगती ।

१— ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव—

ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।

सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते

देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

पद-पाठ—ते इति । हि । द्यावापृथिवी इति । विश्वऽशंभुवा । ऋत

इत्यृतऽवरी । रजसः । धारयत्कवी इति धारयत्कवी । सुजन्मनी इति सुजन्म

धिषणे । इति । अन्तः । ईयते । देवः । देवी इति । धर्मणा । सूर्य

शुचिः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—इमे द्यावापृथिव्यौ 'विश्वशम्भुवा' समग्रस्य विश्वस्य सुखदात्र्यौ 'ऋतावरी' जगतो धारणाय शुभसत्यजलवत्यौ रजसः उदकपरमा 'धारयत्कवी' धारणशीले 'सुजन्मनी' शोभन प्रादुर्भावे 'धिषणे' धर्षणकुशले विद्योतमाने परां शोभां धारयतः । 'अन्तः' एतयोरन्तराले 'शुचिः' रागद्वेष-विव 'देवः' द्योतमानः 'धर्मणा' उदकधारण प्रकाशपाचनकर्षणादिव्यापारविद सूर्यः सदैव 'ईयते' स्वकीयं महिमानं स्थापयति ।

टिप्पणी—धारयत्कवी—धृधातोर्णिचि शतृ । धारयन्त्यौ कवी चेति । यत्रास्ति तत् कवि, स्त्रियौ कवी । मतुबर्थे क शब्दात् वि प्रत्ययः । ऋतावरी— शब्दात् 'छन्दसीवनियौ०' इति वनिप् । 'वनोरच' इति ङीप् रेफश्च ।

मैक्डानल ने ऋतावरी का अर्थ 'नियम में रहने वाले' किया है । रजसः का अर्थ 'वायु के', धारयत्कवी का अर्थ 'ऋषि-रक्षक' और धर्मणा का अर्थ प्राकृतिक नियम किया हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—यह द्युलोक तथा पृथ्वीलोक समस्त विश्व को सुख देने वाले हैं । 'ऋतावरी' जगत् को धारण करने के लिए शुभ सत्य-जल से युक्त हैं । उदक परमाणुओं को अपने भीतर बसाने वाले तथा सुन्दर प्रादुर्भाव रखने वाले हैं । ये दोनों लोक धर्षण-कुशल, चमक-दमक से युक्त उत्कृष्ट शोभा वाले तथा उद्यमशील हैं । इन्हीं दोनों लोकों के अन्तराल में 'शुचिः' रागद्वेष रहित 'देवः' प्रकाशमान सूर्य भगवान् 'धर्मणा' अपने प्रकाश-आकर्षण आदि नियमों से युक्त होकर अपनी महिमा का प्रतिष्ठापन करते हैं ।

२— **उरुव्यचसा महिनी असश्चता**

पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।

सुधृष्टमे वपुष्ये इ न रोदसी

पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२॥

पद-पाठ—उरुऽव्यचसा । महिनी इति असश्चता । पिता । माता । च । भुवनानि । रक्षतः । सुधृष्टमे इति सुऽधृष्टमे । वपुष्येऽ इति । न । रोदसी इति । पिता । यत् । सीम् । अभि । रूपैः । अवासयत् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—इमे धावा पृथिव्यौ जगतः पितृभूते मातृस्थानीये च भूतानि जडचेतन रूपाणि समग्राणि रक्षतः पोषयतः । एते 'उरुव्यचसा' अतिव्यापन शीले विशाले 'असश्चता' असज्जमाने परस्पर संश्लेषरहिते विराजेते । एते धावापृथिव्यौ 'सुधृष्टमे' अतिशयेन प्राप्तप्रागल्भ्ये रोदसी रोधनशीले 'वपुष्ये' 'न' वपुषो हिते इव वर्तेते । तयो र्मध्ये पितृस्थानीयः द्युलोकः 'सीम्' सर्वतः 'रूपैः' निरूपणीयैः साधनैः 'अवासयत्' अधिवासयति ।

टिप्पणी—उरुव्यचसा—'व्यच विस्तारे' असुन् । उरु व्यचो
असश्चता—'षस्ज गतौ' छान्दसः जस्य चः । शतृ । द्विवचनम् ।

मैक्डानल ने 'असश्चता' का अर्थ 'श्रान्त न होने वाला' अथवा
किया है । 'वपुष्ये' का अर्थ 'सुन्दर स्त्री' तथा 'सुधृष्टये' का अर्थ
किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह द्युलोक यदि पालन करने के कारण पितृ तुल्य
यह पृथ्वी भी 'माता' मातृ-सदृश है क्योंकि ये दोनों जड़-चेतन का निर्माण
पालन करते हैं । ये दोनों 'उरुव्यचसा' अति-विस्तीर्ण ''असश्चता' परस्पर
तथा 'सुधृष्टमे' अत्यन्त प्रगल्भ एवं 'रोदसी' नियमोल्लंघन करने वालों
अवरोधक हैं । ये दोनों 'वपुष्ये' पुष्ट शरीर के हित-साधक हैं । इन दोनों में
पिता के रूप में अवस्थित द्युलोक 'रुपैः' अपने निरुपण सामर्थ्य से 'सीम्' सब
से 'अवासयत्' प्राणियों का अधिवास कराता है ।

२—

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्

पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।

धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं

विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३॥

पद-पाठ—सः । वह्निः । पुत्रः । पित्रोः । पवित्रऽवान् । पुनाति ।
भुवनानि । मायया । धेनुम् । च । पृश्निम् । वृषभम् । सुऽरेतसम् । विश्वाहा ।
शुक्रम् । पयः । अस्य । धुक्षत ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं सूर्यः पित्रोः द्यावापृथिव्योः 'पुत्रः' पुत्रस्थानीयः
वान् अत्यन्तः शुचिः धीरः ध्यानवान् वह्निः यज्ञफलस्य वोढा स्वकीयया मायया
नानि सर्वाणि पुनाति पवित्रयति । स्वप्रकाशेन दीपतति । स इमां धेनुम् प्रणि
पृश्निम् नानावर्णां भूमिं वृषभम् वर्षणोयेतं द्युलोकं च विश्वाहा सर्वेषु

सुरेतसम् शोभनसामर्थ्यं सम्पादयति । अस्य च वृषभस्य वर्षणशीलस्य द्युलोकस्य शुक्रं पयः प्रसन्नं दुग्धसदृशम् उदकं दुक्षत दोग्धि ।

टिप्पणी—पृश्निः—पृच्छधातोः निङ् । धुक्षतः—दुह धातोः लुङि 'शलइगुपधादनिटः क्सः' इति च्लेः क्सादेशः ।

मैक्डानल ने 'मायया' का अर्थ अद्भुत शक्ति, 'पृश्नि' का अर्थ 'चितकबरी', 'सुरेतसम्' का अर्थ वीर्यवान् और धेनु तथा वृषभ का अर्थ गाय और बैल किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह सूर्य द्युलोक तथा भूमि के पुत्र सदृश हैं । अपनी शुद्ध किरणों से पवित्र तथा धीर हैं वे ही वह्निरूप होकर यज्ञ फल को वहन करते हैं । और समग्र भुवनों को अपने प्रकाश से जागरुक करते हैं । वही सूर्य 'पृश्नि' नाना वर्ण वाली 'धेनुम्' प्रीति और तृप्ति करने वाली पृथ्वी को तथा 'वृषभम्' वर्षा करने वाले द्युलोक को 'विश्वाहा' सर्वकाल में 'सुरेतसम् सामर्थ्यवान् बनाते हैं । इस वर्षणशील द्युलोक से अत्यन्त शुचि दुग्धरूप जल का दोहन करते हैं ।

४—

अयं देवानामपसामपस्तमो

यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।

वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया

ऽजरेभिः स्कम्भनेभि समानृचे ॥४॥

पद-पाठ—अयम् । देवानाम् । अपसाम् । अपःऽतमः । यः । जजान । रोदसी इति । विश्वऽशंभुवा । विः । यः । ममे । रजसी इति । सुक्रतुऽयया । अजरेभिः स्कम्भनेभिः । सम् । आनृचे ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं सूर्यो देवः 'अपसाम् अपस्तमः' कर्मरतानां देवानां मध्ये सर्वाङ्गीणः कर्मकृत् । अयमेव वर्चस्वी देवः रोदसी द्यावापृथिव्यौ निर्माणं चक्रे । द्यावापृथिव्यौ 'विश्वशंभुवा' सर्वात्मना शुभस्य भावयित्र्यौ 'रजसी' लोकरञ्जन-समर्थे वर्तेते । 'सुक्रतूयया' शोभनकर्मेच्छया स सूर्यः द्यावापृथिव्यौ विमये उत्पादित-

वान् । ते च द्यावापृथिव्यौ 'स्कम्भनेभिः' स्थिरैः अजरेभिः अजीर्णैः स्तम्भैः 'स्था
स्थायितवान् । स्वे स्वे धर्मे नियते ते चकार ।

टिप्पणी—आनृचे—'ऋच स्तुतौ' लिटि । 'तस्मान्नुड् द्विहलः' इति
अपसाम्—अप इति कर्मनाम् ।

मैक्डानल ने 'अजरेभिः' का अर्थ 'अनादि' और 'स्काम्भनेभिः' का
'सहारा देने वाले' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह सूर्य भगवान् 'अपसाम् अयस्तमः' कर्मरतों
सर्वाधिक कार्यकुशल हैं । इसी सूर्य-भगवान् ने 'सुक्रतूयया' शुभकर्म की इच्छा
'रजसी' रंजनात्मक द्यु तथा पृथ्वी लोक को 'विमये' बनाया है । सूर्य भग
निर्मित ये दोनों लोक 'विश्वशंभुवा' प्राणि मात्र के लिए सुखप्रद हैं जिन्हें 'अ
स्कम्भनेभिः कभी जीर्ण न होने वाले स्तम्भों के सहारे दृढ़ किया है ।

५—

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः

क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।

येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा

पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥५॥

पद-पाठ—ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि ।

क्षत्रम् । द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् । येना । अभि । कृष्टीः । तत

विश्वहा । पनाय्यम् । ओजः । अस्मे इति । सम् । इन्वतम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे द्यावापृथिव्यौ ! युवाम् अस्माभिः 'गृणाने' स्तू
'महिनी' महत्यौ सत्यौ अस्मभ्यं महत् श्रवः व्यापनीयम् अन्नं
धासथः धारयेतम् तथा बृहत् क्षत्रं बलं नः धासथः धारयेतम् । तेन वयं की
अन्न बलेन च 'विश्वहा' सर्वेषु दिनेषु कृष्टीः प्रजाः ततनाम विस्तारयेम ।
अस्ये अस्मासु 'पनाय्यम् ओजः' स्तुत्यं तेजः सम् सम्यक् इन्वतम् प्राप्नोतु ।

टिप्पणी—ततनाम्—तनोते र्लेटि । छान्दस: श्लु: । 'आडुत्तमस्य०' इत्याडागम: । धासथ:—दधाते र्लेटि । अडागम: । 'सिब्बहुलं लेटि' इति सिप् ।

मैक्डानल ने 'महि' का अर्थ पर्याप्त किया है और 'श्रव:' का अर्थ 'राज्य' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे द्यावा पृथिवी ! आप दोनों स्तुत्य रही हैं । आपकी विशालता के ही कारण आपको 'महिनी' कहा गया है । आप हमारे लिए सर्वदा 'श्रव:' कीर्ति, अन्न तथा 'क्षत्रम्' तेजोबल देती रहें जिससे हम प्राणवान् राष्ट्र के प्रबल नागरिक कहलायें और 'विश्वहा' सदा ही 'कृष्टी: ततनाम्' योग्य, हृष्ट पुष्ट सन्ततियों से विश्व में विस्तीर्ण होते रहें तथा 'अस्मे' हमारे भीतर 'पनाय्यम्' ओज: स्तुत्य तेज का 'सम् इन्वतम्' सम्वर्धन होता रहे ।

इन्द्र–सूक्तम्

(देवता—इन्द्र: । ऋषि:— गृत्समद: । छन्द:—त्रिष्टुप् । स्वर:— धैवत:)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्

देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां

नृम्णस्य । मह्ना स जनास इन्द्र: ।।१।।

पद-पाठ:—य: । जात: । एव । प्रथम: । मनस्वान् । देव: देवान् । क्रतुना । परिऽअभूषत् । यस्य । शुष्मात् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् । नृम्णस्य । मह्ना । स: । जनास: इन्द्र: ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रजिघांसया दैत्या वैन्ययज्ञे भ्रान्त्या गृत्समदं
इन्द्रश्च गृत्समदाकृतिस्ततो निर्जगाम । गृत्समदश्च कर्माण्यैन्द्राणि कीर्तयन्
नाहमिन्द्रोऽयमिन्द्र इति प्रत्युवाच—हे असुराः ! 'यो जात एव' जाय
देवानां 'प्रथमः' प्रतमः प्रधानभूतः 'मनस्वान्' मनस्विनामपि साहसधनः
जयशीलः सर्वान् अपि देवान् पर्यभूषत् परिभूषितवान् अथवा पर्यभूषत्
अतिक्रम्य वर्तते क्रतुना वृत्रवध—सोमपान—वज्रहस्त—विष्णुत्वादिना
यः सर्वान् देवान् अलकरोति । यस्य शुष्मात् तेजसा बलेन रोदसी द्यावा
अभ्यसेताम् अबिभीताम् भयत्रस्ते भवतः नृम्णस्य मह्ना बलस्य महिम्ना
युक्तः स इन्द्रः, नाहम् इति । ऋषे दृष्टार्थस्य प्रीति र्भवत्याख्यान संयुक्ता।

टिप्पणी—प्रथमः—प्रतमः—उत्कृष्टतमः । पर्यभूषत् = परि + अ
'भूष—अलंकारे' लङ् । यद्वा—परि + अभूषत् = परि + अभवत् । भवते
क्सः । 'श्र्युकः किति' इति इट् प्रतिषेधः । अभ्यसेताम्—'भ्यस—भये' वेपने
अबिभीताम्—अवेपेताम् । निरु १०. १० । जनासः—जनाः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऐश्वर्यशाली इन्द्र की महिमा का वर्णन करते हु
कहते हैं—'यो जात एव प्रथमः' जो प्रकट होता हुआ ही अपनी गरिमा और
से समन्वित है 'मनस्वान्' जो मनस्वी वीरों में भी अग्रगण्य है, जो दिव्य
भव्यता के कारण दमक रहा है और जो 'देवान् क्रतुना पर्यभूषत्' स्वकीय
व्यापार से देवों को अलंकृत करता है (अथवा समस्त देवों का ऐश्वर्य एवं
के कारण उल्लंघन करता है) 'यस्य शुष्मात्' जिसके शारीरिक बल से
द्युलोक और पृथिवी लोक भी 'अभ्यसेताम्' त्रस्त होकर कांप उठते हैं।
मह्ना' जो स्वकीय तेज और बल की महिमा से शोभायमान् है, वही इन्द्र है।

२—

77

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्

यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो—

यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

पद-पाठः—यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । यः । अदृंहत् । पर्वतान् ।

पितान् । अरम्णात् । यः । अन्तरिक्षम् । विऽममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तम्नात् ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—'यः व्यथमानां पृथिवीम् अदृंहत्' य इन्द्रो भयात् त्रासात् व्यथमानां कम्पनशीलां भूमिं स्वनियमे दृढाम् अकरोत् । यश्च 'प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्' इतस्ततो गर्जनशीलान् मेघान् नियमे स्थापितवान् । यो ह 'वरीयो-न्तरिक्षं विममे' विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं चकार यश्च द्याम् अस्तम्नात् निरुद्धाम् अकरोत् । स एव इन्द्रः खलु । इन्द्र एव स्वप्रकाशेनान्तरिक्षं पूरयति विद्युत सूर्यं चाधाय भूमिं पालयति, कोपमुक्तान् मेघांश्च वर्षणयोग्यान् सम्पादयति ।

टिप्पणी—अदृंहत्—'दृह - दृहि वृद्धौ' । अरम्णात्—रमु क्रीडायाम्, व्यत्ययेन श्ना, अन्तर्भावितोण्यर्थश्च । अस्तम्नात्—'स्तम्भु रोधने' इति सौत्रोधातुः इन्द्रः—'इदि परमैश्वर्ये' ।

हिन्दी-व्याख्या—'यः व्यथमानां पृथिवीम् अदृंहत्' जिस परमैश्वर्यशाली इन्द्र ने चंचल पृथिवी को अपने बन्धन में नियमित किया है, जिसने कोपाकुल मेघों को वर्षा करने के लिये विवश किया है, जिसने विशाल अन्तरिक्ष की सर्जना की है और जिसने 'द्याम् अस्तभ्नात्' प्रकाश-लोक का नियमन किया है, हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है, अन्य नहीं ।

३-

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्

यो गा उदाजदपधा बलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान

संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

पद-पाठ—यः हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । यः । गाः ।

उत्ऽआजत् । अपऽधा । बलस्य । यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजान ।

सम्ऽवृक् । समत्ऽसु । सः जनासः । इन्द्रः ॥३॥

संस्कृत व्याख्या—(यो हत्वा अहिम् सप्त सिन्धून् अरिणात्) यः अहिं मेघं हत्वा सप्त सर्पणशीलाः सिन्धून् स्यन्दनशीलाः जलधारा प्रेरयति । यो बलस्य बलनाम्नोऽसुरस्य अपधा सकाशात् निरुद्धा गा उदाजत् मयत् । यः अश्मनोः कोमलरूपयो र्मेघयो र्मध्ये अग्नि वैद्युतम् अग्नि जजान मास । यश्च समत्सु संग्रामेषु संवृक् जेता एव भवति । स एव इन्द्र इति ।

टिप्पणी—अहिः, अश्मा मेघ नाम । आ हन्ति गच्छतीत्यहिः । व्याप्नोत्यन्तरिक्षमित्यश्मा मेघः । समत्सु-संभक्षयन्ति वीराणामायूंषि इति संग्रामाः । संवृक्—संपूर्वस्य वृणक्तेर्हिंसार्थस्य क्विप् । सिन्धून्—समुद्रान् नदी अपधा—सुपां सुलुगिति विभक्ते र्डादेशः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे जनासः मनुष्यों ! जिसने मेघ का विनाश 'सप्त सिन्धून' सर्पणशील नदियों का 'अरिणात्' निर्माण किया और उन्हें देता है जो बल नामक असुर से निरुद्ध गायों का आहरण करता है (अथवा गायों पृथिवी के परमाणुओं) का मिश्रण—अभिश्रण करता रहता है। (अश्मनोः) व्यापक मेघों के अन्तराल में विद्युत् को स्थापित किया है (संवृक् समत्सु) संग्रामों में सदा जयशील वीर रहा है, वही इन्द्र है ॥

४—

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि

यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवां ल्लक्षमादद्

अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

पद-पाठः—येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः ।

वर्णम् । अधरम् । गुहा । अकरित्यकः । श्वघ्नीऽइव । यः । जिगीवान् ।

आदत् । अर्यः । पुष्टानि । सः जनासः । इन्द्रः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि) येनेन्द्रेण इमानि विश्वानि भुवनानि च्यवनान्यपि स्थिरी कृतानि। यश्च दासं वर्णम् उपक्षपयितारं गुहायां निगूढे स्थाने नरके वा अकः अकार्षीत्। 'श्वघ्नी इव' श्वभि मृंगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः। यथा श्वघ्नी स्व लक्ष्यभूतं मृगमनायासेनैव गृह्णाति। तथा खल्विन्द्रोऽपि जिघृक्षितं वस्तु सहजतयैव परिह्लाति। यद्वा स्वं हन्तीति श्वघ्नी द्यूतकरः स यथा जिगीवान् विजयते लक्षम् आदत्, द्रव्याणां सहस्राणि आचिनोति, तथेन्द्रोऽपि जयशील द्यूतकर इव जयत्येव। स हि अर्यः पुष्टानि अरेः सम्बन्धीनि सर्वाणि पोषणद्रव्याणि आगृह्णाति। स एवेत्थंभूत इन्द्रः।

टिप्पणी—इमा विश्वा च्यवना=इमानि विश्वानि च्यवनानि कृतानि। दासम्—उपक्षपयितारम्। गुहा—गुहायाम्। अकः=अकार्षीत् करोते र्लुङि 'मंत्रे घस ह्वर०' इत्यादिना च्ले र्लुकि। लक्षम्-लक्ष्यम्, धनानां लक्षं च। जिगीवान्—'जि जये' क्वसौ 'सन् लिटोर्जेः' इत्यभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम्। दीर्घश्छान्दसः। अर्यः—अरेः। षष्ठ्येकवचने छान्दसो यणादेशः। आदत्-आदत्ते।

हिन्दी व्याख्या—जिस श्रेष्ठ इन्द्र ने (इमा विश्वा च्यवना कृतानि) इस समस्त नश्वर जगत् को स्थिरता प्रदान की है, (यो दासं वर्णम्) जिसने नष्टकर्मी लोगों को (अधरं गुहाकः) निगूढ़ स्थान में (दुःख, दारिद्रय, दैन्य, नरक आदि स्थानों में) कर दिया है। श्वघ्नी (कुत्तों के सहारे मृग-बध करने वाला बहेलिया) के समान जो कुशल लक्ष्य-बेधक है (अथवा स्वघ्नी=द्रव्य-विनाशी जुआरी के समान जो द्यूत-भूमि से लाखों का धन बटोर लेता है) जो सदा 'जिगीवान्' जयशील व्याध अथवा जुआरी के समान लक्ष्य-घटक अथवा लक्ष-घटक है। (अर्यः पुष्टानि) अरि सम्बन्धित पोषक धन-द्रव्य को बटोरने वाला वही जयशील इन्द्र है।

५— यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्

उतेमाहु र्नैषो अस्तीत्येनम्।

सो अर्यः पुष्टी विज इवामिनाति

श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

पद पाठ—यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उ

ईम् । आहुः । न । एषः । अस्ति । इति एनम् । सः । अर्यः । पुष्टीः । विजऽइ

आ । मिनाति । श्रत् । अस्मै । धत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ।

संस्कृत-व्याख्या—हे जनाः (यं घोरम्) शत्रूणां घातकं घोरम् इन्द्रं (पृच्छन्ति
कुह सः) कुत्र स वर्तते इति पृच्छन्ति । (उत च एनमाहुः नैषोऽस्तीति) दुर्बु
खल्वाहुः स इन्द्रः तु नास्त्येव । एवं श्रद्धाविहीनास्य (अर्यः पुष्टीः) अरेः पोषणा
धनानि (विज इव) उद्वेजक इव स इन्द्रः (आ मिनाति) आसमन्ताद् हिनस्ति ।
जनाः (अस्मै) इन्द्राय (श्रद् धत्त) अस्तीति विश्वासं कुरुतः । सः एवं भूत एवेन्द्रः ।

टिप्पणी—कुह=कुत्र । सेति—सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणमिति सोर्
गुणः । ईमिति पूरणः । अर्यः=अरेः । पुष्टीः=पोषकाणि आमिनाति—
हिनस्ति । 'मीङ् हिंसायाम्', 'मीनाते निगमे' इति ह्रस्वः । यद्यपि स न दृश्यतेऽ
भिस्तथापि तत्र विश्वासं कुरुत ।

हिन्दी व्याख्या—(कुह स इति यं स्म घोरं पृच्छन्ति) नास्तिक लोग पूछ
फिरते हैं कि वह कहाँ है=वह दुष्ट के प्रति चण्डत्व धारण करने वाला
दिखायी ही नहीं पड़ता । अतएव (उत ईम् आहुः) उसके सम्बन्ध में प्रलाप करते
कि (न एषः अस्तीति) होता तो दिखायी पड़ता, दिखाई नहीं पड़ता अतः वह नहीं
है—जो वस्तु प्रत्यक्षगोचर नहीं, उसकी सत्ता भी नहीं । पर ऐसा नहीं है ।
(अर्यः पुष्टीः) शत्रु सम्बन्धी समस्त पोषक पदार्थों को (विज इव) उद्वेजक बन
उजाड़ (आ मिनाति) देता है । अरे भाइयो ! (श्रद् अस्मै धत्त) इस महान् इ
के प्रति गहन विश्वास करो । बहुत सी वस्तुयें हैं जो नेत्र से नहीं अपितु नेत्रे
साधनों से ही देखी-परखी (जानी) जाती हैं ।

६— **यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य**

यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।

युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः

सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

पद पाद—यः । रध्रस्य । चोदिता । यः । कृशस्य । यः । ब्रह्मणः । नाधमानस्य । कीरेः । युक्तऽग्राव्णः । यः । अविता । सुऽशिप्रः । सुतऽसोमस्य । सः । जनासः । इन्द्रः ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—(य इन्द्रः रध्रस्य कृशस्य च चोदिता) यः खलु तेजस्वी इन्द्रः रध्रस्य समृद्धस्य कृशस्य दुर्बलस्य च धनादिदानेन शुभे कर्मणि प्रेरयिता भवति (यश्च नाधमानस्य ब्रह्मणः कीरेः) यश्च नाधमानस्य याचमानस्य विप्रस्य स्तोतुः प्रेरयिता भवति । धनादि प्रदानेन पूरयिता भवति । यश्च (सुशिप्र) शोभनहनुनासिकः सुशीर्षकः (युक्तग्राव्णः) उद्यतग्राव्णः (सुतसोमस्य) अभिषुतसोमस्य सोमसम्पादिनः पुरुषस्य (अविता) रक्षिता भवति । स एवेन्द्रोऽस्ति नाहमिति ।

टिप्पणी—रध्रस्य—'रध हिंसासंराध्योः' । समृद्धस्य । कृशस्य=दरिद्रस्य । नाधमानस्य—'नाथृणाधृ याञ्चोपता पैश्वर्याशीः षु, याचमानस्य । कीरेः—करोतेः कीर्तयते र्वा । स्तोतुः । ब्रह्मणः=अन्नपरत्वे त्वाद्युदात्तता स्यादतः नात्रान्नपरत्वम् । विशेषेण स्तुत्यादिना पूरयतो ब्राह्मणस्य । सुशिप्रः—शिप्र शब्दों हनुवाची (जबड़ा) नासिकावचनोऽपि । केऽपिशिरोवाचकं वदन्ति ।

(२) मैक्डानल ने 'सुशिप्र' का अर्थ 'सुन्दर अधरवाला' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य) जो इन्द्र धनी तथा निर्धन सभी व्यक्तियों को=चाहे वे दीन हों या दक्ष; शुभ कर्मो में प्रेरित करता ही रहता है (यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः) गुण—कीर्तन करने वाले बह्मवर्चस्वी व्यक्ति की भी याचना को जो पूर्ण करके उन्नत करता रहता है। (युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य सुशिप्रः) जो सुन्दर मुखाकृति वाला है तथा क्रियाशील, तत्पर, सोमसम्पादक पुरुष के लिये जो (अविता) सर्वदा रक्षक रहा है। (स जनास इन्द्रः) वही प्रशंसित इन्द्र है, अन्य कोई नहीं ।

७—

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो-

यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उषसं जजान

यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

पद-पाठ—यस्य । अश्वासः । प्रऽदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः । यस्य । विश्वे । रथासः । यः । सूर्यम् । यः । उषसम् । जजान । यः । अपाम् । नेता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(यस्य अश्वासः प्रदिशि यस्य गावः) यस्य इन्द्रस्य प्रदिशि प्रदेशनेऽनुशासनेऽनुज्ञायां सर्वेऽश्वाः सन्ति, यस्य गावः, यस्य ग्रामा जनपदाः सन्ति, सर्वे रथा यस्य अन्तर्यामितया वर्तमानस्यानुशासने परिचलन्ति । यः खल्विन्द्रः मेघं तमोरूपमन्धकारं वा हत्वा विनाश्य (सूर्यं जजान) सूर्य मुषसं च भावयामास । यः खल्वपामानेता भवति स एवेन्द्रः । इति ।

टिप्पणी—अश्वासः—अश्वाः 'आज्जसेरसुक्' । प्रदिशि—प्रदेशनेऽनुशासनेऽनुज्ञायाम् । प्रपूर्वस्य दिश् धातोः क्विप् । जजान—जनी प्रादुर्भावे लिट् । अन्तर्भावितण्यर्थः । नेता—आनेता—मेघभेदन द्वारा जल प्रेरकः ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस अन्तर्यामी इन्द्र के (प्रदिशि) अनुशासन में अश्व, गौ, जनपद, रथ तथा सभी चर-अचर प्राणी विचरण करते हैं, जिस इन्द्र ने वृत्र का बध—विनाश करके (=तम अथवा मेघ का विदारण करके) सूर्य तथा उषा की उद्भावना की है, जो इन्द्र मेघ का भेदन करके जल-राशि का प्रेरक है, वही इन्द्र है, अन्य कोई ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं है ।

८—

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते

परेऽवर उभया अमित्राः ।

समानं चिद्रथमातस्थिवांसा

नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

पद-पाठ—यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति सम्ऽयती । विह्वयेते इति विऽह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः । समानम् । चित् रथम् । आ । तस्थिऽवांसा । नाना । हवेते इति । सः । जनासः । इन्द्रः ।।८।।

संस्कृत-व्याख्या—(यम् क्रंदसी संयती विह्वयेते) यमिन्द्रं कन्दनशीले संयती संबद्धे द्यावापृथिव्यौ विह्वयेते विविधमाह्वानं कुर्वाते । उत्तमा अधमा च सेने विविधमाह्वयतः (परे अवरे उभया अमित्राः) उत्कृष्टा अधमाश्च उभयविधाः शत्रवः यं स्वऽक्षार्थमिन्द्रमाह्वयन्ति । (समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा) एकस्मिन्नेव रथे आस्थितौ द्वौ तौ रथारूढौ इन्द्राग्नी वर्तेते तौ यज्ञार्थमाहूयमानौ तयोरेकतर एवेन्द्रः । स एव ज्यायान् इन्द्रः, नान्यः । इति ।

टिप्पणी – विह्वयेते—ह्वेञ् धातोः प्रथमपुरुष द्विवचने लटि । क्रन्दसी—क्रन्दनशीले । उभयाः—उभयप्रकाशः शत्रवः । परे अवरे उत्कृष्टा अधमाः । समानमेकरथमारूढौ अग्नि सारथी रथः स चेन्द्रस्वामिकः । इति पदप्रयोगो द्विवचनताद्योतकः ।

(२) मैक्डानल ने परे-अवरे का अर्थ 'पास के और दूर के' अर्थ किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(क्रन्दसी संयती यं विह्वयेते) क्रन्दनशील और परस्पर सन्नद्ध सेनायें जिस इन्द्र का पुकार करती हैं (परे अवरे उभया अमित्राः) उत्कृष्ट तथा निकृष्ट शत्रु जिस इन्द्र को अपनी-अपनी सुरक्षा के लिये आह्वान करते हैं । (समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा) एक ही रथ पर सारथि तथा स्वामी के रूप में अग्नि तथा इन्द्र आरूढ हैं (नाना हवेते) उनकी पृथक्-पृथक् पुकार हो रही है, उन्हीं दोनों में जो अधिक तेजस्वी है, वही इन्द्र है । अन्य नहीं ।

९-

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो 81, 84.

यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव

यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ।।९।।

पद-पाठ—यस्मात् । न । ऋते । विऽजयन्ते । जनासः । यम् । युध्यमानाः । अवसे । हवन्ते । यः । विश्वस्य । प्रतिऽमानम् । बभूव । यः । अच्युतऽच्युत् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्मात् ऋते जनासः मनुष्या न विजयन्ते न विजयं प्राप्नुवन्ति । अस्माद् हेतोः युध्यमानाः परस्परं प्रहारं कुर्वाणा अवसे रक्षार्थम् इन्द्रमेव यं हवन्ते सोत्साहं रक्षस्वेन्द्र इति प्रकारयन्ति । यश्चेन्द्रः विश्वस्य प्रतिमानं प्रतिमानभूतोऽस्ति आदर्शरूपतया प्रतीकभूतः । यश्च अच्युतच्युत् अच्युतानाम् च्यावयिता स एवेन्द्रः ।

टिप्पणी—अच्युतच्युत्—च्यु धातोः क्विप् । अवो रक्षणम्, तस्मै अवसे रक्षणाय । हवन्ते—आह्वयन्ति । प्रतिमानम्—प्रतिमा, उपमा, उपमानभूतः । प्रतिनिधिरिति सायणः । विश्वस्य य प्रतिमानं प्रतिनिधिः ।

(२) मैक्डानल ने प्रतिमानम् का अर्थ सदृश किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यस्मान न ऋते) जिस इन्द्र की सहायता के बिना (जनासो न विजयन्ते) मानव अपने शत्रुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते (युध्यमानाः) युद्ध-संघर्ष करते हुए (यं हवन्तेऽवसे) रक्षार्थ जिस इन्द्र का आह्वान करते हैं । (यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव) जो इन्द्र इस समस्त भुवन का एक मात्र प्रकाश—स्तम्भ है (योऽच्युतच्युत्) जो अचल-अविचल दंभियों को भी चलायमान कर देता है, वही परम पुरुषार्थी इन्द्र है, अन्य नहीं ।

१०—

यः शश्वतो मह्येनो दधानान्

अमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां

यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥

पद-पाठ—यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् अमन्यमानान् । शर्वा । जघान । यः । शर्धते । न । अनुऽददाति । शृध्याम् । यः । दस्योः । हन्ता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—(यः महि एनः दधानान्) यः खल्विन्द्रो बहूनि एनांसि दधानान् धारयतः शश्वतः बहून् अमन्यमानान् इन्द्रमपूजयतः दुष्टान् शर्वा शरुणा वज्रेण जघान आ हन्ति । यश्चेन्द्रः पापं प्रति शर्धते उत्साहं कुर्वते पुरुषाय शृध्यां नानुददाति नैव प्रोत्साहनीयं बलं प्रयच्छति । यश्चेन्द्रः दस्योः उपक्षपयितुः दुष्टस्य हन्ता घातकः । सोऽस्माकं पूज्यः स एवेन्द्रो नान्य इति ।

टिप्पणी—एनः—पापम् । शश्वतः=बहून् । शर्वा=शृणात्यनेनेति शरु वज्रः । तेन शर्वा शरुणा । शरुशब्दात्तृतीयैकवचने घिसंज्ञत्वेपि नाभावो न । यणि रूपम् । जघान हन्ते लिटि ।

(२) मैक्डानल ने शर्वा का अर्थ वाण किया है । उनके अनुसार 'शृध्या' का अर्थ उद्दण्डता, शर्धते का अर्थ क्षमा करना है ।

हिन्दी व्याख्या—(महि एनो दधानान् यः) अत्यधिक पाप कर्म को धारण करने वाले (शश्वतः अमन्यमानान्) अगणित अनास्था वाले दूषित लोगों को जिस इन्द्र ने (शर्वा) अपने वज्र से (जघान) विनाश कर दिया है । जो इन्द्र (यः शर्धते शृध्यां नानुददाति) दुषित कर्म के प्रति उत्साह करने वाले साहसी दुष्टों को उत्साहित नहीं होने देता है और (यः) जो (दस्योः हन्ता) कर्म विनाशी लोगों का (हन्ता) घातक है, वही इन्द्र है, अन्य कोई नहीं ।

११—

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं

चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।

ओजायमानं यो अहिं जघान

दानुम् शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

पद-पाठः—यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि ।

अनुऽअविन्दत् । ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । स ।

जनासः । इन्द्रः ।

संस्कृत व्याख्या—(यः पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरम्) यः इन्द्रभिया पर्वते क्षियन्तं निवसन्तं सम्बरं वृत्रं (चत्वारिंश्यां शरदि) चत्वारिंशे सम्वत्सरे (अन्वविन्दत्) अन्विष्य लब्धवान् । यश्च (अहिम्) आहन्तारं (ओजायमानम्) बलप्रदर्शनपरं (जघान) हतवान् । कीदृशं शम्बरम् ? (दानुम्) दानवन् (शयानम्) निद्रायमाणम् स एवेन्द्रः ।

टिप्पणी—ओजायमानम्—ओजस् + क्यङ् । 'ओजसोप्सरसो नित्यम्' इति सकारलोपः । शानच् । अहिम्, दानुम्, शम्बरम् एते द्वितीयान्ताः शब्दा मेघपर्याया क्षियन्तम्—'क्षि निवासगत्योः' निवसन्तम् ।

(२) मैक्डानल 'अहि' का अर्थ सर्प करते हैं । सायण हननकारी करते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या–(यः पर्वतेषुक्षियतं शम्बरम्) जो इन्द्र पर्वतों में निवास करने वाले शम्बर को (चत्वारिंश्यां शरदि) चालिसवें वर्ष में (अन्वविन्दत्) गवेषित किया जिसने ओज-प्रदर्शन करने वाले आहननकारी दानव (मेघ) को जलावरोधी (शयान) के रूप प्राप्त किया तथा उसका विध्वस करके जलीय-मार्ग को प्रशस्त किया इन्द्र है । अन्य नहीं ।

१२–
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्

अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।

यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहु—

र्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥

पद पाठः—यः सप्तऽरश्मिः । वृषभः । तुविष्मान् । अवऽअसृजत् । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् । यः । रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रऽबाहुः । द्याम् । आऽरोहन्तम् । सः । जनासः । इन्द्रः ।

संस्कृत व्याख्या—(या सप्तरश्मिः) सप्त सरणशीलाः पर्जन्या रश्मयो यस्यासौ (वृषभः) वर्षिता (तुविष्मान्) बलवान् (सर्तवे) सरणाय (सप्त सिन्धून्) सर्पणस्वभावान् सिन्धून् नदीः (अवासृजत्) अवसृष्टवान् । यश्च द्यामारोहन्तं रौहिणम् असुरं=मेघं वज्रबाहुः वज्रसदृशबाहुः अस्फुरत् जघान। स एवेन्द्रः, नान्यः ।

टिप्पणी— सप्तरश्मिः—सप्तसंख्याका रश्मयः—वराहवः, स्वतपसः, विद्युन्मसः, धूपयः, स्वापयः, गृहमेधाः, अशिमि विद्विषश्चेति । तै० आ० १.६.४-५ । ऋषीणां सूक्ष्म-दर्शनम् । वृषभः—वर्षकः । तुविष्मान् वृद्धिमान्, बलवान् वा । सर्तवे =सरणाय । अस्फुरत् =जघान; 'स्फुर स्फुरणे' ।

(२) मैक्डानल ने सप्तरश्मि का अर्थ 'सात लगाम वाला' किया है। इसी प्रकार वृषभ का अर्थ बैल, सप्त का अर्थ सात और सिन्धून का अर्थ नदी किया है।

हिन्दी व्याख्या—(यः सप्तरश्मिः वृषभः तविष्मान्) जो इन्द्र सात रश्मियों युक्त, वर्षा करने वाला तथा महान् शक्तिशाली है (अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून) सरणशील नदियों जलावरोध का निराकरण करके उन्हें अग्रसारित करता है (यो रौहिणम् अस्फुरद् वज्रबाहुः द्यामारोहन्तम्) तथा जो आकाश में व्याप्त रक्तिम वर्ण के का विनाश करके गगन के प्रकाश को स्वच्छ-प्रशान्त करता है, जिस इन्द्र के तेजस्वी हस्त में सदा वज्र सुशोभित रहता है। वही वज्रधारी, सर्वशक्ति सम्पन्न इन्द्र है, अन्य नहीं ।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते ८ २

शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।

यः सोमपा निचितो वज्रबाहु—

र्यो वज्रहस्तःस जनास इन्द्रः ॥१३॥

पद-पाठः— द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमेते इति । शुष्मात् ।

चित् । अस्य । पर्वताः । भयन्ते । यः । सोमऽपाः । निऽचितः । वज्रऽबाहुः । यः ।

वज्रऽहस्तः । स । जनास । इन्द्रः ।

संस्कृत-व्याख्या—(अस्मै द्यावा चित् पृथिवी नमेते) अस्येन्द्रस्य शुष्म तेजांसि कर्माणि च दृष्ट्वा द्यावापृथिव्यौ नमेते नम्रीभवतः। (अस्य चित् शुष्मात्) अस्य च महाप्रतापात् (पर्वताः) पर्वताः खल्वपि (भयन्ते) त्रस्ता भवन्ति। नित्यं सोमपानेन प्रसिद्धत्वात यः (सोमपाः) सोमपा इति यशसा संवृतः। यः (निचितः वज्रबाहुः) सर्वथा दृढ़शरीरावयवः, वज्रसदृशबाहुश्च। (यो वज्रहस्तः) यश्च वज्रसदृशेहस्ते सदैव वज्रं बिर्भति, तथाविधः स इन्द्रः स्मरत हे जनाः।

टिप्पणी—नमेते—प्रह्वीभवतः। 'णमु प्रह्वत्वे' कर्मकर्तरि 'न दुहस्नुनमां यकचिणौ' इति यकः प्रतिषेधः। शुष्मात्—बलात्। शुष्मं बलं भवति शोषयतीति सतः। भयन्ते—बिभ्यति। निचितः—दृढाङ्गः। वज्रबाहुः—वज्रसदृशबाहुः। वज्र-हस्तः—वज्रो हस्ते यस्य सः।

(२) मैक्डानल ने निचित का अर्थ 'जाना गया' तथा वज्रबाहु एवं वज्रहस्त दोनों शब्दों का एक ही अर्थ किया है—वज्रधारी।

हिन्दी व्याख्या—जिस इन्द्र के लिए द्युलोक तथा पृथिवीलोक स्वयं ही नम्र होकर झुक जाते हैं, जिस इन्द्र के भय से पर्वत भी संत्रस्त हो उठते हैं। जो निरन्तर सोमपान करते रहने से 'सोमपा' नाम से प्रसिद्ध है, जिसके शरीर के प्रत्येक अवयव दृढ़ और पुष्ट हैं, जिसके वज्र सदृश हस्त से वज्र का कभी वियोग नहीं होता, ऐसा शक्तिशाली इन्द्र है, अन्य किसी में साहस नहीं कि ऐसा प्रताप दिखा सके।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं

यः शंसन्तं यः शशमानमूती।

यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सोमो

यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

पद-पाठः—यः । सुन्वन्तम् । अवति । यः । पचन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः । शशमानम् । ऊती । यस्य । ब्रह्म । वर्धनम् । यस्य । सोमः । यस्य । इदम् । राधः । सः । जनासः । इन्द्रः ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—(यः सुन्वन्तम् अवति) इन्द्रो यः सुन्वन्तं सोमाभिषवं सम्पादयन्तम् अवति रक्षति (यः पचन्तम्) यश्चेन्द्रः पचन्तं पुरोडाशादीनि इन्द्रमुद्दिश्य पचन्तम् अवति रक्षति । (यः शंसन्तम् यः शशमानम्) यः मन्त्रान् उच्चारयन्तम् अवति । (यस्य ब्रह्म वर्धनम्) यस्येन्द्रस्य ब्रह्म स्तोत्रं वृद्धिकरं भवति (यस्य सोमः) यस्य चेन्द्रस्य सोमः समृद्धिहेतु र्भवति (यस्येदं राधः) यन्निमित्तं स्वीकृतयस्भाभी राधः हविः अन्नं च वृद्धिकरं भवति स एवायमिन्द्रः, नान्यः इति ।

टिप्पणी—ऊती = ऊतये 'सुपां सुलुगिति' ६-१-३६ चतुर्थ्याः पूर्वसवर्ण दीर्घत्वम् । रक्षायै ।

(२) मैक्डानल ने—शशमान का अर्थ 'जिसने यज्ञ को सम्पन्न किया है'।

हिन्दी व्याख्या—(यः सुन्वन्तम् अवति) जो इन्द्र सोम का अभिषव (सम्पादन) करने वाले की रक्षा करता है (यः पचन्तम्) इन्द्र को लक्ष्य करके पुरोडाश आदि पकाने वाले की जो रक्षा करता है । (ऊती यः शंसन्तम्) अपनी रक्षा के लिए स्तोत्र-पाठ करने वाले की जो रक्षा करता है (यः शशमानम्) (इन्द्र के लिए) सर्वदा सचेष्ट रहने वाले की जो रक्षा करता है । जिस (यस्य ब्रह्म वर्धनम्) इन्द्र के निमित्त किया गया स्तोत्र अत्यन्त सम्पन्नता ला देता है (यस्यः सोमः) जिसका सोम-रस भी अत्यन्त पावन और वृद्धिकारी है, (यस्य इदं राधः) जिसकी ऋद्धि-सिद्धि भी अत्यन्त गुणकारी और शान्तिदायिनी है, वही इन्द्र है—अन्य नहीं ।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् 81, संस्कृत

वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।

वयं ते इन्द्र विश्वह प्रियासः

सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥

पद-पाठ—यः । सुन्वते । पचते । दुध्रः । आ । चित् । वाजम् । दर्दर्षि ।

स । किल । असि । सत्यः । वयम् । ते । इन्द्र । विश्वह । प्रियासः । सुऽवीरासः ।

विदथम् । आ । वदेम ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—इदानीमुपसंहरन्नाह—हे इन्द्र ! यस्त्वं दुध्रः सन् दुर्धरः सन् सुन्वते पचते यजमानाय सोमाभिषवं कुर्वते हवींषि वा पचते वाजम् अन्नं बलं दर्दर्षि सुखेनात्यन्तं ददासि प्रापयसि (स किलासि सत्यः) स एवंभूतस्त्वं सत्यः यथार्थभूतो देवोऽसि । त्वदीययैव सत्तया 'वयं स्मः' इति व्यवहारो घटते नान्यथा । वयम् (विश्वह) सर्वेषु अहः सु दिनेषु तव (प्रियासः) प्रियाचरणे रताः (सुवीरासः) कल्याणपुत्रपौत्राः (विदथम् आ वदेम) स्तुतीनां समूहं स्तोत्रम् आ वदेम । प्रब्रूयाम ।

टिप्पणी—दुध्रः—दुर् पूर्वकस्य धृधातोः कप्रत्ययः । उपसर्गगतरेफलोपः छान्दसः । विश्वह—विश्वेषु अहः सु—अह्नोऽकारलोपश्छान्दसः सुन्वते—पचते—उभयत्र चतुर्थी । वाजम् =अन्नं बलं वा ।

(२) मैक्डानल ने 'दुध्र' का अर्थ भयावह किया है। वाजम् का अर्थ 'लूटा हुआ धन'। आरदर्षि का अर्थ देवों के लिए हठपूर्वक देता है किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(यः सुन्वते पचते दुध्र आ चित्) अब इन्द्र को सामने करके ऋषि गृत्समद कहते हैं—हे इन्द्र ! जो आप सोम-सम्पादन करने वाले और पुरोडाश आदि पकाने वाले की रक्षा करते हैं तथा उन्हें (वाजं दर्दर्षि) सभी प्रकार से अन्न-धन-बल-वैभव आदि से पूर्ण करके सुख-सम्पन्न करते हैं (स किलासि सत्यः) यही आपका वास्तविक यथार्थ स्वरूप है (वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः) हे इन्द्र आप ऐसी कृपा-दृष्टि बनाये रक्खें जिससे कि हम सर्वदा आपके प्रिय बने रहें (सुवीरासः) सुन्दर पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर (विदथम्) स्तुति समूहों से गुणानुवाद (आ वदेम) करते रहें ।

अष्टमूर्ति— **सूर्यो जलं मही वह्नि र्वायुराकाशमेव च ।**
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः ॥

—विष्णु पु[illegible]

पुरुरूप उग्र—२-३[illegible]

२-३[illegible]

प्रयाणे मृगस्यामनोज्ञवाचः श्रुत्वा 'स्तुहि०' इत्येतां जपेत ।

बृहद्देवता के अनुसार ऐश्वर्य सम्पन्न एक ऋषि को मारने के लिए धुनि और चुमुरि दैत्य आये । ऋषि ने उन्हें इन्द्र की पहचान बतायी (२–१२) महाभारत के अनुसार पृथु राजा (वैन्य) के यज्ञ से गृत्समद का रूप धारण करके इन्द्र के चले

पर ऋषि गृत्समद का राजा पृथु ने बहुत सत्कार किया। इन्द्र समझ कर दैत्यों ने ऋषि को मारना चाहा तब ऋषि ने इन्द्र की पहचान बतायी। २-११-५ में श्रत् शब्द श्रद्धा का वाचक है। लैटिन में 'श्रेडो' इसी का अपभ्रंश है। Credo : Place you trust on Him. रध्र शब्द २-१२·६ यहाँ प्रयुक्त है। अन्यत्र भी ऋ० ४-४४-१० तथा १०-३८-५ में आया है। सायण ने इसका प्रर्थ समृद्ध तथा राथ ने आलसी अर्थ किया है। अरध्र शब्द के लिये जिन्दा वेस्ता में 'अरेड्रा' का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है--'अकृपण'। अतः रध्र का अर्थ कृपण भी होता है। सम्पन्न होने पर दानशूर न हो उसे रध्र कहते हैं। मैक्डानल ने 'कीरि' शब्द का अर्थ 'निर्धन' किया है। युक्त ग्राव्णः=युक्तो ग्रावा यस्य तस्य युक्त ग्राव्णः कार्य तत्परस्य। सोम सम्पादन के लिये सदा अपने पत्थर को तत्पर रखना=क्रिया कलाप में अपने (ग्रावा) शरीर को सन्नद्ध रखने वाला।

२-१२-८—समानं चिद्रथम्—एक ही रथ में दो बैठे हैं, एक अग्नि सारथी और दूसरा उसका स्वामी इन्द्र।

२-१२-१२ मेघों के वर्गीकरण में ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि का पता चलता है। सात प्रकार के पर्जन्य तै० आ० १-६-४·५ में भी वर्णित है—ये चेमे शिभिविद्विषः पर्जन्याः सप्त पृथिवीमभि वर्षन्ति वृष्टिभिः। 'जातं वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानाम्' में कलिदास भी वर्गीकृत मेघों का वर्णन करते हैं।

मण्डल—२

रुद्र-सूक्तम्

सूक्त ३३

ऋषि—गृत्समदः। देवता—रुद्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्।

१

आ ते पित मरुतां सुम्नमेत

मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः

अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत

प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१॥

पद पाठः—आ । ते । पितः । महताम् । सुम्नम् । एतु । मा ।
सूर्यस्य । सम्ऽदृशः । युयोथाः । अभि । नः । वीरः । अर्वति । क्षमेत । प्र । जाः
रुद्र । प्रऽजाभिः ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतां पितः ! मरुत्संज्ञानां देवानां पितृत्वेन जनयि-
ते त्वदीयं सुम्नं परमसुखमस्मभ्यमेतु प्राप्नोतु । त्वं सूर्यस्य संदृशो लोचनात्
युयोथाः । पृथङ् मा कार्षीः । अर्वति शत्रून प्रति नो वीरो ऽस्माकं कम्पयिता श-
भिक्षमेत अभिभवं प्राप्नुयात् । त्वं च महावीरः, अस्मान् अभिक्षमेथाः। क्ष-
वयं च प्रजाभिः पुत्रपोत्रैः प्रजायेमहि । उत्कृष्टा भवेम ।

टिप्पणी—ऋग्वेद १-१४४-६ इत्यत्र रुद्रस्य मरुतां पितृत्वं सिद्धम् । सुम्न-
सुखम्, सुष्ठु म्नायते । युयोथाः—'यु मिश्रणामिश्रणयोः' इति लङि मध्यमपु-
वचने । छान्दसः शपः श्लुः । 'छन्दस्युभयथा' इति आर्धधातुकत्वेनङित्वा-
गुणः । अर्वा = शत्रुः, तस्मिन् अर्वति (तन्निमित्तात् सप्तमी) प्रजायेमहि—
स्याम । संदृशः—सम् + दृश् + क्विप् ।

(२) मैक्डानल ने 'सुम्नम्' का अर्थ 'सुभेच्छा' और अर्वति का अर्थ
किया है । अर्थात् उनका आशय है 'वीर रुद्र हमारे अश्वों के प्रति दयावान् ह-

हिन्दी-व्याख्या—हे मरुद्गण के उत्पादक रुद्र । (आ तू सुम्नमेतु)
कल्याणप्रद आनन्द हमें सदा मिलता रहे । (सूर्यस्य संदृशो मा नः युयोथाः)
मधुर—दर्शन से आप हमें पृथक् न करें । (अर्वति नो वीरः अभिक्षमेत) हमा-
पुरुष शत्रुओं पर सदा विजय प्राप्त करें और आप हमें क्षमा करें (कृतापरा-
क्षमस्व) । (प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः) हम सब परमानन्द को प्राप्त करते हु-
पौत्रादि से समन्वित रहें ।

२—

त्वा ऽदत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः

शतं हिमा अशीय भेषजेभि

व्य १ स्मद द्वषो वितरं व्यं हो

व्यमीवा श्चातयस्वा विषूचीः ॥२॥

पद-पाठ—त्वाऽदत्तेभिः । रुद्र । शम्ऽतमेभिः । शतम् । हिमाः । अशीय । भेषजेभिः । वि । अस्मत् । द्वेषः । विऽतरम् । वि । अंहः । वि । अमीवाः । चातयस्व । विषूचीः ॥२॥

संस्कृत-व्याया—हे रुद्र ! (त्वात्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः) त्वया दत्तैः अतिशयेन सुखकरैः औषधैः (शतं हिमा अशीय) शतं संवत्सरान् अशीय सेवेमहि । 'अस्मत् द्वेषो वि चातयस्व' येऽस्मान् द्विषन्ति तान् विनाशय । पृथक् कुरु । तथा अंहः पापं वितरम् अत्यन्तं विचातयस्व । विनाशय । (अमीवाः) रोगांश्च सर्वत्रः विचातयस्व । विनाशय ।

टिप्पणी—हिमाः = हेमन्तान् । अशीय—व्याप्नुयाम् । विषूचीः—विषु नानाऽञ्चतीः कृत्स्नशरीरव्यापकान् । शन्तमेभिः—शम् + तमप् । द्वेषः—द्विष् + क्विप् । चातयस्व—विध्वंसय । चत् + णिच् = चातय + लोट । शंतमेभिः भेषजेभिः—शन्तमैः, भेषजैः । प्रयोगश्छान्दसः ।

(२) मैक्डानल ने 'शन्तमेभिः' का अर्थ 'प्रभावपूर्ण लाभकारी' किया है, 'द्वेषः' का अर्थ 'घृणा करने वाले' और 'अंहः' का अर्थ व्यथा किया है='सभी ओर से हमारी वेदनायें दूर कीजिये ।'

हिन्दी-व्याख्या—हे रुद्र ! आप द्वारा दिये गये सुखकर औषधियों से हम सौ वर्ष तक हृष्ट-पुष्ट शरीर द्वारा शुभ-कार्य करते रहें । हमारे भीतर से राग-द्वेष का विनाश कीजिये जिससे हमसे कोई द्वेष न करें और परस्पर शान्ति से रहें । हमारे पाप हमसे दूर हों और सभी प्रकार के रोग हमसे दूर हों ।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि

तवस्तम स्तवसां वज्रबाहो ।

पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति

विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३॥

पद-पाठ—श्रेष्ठः । जातस्य । रुद्र । श्रिया । असि । तवःऽतमः । तव...

वज्रबाहो इति वज्रबाहो । पर्षि । नः । पारम् । अंहसः । स्वस्ति । विश्वाः । ...

इतिः । रपसः । युयोधि ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे रुद्र ! जातस्य समग्रस्य जगतः श्रिया स्वकीयेन ... त्वमेव श्रेष्ठः प्रशस्यतमोऽसि । त्वमेव हे बज्रबाहो ! (तवसां तवस्तमोऽसि) ... मध्येऽतिशयेन बलवानसि । हे आयुधहस्त ! त्वं नोऽस्मान् अंहसः पारं स्वस्ति ... तथा च रपसः पापस्य विश्वा अभीतीः अभिगमनानि युयोधि दूरं गमय ।

टिप्पणी—श्रिया—ऐश्वर्येण । श्रेष्ठः=प्रशस्यतमः । बज्रबाहो=वज्रं ... हस्ते यस्य । जातस्य=जनी प्रादुर्भावे क्तः । अभीतीः=अभि+इ+क्तिन् ... द्वितीयायाम् । युयोधि—यौतेः शपः श्लुः । पर्षि=पारं नय ।

(२) मैक्डानल ने श्रिया का अर्थ 'कीर्ति' तवसाम् का अर्थ बलवा... रपसः का अर्थ 'दुर्गुण' किये हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—(हे रुद्र ! श्रिया जातस्य श्रेष्ठोऽसि) इस समग्र प्रकट ... में अपनी शोभा और समृद्धि के कारण आप ही सबसे अधिक प्रशंसनीय हैं । ... वज्रबाहो ! तवसां त्वमेव तवस्तम) हे वज्रधारिन् ! शक्तिशालियों में ... सर्वोत्तम शक्ति रखते हैं । (अतएव अंहसः पारं नः स्वस्ति पर्षि) समस्त दु... आप हमें मंगलपूर्वक पृथक् रखिये और (विश्वा अभीतीः) पाप के सभी मा... हमसे दूर कीजिये ।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभि-

र्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती

उन्नो वीराँअर्पय भेषजेभि-

र्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४॥

पद-पाठ—मा । त्वा । रुद्र । चुक्रुधाम । नमः ऽभिः । मा । दुःऽस्तुती । वृषभ । मा । सऽहूती । उत् । नः । वीरान् । अर्पय । भेषजेभिः । भिषक्ऽतमम् । त्वा । भिषजाम् । शृणोमि ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे रुद्र ! त्वां नमोभिः नमस्कारैः पूजाभिः मा चुक्रुधाम न कोपयेम । हे वृषभ ! वर्षणशील ! दुष्टुती दुःखदया स्तुत्या मा चक्रुधाम न क्रोधयाम। तथा सहूती सहाह्वानेन असदृशैः देवैः सहामंत्रणेन मा क्रोधयाम । त्वं सर्वेषां प्राणभूतोऽसि, अतः नोऽस्माकं वीरान् पुत्रादीन् भेषजेभिः भेषजैः उत्कृष्टं प्रापय । हे रुद्र ! भिषजां मध्ये त्वां भिषक्तमं शृणोमि । त्वमेव श्रेष्ठो भिषगिति विश्वसिमि ।

टिप्पणी—दुष्टुती - दुष् + स्तुति, 'सुपां सुलुगिति' दीर्घः । चुक्रुधाम क्रुध–कोपे अस्माण्णयन्ताल् लुङि चङि । यजुर्वेदे १६–५ इत्यत्र 'प्रथमो दैव्यो भिषक्' इत्युक्त्वा रुद्रस्य भिषग्रूपता वर्णिता । भेषजम् = बिभेत्यस्मादिति भेषो रोगः, तं जयनीति भेषजम् । अशिष्टतया कृतो नमस्कारोऽपि सर्वथोद्वेजकः । अननुरूपैः शब्दैरपि कृता स्तुति र्न शर्मदा । निम्नैः सहाह्वानमपि नोचितम् । श्रेष्ठो हि स्वस्मान्न्यूनैः सहाह्वाने कुपितो भवति । सहूती = सहूत्या सहाह्वनेन ।

(२) मैक्डानल ने (वृषभ) का अर्थ बैल किया है, जो उचित नहीं है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे रुद्र ! (नमोभिः मा त्वा चुक्रुधाम) अशिष्ट नमस्कार के द्वारा हम आपको कुपित न करें । 'मा दुष्टुती' अननुकूल शब्दों द्वारा स्तुति करके हम आपको क्रुद्ध न करें और (सहूती) सादृश्यहीन देवों के साथ आह्वान करके भी हम आपको क्षुब्ध न करें । अपनी मुदिर-मधुर ओषधियों के द्वारा आप (वीरान् इत् नय) हमारे वीर पुरुषों को उत्कृष्टता दिलाइये । (भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि) चिकित्सकों में आप ही श्रेष्ठ भिषक् हैं, इस प्रसिद्धि को मैं भी श्रवण करता हूं ।

हवीमभि र्हवते यो हविर्भि–

रव स्तोमेभ रुद्रं दिषीय ।

ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै

बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥

पद-पाठ—हवीमऽभिः । हवते । यः । हविःऽभिः । अव । स्तोमे...

रुद्रम् । दिषीय । ऋदूदरः । सुऽहवः । मा । नः । अस्यै । बभ्रुः । सुऽशि...

रीरधत् । मनायै ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(हवीमभिः यो हवते) यो रुद्रः हवीमभिः स्तुति... आह्वानैः सदा हवते आहूयते स्तूयते । (यो हविर्भिः) यश्च हविषा चरुणा पु... शादिना च स्तूयते । अहमपि (स्तोमैभिः) स्तुति समूहैः तं रुद्रम् (अवदि... अवखण्डयामि अनुकूलयन् शान्तं करोमि । तत् करोमि येनासौ कोपं त्यजति, ... च करुणायते । यतो हि स (ऋदूदरः) मृदूदरः सरलस्वभावः, (सुहवः) शोभनाह्वा... (बभ्रुः) सकलस्य भर्ता (सुशिप्रः) शोभनहनुनासिकः । (स रुद्रः मा नो... मनायै रीरधत्) हन्मीति बुद्धिर्मना, तस्यै मनायै सरोषायै मा रीरधत् मा... कार्षीत् ।

टिप्पणी—हवते=हूयते व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः । बहुलं छन्द... ह्वयतेः सम्प्रसारणम् । द्विषीय—'दो अवखण्डने' लिङ् । बहुलं छन्दसी मीत... रीरधत्—'रध् हिंसासंराद्धयोः' ण्यन्ता ल्लृङि । चङि । ऋदूदरः=मृदूद... सुशिप्रः—शिप्रम्—हनु नासिका वा । सुन्दरहनुनासिकः ।

(२) मैक्डानल ने—ऋदूदर का अर्थ दयालु, सुशिप्रः का अर्थ सुन्दर ... वाला किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(हवीमभिः यो हवते) स्तुति और आह्वानों के द्वारा ... ही रुद्र स्तुत्य रहे हैं । (यो हविर्भिः) हविष्यअन्न आदि से सदा ही रुद्र की प... होती है । (अव स्तोमेभिः रुद्रं दिषीय) मैं अपनी मंगलमय स्तुतियों के द्वारा रु... शान्त और प्रसन्न करता हूँ । मैं मन-वचन तथा कर्म से ऐसा आचरण करता हूँ ... रुद्र शान्त और प्रसन्न हों । रुद्र बहुत ही (ऋदूदर) कोमल स्वभाव के हैं । (सुह... सरलता से पुकारे जाने योग्य हैं और (बभ्रु) जगत् के भर्ता तथा (सुशिप्रः) सु... नख-शिख वाले हैं । वे (अस्यै मनायै) हनन-बुद्धि से युक्त होकर कभी भी हम... (मानो रीरधत) क्रोध न करें ।

६—

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्

त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।

घृणीव च्छायामरपा अशीया

विवासेमं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥

पद-पाठ—उत् । मा । ममन्द । वृषभः । मरुत्वान् । त्वक्षीयसा । वयसा । नाधमानम् । घृणिऽइव । छायाम् । अरपाः । अशीय । आ । विवासेयम् । रुद्रस्य । सुम्नम् ।

संस्कृत-व्याख्या—(त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्) त्वक्षीयसा दीप्तेन वयसाऽऽयुषाऽन्नेन हविषा वा नाधमानं याचमानं मां (मरुत्वान्) मरुद्भिः युक्तो (वृषभः) कामानां वर्षिता (उन्ममन्द) उत्कर्षेण हर्षयतु सुखयतु । (घृणीव छायाम्) यथा सूर्यधर्मसन्तप्तः पुरुषः शान्तिदायिनीं छायामाश्रयति तथाऽहमहि (अरपाः) निष्पापः सन् (रुद्रस्य सुम्नम् अशीय) शोभनं मनः प्राप्नुयाम् । एतदर्थं च तमाविवासेयम्, परिचरेयम् ।

टिप्पणी—त्वक्षीयसा—त्वक्ष+ईयसुन् । तृतीया ।

(२) मैक्डानल ने 'त्वक्षीयसा' का अर्थ शक्तिसम्पन्न, अरपाः=अक्षत, वयसा=बल और सुम्न का अर्थ शुभेच्छा किया है । सुम्नम्=सुन्दरं मनः ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्वक्षीयसा वयसा नाधमानं माम्) दीप्त आयुष्य एवम् अन्नादि हविष्य के साथ याचना करने वाले मुझ भक्त को (वृषभो मरुत्वान्) मरुद्गण रूप पुत्र श्री से समन्वित, आनन्द की वर्षा करने वाले रुद्र भगवान् (उत् ममन्द) उत्कर्ष के साथ आनन्दित करें । (अरपाः घृणीवच्छायाम् अशीय) मैं निष्पाप होकर भगवन् रुद्र की कृपा का पात्र बनूं । जिस प्रकार कि सूर्य सन्तप्त व्यक्ति छाया का आश्रय लेता है, उसी प्रकार मुझे रुद्र का सहारा मिले । रुद्र के पवित्र संकेत मुझे मिलते रहें और मैं सदा उनकी परिचर्या में (विवासेयम्) लगा रहूं ।

७—

क्व१स्य ते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो—

यो अस्ति भेषजो जलाषः ।

अपभर्ता रपसो दैव्यस्या—

भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ।।७।।

पद-पाठ—क्व । स्यः ते । रुद्र । मृडयाकुः । हस्तः । यः । अस्ति । भेषज।
जलाषः । अपऽभर्ता । रपसः । दैव्यस्य । अभि । नु । मा । वृषभ । चक्षमीथाः ।।

संस्कृत-व्याख्या—(हे रुद्र ! स्य ते मृडयाकुः हस्तः क्व ?) हे स्वामिन् भवतः स सुखकरो हस्तः क्व वर्तते ? (यो अस्ति भेषजः जलाषः) यो हस्तोऽस्मत्कृते जलाषः सुखस्पर्शः भैषज्यकृच्चास्ति । पश्च हस्तः (दैव्यस्य रपसः अपभर्ता) देवकृतस्य पापस्य अपहर्ता भवति । (अभि नु मा वृषभ चक्षमीथाः) हे काम-वर्षितः । कृतमनोनिग्रहं मां नु कृपया अभिक्षमस्व ।

टिप्पणी—अभिचक्षमीथाः—'क्षमूष् सहने' लङि शपः श्लुः छान्दसः । छन्दसीतीडागमः । स्यः—'त्यद्' अस्य पुल्लिगे प्रथमैकवचने अपभर्ता—अप+भृ+तृच् ।

(२) मैक्डानल ने मृडयाकु का अर्थ 'दयालु' और जलाषः का अर्थ शीतलता प्रदान करने वाला किया है तथा 'रपसः' का अर्थ क्षत-विक्षत किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(क्व स्य ते रुद्र मृडयाकुः हस्तः) हे दुःखहर्ता रुद्र ! आपका वह आनन्दवर्धक हस्त कहाँ है जो कि अत्यन्त (मृडयाकुः) सुखदायक, (भेषजः जलाषः) रोगहारी रसायन और शान्तिदायक सुधा है। जो कि (दैव्यस्य रपसः) देवसम्बन्धित समस्त पापों का (इन्द्रियः—दुःखों का) (अपभर्ता) अपहरण करने वाला है । हे (वृषभ) आनन्द की वर्षा करने वाले स्वामिन ! (अभि नु मा चक्षमीथाः) हमें सर्वथा क्षमा करते ही रहना ।

८—

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे

महो महीं सुष्टुतिमीरयाभि ।

नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि

र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ।।८।।

पद-पाठ—प्र । बभ्रवे । वृषभाय । श्वितीचे । महः । महीम् । सुऽस्तुतिम् । ईरयामि । नमस्य । कल्मलीकिनम् । नमःऽभिः । गृणीमसि । त्वेषम् । रुद्रस्य । नाम ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे) जगतो भर्त्रे कामानां वर्षित्रे शुभ्रसात्विकवर्णाय (महो महीम् सुष्टुतिम्) महतो महीयसीं शोभनां स्तुतिमहं (प्र ईरयामि) प्रकर्षेण ईरयामि । हे स्तोतः ! (तं कल्मलीकिनं रुद्रं नमोभिः नमस्य) तं तेजसा ज्वलन्तं रुद्रं त्वं हविर्भि र्नमस्कारैश्च नमस्य पूजय । वयमपि (रुद्रस्य त्वेषं नाम) त्वेषं दीप्तं नाम गृणीमसि कीर्तयामः ।

टिप्पणी—श्वितीचे—'श्विता वर्णे' इन् प्रत्ययः, श्वितिमञ्चतीत्यञ्चते—ऋत्विगित्यादिना क्विन् । चतुर्थ्येकवचने । बभ्रवे—बभ्रुवर्णाय, विश्वस्य भर्त्रे वा । वृषभाय=वर्षणशीलाय । महो महीम्=महतोऽपि महतीम् । सुष्टुतिम्=सु+स्तुतिम्=शोभनां स्तुतिम् । कल्मलीकिनम्=निघं० १–१७ ज्वलतो नामधेयम् । ज्वलन्तम् कलयत्यपगमयति मलमिति कल्मलीकं तेजः, तद्वन्तम् । त्वेषम्=दीप्तम् । गृमीमसि=गृणीमः—संकीर्तयामः 'गृ शब्दे' क्रैयादिकः । 'इन्दन्तो मसिः', प्वादीनां ह्रस्वः ।

(२) मैक्डानल ने—'महो महीम्' का अर्थ किया है 'महान् रुद्र की महती स्तुति ।' इसी प्रकार 'त्वेषम्' अर्थ भयावह किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जगत् के भरण-पोषण करने वाले (बभ्रवे वृषभाय) और कामनाओं की पूर्ति तथा तृप्ति करने वाले सुन्दर सात्विक वर्ण (श्वितीचे) वाले महान् रुद्र के लिए मैं (महो महीं सुष्टुतिम् ईरयामि) उत्तम से उत्तम स्तुतियों द्वारा आत्म-प्रेरणा दे रहा हूं । हे स्तुति करने वोले स्तोतः ! तुम दोष निवारक महान् तेजस्वी रुद्र की हविष्य आदि से पूजा कर । हम सभी (रुद्रस्य त्वेषं नाम गृणीमसि) भगवान् रुद्र के दीप्त नाम का संकीर्तत करते हैं ।

९—

स्थिरेभिरंगैः पुरुरूप उग्रो

बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।

ईशानादस्य भुवनस्य भूरे—

न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥६॥

पद-पाठ—स्थिरेभिः । अङ्गैः । पुरुऽरूपः । उग्रः । बभ्रुः । शुक्रेभिः ।

पिपिशे । हिरण्यैः । ईशानात् । अस्य । भुवनस्य । भूरेः । न । वै । ऊं इति ।

योषत् । रुद्रात् । असुर्यम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(पुरुरूपः) अष्टमूर्त्यात्मकः बहुरूपः स रुद्रः (हिरण्यैः पिपिशे) स्वर्णालङ्कारैः दीप्यते । हितरमणीयैर्वा शरीरैः सुन्दरतयाऽभिव्यज्यते अलङ्काराश्चास्य शुक्राः शुचिकराः, तैः शुद्धैरलंकारैरसौ दीप्यते । (उग्रः बभ्रुः) च उग्रस्तेजस्वी जगतो भर्ता स्थिरैः दृढैः शरीरावयवैः (स्थिरेभिः अंगैः) शोभते । (अस्य भुवनस्य भूरेः) अस्य जगतः भर्तुः (ईशानात्) ऐश्वर्य-शालि संकाशात् (असुर्यम्) बलम् (न वा उ योषत्) नैव कदापि पृथग् भवति । स सर्व सर्वदैव सर्वशक्तिमान् ।

टिप्पणी—पुरुरूपः—अष्टमूर्त्यात्मकः—पृथिवी—जलम्—अग्निः—वायुः आकाशम् । चन्द्रः—सूर्यः—यजमानश्च । असुरः—असेरुरन् । असुरः क्षेप्ता, साधुः । असुर्यं बलम् । योषत्—यौते लेंट् । अडागमः । 'सिब्बहुलं लेटि' इति सिप् पिपिशे—पिश—लिट् ।

(२) मैक्डानल ने 'भूरेः' का अर्थ 'महान्' किया है । इसे भुवन का विशे मानते हैं । असुर्यम् का अर्थ वे 'दिव्य साम्राज्य' करते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—अष्टमूर्ति रूप में विद्यमान् रुद्र अपने (स्थिरेभिः अङ्गैः) दृढ़ शरीरावयवों से (उग्रः) अतीव शक्तिशाली हैं । (बभ्रुः शुक्रेभिः हिरण्यैः पि) जगत् के भर्ता स्वामी स्वर्णिम आभूषणों से (=हित रमणीय कान्ति से) जगम रहे हैं । (अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात्) इस ऐश्वर्य सम्पन्न जगत् के स्वामी (असुर्यम्) शारीरिक बल तथा मानसिक तेज (न वा उ योषत्) कभी भी पृथक् हो सकता । वे सदा ही सर्वज्ञ हैं और सदा ही सर्व शक्तिसम्पन्न हैं ।

१०—

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वाऽ—

र्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।

अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं

न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥

पद-पाठ—अर्हन् । बिभर्षि । सायकानि । धन्व । अर्हन् । निष्कम् । यजतम् । विश्वऽरूपम् । अर्हन् । इदम् । दयसे । विश्वम् । अभ्वम् । न । वै । ओजीयः । रुद्र । त्वत् । अस्ति ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे रुद्र ! त्वम् (अर्हन् सायकानि धन्व बिभर्षि) समर्थ एव भवन् बाणान् धनुश्च बिभर्षि धारयसि । (अर्हन् यजतं विश्वरूपं निष्कं बिभर्षि) अर्हन्नेव सन् योग्य एव भवन् इदं पूजनीयं विश्वरूपं कण्ठहारं धारयसि । (इदं विश्वम् अभ्वम् अर्हन्नेव दयसे) त्वं पूज्य एव सन् इदं तु अति विस्तीर्ण जगत् दयसे दयया पालयसि (न वा त्वत्) नैव त्वद् भिन्नं किञ्चिद् अन्यत् ओजीयः ओजस्वितरं बलवत्तरं वा विद्यते । त्वमेव सर्वेषामतिशय प्रवृद्धः ।

टिप्पणी—निष्कः—कण्ठहारः । अभ्वम्—महत् । दयसे = रक्षसि, देङ् रक्षणे । ओजीयः—ओजः शब्दात् मत्वर्थीयो विनिः । ततः आतिशायने इष्ठन् । विन्मतो र्लुक् । टेरिति टिलोपः । अर्हन् = अर्ह + शतृ । यजतम् = यज + अतच् ।

(२) मैक्डानल ने 'अभ्वम्' का अर्थ 'बल' किया है तथा 'दायसे' का अर्थ 'प्रयोग में लाते हो ।' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(सायकानि धन्व । अर्हन् बिभर्षि) हे रुद्र ! आप सर्वथा ही समर्थ रहते हुए परम धनुर्धर रूप में एक महान् सेनानी का रूप धारण करते हुए धनुर्बाण ग्रहण करते हैं (अर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम्) तथा महान् अनुभाव रखते हुए इस चन्द्र-तारक मण्डित मणिमय कण्ठहार को परम पूजनीय रूप में धारण करते हैं । (इदं विश्वम् अभ्वम् अर्हन दयसे) इस विशाल विश्व-वृक्ष की उत्कृष्ट सामर्थ्य के साथ

आप ही रक्षा करते हैं। (न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति) आप से भिन्न किसी में सामर्थ्य नहीं है कि इतना विशाल व्यापक सामर्थ्य का प्रदर्शन कर सके।

११—

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं

मृगं न भीममुपहन्तु मुग्रम्।

मृडा जरित्रे रूद्र स्तवानो

ऽन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ।।११।।

पद-पाठ—स्तुहि । श्रुतम् गर्तऽसदम् । युवानम् । मृगम् । न भीमम् । उपऽहन्तुम् । उग्रम् । मृड । जरित्रे । रुद्र । स्तवानः । अन्यम् । ते । अस्मत् । नि। वपन्तु । सेनाः ।।११।।

संस्कृत-व्याख्या—(स्तुहि श्रुतम्) हे स्तुति—सम्पादक ! तं श्रुतं विश्रुतं प्रख्यातं रुद्रं कुशलाभि र्वाग्भिः स्तुहि। कीदृशं रुद्र ? (गर्तसदं युवानम्) रमणीये स्पन्दने शोभमान् नित्यतरुणम् (मृगं न भीमम्)। सिंह इव संधृतपराक्रममतिभयङ्करम् (उपहन्तुम् उग्रम्) उपहन्तारम् अतीव चण्डम्। हे रुद्र ! (स्तवानः) अस्माभिः स्तूयमानः सन् (जरित्रे) स्तोत्रे मह्यं मृड। सुखय। (ते सेनाः) त्वदीयाः नेश्वराः सेनाः (अस्मत्) अस्मद् भिन्नं व्यतिरिक्तं दुष्टं पुरुषं प्रति (निवपन्तु) निष्पतन्तु।

टिप्पणी—गर्तः—रथः। मृगः—मार्गणशीलः सिंहादिः। जरित्रे—जॄ+तृच् (इट्) जरितृ चतुर्थ्येकवचने। स्तवानः—स्तु+शानच्।

(२) मैक्डानल ने 'मृगं न भीमम् उपहन्तुम्' का अर्थ किया है—भयंकर सिंह के समान घातक। इसी प्रकार सेना शब्द का अर्थ गुडिका (गोली)=हनन समर्थ गोली किया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे मधुर—स्तुतियों के सम्पादक ! (श्रुतं स्तुहि) उस प्रख्यात रुद्र की वन्दना कर जोकि (गर्त सदं युवानम्) नित्य तरुण तथा सुन्दर रथ पर शोभायमान है। (मृगं न भीमम्) जो सिंह के सदृश भयंकर (उपहन्तुम् उग्रम्) हननशील तथा दुष्ट के प्रति अत्यन्त कोपकारी है। हे रुद्र ! (जरित्रे मृड) स्तुति

सम्पादक के प्रति आप सदैव कोमल-कान्त और सुखदायक रहें। (स्तवानः) आपके प्रति स्तुति करने वाला सदा सुखी रहे और आप स्तुति पाते हुए सदा प्रसन्न रहें। (सेनाः) आपकी ऐश्वर्यसम्पन्न सेनायें (अन्यम् अस्मत्) हमसे भिन्न दुष्ट पुरुषों के प्रति (निवपन्तु) निपात करती रहें।

१२—

कुमार श्चित्पितरं वन्दमानं

प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।

भूरे र्दातारं सत्प तिं गृणीषे

स्तुत स्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥

पद-पाठ—कुमारः। चित्। पितरम्। वन्दमानम् प्रति। ननाम। रुद्र। उपऽयन्तम्। भूरेः। दातारम्। सत्ऽपतिम्। गृणीषे। स्तुतः। त्वम्। भेषजा। रासि अस्मे इति ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—(पितरं वन्दमानं कुमारश्चित्) आयुष्मान् भव, वर्धस्वेति पितरमभिनन्दनं कुमार इव (हे रुद्र उपयन्तम्) अस्मत्समीपे उपागच्छन्तं भवन्तं प्रति (ननाम) अहं अतीव प्रणतोऽस्मि। (भूरेः दातारं सत्पतिम्) भूरेः बहुनो धनस्य दातारं सतां पालयितारं त्वां मनसा स्तौमि (गृणीषे) अभिनन्दामि। त्वं च (स्तुतः) स्तुतः सन् अस्मे अस्यम्यं (भेषजा) भेषजानि विविधानि सुखावहानि रसायनानि (रासि) दत्वा सुखय।

टिप्पणी—कुमारः—कौ पृथिव्यां मार इव कामदेव इव। चिदित्युपमार्थे। गृणीषे—तिङां तिङो भवन्तीति मिपः से आदेशः। भेषजा—भेषजानि। बिभेत्यस्मादिति भेषः रोगस्तं जयतीति भेषजं रसायनम्। वन्दमानम् वदि + शानच्—आनेमुक्। उपयन्तम्—उप + इ + शतृ। नानाम—नम् + लिट्। अभ्यासस्य दीर्घत्वम्। अस्मे—अस्मभ्यम्। रासि—ददासि, 'रा दाने'।

हिन्दी-व्याख्या—(पितरं वन्यमानं कुमारः चित्) वत्स ! बढ़ो, उन्नति करो, आयुष्मान् भव आदि गुण-वचनों से अभिनन्दन करते हुए = पिता की ओर से मधुर उत्साहवर्धक मंगल-वचन को श्रवण करके (उपयन्तम्) अपनी ओर आते कृपा-दृष्टि पाकर हे रुद्र ! मैं (प्रति नानाम) आपकी ओर अत्यन्त प्रणत हूं। (दातारं सप्तितिम्) अत्यधिक दाता तथा सज्जनों के पालक आपके प्रति मैं (गृणे) स्तुति करता हूं। और आप (स्तुतः सन् अस्ये भेषजा रासि) मधुर स्तुतियों से पुलकित करते हुए नाना प्रकार के रसायन प्रस्तुत करते हैं।

१३—

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि

या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।

यानि मनुरवृणीता पिता न

स्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

पद-पाठ—या । वः । भेषजा । मरुतः । शुचीनि । या । शम्ऽतमा । वृषणः । या । मयःऽभु । यानि । मनुः । अवृणीत । पिता । नः । ता । शम् । च । योः । च । रुद्रस्य । वश्मि ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—(मरुतः ! या वो भेषजा शुचीनि) हे मरुतः ! रुद्रपुत्राः ! यानि वः युष्माकं भेषजानि आरोग्यसम्पादकानि रसायनानि शुचीनि शुद्धानि हिंसादिदोषरहितानि (या शन्तमा) यानि चातिशयेन सुखकराणि (वृषणः या मयोभु) या नि च मयोभूनि मयसः सुखस्य विभावनानि सन्ति तानि हे वृषणः कामानां वर्षितारो मरुतः ! अस्मभ्यं सम्पादयत । (यानि मनुः अवृणीत पिता नः) यानि भेषजानि रसायनानि अस्माकं पिता पालको मनीषी वृतवान् । तानि रुद्रस्य सम्बन्धीनि भेषजान्यहं वृणे । (शं च योश्च ता रुद्रस्य वश्मि) अहं कामये शम् रोगाणां दुःखानां च शमनं यावनीयानां पृथक्करणीयानां च भयानां यावनं पृथक्करणम् इति ।

टिप्पणी—भेषजा = भेषजानि । शन्तमा—शंतमानि । मयोभु = मयोभूनि मयस् + भू + डु' । ऊकार लोपः । अवृणीत = वृ + लङ् । वश्मि 'वश कान्तौ' लटि । शम् = शमनीयानां शमनम् । योः = यावनीयानां यावनं पृथक्करणम् । 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' ।

(२) मैक्डानल ने 'शन्तमा' का अर्थ स्वास्थ्यप्रद, 'वृषणः' का अर्थ शक्तिशाली, 'मयोभु' का अर्थ लाभप्रद तथा शम् एवं योः का अर्थ रसाधायक एवं आशीर्वचन के रूप में किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मरुतः ! रुद्र के स्वाभिमानी पुत्रगण ! (या वो भेषजा शुचीनि) जो आपकी शुद्ध ओषधियाँ हैं (या शन्तमा) जो शान्तिदायक एवं (मयोभु) सुखाधायक हैं (यानि मनुः अवृणीत पिता नः) जिन्हें हमारे मनीषी मनु पिता ने वरण किया है, उन्हीं रसायन रूप ओषधियों की मैं भी कामना करता हूं जिनसे (शम्) रोगों का पूर्ण रूप से शमन हो तथा (योः) अनागत रोगों तथा चिन्ताओं का विनाश हो जाय ।

१४—

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः

परि त्वेषस्य दुर्मति मही गात् ।

अव स्थिरा मघवद्भ्च स्तनुष्व

मीढ्व स्तोकाय तनयाय मृड्ढ ॥१४॥

पद-पाठ—परि । नः । हेतिः । रुद्रस्य । वृज्याः । परि । त्वेषस्य । दुर्मतिः । मही । गात् । अव । स्थिरा । मघवत्ऽभ्यः । तनुष्व । मीढ्वः । तोकाय । तनयाय । मृड्ढ ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—(रुद्रस्य) महतो देवस्य (हेतिः) हनन साधनम् आयुधम् (नः) अस्मान् (परिवृज्याः) परिवर्जयतु । (त्वेषस्य मही दुर्मतिः परिगात्) तथा तस्य रुद्रस्य महती क्रोधकारिणी बुद्धिः अस्मान् परित्यज्य अन्यत्र गच्छतु । (मीढ्वः) हे सेचनसमर्थ ! (स्थिरा) स्थिराणि स्वकीयानि धनूंषि (मघवद्भ्यः)

हविर्धनयुक्तेभ्यो महापुरुषेभ्यो रक्षार्थम् (अव तनुष्व) शिथिलय, अवनतानि
(तोकाय तनयाय मृड) सुखय च अस्मत्पुत्राय पौत्राय च।

टिप्पणी—हेतिः = हननसाधनमायुधम्। वृज्याः—वृज् लिङ्। मी
'मिह सेजने' क्वसुः। मघम् इति धननामधेयम्। तनुष्व—'तनु विस्तारे' लोट्

(२) मैक्डानल ने 'त्वेष' का अर्थ भयानक और मीढ्व का अर्थ उदार
है।

हिन्दी-व्याख्या—(रुद्रस्य हेतिः नः परिवृज्याः—) रुद्र देवता के हनन
(= मारक अस्त्र) हमसे दूर रहें। (त्वेमरम मही दुर्मतिः परि गात्) महा
भयंकर कोप-भावना हमसे दूर रहे। हे रुद्र! (मघवद्भ्यः स्थिरा अव
ऐश्वर्य सम्पन्न उदार पुरुषों से अपने दृढ धनुष् को शिथिल करके उनकी र
और (तोकाय तनयाम मृड) हमारे पुत्रों-पौत्रों की रक्षा करो। उ
बनाओ।

१५—

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान

यथा देव न हृणीषे न हंसि।

हवन श्रुन्नो रुद्रेह बोधि

बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥

पद-पाठ—एव। बभ्रो इति। वृषभ। चेकितान। यथा।

हृणीषे। न। हंसि। हवनऽश्रुत्। नः। रुद्र। इह। बोधि। बृहत्। वदेम।

सुऽवीराः ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—(हे बभ्रो) जगतः भर्तः स्वामिन्! (वृषभ)
वर्षितः! (चेकितान) सर्वं जानन् (देव) विद्योतमान! रुद्र! (यथा न हृ
कुप्यसि (न हंसि) न च व्यापादयसि (हवनश्रुत् नः इह बोधि) वयं त्वदी
इत्यस्माकं हवनम् आह्वानं शृण्वन् बुध्यस्व। (विदथे) शोभने गृहे यज्ञे
सुवीराः कल्याणपुत्राः सन्तो वयं (बृहद् वदेम) त्वदीयं स्तुतिसमूहम् उच्चारये

टिप्पणी—चेकितानः—'कित ज्ञाने' कानच्, द्वित्वं गुणश्च । हृणीषे—हृणीङ् लज्जायां क्रोधें च' ।

(२) मैक्डानल ने 'चेकितान' का अर्थ 'प्रख्यात', वृषभ का अर्थ बैल और विदथे' का अर्थ दैवी प्रार्थना किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(बभ्रो वृषभ चेकितान) हे जगत् के पालक, आनन्द की र्षा करने वाले सर्वज्ञ रुद्र ! (यथा देव न हृणीषे न हंसि) आप जैसे भी सन्तुष्ट , हम पर प्रसन्न रहें । हम पर संकोच अथवा क्रोध न करें । हमारा कभी विनाश हो । (हवन श्रुत् नः रुद्र इह बोधि) हमारे आह्वानों को आप सुनें और आपकी ष्टि में ही हम रहें, ऐसा आप समझें । हम भी (सुवीराः) कल्याणकारी पुत्र-पौत्रों साथ आपके मार्ग दर्शन में (विदथे बृहद् वदेम) सदा प्रसन्न होकर यज्ञ की वेदी र अथवा घर पर ऋचाओं का उच्चारण करते रहें ।

मण्डल–२

अश्वि सूक्तम्

सूक्त ३६

ऋषिः—गृत्समद, देवता—अश्विनौ, छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१–

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे

गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।

ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा

दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

पद-पाठ—ग्रावाणा ऽ इव । तत् । इत् । अर्थम् । जरेथे इति । गृध्रा ऽ इव । वृक्षम् । निधिऽमन्तम् । अच्छ । ब्रह्माणा ऽ इव । विदथे । उक्थ ऽ शासा । दूता ऽ इव ।

हव्या । जन्या । पुरुत्रा ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां 'ग्रावाणेव' क्षिप्रक्षिप्तौ यन्त्रपा- इव 'तत् इत् अर्थम्' तमेव अरातिं शत्रुं प्रति गत्वा जरेथे जरमेथे बाधेथाम्। क्षिप्रक्षिप्तौ मुशुंडिगुलिकौ शत्रुं प्राप्य विनाशयतः तथा युवामित्यर्थः । 'गृध्रेव निधिमन्तमच्छ' फलसमृद्धं वृक्षं प्रति यथा लुब्धौ पक्षिणौ क्षिप्रं गच्छतस्तथा स्तुतिसमृद्धं स्वच्छान्तः करणमृषिं प्रति सौविध्येन शीघ्रमेव तत्सेवार्थं तत्परौ 'ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा' उक्थशंसितारौ ऋतम्भरौ ऋषी इव ब्रह्माणौ अधिगुणौ 'दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा' बहुभिः पुरुषै र्ह्वातव्यौ दूताविव प्राप्- भावाविव । गूढौ दृढौ मुदितौ प्रियकरौ युवामित्यर्थः ।

टिप्पणी—अर्थम्—'अर्थोऽर्तेः' इति यास्कः । गृध्रेव—गृध्रौ इव। प्रतीकार्थम् । अश्विनौ –प्राणापानौ, सूर्याचन्द्रमसौ, द्यावापृथिव्यौ तदभिमा- देवौ ।

हिन्दी व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप तोप से फेंके गये भयावह गोले समान शीघ्र ही शत्रु-विध्वंस कर देते हैं । 'निधिमन्तं वृक्षम्' फल-सम्पदा हुए वृक्ष के समान बाह्य एवम् अन्तः विभूतियों से सम्पन्न ऋषि के पास गृध्र के समान तत्काल पहुंच जाते हैं । स्तुति समूहों में प्रशंसा करने वाले सम्पन्न ऋषि के समान उत्तम स्वभाव से युक्त आप हैं तथा प्रतिनिधित्व करने वाले गूढ़, दृढ़ एवं प्रियकर दूतों के समान आप नित्य ही प्रशंसा एवं प्री- पात्र हैं ।

२–

प्रात र्यावाणा रथ्येव वीराजेव-

यमा वरमा सचेथे ।

मेने इव तन्वा ३ शुम्भमाने

दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥

पद-पाठः—प्रातः ऽ यावाना । रथ्योऽइव । वीरा । अजा ऽ इव यमा ।

आ । सचेथे इति । मेने इवेति मेने ऽ इव । तन्वा । शुम्भमाने इति । दम्पती इवेति

दम्पती ऽ इव । क्रतु ऽ विदा । जनेषु ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां 'प्रात र्यावाणौ' प्रसन्नौ स्फूर्तियुक्तौ प्रभातवेलाया मेव मनुष्यान् बोधयथः । 'रथ्येव वीरा' रथिनाविव रणकर्मणि दक्षौ । अजेष अजाविव दृढ़प्रहारौ । यमा यमौ यमलौ नियन्तारौ । 'मेने इव तन्वा शुम्भमाने' यथा दयितहितचिन्तिके मान्ये प्राणप्रिये वल्लभे तन्वा शरीरेण सदैव मुदिते प्रसन्ने कान्ते रमणीये शोभमाने भवतस्तथा युवां सदैव तृप्तौ कृतालङ्कारौ प्रसाधितवेशौ कमनीयौ नयनानन्ददायिनौ भवथः । जनेषु जनं जनं प्रति युवां 'क्रतुविदा' किं वस्तु कस्मै प्रियमिति सदैव कर्मविदौ 'दम्पतीव' दम इतिगृहनाम, तस्य पालकौ जायापती इव अगधिततावज्ञौ प्राप्तसर्वर्थौ समयचतुरौ च तथा विधौ युवां वरम् आ सचेथे । क्षिप्रमेव वरणीयं प्रति आगच्छथः ।

टिप्पणी—रथ्येव—रथस्येमौ 'तस्येदम्' यत् प्रत्ययः । क्रतुविदा—कर्मविदौ, प्रज्ञाविदौ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्विदेव ! आप दोनों सुप्रभात वेला में ही हमारी तन्द्रा दूर कर देते हैं तथा हमारी चेतना में प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं । आप दोनों अच्छे रण-कुशल वीर के समान सहनशील और हृष्ट-पुष्ट छाग के समान दृढ़ प्रहार करने वाले हैं । आप 'यमा' नियमनशील और अन्तः प्ररु हैं। आप गमन—आगमन समय के लिये अपने आपको सुन्दर स्त्रियों की भाँति सजते और सजाते हैं। मानवीय कर्त्तव्य निष्ठा में आप गृह-पालक दम्पती (पत्नी और पति) के समान कार्य-प्रज्ञा को प्रदर्शित करते हैं ।

३-

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्त मर्वाक्—

छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।

चक्रवाकेव प्रतिवस्तोरुस्रा—

वर्ञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥

पद-पाठः—शृङ्गा ऽ इव । नः । प्रथमा । गन्तम् । अर्वाक् । शफौऽइव ।

जभुंराणा । तरः ऽ भि । चक्र वाका ऽ इव । प्रति । वस्तोः । उस्रा । अर्वाञ्चा ।

यातम् । रथ्या ऽ इव । शक्रा ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां देवेषु प्रथमौ प्रतमौ उत्कृष्टतमौ शृङ्गे इव परस्परम् अविभागापन्नौ स्वाश्रयौ दृढ़ौ च । युवां शफौ इव जभुंराणा शफौ धारणसमर्थौ तथा युवाम् । 'तरोभिः अर्वाक् आ गन्तम् वेगातिशयेन अस्मदभिमुखं शीघ्रम् आगच्छतम् । प्रति्वस्तोः प्रतिदिनं चक्रवाक विव अवियक्तौ । उस्रौ इव वृहन्तौ वृषभौ इव शक्ति सम्पन्नौ । रथ्येव शक्रा रथिनौ इव शूरकर्मणि समर्थौ अर्वाञ्चा अस्मदभिमुखौ यातम् आगच्छतम् अस्माकं स्वस्तये ।

टिप्पणी—उत्स्रा—शत्रूणामुत्सारकौ गमनशीलौ वा, इति सायणाचार्यः वस्तः—वस्त इत्यह र्नाम । चक्रवाकेव—चक्रवाकौ इव—चक्रवाकौ दिने संयुक्तौ रात्रौ च वियुक्तौ भवत इति कवि समयः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप दोनों महिष आदि के शृंगों के समान परस्पर अविभागापन्न और दृढ़ हैं । शफों (टापों) के समान धारण समर्थ और संभरण करने वाले हैं । आप वेग के साथ आयें और हमारे दुःख—रोग आदि कष्टों का निवारण करें । आप दोनों चक्रवाक्—मिथुन के समान सदा साथ रहने वाले वृषभों के समान विशाल और पुष्ट तथा महारथी के समान सशक्त हैं । अतः कृपा करके हमारे कल्याण के लिये शीघ्र पधारें ।

४–

नावेव नः पारयतं युगेव—

नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।

श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां

खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ।।४।।

पद-पाठः—नावा ऽ इव । नः । पारयतम् । युगा ऽ इव । नभ्या ऽ इव

नः । उपधी इवेत्युपधी ऽ इव । प्रधी इवेति प्रधी ऽ इव । श्वाना ऽ इव । नः ।

अरिषण्या । तनूनाम् । खृगला ऽ इव । वि ऽ स्रसः । पातम् । अस्मान् ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां दुःखशोकावेगेभ्यः नो ऽ स्मान् पारयतम् परे पारं नयतम् । नावेव यथा नावौ दुर्गमनान् सिन्धून् पारयतः । तथा पारयतम् । युगेव नभ्येव उपधीव प्रधीव इति चतस्र उपमाः । युगेव यथा रथस्य युगे, नभ्येव यथा रथस्य नाभिभूते फलके उपधीव यथा रथपार्श्वस्थफलके प्रधीव यथा चक्रबाह्यवलयौ तथा रक्षणसमर्थौ आश्रयभूतौ युवामित्यर्थः । 'श्वानेव नो अरिषण्या तनूनाम्' युवां गृह-रक्षकौ श्वानौ इव बोधकेभ्यो रक्षथः । अरिषण्या तनूनाम्' अङ्गानाम् अरिषण्यौ दुःख-वर्जितौ मातेव रक्षकौ पालकौ सुखप्रदौ भवतम् । विस्रसः विस्रस्तात् शिथिलात् वृद्ध-भावात् अस्मान् युवां पातम् । खृगलेव यथा कवचः कवचहरं पाति तद्वत् ।

टिप्पणी—खृगला—कवचः । तनुत्राणम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप दुःख-सागर से हमारा उद्धार करते हैं। जिस प्रकार दृढ़ सुन्दर नौकायें सागर-पार कराने में समर्थ होती हैं उसी प्रकार आप दोनों शोक-सागर से परे पार पहुंचा देते हैं । युगेव, नभ्येव, उपधीव, प्रधीव यह चार उपमायें दी हैं । रथ-युग के समान, रथ-नाभि के समान, रथ-फलक के समान और रथ के लोह-घेरे के समान आप हमारे आश्रय, शरण-स्थान और रक्षक हैं। आप सतत सावधान सारमेयों (कुत्ता) के समान बाधा पहुंचाने वालों से रक्षा करते हैं । आप अंगों को शिथिल करने वाली वृद्धावस्था से हमारी रक्षा करें । खृगला के समान । खृगला कवच को कहते हैं । जिस प्रकार विक्रान्त वीर की रक्षा में खृगला=तनुत्राण दक्ष है उसी प्रकार आप दोनों हमारी रक्षा में सक्षम हैं ।

५-

वातेवा जुर्या नद्येव रीतिः

रक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।

हस्ताविव तन्वे उ शंभविष्ठा

पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ।।५।।

पद-पाठ—वाता ऽ इव । अजुर्या । नद्या ऽ इव । रीतिः अक्षी इवेत्यक्षी ऽ इव । चक्षुषा । आ । यातम् । अर्वाक् । हस्तौ ऽ इव । तन्वे । शम् ऽ भविष्ठा । पादा ऽ इव । नः । नयतम् । वस्यः । अच्छ ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां वातेव अजुर्या जटितुमशक्यौ 'वायुरिव दीर्घायु'रिति भासः । नद्येव रीतिः सतत प्रवाहोपेतौ आत्मनिर्भरौ । सरसौ च । अक्षी इव अक्षिणी इव चक्षुषा शोभनदर्शनेन प्रियदर्शनौ भूत्वा अस्माकं चक्षु स्थानीयौ भवतम्—'धर्मं जिज्ञासमानानां चक्षु र्भवतु नो भवान्' इति भीष्मं प्रति युधिष्ठिर—प्रश्ने (महाभारते प्रयोगः) । अर्वाक् अस्मद भिमुखम् आ यातम् आ गच्छतम् । तन्वे अस्माकं शरीराय हस्तौ इव शंभविष्ठा सुखस्य भावयितारौ पादौ पादौ इव च वस्यः वसीयः श्रेष्ठं धनं प्रति अच्छ नयतम् ।

टिप्पणी—अजुर्या—'जृष् वयोहानौ' । भावेण्यत् । वृद्धौ कृतायाम् आकारस्य व्यत्ययेन उकारः । जुर्यं जरा नास्ति अस्येति बहूव्रीहिः । 'नञ् सुभ्याम्' इत्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप वायु के समान दीर्घायु और 'अजुर्या' वृद्धत्व अथवा अंगशौथिल्य से रहित हैं । सदा प्रसन्न, तृप्त और वज्रबली है । आप दोनों सदैव नदियों के समान आत्म निर्भर, प्रवाहपूर्ण और सरस हैं । आप नयनों के समान प्रियदर्शन और मार्ग- द्रष्टा हैं । दोनों आप हस्त युगल के समान शरीर के लिये सुख प्रदाता तथा चरणों के समान श्रेष्ठ धन के प्रति गतिप्रद हैं ।

६—

ओष्ठा विव मध्वास्ने वदन्ता

स्तना विव पिप्यतं जीवसे नः ।

नासेव न स्तन्वो रक्षितारा

कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

पद-पाठः—ओष्टौ ऽ इव । मधु । आस्ने । वदन्ता । स्तनौ ऽ इव । पिप्यतम्

जीवसे । नः । नासा ऽ इव । नः । तन्वः । रक्षितारा । कर्णौ ऽ इव । सु ऽ श्रुता ।

भूतम् । अस्मे इति ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां हि आस्ने । आस्याय वदनाय मधु मधुरं वदन्तौ जीवसे जीवनाय स्तनौ इव पिप्यतम् प्याययतम् । जीवनसंवर्धन-साधकौ भवतम् । अस्मांक तन्वः तनौः शरीरस्य रक्षितारौ नासेव नासिके इव प्राणप्रदौ भूतं भवतम् । कर्णौ इव सुश्रुता सुश्रवणसाधनौ भूत्वा बहुश्रुतान् अस्मान् सम्वादयतम् ॥

टिप्पणी—आस्ने—'पद्दन् ०' इति आस्यस्य आसन् । 'अल्लोपोऽनः' इति अकारलोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्विदेव ! आप दोनों ही मिल कर मधुर-मंगल ध्वनि का उच्चारण करते हैं जिस प्रकार कि दोनों ओष्ठ मिल कर ही मधुर-ध्वनि के उच्चारण में कारण बनते हैं । हमारे जीवन के लिये स्तनों के समान आप रसायन देते हैं । जिस प्रकार हमारी नासिका हमारी स्थिरता के लिये प्राणदायिनी प्रतिष्ठा है उसी प्रकार आप भी हमारे लिये प्राणाधायक हेतु हैं । जिस प्रकार हमारे लिये कर्ण शब्द-रसायन देकर हमें बहुश्रुत बनाते हैं उसी प्रकार विद्या-वैभव देने में आप कर्ण-रसायन प्रस्तुत करते रहते हैं ।

सर्वेषामिन्द्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने ।
श्रवणाद् वस्तु विज्ञानं दर्शनाच्चित्तरञ्जनम्
—दे० भा०

७-

हस्तेव शक्तिमभि संददी नः

क्षामेव नः समजतं रजांसि ।

इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः

क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥

पद-पाठः—हस्ताऽइव । शक्तिम् । अभि । संददी इति सम्ऽददी । नः । क्षाम

ऽ इव । नः । सम् । अजतम् रजांसि । इमाः । गिरः । अश्विना । युष्मऽयन्तीः ।

क्ष्णोत्रेण ऽ इव । स्वऽधितिम् । सम् । शिशीतम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां हस्तौ इव अस्माकम् करावलम्बनौ भवतम् । यथा कश्चन सखा (दोस्त=दोस्थः) दुःखसमये अवलम्बनो भवति तथा युवां नः अस्माकंम् अभि अस्मान् अभि शक्तिं प्रदाय समर्थान् कुरुतम् बलं संददी नः सम्यक् प्रयच्छन्तौ भवतम् । क्षामेव द्योरिव पृथिवी इव च रजांसि उदकानि सम् अजतम् सम्यक् प्रेरयतम् । यथा कश्चन अयस्कारः क्ष्णोत्रेण तेजनशाणेन स्वकीयां स्वधितिं तीक्ष्णां करोति तथा हे अश्विनौ इमा अस्माभिः सम्यक् सम्पादिता गिरः स्तुतयः युष्मयन्ती ताः स्तुतीः युवां कामयमानाः । इमाः सं शिशीतम् सम्यक् तीक्ष्णीकुरुतम् । यथा शब्दारिघ्रं प्रतिभादारिघ्रं वा न श्येत् ।

टिप्पणी—रजांसि—'उदकं रज उच्यते' इति यास्कः । क्ष्णोत्रम्—शाणयन्त्रन् । स्वाधितिः—लोहायुधम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आय दोनों हमारे लिए हाथ के समान हस्तावलम्बन बनें । हमें सामर्थ्य प्रदान करें । द्युलोक और पृथ्वी लोक के समान जीवन प्राप्ति के लिये जल क्षेपण करते रहें । जिस प्रकार तलवार, आदि हथियारों को सान पर चढ़ा कर चमकाया जाता है और उन्हें तीक्ष्ण किया जाता है इसी प्रकार हमारी स्तुतियों को चमका कर तीक्ष्ण कर दीजिये जिससे कि हमारी शब्द दरिद्रता और प्रतिभा की दिरद्रता दूर हो और हमरे मुख में सदा चमकती हुई वाणी का चमत्कार प्रकट हो ।

८—

एतानि वामश्विना वर्धनानि

ब्रह्न स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।

तानि नरा जुजुषाणोप यातं

बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥

पद-पाठः—एतानि । वाम् । अश्विना । वर्धनानि । ब्रह्म । स्तोमम् ।

गृत्सऽमदासः । अक्रन् । तानि । नरा । जुजुषाणा । उप । यातम् । बृहत् । वदेम ।

विदथे । सुऽवीराः ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! एतानि वां युवयोः वर्धनानि संवर्धनपराणि स्तुतिशस्त्राणि यानि ब्रह्म ब्रह्माणि बृहन्ति स्तोमं स्तुतिसमूहान् गृत्समदासः गृत्समदा ऋषय स्तत्र भवन्तोऽक्रन् कृतवन्तः । सम्पादितवन्तः । हे नरा ! नेतारौ तानि स्तोत्राणि जुजुषाणा प्रीत्या सेवमानौ भवन्तौ उप यातम् आगच्छतम् । वयमपि विदथे वेदितव्ये यज्ञरणे बृहत् स्तुत्यं स्तुति समूहं वदेम वदनाय समर्था भवेम । सुवीराः कल्याणवीराः सन्तः । यथेयाः स्तुतपरम्परा वर्धेरन् ।

टिप्पणी—गृत्समदासः—अज्जसेरसुक् । गृत्समदाः ।

हिन्दी व्याख्या—हे अश्विदेव ! आपके लिए इस प्रकार स्तुत्य शब्द समूहों में गृत्समद ऋषियों ने संवर्धनशील स्तुतियों को प्रोत्साहन दिया है । इनका रसास्वादन करते हुए आप हमारी अभिलाषाओं को प्रीति और तृप्ति के साथ श्रवण करें और हम भी पूत्र-पौत्रों के साथ सदैव स्तुतियों द्वारा आपके गुण-ग्राम का कीर्तन करते रहें ।

मण्डल-३

नदी-सूक्तम्

सूक्त ३३

ऋषिः—विश्वामित्रः देवता—नद्यः छन्दः—त्रिष्टुप् । १३-अनुष्टुप् ।

१-

प्र पर्वतानामुशती उपस्थाद-

अश्वे इव विषिते हासमाने ।

पद-पाठः—हस्ताऽइव । शक्तिम् । अभि । संददी इति सम्ऽददी । नः । क्षामऽइव । नः । सम् । अजतम् रजांसि । इमाः । गिरः । अश्विना । युष्मऽयन्तीः । क्ष्णोत्रेण ऽ इव । स्वऽधितिम् । सम् । शिशीतम् ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां हस्तौ इव अस्माकम् करावलम्बनौ भवतम् । यथा कश्चन सखा (दोस्त=दोस्थः) दुःखसमये अवलम्बनो भवति तथा युवां नः अस्माकंम् अभि अस्मान् अभि शक्तिं प्रदाय समर्थान् कुरुतम् बलं संददी नः सम्यक् प्रयच्छन्तौ भवतम् । क्षामेव द्योरिव पृथिवी इव च रजांसि उदकानि सम् अजतम् सम्यक् प्रेरयतम् । यथा कश्चन अयस्कारः क्ष्णोत्रेण तेजनशाणेन स्वकीयां स्वधितिं तीक्ष्णां करोति तथा हे अश्विनौ इमा अस्माभिः सम्यक् सम्पादिता गिरः स्तुतयः युष्मयन्ती ताः स्तुतीः युवां कामयमानाः । इमाः सं शिशीतम् सम्यक् तीक्ष्णीकुरुतम् । यथा शब्दारिध्रं प्रतिभादारिध्रं वा न श्येत् ।

टिप्पणी—रजांसि—'उदकं रज उच्यते' इति यास्कः । क्ष्णोत्रम्—शाणयन्त्रन् । स्वाधितिः—लोहायुधम् ।

हिन्दी-व्याख्या —हे अश्वि देव ! आय दोनों हमारे लिए हाथ के समान हस्तावलम्बन बनें । हमें सामर्थ्यं प्रदान करें । द्युलोक और पृथ्वी लोक के समान जोवन प्राप्ति के लिये जल क्षेपण करते रहें । जिस प्रकार तलवार, आदि हथियारों को सान पर चढ़ा कर चमकाया जाता है और उन्हें तीक्ष्ण किया जाता है इसी प्रकार हमारी स्तुतियों को चमका कर तीक्ष्ण कर दीजिये जिससे कि हमारी शब्द दरिद्रता और प्रतिभा की दिरद्रता दूर हो और हमरे मुख में सदा चमकती हुई वाणी का चमत्कार प्रकट हो ।

८—

एतानि वामश्विना वर्धनानि

ब्रह्न स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।

तानि नरा जुजुषाणोप यातं

बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।।८।।

पद-पाठः—एतानि । वाम् । अश्विना । वर्धनानि । ब्रह्म । स्तोमम् ।

गृत्सऽमदासः । अक्रन् । तानि । नरा । जुजुषाणा । उप । यातम् । बृहत् । वदेम ।

विदथे । सुऽवीराः ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! एतानि वां युवयोः वर्धनानि संवर्धनपराणि स्तुतिशस्त्राणि यानि ब्रह्म ब्रह्माणि बृहन्ति स्तोमं स्तुतिसमूहान् गृत्समदासः गृत्समदा ऋषय स्तत्र भवन्तोऽक्रन् कृतवन्तः । सम्पादितवन्तः । हे नरा ! नेतारौ तानि स्तोत्राणि जुजुषाणा प्रीत्या सेवमानौ भवन्तौ उप यातम् आगच्छतम् । वयमयि विदथे वेदितव्ये यज्ञरणे बृहत् स्तुत्यं स्तुति समूहं वदेम वदनाय समर्था भवेम । सुवीराः कल्याणवीराः सन्तः । यथेयाः स्तुतपरम्परा वर्धेरन् ।

टिप्पणी— गृत्समदासः—अज्जसेरसुक् । गृत्समदाः ।

हिन्दी व्याख्या—हे अश्विदेव ! आपके लिए इस प्रकार स्तुत्य शब्द समूहों में गृत्समद ऋषियों ने संवर्धनशील स्तुतियों को प्रोत्साहन दिया है । इनका रसास्वादन करते हुए आप हमारी अभिलाषाओं को प्रीति और तृप्ति के साथ श्रवण करें और हम भी पूत्र-पौत्रों के साथ सदैव स्तुतियों द्वारा आपके गुण–ग्राम का कीर्तन करते रहें ।

मण्डल–३

नदी-सूक्तम्

सूक्त ३३

ऋषिः—विश्वामित्रः देवता—नद्यः छन्दः—त्रिष्टुप् । १३–अनुष्टुप् ।

१– **प्र पर्वताना मुशती उपस्थाद्-**

अश्वे इव विषिते हासमाने ।

गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे

विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते ।।१।।

पद पाठः–प्र । पर्वतानाम् । उशती इति । उपस्थात् । अश्वे इवेत्यश्वेऽइव ।

वि सिते इति । वि सिते । ह्रासमाने इति । गावा इति । शुभ्रे इति । मातरा रिहाणे

इति । विऽपाट् । शुतुद्री । पयसा । जवेते इति ।

संस्कृत-व्याख्या—हिमाच्छादित शरीरे विपाशा नदी शुतुद्री नदी च पयसा जलराशिना संभृतकलेवरे जवेते वेगवत्यौ गच्छतः । कीदृश्यौ ते ? पर्वतानाम् उपस्थात् सामीप्यात् निःसृत्य पति रूपेणावस्थितं समुद्रं कामयमाने । अश्वे इव वऽवे इव विषिते विघटित बन्धने । ह्रासमाने हसुन्त्यौ । श्वेतशुभ्रतुहिनावृतत्वात् सुष्मिते इव । शुभ्रे धवलवर्णे गावौ इव सवत्से मातरा मातराविव रिहाणे लेढुमिच्छन्त्यौ । यथा वत्साभिमुखं लेढुमिच्छन्त्यौ गावौ आवेगसहिते गच्छतस्थता एते गच्छतः ।

टिप्पणी—उशती— वश कान्तौ । शतृ । संप्रसारणम् । विषिते—विपूर्वस्य विष् बन्धने धातोः क्तः । टाप् । ह्रासमाने—हास—शानच् । मुक् टाप् । रिहाणे—लिह + शानच् । टाप् रेफश्च । जवेते—जु + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हिम-लेप के कारण शुभ्र कलेवर वाली विपाट् (व्यास) तथा शुतुद्री (सतलज) दोनों नदियाँ जल-राशि के कारण मदभरी सी बड़े वेग से चली जा रही हैं । कहाँ जा रही हैं ? 'पर्वतानाँ उपस्थात्' हिम-तुङ्ग पर्वतों से उतर कर अपने पति-प्रेम में लबालब भरी हुई सागर की कामना से उसी ओर बढ़ रही हैं । जिस प्रकार दृढ़-बन्धन के खुल जाने पर दो श्वेत—शुभ्र अश्व—ललनायें। अथवा दो अत्यन्त कोमल उज्जवल वत्स—कामना वाली गायें, वत्स को अवलेहन की इच्छा से बढ़ रही दो गौमाताओं के समान; ये दोनों नदियों हर्ष-विभोर होकर मुद-मंगल के साथ आनन्द में उल्लसित होती हुई आगे बढ़ रही हैं ।

२–

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे

अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।

सभाराणे अर्मिभिः पिन्वमाने

अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥

पद-पाठः—इन्द्रेषिते इतीन्द्रऽइषिते । प्रऽसवम् । भिक्षमाणे इति । अच्छ । समुद्रम् । रथ्याऽइव । याथः । समाराणे इति सम्ऽआराणे । अर्मिऽभिः । पिन्वमाने इति । अन्या । वाम् । अन्याम् । अपि । एति । शुभ्रे इति ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—उभे नद्यौ इति प्रसङ्ग , ते उभे नद्यौ विपाट् च शुतुद्री च इन्द्रेषिते सर्वसमर्थेन इन्द्रेण लब्धप्रेरणे । प्रसवं भिक्षमाणे ऐश्वर्यं कामयमाने 'रथ्येव' सुवारथी इव 'अच्छा' स्वछप्रायणे 'समुद्रं यातः' सम्मोदभाने प्रसन्नं रण-सागरं प्रति अभिमुख्यं भजेते । ते उभे नद्यौ उर्मिभिः तरङ्गैः सोत्सुके इव चञ्चले इव समाराणे बद्धालिङ्गने शुभ्रे सत्त्वोद्रेके श्रृंगारैकरसे परितृप्तमनोरथे इव यातः । तत्र अन्या एका खलु अन्याम् वाम् उभयो र्मध्ये अप्येति लीनेव संसृष्टेव अनुध्या-यन्तीव परामृशति ।

टिप्पणी—इन्द्रेषिते—इन्द्रेण इषिते । इष+क्त+इट् । टाप् । प्रसवम्—प्र पूर्वस्य सोरप् । भिक्षमाणे—भिक्ष+शानच् । मुक् । टाप् । रथ्या—रथ+यत् । समाराणे—सम्+आ+ऋगतौ+कानच् । पिन्वमाने—पिवि सेचने । शानच् । मुक् । ऊर्भिः—'ऊत्तेरुच्च' । मिप्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—वे दोनों विपाट् (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) नदियाँ 'प्रसवं भिक्षमाणे' 'इन्द्रेषिते' सर्वसमर्थ इन्द्र के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करके अपने ऐश्वर्य के महत्त्व को प्राप्त करती हुई समराङ्गण के वीर रथी के समान प्रमुदित होकर स्वच्छन्दता के साथ समुद्र की ओर जा रही हैं । ये दोनों नदियाँ परस्पर आलिङ्गन बद्ध होकर जलत रंगों के साथ मचलती हुई-सी सत्त्वोद्रेक से आकुल-सी एक-दूसरी से मिश्रित होती हुई-सी जा रही हैं ।

३-

अच्छा सिन्धुं मातृत मामयासं

वियाश मुर्वीं सुभगामडान्म ।

वत्समिव मातरा संरिहाणे

समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३॥

पद-पाठः—अच्छ । सिन्धुम् । मातृऽतमाम् । अयासम् । विऽपाशम् । उर्वीम्

सुऽभगाम् । अगन्म । वत्सम् इव । मातरा । संरिहाणे इति । सम्ऽरिहाणे

समानम् । योनिम् । अनु । संचरन्ती इति । सम्ऽचरन्ती ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—विश्वामित्रः प्रार्थयते—हे नद्यौ ! मातृतमामुत्कृष्टतर मातरं सिन्धुं स्यन्दन शीलां शुतुद्रीम् अहम् अच्छ अयासम् । प्राप्तोऽस्मि । सुभ प्राप्तश्रिवं च उर्वीं विपाशम् विशालां विपाशं च त्वम् 'अगन्म' वयं प्राप्तः संरिहाणे लेढुमिच्छन्त्यौ वत्सनिव मातरा धेनू इव । समान योनि मेक भेवाव स्थातं ते अनु सञ्चरन्ती संचरन्त्यौ ।

टिप्पणी—मातृतमाम्—अतिशयेन मातरम् । मातृ + तमय् । अयासम्—या + लुङ् । उर्वीम्—उरु + ङीय् । अगन्म—गम् + लुङ् । संरिहाणे—सम + लिह + कानच् । लेढुमिच्छन्त्यौ ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्वामित्र आश्वस्त होकर कहते हैं कि मैं 'मातृतम सिन्धुम् अयासम् 'अत्यन्त मृदु हृदय, माता के समान प्रसन्न वदन वाली सतलज के पास पहुंच गया हूं और सौभाग्यशालिनी व्यास की विशालता भी अब हमारे सामने ही है । ये दोनों नदियां लेहन की लालसा से बछड़े की ओर बढ़ती हुई दो धेनुओं के समान एक ही प्राप्य स्थान समुद्र की ओर अनुगमन कर रही हैं ।

४–

एना वयं पयसा पिन्वमाना

अनु योनिं देव कृतं चरन्तीः ।

न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः

किंयु विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४॥

पद-पाठः—एना । वयम् । पयसा । पिन्वमानाः । अनु । योनिम् । देव ऽ कृतम् । चरन्तीः । न । वर्तवे । प्र ऽ सवः । सर्ग ऽ तक्तः । किम् ऽ युः । विप्रः । नद्यः । जोहवीति ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—प्राप्त स्तुतिवचने नद्यौ प्रकथयतः—एना पयसा अनेन जलराशिना 'पिन्वमानाः' वयं संवर्धमानाः देवकृतं योनिम् इन्द्रेण निर्मितं योमिं स्थानं प्रति अनुलक्ष्य गच्छन्त्यः स्मः । अस्माकं सर्गतक्तः सर्गे विसर्गे गमने प्रवृत्तः प्रसवः उद्यमः न वर्तवे न पुन निर्वर्तनाय भवति' किं युः किम् इच्छन् अयं विप्रः स्तोता नद्यः नदीः अस्मान् जोहवीति भृश शब्दयति ।

टिप्पणी—एना-इदं शब्दस्य तृतीयायाम् एनादेशः । सुपां सुलुगिति' बाजादेशः । पिन्वमानाः—पिवि सेचने । वर्तवे—वृतु वर्तने । तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः । सर्गतक्तः—सृज विसर्गे घञ् । सर्गः । तकः—तक् + क्तः । किं युः—किम् इच्छन क्यच् । 'क्याच्छन्दसि' उ प्रत्ययः । जोहवीति—पुनः पुनः हूयते । यङ् । संप्रसारणे कृते 'गुणोयङ्लुकोः' इत्यभ्यासस्य गुणः । ऽडागमः ।

हिन्दी-व्याया—नदियों द्वारा उत्तर दिया जाता है—हम इस महान् जल-राशि से लबालब भर कर उमङ्ग में उभर कर जा रही हैं । 'देवकृतम्' देवराज इन्द्र ने जो स्थान हमारे लिए लक्षित किया है उसी मार्ग पर उसी स्थान तक हमें जाना है । 'सर्गतक्तः' निर्गमन के लिये निर्दिष्ट मार्ग से हमारी अब निवृत्ति नहीं हो सकती फिर 'कियुः' किस बड़ी बात की कामना से यह ब्राह्मण हम अचेतन नदियों की ओर अपनी कल्याणी वाणी का स्तोत्र बढ़ा रहा है ।

५—

रमध्वं मे वचसे सोम्याय

ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।

प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा—

ऽ वस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ।।५।।

पद-पाठ—रमध्वम् । मे । वचसे । सोम्याय । ऋत ऽ वरीः । उप । मुहूर्तम् ।

एवैः । प्र । सिन्धुम् । अच्छ । बृहती । मनीषा । अवस्युः । अह्वे । कुशिकस्य । सूनुः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना विश्वामित्रः स्वाभिमतं प्रकाशयति । हे उदकवत्यो नद्यः मुहूर्तमात्रम् उपरमध्वम् । क्षणमात्रं वेगान् धारयत । सोम्याय मे वचसे सोमयुक्ताय मह्यं यूयमुपरतवेगा भवत । अहं कुशिकस्य राजर्षेः सूनुः अहं विश्वामित्रः बृहती मनीषा स्तुतिरूपया मनीषयाऽवस्युः आत्मरक्षणम् इच्छन् सिन्धुम् स्यन्दनशीलां त्वां शुतुद्रीं प्र अह्वे प्रकृष्टतया आह्वयामि ।

टिप्पणी—ऋतावरीः—ऋत + वनिप् । नकारस्य रेफः । ङीप् । दीर्घत्वम् । सोम्याय—सोम + यत् । एवैः—इ + वन् । पञ्चम्यर्थे तृतीया । अवस्युः—अवस् + क्यच् + उः ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्वामित्र अपना स्वाभिमत प्रकाशित करते हुए प्रार्थना करते हैं—'ऋतावरीः' हे जल से लबालब भरी हुई नदियों ! मेरी पुकार सुनो। क्षणमात्र के लिए 'एवैः उपरमध्वम्' अपने जलवेग को धारण करो । इसी में मेरा कल्याण है क्योंकि मुझे सोम-सम्पादन में निरत होना है । मैं 'कुशिकस्य सूनुः' राजर्षि कुशिक का पुत्र 'अवस्युः' जल-प्लावन से अपनी रक्षा के लिए 'बृहती मनीषा' अपनी शुद्ध सात्विक स्तुतिपूर्ण वाणी से 'सिन्धुं प्र अह्वे' स्यन्दनशील शुतुद्री नदी से प्रार्थना करता हूं ।

६—

इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहु—

रपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।

देवोनयत् सविता सुपाणि—

स्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

पद-पाठः—इन्द्रः । अस्मान् । अरदत् । वज्रऽबाहुः । अपः । अहन् । वृत्रम् । परिऽधिम् । नदीनाम् । देवः । अनयत् । सविता । सुऽपाणिः । तस्य । वयम् ।

सवे। यामः । उर्वीः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—नद्यः उत्तरयन्ति—हे कुशिक-नन्दन ! विश्वामित्र ! ...वी वज्रधर इन्द्रोऽस्मान् अरदत् । मार्ग-लेखनम् अकरोत् । अस्माकं नदीनां परिधि ...तो निहितं वृत्रं तम् आवरकं मेघम् अपाहन् । हतवान् । तस्मिन् मेघे निहते सति ...नि असरन् । तै र्जलावेगै र्वयं प्राप्तमार्गाः । एवं मेघहनन व्यापारेण इन्द्र ...स्मान् धरण्यामानयत् । एवं सुपाणिः हिरण्यपाणिः सविता प्रेरकः देव द्योतन- ...भाव इन्द्रोऽस्मान् आनयत् । अस्माक मुदराणि निरूपद्रवाणि अपूरयत् । तस्य ...शस्य इन्द्रस्य प्रसवेऽनुज्ञायां वयमपि उर्वीः उदकरसपूर्णा यामः स्वाभिप्रेतं ...मः ।

टिप्पणी—अरदत्—रद विलेखने । लङ् । अहन्—हन हिंसागत्योः । लङ् । ...त्—णीञ् प्रापणे लङ् । यामः—या प्रापणे । लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियाँ उत्तर देती हैं । हे कुशिक नन्दन ! आपका स्वागत ... पर इस बात को न भूलिये कि वज्रहस्त इन्द्र ने ही भूमि को खुरच-खुरच कर ...रे लिए मार्ग-सीमा निर्धारित की है । हमारी उदर-पूर्ति के लिए महान् आवरक ...(मेघ) का हनन किया है । उस मेघ विध्वंस के अनन्तर ही अपार जलराशि हमें ... हुई । उस भीषण जलावेग से ही हमको निर्गमन-मार्ग मिला । इस प्रकार मेघ- ... व्यापार के कारण धरणी पर हमारे अन्तःकरण को उल्लखित करने वाला वही ... महान् प्रतापी इन्द्र है । वह इन्द्र सुपाणि, सविता (प्रेरक) और द्योतन-स्वभाव ...है । उदक-रस से परिपूर्ण होकर हम उसी इन्द्र की अनुमति में उल्लास के ... चलती हैं । तुम्हारे जैसे किसी अन्य की आज्ञा-अनुज्ञा हमें नहीं चाहिये ।

७—

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यन्तद—

इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।

वि वज्रेण परिषदो जघाना—

यन्नापोऽयनमिच्छ मानाः ॥७॥

पद-पाठः—प्र ऽ वाच्यम् । शश्वधा । वीर्यम् । तत् । इन्द्रस्य । कर्म । यत् ।

अहिम् । वि ऽ वृश्चत् । वि । वज्रेण । परि ऽ सदः । जघान । आयन् ।

अयनम् । इच्छमानाः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—तद् इन्द्रस्य वीर्यं वीरतापूर्ण शौर्योपेतं कर्म शश्वधा प्रवाच्यम् कीर्तनीयं भवति । किं तत् कीर्तनीय कर्म ? 'यद् अहिं विवृश्चत् मिन्द्रोऽहिं तम् आगत्य आहन्तारं मेघं विदारितवान् । अथ च 'वज्रेण परिषदः परित आसीनान् परिषद् रूपेणावस्थितान् असुरान् जघान तदनन्तरं किमभूत् ? अयनं स्थानं कामयमाना आपः जलधारा आपन् आगच्छ

टिप्पणी—शश्वधा—शश्वत् + धा । तकारलोपः । प्रवाच्यम्—प्र+ ण्यत् । उपधावृद्धिः । विवृश्चत्—विपूर्वस्य वृश्चते लङ् । परिषदः—परि+ क्विप् । जघान—हन हिंसागतयोः । लिट् । अयनम्—इण् + ल्युट् । इच्छमाना इच्छ + शानच् । आने मुक् । टाप् । आयन्—इण् + लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियाँ इन्द्र का प्रशस्ति-गान करती हुई कहती हैं कि के निरातङ्क शौर्य की सदा प्रशंसा होनी ही चाहिये जिस बल-समुदय के निकट ही हनन-व्यापार करने वाले मेघ का विध्वंस किया और उसकी परि समस्त असुरों को वज्रधर ने मार डाला इसके परिणामस्वरूप अपना स्थान हुई, कामना प्रवल नदियाँ जलावेग से निकल पड़ीं ।

८—

पतद्वचो जरित र्मापी मृष्ठा

आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।

उक्थेषु कारो प्रतिनो जुषस्व

मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

पद-पाठः—एतत् । वच । जरितः । मा । अपि । मृष्ठाः । आ । य

घोषान् । उत् ऽ तरा । युगानि । उक्थेषु । कारो इति । प्रति । नः । जुषस्व ।

मा । नः । नि । करिति कः । पुरुष ऽ त्रा । नमः । ते ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—एवमिन्द्र स्तुतिं विधाय विश्वामित्रं प्रति नद्यः कथयन्ति—हे जरितः स्तोतः ! एतद् वचः 'प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा ऽ वस्यु ह्वे कुशिकस्य सूनुः' इति नदीः प्रति उक्तं त्वया, तद् वचो नदीः प्रति संवादकं 'मापि मृष्ठाः' विस्मृतं मा कार्षीः । एते मंत्रात्मका घोषाः 'उत्तरा युगानि' उत्तरेष्वपि युगेषु उक्थेषु कारो सूक्तानां कर्तः त्वं नोऽस्मान् प्रति जुषस्व । प्रीत्या सेवस्व । नदीः प्रति विश्वामित्रो ऽ वोचत्, नद्य एव तं प्रत्यवोचन्' इति सूक्तात्मकं वचः पारम्पर्यं स्थिरं स्यात् । पुरुषत्रा पुरुषेषु 'मा नो नि कः' अस्मान् निम्नः मा कार्षीः । ते तुभ्यं 'नमः' नमोऽस्तु ।

टिप्पणी—जरितः—जृ स्तुतौ । तृच् । इट् । मृष्ठाः—मृज धातो र्लङ् । उत्तरा युगानि–उत्तराणि युगानि=उत्तरेषु युगेषु । घोषान्-उद्घोषयन् । कारो--कृ+उण् । सम्बुद्धौ' जुषस्व--जुषी—प्रीतौ सेवने च । लोट् । पुरुषत्रा–पुरुष+त्रा । कः —कृ+लुङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार इन्द्र की स्तुति कर लेने के अनन्तर विश्वामित्र के प्रति नदियाँ कहती हैं-हे स्तोता विश्वामित्र ! अपने तथा अपनी नदियों के बीच प्रादुर्भूत संलाप को तुम विस्मरण मत कर जाना । तुमने मनीषा के साथ नदियों की स्तुति की और नदियों ने तुम्हारे प्रति मंगल-वचन कहे, यह संवाद युगों में भी आने वाले युगों में उद्घोषित रहें और तुम स्तुतियों में नदियों को भी स्थान देते रहो' कभी भी पुरुषों में हमें नीचा न दिखाना और तुम्हारी नम्रता में चातुरी की चन्द्रिका छिटकती रहे ।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत

ययौ वो दूरादनसा रथेन ।

नि षू नमध्वं भवता सुपारा

अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥

पद-पाठ—ओ इति । सु । स्वसारः । कारवे । शृणोत । ययौ ।

दूरात् । अनसा । रथेन । नि । सु । नमध्वम् । भवत । सु ऽ पारा । अधः ऽ अ

सिन्धवः । स्रोत्याभिः ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना विश्वामित्रः प्रति वक्ति—हे स्वसारः ! सिन्धवः भगिन्यः ! कारवे स्तोत्रे विश्वामित्राय स्तुतिवचनानि । 'सुशृणोत' सुष्ठु प्रकारेण शृणुत । 'ययौ वो दूराद् अनसा रथेन' योऽहम् अतिदूरात् अनसा शकटसमूहेन रथसमूहेन च पुष्कलसामग्रीजुट् वः युष्मान् प्राप्तोऽस्मि । 'नि षू नमध्वम्' सम्यक् प्रकारेण निम्ना नम्रा भवत । 'भवता सुपारा' सरलतया पारयोग्या भवत । यूयं स्रोत्याभिः रसणयोग्यैः स्रोतोभिः 'ऊधो अक्षाः' रथाङ्गस्य अक्षाद् अधस्तात् निम्ना भवत ।

टिप्पणी—स्वसारः—स्वसृ शब्दस्य बहुत्वे कारवे—कृ + उण् । चतुर्थी शृणोत—शृ + लोट् । ययौ—या लिट् । नमध्वम्—नम् + लोट् । सुपारा—कल्याणपाराः ।

हिन्दी व्याख्या—अब विश्वामित्र प्रत्युत्तर में कहते हैं—हे बहनों ! मेरी स्तुतियों को तुम प्रीति और आदर से सुनो । मैं बहुत दूर से शकट (छकड़ा) और रथों के साथ यज्ञ-सामग्री लेकर आया हूं । तुम निम्न और नम्र हो जाओ । इतनी झुक जाओ कि हमारी गाड़ियाँ और सभी रथ सरलता से पार हो जायें । अपने समस्त स्रोतों को झुका लो जिससे जल का स्तर रथ के अक्ष (धुरे) से नीचे हो जाय ।

१०—

आ ते कारो शृणवामा वचांसि

ययाथ दूरादनसः रथेन ।

नि ते नंसै पीप्यानेव योषा

मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥

पद-पाठः—आ । ते । कारो इति । शृणवाम । वचांसि । ययाथ । दूरात्

अनसा । रथेन । नि । ते । नंसै । पीप्याना ऽ इव । योषा । मर्याय ऽ इव । कन्या ।

शश्वचै । त इति ते ।।१०।।

संस्कृत-व्याख्या—पूर्वं विश्वामित्रस्य वचनं प्रत्याख्यातम् । अधुना नद्यः प्रतिशृण्वन्ति । हे विश्वामित्र स्तोतः ! स्तोत्रं कुर्वाणस्य ते तव वचांसि वयं शृणवाम शृणुमः । तव समीहितमभीष्टं सम्पादयामः । त्वम् अनसा शकटेन रथेन च सह पुष्कल सामग्री--जुषा ययाथ गच्छ । यतोऽतिदूराद् आगतोऽसि । वयमपि ते त्वदर्थं निनंसै निम्ना भवाम । 'पीप्यानेव योषा' यथा स्तनं पाययन्ती पुत्रं प्रति माता निम्ना भवति । यथा वा कन्या शाश्वचै परिष्वजनाय पित्रे भ्रात्रे वा नम्रा भवति तद्वत् ते तुभ्यं वय कम्रा भवामः ।

टिप्पणी—कारो—कृ + उण् । कारुः । तत्सम्बुद्धौ । शृणवाम- श्रु + लोट् । ययाथ—या प्रायणे लिट् । पीप्याना—पी + कानच् + टाप् । धातो द्वित्वमभ्यास कार्यं च । नंसै—नम् + लेट् । शाश्वचै—श्वञ्ज + लेट् । कन्या—कन्यते दीप्यते काम्यते वा सा कन्या । कनी + यक् ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियों ने विश्वामित्र की प्रर्थना का उचित मर्यादित मधुर—उत्तर दिया—हे कारो ! स्तुति—समूह का निर्माण करने वाले ! हम आपके कष्ट—कठिनाई से अपरिचित नहीं हैं। आपके संवेदनशील वचनों के प्रति भी हमारा अन्तः समपर्ण है । आप बहुत दूर से आये हैं और आपकी पुष्कल सामग्री इन रथों = शकटों पर पड़ी है । अब आप इस दुष्पार जल-राशि को पार कर लें । हम भी दूध पिलाने वाली मां की भाँति शिशु के लिये झुक जाती हैं अथवा मनुष्य के प्रति कन्या के समान नम्न हो जाती हैं।

११-

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयु—

गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।

अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त—

आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ।।११।।

पद-पाठः—यत् । अङ्ग । त्वा । भरताः । सम् ऽ तरेयुः । गव्यन् । ग्रामः । इषितः । इन्द्र ऽ जूतः । अर्षात् । अह । प्र ऽ सवः । सर्ग ऽ तक्तः । आ । वः । वृणे । सु ऽ मतिम् । यज्ञियानाम् ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—पुन विश्वामित्रः प्रार्थयते—हे स्वसारः नद्यः । अहं यज्ञियानां यज्ञार्हाणां वः सुमतिं दयां शोभनां मतिम् आवृणे कामये । भरताः भरतवंशीया जना यदि संतरेयुः उत्तरणाय अभीष्टकामाः स्युः । ते तदा तथैव यथा उत्तितीर्षुः तरणसफलकामोऽभूवम् । तेऽपि तथैव युष्माकं कृपया तीर्णाः स्युः । गव्यन् उदकानि तरीतुमिच्छन् इषितः युष्माभिरनुज्ञातः । तथैव इन्द्रजूतः इन्द्रेण प्रेरितः युष्माकं प्रवर्तकेन इन्द्रेण दत्तप्रेरणः ग्रामः भरतानां संघः अर्षात् सोऽपि तरीतुं समर्थः स्यात् । यतोऽहि सर्गतक्तः सर्गाय गमनाय प्रवृत्तः तेषां प्रसवः उद्योगोऽयथाऽहम् अभ्यनुज्ञातः । तथैव सोऽपि प्राप्तानुज्ञः स्यात् ।

टिप्पणी—गव्यन्—गो + शतृ + क्यच् । इषितः—इष + क्त + इट् । इन्द्रजूतः—इन्द्र + जू + क्तः । संतरेयुः—सम् + तृ + लिङ् । सर्गतक्तः—तक् + क्तः । अर्षात्—ऋ + –लेट् । यज्ञियानाम्—यज्ञ + घ । टाप् । षष्ठी बहुवचन ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्वामित्र कामनापूर्वक नदियों से प्रार्थना करते हैं—हे बहिनों ! आपकी कल्याणी कामना और दया की मैं भीख माँगता हूं । यदि कभी अपनी अभीष्ट-कामना के साथ भरतवंशीय आपको पार करना चाहें तो जिस प्रकार आज पार जाने की मेरी लालसा आपकी मंगल-कामना से पूर्ण हुई है इसी प्रकार उनकी भी याचना पूर्ण होवे । 'गव्यन्' जलधाराओं को पार करने की इच्छा वाला मैं 'इषितः' आपके द्वारा अनुगृहीत हुआ इसी प्रकार 'इन्द्रजूतः' इन्द्र के द्वारा प्रेरित 'ग्रामः' भरतवंशीयों का सार्थवाह 'अर्षात्' तैरने में=पार जाने में समर्थ और सफल होवें । 'सर्गतक्तः' गमन के लिए जिस प्रकार आपकी ओर से मुझे अनुज्ञा मिली इसी प्रकार भरतवंशीयों को भी अनुज्ञा मिले—मिलती रहे । मैं आपकी कल्याणी कामना का सदा अभिनन्दन करता हूं ।

१२–

अतारिषु भरिता गव्यवः सम्

अभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।

प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा—

आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

पद-पाठः—अतारिषुः । भरताः । गव्यवः । सम् । अभक्त । विप्रः । सुऽमतिम् । नदीनाम् । प्र । पिन्वध्वम् । इषयन्तीः । सुऽराधाः । आ । वक्षणाः । पृणध्वम् । यात । शीभम् ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—एवमैतिह्यमाचष्टे—गव्यवः आत्मनो गा इच्छन्तः पारे गन्तुकामा भरता अतारिषुः नदीः उत्तीर्णाः, पारं गताः खलु । विप्रः स्तोता विश्वामित्रः नदीनां सुमति कृपाम् अभक्त सम् अभजत । अलभत । इषयन्तीः धनं कुर्वाणाः सुराधाः शोभनधनोपेता यूयं प्र पिन्वध्वम् । तर्पयत प्रकृष्टतया । वक्षणा आ पृणध्वम् । कृत्रिम-सरितः कुल्याः पूरयध्वम् । शीभं यात । शीघ्र प्रवहत । सदैव तेजो जलराशिभिः सवेगाः प्रवाहोपेता भवत ।

टिप्पणी—गव्यवः—गो + क्यच् । अतारिषुः—तृ + लुङ् । समभक्तसम्-पूर्वस्य भजधातोर्लुङ् । इषयन्तीः—इष् + णिच् + शतृ । ङीप् । पिन्वध्वम्—पिवि (पिन्व) + लोट् । पृणध्वम् – पृणधातोर्लो रूपम् । यात—या प्रापणे लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार इम मनोरञ्जक प्राकृतिक-सौन्दर्य का अभीप्सित आख्यान उपसंहार की ओर उन्मुख होता है—भरतवंशीय लोगों ने नदियों के विशाल लोगों ने नदियों के विशाल जल-राशि को पार-गमन की इच्छा से अपना सकल्प पूर्ण किया । विप्र स्तोता ऋषि ने भी नदियों की सुमति-कृपा प्राप्त किया । आशीर्वादित नदियों ! 'इषयन्तीः' धन-धान्य का कारण बनतीं हुई और 'सुराधाः' सुन्दर ऋद्धि-सिद्धि से सम्पन्न होकर 'प्र पिन्वध्वम्' सदा प्राणियों की प्रसन्न और तृप्त करती रहो । 'वक्षणाः' मनुष्यों द्वारा निर्मित कृत्रिम सरिताओं को (नहरों को) सदा लबालब भरती रहो । 'शीभं यात' शीघ्र बहती रहो । तुम्हारी तीव्र जल-धारा में सदा वेग-सामर्थ्य बना रहे ।

१३—

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्तु

आपो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मा दुष्कृतौ व्येनसा—

ऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥

पद-पाठः—उत् । वः । ऊर्मिः । शम्याः । हन्तु । आपः । योक्त्राणि । मुञ्चत । मा अदुः ऽ कृतौ । वि ऽ एनसा । अघ्न्यौ । शूनम् । आ । अरताम् ॥१३॥

संस्कृत व्याख्या—एवं विश्वामित्रः नदी स्तोत्ररूपेण प्राञ्चल वाचा तुष्टाव। ऋषि स्तत्सम्बन्धिनो भरता श्च पारं जग्मुः। यदा स ऋषिः उत्तिणीर्षुः पारं गच्छति तदा मध्येनदं प्रार्थयते—हे नद्यः युष्माकं ऊर्मिः तरङ्गः 'शम्या उद् हन्तु' बलीवर्द-संलग्ना रज्जवः ऊर्ध्वं यथा भवन्ति तथा हन्तु प्राप्नोतु। तरङ्गै रज्जव आर्द्रा न भवन्त्वित्यर्थ। हे आपः! तत्स्थिता नद्यः। 'योक्त्राणि मुञ्चत' योक्त्रसम्बद्धा रज्जूः मुञ्चत। नीचैः प्रवहत। अल्पतोया भवत्यो भवत। अदुष्कृतौ दोषरहितौ व्येनसा निरपराधौ अघ्न्यौ शूनं संकटं 'मा आरताम्' मा गमताम्।

टिप्पणी—हन्तु—हेन्सिागत्यो लोटि। योक्त्राणि—युजेः ष्ट्रन्। अदुष्कृतौ—नञ्+दुस्+कृ+क्विप्+तुक्। व्येनसा व्येनसौएनः पापकं व्यपगतम् ऐनः ययोः तौ व्येनसौ, व्येसना इति छन्दसि। अघ्न्यौ—हन् धातो र्यक्। नञ्। उपधालोपः। घत्वम्। शूनम्—श्वि+क्त। सम्प्रसारणम्। इकारस्य पूर्वरूपत्वम्। निष्ठा न त्वम्। आरताम्—ऋ गतौ लुङि।

सायणस्तु 'व्येनसा विगतपापे अत एवादुष्कृतौ कल्याणकारिण्यौ अघ्न्यौ अघ्न्ये न केनापि तिरस्करणीये विपाट्छुतुद्र्यौ शूनं समृद्धिम् आरताम् आगच्छतामिति' व्याख्यां चकार।

हिन्दी व्याख्या—नदी के बीच में विश्वामित्र प्रार्थना करते हैं—हे बहनो! आपकी चंचल तरगें पगहे (रस्सी) से नीचे ही रहें। 'आपो योक्त्राणि मुंचत' आप अल्प जल वाली हो जायँ जिससे हमारी रस्सियाँ भीगने से बच जायँ। हमारे ये निरपराध, दोष रहित, वृषभ 'शूनम्' किसी प्रकार के संकट में न फँसें इतनी कृपा आपकी होनी चाहिये।

मण्डल ३

मित्र-सूक्तम्

सूक्त ५९ ऋषि - विश्वामित्र

१- मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो

मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे

मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥

पद-पाठः—मित्रः । जनान् । यातयति । ब्रुवाणः । मित्रः दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् मित्रः कृष्टी । अनि ऽ मिषा । अभि । चष्टे । मित्राय । हव्यम् । घृत ऽ वत् । जुहोत ।

संस्कृत-व्याख्या—अयं मित्रः अहरभिमानी सूर्यो देवः जनान् सर्वान् प्रगिनः यातयति कर्मसु चेष्टयते । मित्र एव 'पृथिवीम् उत द्याम्' पृथ्वीलोकं द्युलोकं च धारयति । दृष्टि द्वारा संयोजयति । मित्र एव 'अनिमिषा' सावधानतया अनुग्रह-बुद्धया सर्वाः कृष्टीः कर्मवतो जनान् अभितः चष्टे पश्यति । अतः हे मनुष्याः । यूयं तस्मै मित्राय घृतवद् हविः जुहोत श्रद्धया प्रयच्छत ।

टिप्पणी—यातयति—'यती प्रयन्ते' लटि । दाधार—'तुजादीनाम्०' इति अभ्यासस्य दीर्घत्वम् । मैक्डानल ने 'ब्रुवाणः' का अर्थ कहता हुआ तथा कृष्टीः का अर्थ मनुष्य मात्र [कृषि करने वाला न करके] किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—दिन के अभिमानी देवता मित्र रूप से समग्र मनुष्यों को 'यातयति' कर्म में प्रेरित करते हैं । मित्र ही पृथ्वी तथा आकाश को अपने आकर्षण में धारण किये हुए हैं । मित्र ही निर्निमेष (सावधान होकर) समस्त प्रजाओं की देख-

रेख करते हैं अतः सभी मनुस्यों का परम कर्त्तव्य है कि वे घृत, हवि आदि पवित्र सामाग्री से मित्र को प्रसन्न करें।

२- **प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्**

यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।

न हन्यते न जीयते त्वोतो

नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

पद-पाठ—प्र। स। मित्र। मर्तः। अस्तु। प्रयस्वान्। यः। ते। आदित्य। शिक्षति। व्रतेन। न। हन्यते। न। जीयते। त्वा ऽ ऊतः। न। एनम्। अंहः। अश्नोति। अन्तितः न। दूरात् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आदित्य! व्रतेन नियमसंयमवताऽऽचारेण युक्तः यः पुरुषः ते तुभ्यं शिक्षति अहं त्वदीयोऽस्मीति हविः प्रयच्छति सः सदैव प्रयस्वान् अन्नधन सम्पन्नोऽस्तु भवतु। तदेतत् सत्यम्, त्वोतः पुरुषः त्वया संरक्षितः पुरुषः न केनापि हन्यते नापि जीयते पराभूयते। एनं श्रद्धोपेतं पुरुषं न कदापि अंहः पापं दुःखं वाऽन्तितः समीपात् न वा दूरात् अश्नोति प्राप्नोति।

टिप्पणी—शिक्षति—शिक्षति दीनार्थकः। व्यत्येन परस्मै पदम्। प्रय—अन्न नाम।

मैक्डानल ने—प्रयस्वान् का अर्थ 'मुख्य' किया है। शिक्षति का अर्थ 'नमस्कार' तथा 'व्रतेन' का अर्थ 'आदेश' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे आदित्य! नियम-संयम के साथ जो व्यक्ति आदर और स्नेह पूर्वक आपके लिए हवि को प्रदान करता है वह सदैव अन्न धन आदि से सम्पन्न बना रहे। यह सत्य है कि मित्र देवता से संरक्षित पूरुष किसी भी व्यक्ति से किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं प्राप्त कर सकता और न तो वह जीवन-संग्राम में कभी पराजित ही होता है। उस व्यक्ति को 'अन्नितो न इरात' निकट से अथवा दूर से पाप स्पर्श नहीं कर सकता।

३–

अनमीवास इलया मदन्तो

मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।

आदित्यस्यं व्रत मुप क्षियन्तो
में

वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

पद–पाठः–अनमीवासः । इलया । मदन्तः । मित ऽ ज्ञवः वरिमन् । आ । पृथिव्याः । आदित्यस्य । व्रतम् । उप ऽ क्षियन्तः । वयम् । मित्रस्य । सु ऽ मतौ स्याम ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मित्र ! वयं एते 'अनमीवासः' मीवा रोगः तद्रहिताः इलया अन्नेन मदन्तः सुखिनः सन्तः पृथिव्याः वरिमन् विस्तीर्णे स्थाने मितज्ञवः मितजानुकाः सर्वम् आदित्यस्य तव व्रतम् उपक्षियन्तः उपेत्य सम्पादयन्तः सुमतौ अनुग्रहबुद्धौ स्याम निवसेम ।

टिप्पणी—मदन्तः—'मदी हर्षे' व्यत्येन शप् । शतृ । वरिमन्—उरु शब्दात् इमनिच् । 'प्रिय स्थिर०' आदिना वरादेशं । 'सुपां सूलुक्०' इति सप्तम्या लुक् ।

मैक्डानल ने—मितज्ञवः का अर्थ 'दृढ़ जंघा वाले' किया है ।

हिन्दी- व्याख्या—हम लोग निरोग होकर अन्न धन से परितृप्त रहते हुए पृथ्वी के विशाल प्रदेश में मितज्ञवः—नमित जानु=घुटने टेक कर आदित्य सम्बन्धित वृतोपसना का सम्पादन करते हुए नित्य ही मित्र देवता की अनुग्रह–बुद्धि में आनन्दित बने रहें ।

४–

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो

राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या—

पि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥

पद-पाठ—अयम् । मित्रः । नमस्यः । सु ऽ शेवः । राजा । सु ऽ क्षत्रः । अजनिष्ट । वेधाः । तस्य । वयम् । सु ऽ मतौ । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥४॥

संस्कृत व्याख्या—अयं सुशेवः शोभनसुखः राजा प्रियतमः स्वामी सुक्षत्रः शोभनसामर्थ्यः सदैव अस्माभिः नमस्यः पूज्यः । यतो हि स वेधाः जगतो विधाता । अजनिष्ट—प्रादुरभूत् । तस्य यज्ञियस्य यज्ञार्हस्य देवस्य सुमतौ कल्याणायां बुद्धौ भद्रे सौमनसे सौमनस्ये वयं स्याम भवेम ।

टिप्पणी—नमस्यः—नमसि साधुः । यत् । सुक्षत्रः—क्षत्रेति—बलनाम । सुशेवः—शेव इति सुख नाम ।

मैक्डानल ने सौमनसे का अर्थ 'उत्तम प्रभाव वाला' । और सुशेव का अर्थ कृपालु किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह दिन का अभिमानी देव सूर्य हम सभी के द्वारा अभिवादन के योग्य है । 'सुशेवः' सभी सुन्दर सुख इसी सूर्य से उपलब्ध होते हैं । यही सूर्य प्रकाशमान होने से राजा और सर्वाधिक प्रभावशाली होने से 'सुक्षत्र' हैं यही सूर्य विश्व के विधाता (वेधाः) हैं । ऐसे यज्ञर्ह पवित्र सूर्य देव की सुमति में हम सदा बने रहें और उन्हीं की सुमनस्कता में सभी प्रकार की शान्ति तथा सुख की प्राप्ति करें ।

५—

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो

यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टम्-

अग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥

पद-पाठः—महान् । आदित्यः । नमसा । उप ऽ सद्यः । यातयत् ऽ जनः । गृणते । सुऽशेवः । तस्मै । एतत् । पन्य ऽ तमाय । जुष्टम् । अग्नौ । मित्राय । हविः । आ । जुहोत ।।५।।

संस्कृत व्याख्या—अयम् मित्रभूत आदित्यो महान् खलु । अत एव नमसा नमनेन उपसद्यः । उपसदनीयः उपगमनीयः कीदृशः सूर्यः ? यातयज्जनः । स्वकर्मणि प्रवर्तनीया जना येन तथाविधः । स च मित्रः गृणते स्तुतिं कुर्वते पुरुषाय सुशेवः सुखस्वरूपोऽस्ति । तस्मै पन्यतमाय स्तुत्यतमाय मित्राय जुष्टं तृप्तिकारि हविः आ जुहोत जुहुत । सम्पादयत ।

टिप्पणी—यातयज्जनः । 'यती प्रयत्ने' णिचि शतृ । पन्यतमायपन स्तुतौ, क्त ।

मैक्डानल ने जुष्टम् का अर्थ 'स्वीकरण योग्य' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—यह मित्र रूप में अवस्थित अधित्य महान् है । अत एव अभिवादन—अभिनन्दन के साथ साक्षात्करणीय है । यह आदित्य कैसा है ? 'यातयज्जनः' अपने-अपने कर्म में मनुष्यों को प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित करने वाला है । यह आदित्य अपने स्तोता के लिये सर्वदा सुखस्वरूप है । उस अत्यन्त स्तुत्य (पन्यतमाय) मित्र के लिये प्रीति-तृप्ति देने वाले हविष्य का सम्पादन करना चाहिये ।

६—

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।

द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ।।६।।

पद-पाठः—मित्रस्य । चर्षणिधृतः । अवः । देवस्य । सानसि । द्युम्नम् । चित्रश्रवःऽतमम् ।।६।।

संस्कृत-व्याख्या—अस्य चर्षणीधृतः मेघाद् वृष्टिप्रदानेन कृषकाधारभूतस्य देवस्य मित्रस्य अवः अन्नं रक्षणसाधनं सानसि सर्वे जनैः प्रीत्या सेवनीयम् । संमजनीयम् । तदीयं च चित्रश्रवस्तमम् अतिशयेन कीर्ति युक्तं द्युम्नं द्योतनात्मकं धनं जनानां कृते सुलभम् अस्ति ।

टिप्पणी— चर्षणीधृतः—चर्षणयो मनुष्यास्तान् धारकत्वे पातीति । अवः—अन्ननाम । अवतीति । सानसि—वनषण संभक्तो । निपातनात् वृद्धि द्युम्नम्—धनम् । द्योतते इति । श्रवः – यशः ।

हिन्दी-व्याख्या—मेघ से जल प्रदान करने के कारण कृषकों के लिये मि... ही धारक-पालक हैं । उस मित्र के रक्षण साधन बने हुए 'अवः' अन्न की ... करनी चाहिये । उस मित्र का यश अत्यन्त व्यापक और धन-धान्य से परिपूर्ण है ।

७— **अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।**

अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ।।७।।

पद-पाठः—अभि । यः । महिना । दिवम् । मित्रः । बभूव । सप्रथाः ।

अभि । श्रवःऽभिः । पृथिवीम् ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या—अयं मित्रः स्वकीयेन महिना महिम्ना दिवम् अभि... अभिव्याप्य वर्तते । सः सप्रथाः प्रभूतेन यशसा युक्तः सन् श्रवोभिः उत्पादितैः अन्नैः पृथिवीम् अपि बह्वन्नां सम्पादयन् अभिव्याप्नोति । सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तं प्रत्य... नत इवि गम्यते ।

टिप्पणी—सप्रथाः—'प्रथ प्रख्याने' इति धातोरसुन् । 'वोपसर्जनस्य' इति सहस्य सभावः ।

मैक्डानल ने 'श्रवोभिः' का अर्थ 'कीर्ति' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—यह मित्र अपनी महिमा से 'दिवम्' द्युलोक में भी ... व्यापक रूप में विराजमान हैं और अत्यन्त 'श्रवोभिः' वृष्टि जल से उत्पादित ... आदि के कारण 'पृथिवीम्' पृथ्वी लोक का भी संभरण एवम् अतिक्रमण कर... हैं ।

८— **मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टि शवसे ।**

स देवान् विश्वान् बिभर्ति ।।८।।

पद-पाठः—मित्राय । पञ्च । येमिरे । जनाः । अभिष्टि ऽ शवसे ।

देवान् । विश्वान् बिभर्ति ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—'अभिष्टि शवसे' शत्रूणामभिभवनसमर्थाय मित्राय 'पञ्च जनाः' निषादपञ्चमाः सर्वे वर्णाः 'येमिरे' हवींषि प्रयच्छन्ति। स मित्रः विश्वान् देवान् दिव्यकर्मस्वभावान् बिभर्ति धारयति।

टिप्पणी—अभिष्टि शवसे—इषेः क्तिन्।

मैक्डानल ने 'अभिष्टि शवसे' का अर्थ 'बलवान् सहायक' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—'अभिष्टि शवसे' शत्रुओं के तिरस्कार में समृद्ध तथा समर्थ मित्रभूत सूर्य के लिये पांचों वर्ण ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र तथा निषाद) प्रीति से हविष्यान्न को समर्पण करते हैं। वह सूर्य भी अपने प्रताप से समस्त देवों को अपने अनुग्रह में धारण करते हैं।

९-

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे।

इष इष्टव्रता अकः ॥९॥

पद-पाठ—मित्रः। देवेषु। आयुषु। जनाय। वृक्त ऽ बर्हिषे। इषः। इष्ट ऽ व्रताः। अकरित्यकः ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—मित्रभूतो भगवान् सूर्यः देवेषु अथ आयुषु आयुष्मत्सु मनुष्येषु वृक्तबर्हिषे जनाय लूनबर्हिषे पुरुषाय कर्मतत्पराय नितरां प्रसन्नो भवति तस्मै च 'इष्टव्रताः' इच्छितव्रत-साधिकाः इषः अन्नानि अकः करोति।

टिप्पणी—वृक्तबर्हिषे—'ओव्रश्चू छेदने' निष्ठा। 'यस्य विभाषा' इति इट्प्रतिषेधः। अकः कृ धातोः लुङि० च्लेः लुक्।

मैक्डानल ने 'वृक्तबर्हिषे' का अर्थ 'कुशा को वेदि के ऊपर फैलाने वाला' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—आयु की अपेक्षा से परे रह कर स्वयं स्वेच्छा से आयु पाने वाले (त्रिदशाः=तिस्रो दशा येषां ते=अपनी इच्छा के अनुसार बालक-युवा—वृद्ध बन जाने वाले, देवों में तथा आयु के आधीन चलने वाले मनुष्यों में वेदि पर कुशा आदि का फैलाव करने में चतुर व्यक्ति की तत्परता को देख कर सूर्य प्रसन्न होते हैं और ऐसे सावधान एवं कर्त्तव्य परायण व्यक्ति के लिए 'इष्ट व्रताः' इच्छित व्रत में साधक 'इषः' अन्नों का उत्पादन करते हैं।

मण्डल ३

उषः-सूक्तम्

सूक्त ६१

ऋषि—विश्वामित्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् । देवता—उषाः ।

१— उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः

स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।

पुराणी देवि युवतिः पुरन्धि—

रनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

पद-पाठः—उषः । वाजेन । वाजिनि । प्रऽचेताः । स्तोमम् । जुषस्व । गृणतः । मघोनि । पुराणी । देवि । युवतिः । पुरंऽधिः । अनु । व्रतम् । चरसि । विश्वऽवारे ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषः दुःखदाहिके ! वाजिनि सम्पन्नधनयोगे ! मघोनि ऐश्वर्यसम्पन्ने ! प्रचेताः प्रचेतनामयी त्वं गृणतः तव स्तोत्रं कुर्वतो जनस्य स्तोमं स्तुतिसमूहं जुषस्व प्रीत्या सेवस्य । वाजेन अन्नेन कृपया सेवस्व । हे विश्ववारे सर्वजनवरणीये ! उषो देवि ! त्वं पुराणी नित्यनूतनाऽपि पुरातनि युवतिः युवतिरिव कमनीया तरुणी पुरन्धिः बहुना स्तोत्रलक्षणेन कर्मणा युक्ता सततशोभना । एतादृश्यां त्वयि वयं गुणोयेतायां श्रद्धालवः । त्वं च अनुव्रतं यज्ञकर्म प्रति चरसि अनुकूला वर्तसे ॥

टिप्पणी—पुरन्धिः—पुरम् + धा + किः । यद्वा—पुरुधीः—पुरुधी ... पुरु इत्यस्य स्थाने पृषदरादित्वात् 'पुरम्' बहुव्रीहि ह्रस्वश्च । मघोनि—मघ शब्दात् मत्वर्थीयो वनिप् । मघशब्दो धनवाची । 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इति ङीप् । 'श्वयुव मघोनाम्०' इति सम्प्रसारणे गुणश्च । सम्बोधन शब्दः । वाज शब्दस्य बहवो...

तीव्रः, संघर्ष, पुरस्कारः लाभः, कोषः, अन्नम्, हविः, वेगः, त्यागः, बलम्, युद्धम्, जयः, मित्रकेलिः, शत्रु क्रीडा, जयधनम्, रणश्रीः, सर्वमुषसः प्रभावाल्लभते ।

हिन्दी-व्याख्या—(उषः, वाजिनि, मघोनि, देवि !) हे दुःख-शोक को दग्ध करने वाली धन-धान्य सम्पन्न, वेग और कान्ति को देने वाली शुभदात्री उषा ! तुम स्तुति करने वाले महानुभाव की स्तुतियों को कृपा करके श्रवण करो । तुम प्राचीन काल के आख्यानों से नित्य परिचित रहने पर भी नित्य सुन्दर तथा कमनीय तरुणी के सदृश आकर्षक हो । तुम्हारे कार्य और सौंदर्य की कोई सीमा नहीं है । संसार ने तुम्हारा वरण किया है और शुभाचारण को संसार के अन्तःकरण में तुम्हीं धारण करती हो ।

२—

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि

चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा

हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

पद-पाठ—उषः । देवि । अमर्त्या । वि । भाहि । चन्द्रऽरथा । सूनृताः । ईरयन्ती । आ । त्वा वहन्तु । सुऽयमासः । अश्वाः । हिरण्यवर्णाम् । पृथुऽपाजसः । ये ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—चन्द्ररथा सुवर्णरथोपेताऽऽनन्दमयी अमर्त्या मरणधर्मरहिता हे उषो देवि ! त्वं वि भाहि सूर्यकिरणसम्बन्धेन विमानं कुरु । दीप्ता भव सूनृताः प्रियसत्यरूपा वाच ईरयन्ती उच्चारयन्ती नितरां त्वं दीप्यस्व । सुयमासः सुष्ठु नियन्त्रिता दान्ताः पृथुपाजसः प्रभूतबलवर्णा येऽश्वां सन्ति ते त्वाम् आ वहन्तु ।

टिप्पणी—सुयमासः—सु + यम + खल् । सूनृता—सु + ऋत, नुडागमः ऊकारदीर्घश्च । हिरण्यवर्णाम्—हितरमणीयवर्णाम्, स्वर्णवत्कमनीयवर्णाम् । चन्द्ररथा—चन्द्रशब्दः स्वर्णपर्यायः । चदि आह्लदाने दीप्तौ च । स्वर्णवत्कमनीयरथोपेता ।

हिन्दी-व्याख्या—'चन्द्ररथा उषो देवि !' हे स्वर्णमय रथ पर आसीन होकर विचरण करने वाली उषा ! तुम 'सूनृता ईरयन्ती' प्रिय मधुर वाणी का उच्चारण करती हुई—प्रेरणा प्रदान करनी हुई 'विभाहि' विभान (विहान) करो जिससे समग्र संसार विकास की आभा से आभासित हो उठे । 'पृथुपाजसः सुयमासः अश्वा' अत्यन्त वलवर्ण वाले सुगठित—नियन्त्रित अश्व निरन्तर तुम्हें वहन करके विश्व को आनन्दित करते रहें और तुम्हारा हिरण्यवर्ण रूप इसी प्रकार जगमगाता रहे।

३— उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो—

ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना

चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३॥

पद-पाठः—उषः । प्रतीची । भुवनानि । विश्वा । ऊर्ध्वा । तिष्ठसि । अमृतस्य केतुः समानम् । अर्थम् । चरणीयमाना । चक्रम् ऽ इव । नव्यसि । आ । ववृत्स्व ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—प्रतीची विश्वा सर्वाणि भुवनानि प्रति अञ्चतीति आभि-मुख्येन प्राप्नोति इति प्रतीची । अमृतस्य केतुः अमृतस्य निर्मणस्य सूर्यस्य त्वमेव प्रज्ञापयित्री । उषस दृष्ट्वैव सूर्यागमनं प्रति विश्वसिति लोकः । ऊर्ध्वा तिष्ठति नभसि औन्नत्यं प्राप्य वर्तसे । समानम् अर्थम् एक मेव मार्गम् आश्रित्व नव्यसि पुनः पुन-रुत्पन्ना सती नवतरा—हे नवीने उषो देवि । एकमेव मार्गमाश्रित्य चरणीयमाना अभिमुखं चरन्ती चक्रमिव यथा चक्रं रथाङ्गं पुनः पुनरावर्तते तथा त्वमपि पुनः पुनस्तस्मिन्नेव मार्गे आवर्तस्य आवृता भव सूर्यस्य चक्रमिव ।

टिप्पणी—प्रतीची—'अञ्चते श्चोपसंख्यानम्' इति ङीप् । अर्थम्अर्यते गम्यते इत्यर्थो मार्गः । ऋ गतौ स्थन् प्रत्ययः । चरणीयमाना चरन्ति । यत्र तत्र चरणं मार्गः । चरणम् इच्छति इति क्यप् । आत्मनेपदम्, शानच् । टाप् । केतुः—चाय-की, तुन् प्रत्ययः । नव्यसि—नवशब्दाद् ईयसुन्, ईकारलोपश्छान्दसः । आववृत्स्व—वृतु धातो 'वंहुलं छन्दसि' शपः श्लुः । आत्मनेपदम्, लोट्, मध्यमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—'अमृतस्य केतुः' अमरधर्मा सूर्य की पताका प्रज्ञापयित्री बनकर सभी भुवनों पर व्याप्त होती हुई उषा गगन की ऊँची स्थली पर जगमगा रही है। अपने नित्य के ही परिचित मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य-चक्र के ही समान हे कल्याणी तुम अपने मार्ग पर सानन्द आवर्तन करती रहो।

४—

अवस्यूमेव चिन्वती मघो—

न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।

स्व ऽ र्जनन्ती सुभगा सुदंसा

आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥

पद-पाठः—अव। स्यूम ऽ इव। चिन्वती। मघोनी। उषाः। याति। स्वसरस्य। पत्नी। स्वः। जनन्ती। सुऽभगा। सुऽदंसाः। आ। अन्तात्। दिवः। पप्रथे। आ। पृथिव्याः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—इयमुषाः स्वसरस्य स्वयं सारिणः सूर्य पत्नी पालयित्री सती स्यूमेव वस्त्रमिव विस्तीर्ण तमः अवचिन्वती अपक्षयं प्रापयन्ती मघोनी धनैश्वर्यसम्पन्ना याति मार्गानुसरणं करोति। स्व र्जनन्ती स्वकीयं तेज उत्पादयन्ती सुभगा कल्याण-मना सौभाग्यवती सुदंशाः शोभनकर्मा सा खलु उषा दिव आ अन्तात् पृथिव्याश्च आ अन्तात् पप्रथे प्रथते प्रकाशं तनुते।

टिप्पणी—स्वसरस्य—सुष्ठु अस्यति क्षिपति तम इति स्वसरः सूर्यः। इति व्यायणः। स्यूम—सिवु 'अवि णिवि शुषिभ्यः कित्' इति कित् मन् प्रत्ययः। वकारस्य ऊठ्। यण्। सुलुक्। जनन्ती— जन जनने णिच्, शत्, ङीप्। छन्दस्युभयथा इति णिलोपः। स्वसरः—सु + असु + अरक्।

(२) पीटर्सन ने 'स्वसरस्य पत्नी' का अर्थ किया है संसार की महारानी। सुदंसाः का अर्थ भी 'सुन्दर रूप वाली' किया है। स्यूम का अर्थ राथ ने लगाम (रश्मि) किया है। लुडविग ने भी 'लगाम को ढीला करती हुई' अर्थ किया है।

हिन्दी-व्याख्या—स्वयं सर्वशक्तिमान् सूर्य की पालिका उषा अन्धकार के आवरण को विध्वंस करती हुई ऐश्वर्य सम्पन्न महारानी के समान अपनी यात्रा पर

अग्रसर है । अपने तेज से विश्व को आक्रान्त करती हुई पृथिवी और आकाश के बीच में अपने शुभकर्म और सौभाग्य का विज्ञापन उषा कर रही है ।

५—
अच्छा वो देवी मुषसं विभातीं

प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।

ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्

प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

पद-पाठः—अच्छ । वः । देवीम् । उषसम् । विऽभातीम् । प्र । वः भरध्वम् । नमसा । सुऽवृक्तिम् । ऊर्ध्वम् । मधुधा । दिवि पाजः । अश्रेत् । प्र । रोचना । रुरुचे । रण्वऽसदृक् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे स्तोतारः यूयं विभातीं शोभमानां देवीं दिव्याम् उषसं प्रति अभिलक्ष्य सुवृक्तिं शोभनां स्तुतिं नमसा नमनभावेन प्रभरध्वं संपादयध्वम् । मधुधा मधुराणि सुखकराणि सौम्यानि स्तुतिलक्षणानि वाक्यानि दधातीति मधुधा उषा । सेयमुषा दिवि द्योतनात्मके नभसि ऊर्ध्वमूर्ध्वाभिमुखं पाजः स्वकीयं तेजो विभानं सा अश्रेत् आश्रयति । रोचना रोचनशीला रण्वसंदृक् रमणीयसंदर्शना सेयमुषाः प्ररुरुचे प्रकर्षेण दीप्यते ।

टिप्पणी—मधुधा—मधुः सोमः, तं दधाति धारयतीति मधुधाआदित्यः । यद्वा—मधुधा उषाः, सा च मधुं सूर्यं दधाति । सुवृक्तिम्—सु + वृजी + क्तिन् सुष्ठुतया वर्ज्यते आवर्ज्यते जनो यया सा सुवृक्तिः स्तुतिः । अश्रेत्—श्रिञ् + लङ् प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—हे स्तुति करने में निपुण महानुभाव ! आप अत्यन्त नम्रता के साथ इस प्रभात वेला में देदीप्यमान उषा देवी के प्रति उत्तम स्तुतियां प्रारम्भ कीजिये । ऊपर गगन में आदित्य को धारण करने वाली उषा अपने दिव्य अलौकिक

तेज से जगमगा रही है। नयन के लिए हितकर रमणीय विभा चारों ओर सानन्द बिखरा रही है।

६— ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या—
रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाण ॥६॥

पद-पाठः—ऋतऽवरी। दिवः। अर्कैः। अबोधि आ। रेवती। रोदसी इति। चित्रम्। अस्थात्। आऽयतीम्। अग्ने। उषसम्। विऽभातीम्। वामम्। एषि। द्रविणम्। भिक्षमाणः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—ऋतावरी सत्यशीलस्वभावा इयमुषा दिवः द्युलोकात् अर्कैः स्वकीयैस्तेजोभिः अबोधि सर्वैः सम्यक् प्रज्ञायते। इयं रेवती धनैश्वर्यसम्पन्ना उषा रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभिव्याप्य चित्रं नानाविधम् अस्थात् उपस्थिता तिष्ठति। हे अग्ने! भिक्षमाणः याचमानस्त्वम् उषसं विभातीं भासमानां यदा याचसे तदा वामं कमनीयं द्रविण धनम् एषि प्राप्नोषि।

टिप्पणी—ऋतावरी—ऋत+वनिप्। 'मनोरच' नकारस्य स्थाने रेफः। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्'। अर्कैः—अर्कशब्दः सूर्यपर्यायः बहुवचन निर्देशात् लक्षणया 'तेजोभिः' इत्यर्थः। रेवती—रयि+मतुप्। 'रये र्मतौ बहुलम्' यकारस्य सम्प्रसारणम् पूर्वरूपता गुणश्च। 'छन्दसीरः' मकारस्य वकारः। तथा 'उगितश्च' इति ङीप्। आयतीम्—आङ्+इण्+शतृ+ङीप्।

हिन्दी-व्याख्या—'ऋतावरी' पदार्थों के यथार्थरूप को प्रकाशित करने वाली उषा गगन से आने वाले अपने तेज पुंज के कारण 'अबोधि' पहचान ली जाती है। 'रेवती' यह धनैश्वर्य की स्वामिनी अपने अंगलावण्य से जगमगा रही है। 'विभातीम्' अपनी विभा से अत्यन्त कमनीय कान्ति वाली इस उषा से हे अग्नि देव जब-जब आप भिक्षा मांगते हैं। कमनीय रत्न-धन को प्राप्त करते हैं।

७—

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्

वृषा मही रोदसी आ विवेश ।

मही मित्रस्य वरुणस्य माया

चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥७॥

पद-पाठः—ऋतस्य । बुध्ने । उषसाम् । इषण्यन् । वृषा । मही इति । रोदसी इति आ । विवेश । मही । मित्रस्य । वरुणस्य । माया । चन्द्राऽइव । भानुम् । वि । दधे । पुरुत्रा ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—उषसाम् इषण्यन् प्रेरयन् अयं वृषा धर्मभूतः सूर्यः वृष्टिकारी मही महत्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यो आ विवेश सर्वतः प्राप्नोति । कदा ? ऋतस्य सत्यभूतस्य दिवसस्य बुध्ने मूलभागे प्रभातकाले इति यावत् इयमपि उषा मित्रस्य दिनाभिमानिनो देवस्य वरुणस्य रात्र्यभि—मानिनो देवस्य च मही महती माया प्रभारूपा, सा च चन्द्रा इव सुवर्णानीव भानुं स्वकीयां विभां पुरुत्रा सर्वेषु विदधे विस्तारयति ।

टिप्पणी—बुध्ने—बुफधातो र्नङ् । इषण्यन्—इच्छतीति इषन्, इषन्तम् आत्मानम् इच्छतीति इषण्यति—इष + शतृ + क्यच् । मही—महत् + ङीप् । उपधातकारयोर्लोपश्छान्दसः । पुरुत्रा—पुरु शब्दात् 'देव मनुष्य०' इति त्र प्रत्ययः । चन्द्रा—चन्द्रशब्दोऽत्र सुवर्णवाची ।

हिन्दी-व्याख्या—'ऋतस्य बुध्ने' यथार्थरूप से दीप्तमान् दिवस के मूल में स्वर्णपीतवसना उषा को 'इषण्यन्' प्रेरित करता हुआ 'वृषा' वर्षा करने वाला सूर्य 'मही रोदसी' विशाल पृथ्वीलोक एवम् आकाशलोक के अन्तराल में 'आ विवेश' प्रवेश पा रहा है । यह उषा 'मित्रस्य वरुणस्य' दिवस और रात्रि के मिलन की 'मही माया' एक बड़ी विभा-विभूत है जो स्वर्ण के समान पीतप्रभा 'पुरुत्रा' सभी ओर 'विदधे' विस्तीर्ण कर रही है ।

मण्डल–४

उष: सूक्तम्

सूक्त ५१

ऋषि:—वामदेव: । देवता—उषा: । छन्द:—त्रिष्टुप् ।

१- इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्तात्—

ज्योति तमसो वयुनावदस्थात् ।

ननं दिवो दुहितरो विभातो—

गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥

पद-पाठ:—इदम् । ऊँ इति । त्यत् । पुरु ऽ तमम् । पुरस्तात् । ज्योति: । तमस: । वयुन ऽ वत् । अस्थात् । नूनम् । दिव: । दुहितर: । वि ऽ भाती: । गातुम् । कृणवन् । उषस: । जनाय ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—'इदमु व्यत् पुरस्तात्' इदं तत् प्राच्यां दिशि 'पुरुतमं ज्योति: वयुनावत्' आनन्द प्रदं तेज: 'तमस:' अन्धकारात् नि: सृत्य 'अस्थात्' उत्तिष्ठति । कीदृशं ज्योति: पुरुतमम् अत्यन्त-प्रभास्वरं प्रभूतम् । 'नूनं दिवो दुहितर:' स्पष्टं दिवो ललनाया दुहितर: दुहितृस्थानीया उषस: 'विभाती:' विमानं प्रभातं कुर्वाणा: जनाय मनुष्याणां कृते 'गातुं कृणवन्' गमनादिव्यापार सामर्थ्यम् अकुर्वन् ।

टिप्पणी—दुहिता—दोग्ध इति दुहिता । गातुम्—इण् गतौ । तुन् प्रत्यय: । गा आदेशश्छान्दस: एति येन स गातु: मार्ग: । जीवन साधन-प्रकार: । वयुनम् —इति पदनाम निघण्टौ ।

हिन्दी-व्याख्या—'इदमु त्यत्' यह वह है 'वयुनावत् ज्योति:' आनन्द प्रद तेज जोकि 'पुरस्तात्' सामने पूर्व दिशा से 'तगस: अस्थात्' अन्धकार में से निकलता

हुआ 'पुरुतमम्' प्रभास्वर रूप में 'अस्थात्' प्रकट हो रहा है। 'नूनम् निश्चय ही 'दिवो दुहितरः' द्युलोक की पुत्रियाँ 'विभातीः' विभान करती हुई 'जनाय' मनुष्य के लिये 'उषसः देवियाँ 'गातुं कृणवन्' गमनादि व्यापार के लिये सामर्थ्य प्रदान कर रही हैं।

२– अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्
मिता इव स्वरवो ऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारो–
च्छन्ती रव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२॥

पद-पाठः—अस्थुः। ऊँ इति। चित्राः। उषसः पुरस्तात्। मिताः इव स्वरवः अध्वरेषु। वि। ऊँ इति। व्रजस्य। तमसः द्वारा। उच्छन्तीः। अव्रन्। शुचयः। पावकाः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—चित्राः चायनीया उषसः पुरस्तात् प्राच्यां दिशि 'अस्थुः' स्पष्ट प्रभावाः तिष्ठन्ति। 'मिता इव अध्वरेषु स्वरवः' अध्वरेषु मिताः खाताः स्वरवो यूपा इव। ते यथा प्रभूताः स्वर्णमया दीप्यन्ते तथा प्राच्यां दिशि उषसो द्योतन्ते। एता उषसः 'व्रजस्य तमसः द्वारा' व्रजस्य निवारकस्य अन्धकारस्य द्वाराणि 'वि उच्छन्तीः' उत्सारयन्त्यः 'शुचयः' शुद्धाः 'पावकाः' शोधयित्र्यः। 'अव्रन्' तेजसा आवृणवन्।

टिप्पणी—अव्रन्—लङ्। विकरण लोप श्छान्दसः। शुचयः—शुच्यतीति शुचिः 'इगुपधात् कित्' इन्प्रत्यय औणादिकः। स्वरवः—स्वृधातोः उप्रत्ययः। स्वर्यन्त इति स्वरवः। तमः—ताम्यतीति तमः। तमु कांक्षायाम्। असुन् प्रत्ययः।

हिन्दी-व्याख्या—'चित्रा उषसः' अद्‌भुत शोभा प्रदान करने वाली उषा देवियाँ 'पुरस्तात्' प्राची दिशा में 'मिताः स्वरव इव' स्थापित किये गए यूप स्तम्भों की भाँति 'अस्थुः' जगमगा रही हैं। जिस प्रकार सजाये गए यज्ञस्तम्भ लाल-पीले

चमकते जगमगाते हैं उसी प्रकार स्वर्णिम-प्रकाश के साथ प्राची दिशा में लालिमा चमक रही है। यह उषा देवियाँ 'शुचयः पावकाः' अत्यन्त शुभ और शोधक हैं जो 'व्रजस्य तमसः द्वारा वि उच्छन्तीः' आवरण करने वाले अन्धकार के द्वारों का स्वकीय प्रकाषमय तेज से उद्घाटन करती हैं।

३–

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्

राधो देयायोषसो मघोनी।

अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्व—

बुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥

पद-पाठः—उच्छन्तीः। अद्य। चितयन्त। भोजान्। राधःऽदेयाय उषसः। मघोनीः। अचित्रे। अन्तरिति। पणयः। ससन्तु। अबुध्यमानाः। तमसः। विऽमध्ये ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य उच्छन्तीः तमो विवासयन्त्यः 'मघोनीः' धनैश्वर्य-सम्पन्नाः 'राधो देयाय' धनप्रदानाय 'चितयन्त' प्रबोधयन्ति। 'अबुध्यमानाः' शयाना एव 'पणयः' कृपणाः 'अचित्रे अन्तः ससन्तु' अचायनीये प्रभावहीने 'तमसो विमध्ये' गाढान्धकारे ससन्तु स्वपन्तु।

टिप्पणी—उच्छन्तीः—उच्छी विवासे। मघोनीः—मघ इति धननाम। तद्वतीः। राधः—धनम्। पणयः—कुसीदिनः कृपणाः। ससन्तु—षस—षसने, षसनं च स्वप्नः।

हिन्दी व्याख्या—आज प्रभातवेला में (उच्छन्तीः) अन्धकार को निर्वासन देती हुई उषा देवियाँ 'भोजान् चितयन्त' दानशील, उदार महानुभावों को प्रबुद्ध कर रही हैं। 'पणयः अचित्रे अन्तः अबुध्यमानाः तमसो वि मध्ये ससन्तु' पर पीड़ाकारी कन्जूस लोग गाढ़ अन्धकार में प्रभावहीन होकर सोते रहें।

४- कुवित्स देवीः सनयो नवो वा

यामो बभूयादुषसो वो अद्य।

येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे

सप्तास्ये रेवती रेवदूश ॥४॥

पद-पाठः—कुवित् । सः । देवीः । सनयः । नवः । वा । यामः । बभूयात् । उषसः । वः । अद्य । येन । नव ऽ ग्वे । अङ्गिरे । दश ऽ ग्वे । सप्त ऽ अस्ये । रेवती । रेवत् । ऊष ।

संस्कृत-व्याख्या—हे उषसः वः युष्माकं 'यामः' यमनसाधनः रथः 'सनयो वा नवो वा' पुराणो वा नवीनो वा अद्य कुवित् बहुवारं 'बभूयात्' अस्माकं यज्ञं भूषयेत्। येन रथेन सप्तास्ये सप्तछन्दोयुक्तमुखे 'नवग्वे दशग्वे अङ्गिरे' नवनीतगतये नवाश्वगतये दशाश्वगतये वा ऽङ्गिरः समूहाय 'रेवत्' धनवत् कुलं यथा भवति तथा 'रेवतीः' रेवत्यः धनवत्यः यूयं भवत ।

टिप्पणी—देवीः—द्योतमानः । यामः— रथः, गमनसाधनः । नियमनसाधनो वा । नवग्वेः—अंगिरसः नवग्वा उच्यन्ते नवगमनाः, नवाश्वगमना वा । अङ्गं प्राणा वा अङ्गिरसः । सनयः—पुराणः ।

हिन्दी व्याख्या— हे उषा देवियों ! 'सनयः नवो वा यामः' आपका रमणीय रथ चाहे प्राचीन हो या नवीन; वह रथ आज इस यज्ञ की पावन-वेला में हमारे लिए 'बभूयात्' शुभ और आनन्द का निष्पादन करे जिससे 'सप्तास्ये' सप्त छन्दोयुक्त मुख वाले 'नवग्वे' नव अश्वों पर अथवा 'दशग्वे' दश अश्वों पर (=नव संधारक प्राणों पर अथवा दशेन्द्रिय युक्त अश्वों पर) यात्रा के लिए चलने वाले 'अङ्गिरे' अंगिरा ऋषियों के लिए 'रेवत्' उनका कुल-कुटुम्ब धन-सम्पन्न हो; ऐसा 'रेवतीः ऊष' धनसम्पन्न उषा देवियाँ सम्पादन करें ।

५—

यूयं हि देवी ऋतयुग्भिरश्वैः

परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।

प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं

द्विपा च्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ।।५।।

पद-पाठः—यूयम् । हि । देवीः । ऋतयुक् ऽ भिः । अश्वैः । परि ऽ प्रयाथ । भुवनानि । सद्यः । प्र ऽ बोधयन्तीः । उषसः । ससन्तम् । द्वि ऽ पात् । चतु ऽ पात् । चरथाय । जीवम् ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या—हे उषसः ! ऋतयुग्भिः यज्ञगामिभिः अश्वैः यूयं भुवनानि सद्यः परिप्रयाथ परितः प्रयाणं कुरुथ । कथं गच्छथ ? ससन्तं स्वपन्तं जीवलोकं प्रबोधयन्तीः प्रबोधयन्त्यः येन द्विपात् चतुष्पाद् मनुष्य-खग-गवादियणः चरथाय स्व-स्वकर्मव्यापारार्थं प्रवर्तेत । प्रवृत्ति लभेत ।

टिप्पणी—चरथाय—चरधातोरथच् प्रत्यय औणादिकः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दिव्य उषा देवियो ! आप अपने ऋत (यज्ञ) गामी अश्वों के साथ समस्त भुवन में एक साथ ही अभिव्याप्त हो जाती हो । समस्त स्वप्न-ग्रस्त जीवों को प्रबोधन देती हो और दो चरण वाले तथा चार चरण वाले (मानव-खग-गवादि) प्राणियों को अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करती हो ।

६—

क्व स्विदासां कतमा पुराणी

यया विधाना विदधु ऋभूणाम् ।

शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति

न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥

पद-पाठः--क्व । स्वित् । आसाम् । कतमा । पुराणी । यया । वि ऽ धाना ।

वि ऽ दधुः । ऋभूणाम् । शुभम् । यत् । शुभाः । उषसः । चरन्ति । न । वि ।

ज्ञायन्ते । सादृशीः । अजुर्याः ।

संस्कृत-व्याख्या—एतासाम् उषसां माध्ये का स्वित् पुराणी पुरातनी उषा क्व स्वित् आसीत् यया ऋभूणाम् उपासकाः विधाना विधानानि निर्माणानि विदधुः अकुर्वन् । इमा उषसः शुभा देदीप्यमानाः शुभं तेजः (चरन्ति) उत्पादयन्ति । तेन एव अजुर्याः अशीर्णाः सदृशीः एकरूपाः समानाकाराः अतो न विज्ञायन्ते एतासु का नवीना कतमा वा पुराणी ।

टिप्पणी—अजुर्याः—नञ् उपपदात् जृधातोः । शुभ्राः—स्फायितञ्चि इत्यादिना रक् ।

हिन्दी-व्याख्या—इन उषा देवियों में कौन-सी पुरानी उषा थी जिसके कारण ऋभु ऋषियों के उपासकों ने 'विधाना' अपने यज्ञ-विधानों का 'विदधुः' सम्पादन किया । यह सभी उषा देवियों शुभ्र देदीप्यमान होकर अपने तेज का निरन्तर निष्पादन करती हैं । इनका वयोवर्णरूप एक-सा ही समान है अतः यह जाना नहीं जाता कि इनमें कौन प्राचीन है और कौन-सी नवीन है ।

७–

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासु–

रभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्या ।

यास्वीजानः शशमान उक्थैः

स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥

पद-पाठः—ताः । घ । ताः । भद्राः । उषसः । पुरा । आसुः । अभिष्टि ऽ द्युम्नाः । ऋतजात ऽ सत्याः । यासु । ईजानः । शशमानः । उक्थैः । स्तुवन् । शंसन् । द्रविणम् । सद्यः । आप ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—'पुरा ता घा ता भद्रा उषस आसुः' पुरा काले ता एव उपकारिण्य उषस आसन् । 'अभिष्टिद्युम्नाः' अभिगमनमात्रेण द्युम्नं द्योतकं धनम् अन्तर्बाह्यविभवौ यासां ताः । 'ऋतजातसत्याः' यज्ञार्थं जाताः सत्याः सत्यफलाश्च । यासु उषः सु ईजानः यागं कुर्वाणः उक्थैः स्तोत्रलक्षणैः शशमानः प्रशंसमानः स्तुवन् स्तुतिं निष्पादयन् शंसन् प्रशंसन् द्रविणम् वैभवजातम् सद्यः तत्कालमेव आप प्राप्नोति ।

टिप्पणी—भद्राः—भदि कल्याणे सुखे च । औणादिको रन् प्रत्ययः । नकारलोपः । द्युम्नम्—द्योतकम् । द्युम्नमिति पद नाम निघण्टौ ।

हिन्दी-व्याख्या—वही उपकार-परायण उषा देवियाँ प्राचीनकाल में आविर्भूत हुई 'अभिष्टिद्युम्नाः' जिनके अभिगमन स्पर्श से ही कान्ति-प्रद धन-वैभव की प्राप्ति हुई । 'ऋतजातसत्याः' जिनका प्रादुर्भाव ही देवपूजा, संगतिकरण दान आदि शुभ कर्मों के लिए हुआ है और जो प्रवृत्ति की सफलता में मूल कारण हैं । 'यासु ईजानः' जिन उषा देवियों के साक्ष्य में देव-पूजा आदि के माध्यम से प्रगति करता हुआ मानव 'उक्थैः शशमानः' स्तुति-वचनों से सराहना करता हुआ 'स्तुवन् शंसन्' स्तुति=गुण-विस्तार एवं शंसन्=गुणानुरागपूर्वक प्रशंसा के कारण 'द्रविणं सद्य आप' तत्काल ही धन आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है ।

८–

ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्

समानतः समना पप्रथानाः ।

ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना

गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥

पद-पाठः—ताः । आ । चरन्ति । समना । पुरस्तात् । समानतः । समना

पप्रथानाः । ऋतस्य । देवीः । सदसः । बुधानाः । गवाम् न । सर्गाः । उषसः

जरन्ते ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—समानतः समानाद् देशाद् अन्तरिक्षात समानाः समानमनस्काः समानाराश्च 'समना पप्रथानाः' सर्वस्मिन् प्रदेशे पुरस्तात् प्राच्यां दिशि विस्तीर्णास्ता उषसः चरन्ति प्रादुर्भावं गच्छन्ति । इमा उषसः 'ऋतस्यदेवीः' यज्ञरूपस्य संकलन-विकलनरूपस्य देव्यः प्रज्ञापयित्र्यः 'सदसः बुधानाः' दिव्यरुचीन् सदस्यान् बोधयन्त्यः 'गवां सर्गा न' किरणानां सृष्टय उद उदकानां सृष्टय इव जरन्ते स्तूयमानाः प्रादुर्भवन्ति ।

टिप्पणी——सदः 'सर्वधातुभ्यो ऽसुन् । उषाः—'उषः किच्च' । ओषति दहति इति उषाः ।

हिन्दी व्याख्या—समान देश अन्तरिक्ष से समान-आकार और मन वाली पूर्व दिशा में सभी ओर फैलने वाली उषा देवियाँ विचरण कर रही हैं । 'ऋतस्य देवी' यह सत्य का प्रज्ञापन करती हैं । 'सदसो बुधानाः' दिव्य रुचि वाले सत्पुरुषों को निरन्तर सावधान करती रहती हैं । 'गवां न सर्गाः' उदक-सृष्टि के समान, किरण-सृष्टि के समान सुख-सुविधा की प्राप्ति के लिए उषा देवियां स्तुति-पात्र बनती हैं ।

९—

ता इन्न्वे३व समना समानी—

रमीतवर्णा उषस श्चरन्ति ।

गूहन्तीरम्वमसितं रुशद्भिः

शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचाना ॥९॥

पद-पाठः—ताः । इत् । नु एव । समना । समानी । अमीत ऽ वर्णाः ।

उषसः । चरन्ति । गूहन्तीः । अभ्वम् । असितम् । रुशत् ऽ भिः । शुक्राः । तनूभिः ।

शुचयः रुचानाः ।

संस्कृत-व्याख्या—ता एवः अभीतवर्णाः, अपरिमित स्वरूपाः समानीः समानाख्यानाः समना समानरूपाः उषसः चरन्ति । विचरन्ति । स्वकीयैः रुशद्भिः अतिदीप्तैः प्रकाशैः असितं रूपं कृष्णमन्धकारं गूहन्तीः पृथक् स्थापयन्त्यः एताः शुचयः रागद्वेष विवर्जिताः शुद्धाः तनूभिः रुचानाः रोचमानाः शुक्राः दीप्ताः सन्तीति ।

टिप्पणी—शुक्राः—शुच्यते पवित्री भवतीति शुक्रः । रन् प्रत्ययः औणादिकः । अभीतवर्णाः—अहिंसितवर्णाः, अपरिमिवर्णा वा । मीञ् हिंसायाम् । क्तः । गूहन्तीः—गूहू संवरणे ।

हिन्दी-व्याख्या—वही अपरिमित-स्वरूप वाली, समान रूप और आख्यान वाली उषा देवियाँ विचरण कर रही हैं । अपने वे 'रुशद्भिः तनूभिः' कान्तिमान् और देदीप्यमान शरीर-अवयवों से अन्धकार को 'गूहन्तीः' निराचरण करती हुई, 'शुक्राः' अत्यन्त शुभ-वर्ण में जगमगाती हुई रुचाना' रुचिकर रूप में अवस्थित होकर 'शुचयः' राग-द्वेष को दूर करती हुई नेत्रों के लिये आनन्द की स्थापना करती हैं ।

१०—

रयिं दिवो दुहितरो विभातीः

प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।

स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः

सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥

पद-पाठ—रयिम् । दिवः । दुहितरः । वि ऽ भातीः । प्रजा ऽ वन्तम् । यच्छत । अस्मासु । देवीः । स्योनात् । आ । वः । प्रति ऽ बुध्यमानाः सु ऽ वीर्यस्य ।

पतयः । स्याम ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे दिवो दुहितस्य द्योतनात्मकस्य सूर्यस्य दुहि उषसः ! विभातीः भानं प्रकाशं कुर्वाणाः दिव्याः यूय 'प्रजावन्तं रयिम्' पौत्रादिसंवर्धनरूपं धनम् अस्मासु शरणपरायणेषु यच्छत प्रयच्छत । हे देव्यः ! स्योनात् मुद-मङ्गलरूपात् सुखात् 'प्रतिबुध्यमानाः' निरन्तरं सावधानाः प्रतिबो सुवीर्यस्य सुपुष्टस्य परिवारोपेतस्य धनस्य पतयः स्वामिनः स्याम भवेम ।

टिप्पणी—दिवः—द्योतनात्मकस्य आदित्यस्य । स्योनात्—'सिवे यूं च' इति बाहुलकात् केवलोऽपि न प्रत्ययः । तेन ऊठादेशे कृते स्योनम् । सुवीर्य भवे यत् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे 'दिवो दुहितरः' सूर्य भगवान् की पुत्रीरूप उषा देवि 'विभातीः देवीः' दिव्यरूप में द्युलोक से प्रकाश—किरणें फेंकने वाली आप 'अस हम शरणागत उपासकों के लिये 'प्रजावन्तं रयिम्' संतति—सम्वर्धन रूप ध 'यच्छत' देती रहो जिससे कि प्रतिदिन आनन्दमय वातावरण से अत्यन्त (स्यो आनन्द की ओर 'प्रतिबुध्यमानाः' सावधान होकर हम बढ़ते-वृद्धि पाते रहें 'सुवीर्यस्य पतयः स्याम' सदा हृष्ट-पुष्ट—प्रगतिशील परिवार से युक्त होकर लोक तथा परलोक के सुखों की प्राप्ति में दत्तावधान रहें ।

११—

तद्वो दिवो दुहितरो विभातीः

उप ब्रुवे उषसो यज्ञकेतुः ।

वयं स्याम यशसो जनेषु

तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवीः ॥११॥

पद-पाठ—तत् । वः । दिवः । दुहितरः । वि ऽ भातीः । उप । ब्रुवे । उषसः । यज्ञ ऽ केतुः । वयम् । स्याम । यशसः । जनेषु । तत् । द्यौः । च । धत्ताम्

पृथिवी । च । देवी: ॥११॥

संकृत व्याख्या—यज्ञकेतु: यज्ञ एवं केतु: संकेतस्थानो यस्य सोऽहम् उपब्रुवे उप सामीप्यं प्राप्य ब्रुवे प्रार्थये । हे दिवो दुहितर: प्रकाशात्मकस्य आदित्यस्य दुहितृरूपा: विभाती: प्रकाशस्थानीया: उषस: 'वयं जनेषु यशस: स्याम' वयं शौर्यादिना जायमानस्य दानादिना प्रादुर्भूतस्य च यशस: स्वामिनो भवेम। तद् यशो नयनरमणीयेयं पृथ्वी देवी धारयतु द्यौश्च भग्नावरणा धारयतु ।

टिप्पणी—दिव:—द्योतनात्मकस्य सूर्यस्य । यज्ञकेतु:—यज्ञ एव केतु: प्रज्ञापको यस्य ।

हिन्दी व्याख्या—'हे दिवो दुहितर:' सूर्य भगवान् की पुत्री बनी हुई उषा देवियो ! मैं 'यज्ञकेतु:' यज्ञरूप विधान से ज्ञान प्राप्त करने वाला 'उपब्रुवे' निरन्तर आपकी प्रार्थना में संलग्न रहा करूं । 'विभाती:' हे प्रकाशस्वरूप वाली उषा देवियो ! हम 'जनेषु यशस: स्याम' मनुष्यों में सदा कीर्ति प्राप्त करते रहें और उस कीर्ति से यह आनन्ददात्री वसुधा सदा पुलकित रहे तथा द्युलोक भी प्रशंसित रहे जिससे पृथ्वी के पुत्र उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कार्यों में संलग्न रहें ।

मण्डल-४

सवितृ-सूक्तम्

सूक्त ५४

ऋषि:—वामदेव: । देवता—सविता । छन्द:—त्रिष्टुप् ।

१-

अभूद्देव: सविता वन्द्यो नु न-

इदानीमह्न उपवाच्यो नृभि: ।

वि यो रत्ना भजति मानवेभ्य:

श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥

पद-पाठः—अभूत । देवः । सविता । वन्द्यः । नु । नः । इदानीम् । अह्नः ।

उपवाच्यः । नृभिः । वि । यः । रत्ना । भजति । मानवेभ्यः । श्रेष्ठम् । नः । अत्र ।

द्रविणम् । यथा । दधत् ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या—अयं सविता प्रसविता सर्वप्रेरक उत्पत्तिकर्त्ता च देवोऽभूत् स्व महिम्ना प्रादुरभूत् । असौ देवो नु नोऽस्माकं सर्वेषां वन्द्यो वन्दनीयः खलु । अत्र देवाऽह्नः दिवसस्य सवनकाले इदानीं नृभिः नेतृभिः उपवाच्य उपेत्य स्तुत्यो भवति यो देवः मानवेभ्य रत्ना रमणीयानि धनानि विभजति वितरति । स देवः नः अस्मभ्यं श्रेष्ठं प्रशस्यं द्रविणं धनं यथा दधत् दद्यात् तथा ऽस्माभिः स प्रणम्यः ।

टिप्पणी—उपवाच्यः – ब्रुवो वच् 'ऋहलोर्ण्यत्' इत्युपधावृद्धि नु-क्षिप्रवाची । रत्ना—रत्नानि, रमणीयानि धनानि । देवः—द्योतनशीलः सूर्यः अह्न इति तृतीय सवनोपलक्षणम् ।

हिन्दी-व्याख्या —जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता और सर्वप्रेरक सविता देव का उदय काल है । यह समय भगवान् सविता देव के लिये नमन का समय है । सभी नेताओं को चाहिये वे इस समय मधुर, प्रिय एवं मननशील वाणी में उस देवता की प्रशंसा और अभिनन्दन करें । यही तो वे देव जो मनुष्यों के लिये विविध प्रकार के रमणीय सुख-साध और रत्नों को धारण करते हैं और देते हैं । वह प्रभु हमारे लिये प्रशंसनीय द्रव्यों से अलंकृत करें इस कारण सभी के द्वारा वही प्रणम्य एवम् अभिनन्दन के योग्य हैं ।

२-

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो-

ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।

आदिद्दामानं सवित र्व्यूर्णुषे-

ऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ।।२।।

पद-पाठः—देवेभ्यः । हि । प्रथमम् । यज्ञियेभ्यः । अमृत ऽ त्वम् । सुवसि ।

भागम् । उत् ऽ तभम् । आत् । इत् । दामानम् । सवितः । वि ऽ ऊर्णुषे । अनुचीना ।

जीविता । मानुषेभ्यः ।।२।।

संस्कृत-व्याख्या—यज्ञार्हेभ्यो देवेभ्योऽमृतत्वम् अतीवानन्दप्रदं सुखहेतुम् उत्कृष्टतया सोमादिरूपम् उत्पादयसि सुवसि प्रेरयसि च। आदित् अनन्तरमेव च दामानं दातारं हे सवितः ! त्वं वि ऊर्णुषे विशेषेण प्रकाशयसि। अनुचीना अनुक्रम-युक्तानि जीविता जीवितानि च मानुषेभ्यो मानवेभ्यस्त्वमेव प्रकाशयसि।

टिप्पणी—भागम्—भज् भावे घञ्। दामानम्—दा + मनिम्। अनुचीना—अनुक्रमयुक्तानि पितृ पुत्र पौत्रादिरूपाणि। अन्वग्—भवा अनुचीना—अनु + अञ्च् + ख।

हिन्दी-व्याख्या—हे सर्वप्रेरक ! जगत् के उत्पत्तिकर्ता ! सूर्यदेव ! आप ही यज्ञोपयोगी देवों के लिये 'अमृतत्वं सुवसि' उस आनन्द की सृष्टि करते हैं जिससे अमरता धर्म की सृष्टि होती है। यही जीवन का उत्कृष्ट भाग है। 'आदित्' अनन्तर है। 'दामानम्' हवि पदार्थों के दाताओं के लिये 'अनुचीना-जीविता' अनुक्रम युक्त (पिता-पुत्र-पोत्र आदि रूप) जीवन मनुष्यों के लिये 'विऊर्णुषे' विशेष कर प्रकाशित करते हैं जिससे कि मानव स्वस्थ, प्रसन्न जीवन प्राप्त करके जीवन के अमृत-आनन्द को प्राप्त कर लेता है।

३-

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने

दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।

देवेषु च सवित र्मानुषेषु च

त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ।।३।।

पद-पाठः—अचित्ती। यत्। चकृम। दैव्ये। जने। दीनैः। दक्षैः। प्र ऽ भूती। पूरुषत्वता। देवेषु। च। सवितः। मानषेषु। च। त्वम्। नः। अत्र।

सुवतात् । अनागसः ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—हे सवितः ! दैव्ये जने त्वादृशे दिव्यस्वभावके महात्मनि 'अचित्ती यत् चकृम' अचित्याऽप्रज्ञानेन यत् किमपि दुष्टं कर्म कृतवन्तः 'दीनैः दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता' यत् किमपि वा दीनतया दक्षतया प्रभुतया पुरुषतया वा पापं वयं कृतवन्तः । तत् पापकर्म स्यात् देवमुद्दिश्य वा कृतं भवेन् मानवं वा, हे देव सवितः ! त्वमत्र नोऽस्मान् अनागसः निष्पापान् सम्पादय सुवतात् । क्षमस्व कुरुष्व च निरपराधान् ।

टिप्पणी—अचित्ती, प्रभूती 'सुपां सुलुक्०' इति पूर्वसवर्णता । सुवतात्—'षुञ् अभिषवे' शप् । अनागसः—आगः पापम्, न विद्यते, आगो यस्यासौ अनागास्तेऽनागसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सविता देव ! 'अचित्ती' अज्ञान के कारण 'दैव्ये जने' आप जैसे देवता के प्रति अथवा महामानव के प्रति यदि कुछ हमसे अपराध हो गया हो तो आप कृपया क्षमा करें । 'दीनैः दक्षैः' चाहे वह अपराध देने के कारण हो गया हो अथवा 'दक्षता' के कारण हुआ हो 'प्रभूती पूरुषत्वता' चाहे प्रभुता (ऐश्वर्यमद) के कारण हो गया हो अथवा मैं ही पुरुष हूं, मुझमें ही पौरुष है, इस कारण हो गया हो, 'देवेषु च सवितः मानुषेषु च' चाहे वह अपराध देवताओं के प्रति हुआ हो अथवा मानवता के प्रति हो गया हो, 'त्वं नो अत्र' आप ही यहाँ पर अन्तर्यामी रूप से अवस्थित हैं, अतः आप हमें 'अनागसः सुवतात्' निष्पाप बना दें । और कृपा करके क्षमा करें जिससे हम प्रायश्चित् आदि करके पुनः उज्जवल भविष्य की कल्पना-कामना कर सकें ।

४—

न प्रमीये सवितु दैंव्यस्य तद्-

यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।

यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरि-

वर्ष्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ।।४।।

पद-पाठः—न । प्र ऽ मीये । सवितुः । दैव्यस्य । तत् । यथा । विश्वम् ।

...न् । धारयिष्यति । यत् । पृथिव्याः । वरिमन् आ । सु ऽ अङ्गुरिः । वर्ष्मन् ।

...ः । सुवति । सत्यम् । अस्य । तत् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—'यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति' येन सामर्थ्येन सविता ...समग्रं भुवनं धारयति, तत्तस्य सामर्थ्यं सवितु देवात् न प्रमीये न प्रमीयेत नैव ...येत। नैव कोऽपि तदपहर्तुं शक्नोति। विश्वधारण रूपं सामर्थ्यं तत्सवितुरेव ...स्ति नान्यस्य कस्यचित्। तस्य च दैव्यं कर्म अहिंस्यम् 'स्वङ्गुरिः' शोभ-...ङ्गुलिः शुभलक्षणहस्तः पृथिव्या वरिमन् वरिमणि उरुत्वे यद् आसुवति प्रेरयति ...च दिवः द्युलोकस्य वर्ष्मन् उरुत्वे चासुवति, तदस्य देवस्य सत्यभूतं कर्म सदैव ...त्यम्।

टिप्पणी—प्रमीये—प्र+मीञ् हिंसायाम्, कृत्यार्थे केन प्रत्ययः। धातोश्च ...देशः। वरिमन्—उरु+इमनिच् 'प्रिय स्थिर०) इत्यादिना वरादेशः। ...ति—'षूप्रेरणे' तुदादौ लटि।

हिन्दी-व्याख्या—जिस साहस एवं सामर्थ्य से सविता देव समस्त भुवनों का ...-पोषण कर रहे हैं (तत् न प्रमीये) यह सामर्थ्य उनसे क्षीण नहीं किया जा ...ता। उनका यह दिव्य कर्म सदैव पूज्य और अहिंस्य है। 'पृथिव्या वरिमन्' ...वी के विस्तीर्ण प्रदेश में तथा 'दिवः वर्ष्मन्' द्युलोक के विशाल क्षेत्र में भी ...ङ्गुरिः' सुन्दर अंगुली वाले (शुभहस्त) सविता देवता अपने ऐश्वर्य युक्त चमत्कार ...विस्तार कर रहे हैं। यह सविता का यथार्थ कार्य सदैव निर्बाध तथा शिष्टानु-...त है।

५-

इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः

क्षयां एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।

यथा यथा पतयन्तो वियेमिर-

एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५॥

पद-पाठः—इन्द्र ऽ ज्येष्ठान्। बृहत् ऽ भ्यः। पर्वतेभ्यः। क्षयान्। एभ्यः।

सुवसि । पस्त्य ऽ वतः । यथा ऽ यथा । पतयन्तः । वि ऽ येमिरे । एव । एव । तस्थुः ।

सवितरिति । सवाय । ते ॥५॥

संस्कृत व्याख्या—'इन्द्रज्येष्ठान्' इन्द्र एव त्वमेव ज्येष्ठः श्रेष्ठः पूज्यो येषां ते, तान् अस्मान् 'बृहद्भयः ,पर्वतेभ्यः' पर्वतेभ्यः खल्वपि अधिकान् सुखविलासान् सुवसि उत्पादयसि । किंच 'यस्त्यावतः क्षयान् एम्यः सुवसि' गृहवतः क्षयान् निवासान् एभ्यः गृहक्षेत्रादीन् सुवसि प्रकाशयसि । यथा-यथा पतयन्तः गच्छन्तः प्राणिनः स्त्वया वियेमिरे विशेषेण निमम्यन्ते 'एवैव' एवमेव तथा तथा सवाय ते प्रसवाय अनुशासनाय ऐश्वर्याय च यथानियमं नियममनतिक्रम्य तस्थुः तिष्ठन्ति मर्यादायां स्थिता भवन्ति ।

टिप्पणी—इन्द्रज्येष्ठान्—इन्द्रः सविता, स एव ज्येष्ठो येषां ते, इन्द्रज्येष्ठाः तान् । पस्त्यावतः—पस्त्यावतः, पस्त्या इति गृहनाम्, मतुप् तद्वतो गृहवतः । पतयन्तः—स्वार्थे णिच्, ततः शतृ । वियेमिरे—वि + यम + लिट्, प्रथम पुरुष बहुवचने । तस्थुः—स्था + लिट् ।

हिन्दी-व्याख्या—'इन्द्र ज्येष्ठान्' इन्द्रकोर आप को ही' ज्येष्ठ-श्रेष्ठ मानने वाले हम लोगों के लिये आप 'बृहद्भयः पर्वतेभ्यः' पर्वतों से भी बढ़कर सुख-सुविधा की सामग्री एकत्र करते हैं । 'पस्त्यावतः क्षयान् एभ्यः सुवसि' गृह लक्ष्मी से युक्त सुन्दर निवास-स्थानों का भी आप ही निर्माण करते हैं । जिस-जिस प्रकार से 'पतयन्तः' क्रियाशील प्राणी 'वियेमिरे' आपके द्वारा नियमन एवं नियन्त्रण पाते हैं 'एवैव' उसी-उसी भाँति 'सवाय' ते तस्थुः' हे सविता देव ! आपकी अनुज्ञा से ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये वे अपने को उपयोगी एवं समर्थ बनाते हैं ।

६—

ये ते त्रिरहन्तसवितः सवासो

दिवे-दिवे सौभगमासुवन्ति ।

इन्द्रो द्यावा पृथिवी सिन्धु-

रद्भिरादित्यै र्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥

पद-पाठः—ये । ते । त्रिः । अहन् । सवितरिति । सवासः । दिवे ऽ दिवे । सौभगम् । आ ऽ सुवन्ति । इन्द्रः । द्यावापृथिवी इति । सिन्धुः । अत् ऽ भिः । आदित्यैः । नः । अदितिः । शर्म । यंसत् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सवितः ! जगत्पितः! ये मनीषिणः ते तुभ्यं त्रिरहन् प्रतिदिनं वारत्रयं (प्रातरादीनि सवनानि=प्रातः सवनं माध्यन्दिनं तृतीय सवनं चेति) सवासः अभिषवाः सोमाः सोमान् (द्वितीयार्थे प्रथमा) (=यद्वा सवासः सवनानि) दिवे-दिवे प्रतिदिनं सौभगं सौभाग्यं शुभोपलक्षणम् आसुवन्ति अभि-षुण्वन्ति । तस्मादस्मान् इन्द्रः शर्म यंसत् शान्तिं सुखं च प्रयच्छतु । द्यावा पृथिव्यौ सिन्धुः आपः आदित्या अदितिः सर्वे नः अस्मान् शर्म यंसत् शान्तिं सुखमानन्दं च प्रयच्छन्तु ।

टिप्पणी—त्रिः—त्रिशब्दाद् भृशार्थे सुच् । अहन्—विभक्ते लुक् सप्तमी । सवासः—सवाः- दितीयार्थे प्रथमा, सवान् । सौभगम् सुभगशब्दाद् भावेऽण् । भगशब्दोऽत्रैश्वर्यवाची । आसुवन्ति—श्नुप्रत्ययस्य स्थाने व्यत्ययेन शप् । यंसत्—यम धातो लेटि 'सिब्वहुलं लेटि' सिबागमः । तिप इकारलोपश्छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे जगत् के पिता सविता देव ! एक ही दिन में जो आपके तीन सवन हैं, उनको सम्पादन करने वाले मनीषी लोग प्रतिदिन आपके लिये अभिषव निर्माण करते हैं और ये तीनों सवन शुभ सम्पादित होकर हमारे लिये सौभाग्य का सृजन करते हैं। उन मनीषी पुरुषों के लिये इन्द्र देवता सदैव (शर्म यंसत्) सुख-शान्ति की व्यवस्था करते रहें तथा द्युलोक की अभिमानिनी देवता, पृथिवी, सिन्धु, जल, आदित्य, मास, ऋतु तथा अदिति आदि देवता एवं उन-उन स्थानों के अभिमानी देवगण सदैव हमारे लिये 'शर्म यंसत्' सुख-सुविधा एवं शान्ति की व्यवस्था करते रहें ।

मण्डल ५

पर्जन्य-सूक्तम्

सूक्त ८३

ऋषि— अत्रिः— छन्दः—१, ५, ६, ७, ८, १० त्रिष्टुप्
२, ३, ४ जगती, ९ अनुष्टुप्

१—
अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः

स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।

कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू—

रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥

पद-पाठः—अच्छ । वद । तवसम् । गीः ऽ भिः । आभिः । स्तुहि । पर्जन्यम् । नमसा । आ । विवास । कनिक्रदत् । वृषभः । जीर ऽ दानुः । रेतः । दधाति । ओषधीषु । गर्भम् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे स्तोतः ! आभिः प्रशस्ताभिः वाग्भिः एनं तवसं प्रतवसं प्रवृद्धं बलोपेतं तर्पयितारं पर्जन्यं अच्छ स्वच्छाशयेन वद ब्रूहि । स्तुहि च । स्वकीयेन नमसा हविः साधनेन 'विवास' परिचर । अयमेव वृषभः वर्षणशीलः पर्जन्य कनिक्रदत् गर्जन् स्वाभिप्रायम् आविर्भावयन् 'जरिदानुः' शिप्रदानकुशलः औषधीषु रेत गर्भ स्थानीयम् उदकं दधाति स्थापयति ।

टिप्पणी—पर्जन्य—तृपेराद्यन्तविपरीतस्य । तर्पयिता । परोजेता वा । अर्जयिता वा । पार्जयिता रसानाम् । आ विवास—आविवासय णिच् । लोट् कनिक्रदत्—अतिशयेन क्रन्दति । शतृ । निवातनाम् । वृषभः—वर्षिता । जीरदानु—जीवेरदानुक् ।

मैक्डानल ने नमसा का अर्थ 'नमस्कार', कनिक्रदत् का अर्थ दहाड़ता हुआ बैल, गर्भ का अर्थ बीज तथा रेतः का अर्थ वीर्य किया है। राथ ने विवास का अर्थ जीतना और जीरदानु का अर्थ 'शीघ्र दानी' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे स्तोता, इन प्रशस्त वचनावलियों से तृप्ति करने वाले पर्जन्य देवता की स्तुति, प्रशंसा तथा परिचर्या कर। क्षिप्र दानशील पर्जन्य 'कनिक्रदत्' गर्जन करता हुआ ओषधियों में वृष्टि के साथ जलीय गर्भ का स्थापन करता है।

२—

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो

विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।

उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो

यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

पद-पाठ—वि । वृक्षान् । हन्ति । उत । हन्ति । रक्षसः । विश्वम् । बिभाय । भुवनम् । महा ऽ वधात् । उत । अनागाः । ईषते । वृष्ण्य ऽ वतः । यत् । पर्जन्य । स्तनयन् । हन्ति । दुष्कृतः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य पर्जन्यस्य महान् हि वधः। अवृष्ट्या ऽ तिवृष्ट्या चास्य महावधात् विश्वं भुवनं समस्तं जगत् बिभाय बिभेति। अयं प्रकुपितः पर्जन्यः वात्यया दृढानपि वृक्षानुन्मूलयति। समस्तानि च रक्षांसि रक्षः स्वाभावानुद्वेजयति। अनागाः खल्वपिनिरपश्वाधो ऽ पि पुरुषः वृष्ण्यातः वर्षकर्मवतः पर्जन्यात् ईषते भयहेतोः पलायते। करकापात समुद्यतो मेघाभिमानी पर्जन्यः स्तनयन् गर्जन् यदा दुष्कृतः दूषितमनोव्रतान् वृष्ण्यावतः वृषलवत् दुष्टाचारान् हन्ति लब्धपरिणामान् करोति तदा स्थिरानपि अधीरयति।

टिप्पणी—वृष्ण्यावतः—वृष्ण्यावतः वर्षकर्मवतः। वृषणं पावम् तदिच्छति इति वृष्ण्यः। अकारलोपः। दीर्घश्छान्दसः। अनागाः—न विद्यते आगः अपराधो यस्येति अनागाः। महावधः—वज्रवधः।

बूलन्ट ने मेघाभिमानी दैत्यों को ही 'दुष्कृतः' माना है।

हिन्दी-व्याख्या—इस मेघाभिमानी पर्जन्य देव का प्रहार वज्र-प्रहार के समान महान् वध है। अवृष्टि अथवा अतिवृष्टि के द्वारा प्रजा में भय-विह्वल शङ्का उपस्थित करने वाले पर्जन्य के महावध से सारा संसार थर्रा उठता है। यह प्रकुपित पर्जन्य अपने हिमानी झंझावात से महान् से महान् वृक्षों को भी उखाड़ फेंकता है। समस्त राक्षस स्वभाव वालों को भी सर्षप-तिल तुल्य निपीडित कर देता है। 'वृष्ण्यावतः' वर्षा करने वाले पर्जन्य के भीषण रूप को देखकर 'अनागाः' निष्पाप व्यक्ति भी घबरा जाता है। ओलावृष्टि के साथ गर्जन करता हुआ मेघाभिमानी पर्जन्य जब 'वृष्ण्यावतः' वृषल की भांति दुष्ट कर्म करने वालों पर अपने भयानक प्रहार से उनके पापों का फल-स्वाद दिखाता है तब बड़े-बड़े ध्यानवान् के भी हृदय में भय व्याप जाता है।

३—

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्

आवि दूतान् कृणुते वर्ष्यां३ अह।

दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते

यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

पद-पाठ—रथीऽइव। कशया। अश्वान्। अभिऽक्षिपन्। आविः। दूतान्। कृणुते। वर्ष्यान्। अह। दूरात्। सिंहस्य। स्तनथाः। उत्। ईरते। यत्। पर्जन्यः। कृणुते। वर्ष्यम्। नभः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—यथा 'रथी' रथ स्वामी कशया अश्वतर्जन्या अश्वान् अभिक्षिपन् अभिप्रेरयन् दूतान् स्वकीयान् युद्धकुशलान् भटान् आविष्करोति तथाऽयं पर्जन्योऽपि कशया विद्युता अश्वान् मेघान् अभिक्षिपन् अभिप्रेरयन् स्वकीयान् दूतवदवस्थितान् वर्ष्यान् वर्षकान् मेघान् प्रकटयति। यत् यदा पर्जन्यः नभः आकाशं वर्ष्यं वर्षोपेतं कृणुते करोति तदा दूरादेव सिंहस्य 'स्तनथाः' गर्जनानीव उदीरते उद्भवन्ति।

टिप्पणी—स्तनथाः—स्तनात् थन् प्रत्ययः। बहुवचनम्।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार रथ का स्वामी चाबुक से अपने अश्वों को प्रेरित करता हुआ अपने युद्ध-कुशल शूरों को प्रकट करता है उसी प्रकार यह पर्जन्य भी अपनी विद्युत् के चाबुक से अपने जल-कुशल मेघों को प्रेरित करता हुआ वर्षणशील मेघों को उद्भासित करता है। जिस समय यह मेघाभिमानी पर्जन्य आकाश को वर्षोदक से भर देता है तब दूर से सिंह-गर्जन सा सुनाई देने लगता है।

४—

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत

उदोषधी जिहते पिन्वते स्वः ।

इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते

यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

पद-पाठः—प्र । वाताः । वान्ति । पतयन्ति । वि ऽ द्युतः । उत् । ओषधीः । जिहते । पिन्वते । स्व १ रिति स्वः । इरा । विश्वस्मै । भुवनाय । जायते । यत् । पर्जन्यः । पृथिवीम् । रेतसा । अवति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यत् यदा पर्जन्यः मेघाभिमानी देवः रेतसा वृष्टि-जलेन पृथिवीम् अवति तर्पयति तदा वाताः प्र वान्ति मेघोदरविनिर्मुक्ताः शीतला वाताश्चलन्ति। विद्युतः पतयन्ति आकाशे सगर्जनं विद्योतन्ते । ओषधीः ओषधयः उत् जिहते साङ्कुराः प्रवर्धन्ते । स्वः आकाशश्च पिन्वते जलस्थौल्यं भजन् महत्वं समुल्लासयति । इरा अन्नपूर्णा पृथ्वी च विश्वस्मै भुवनाय हितार्थं समर्था भवति ।

टिप्पणी—पतयन्ति—स्वार्थे णिच् । जिहते—ओहाङ् गतौ लटि रूपम् । रेतः—उदकम् ।

मैक्डानल ने 'पिन्वते' का अर्थ 'पूर्ण होना', अवति का अर्थ अंकुर उत्पन्न करना लिखा है।

हिन्दी-व्याख्या—जिस समय मेघाभिमानी देव 'रेतसा' वृष्टि-जल से पृथ्वी को परितृप्त करते हैं उस समय मेघोदर से निकला शीतल पवन संचार करता है। गगन में गर्जना के साथ बिजली चमकती है । ओषधियाँ अंकुरित होकर लहलहा

उठती हैं। जल की पूर्णता के कारण आकाश झुक जाता है और अन्नपूर्णा वसुधा जगत्कल्याण के लिए समर्थ हो जाती है।

५— यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति

यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।

यस्य व्रते ओषधी विश्वरूपाः

स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

पद-पाठः—यस्य। व्रते। पृथिवी। नन्नमीति। यस्य। व्रते। शफ ऽ वत्। जर्भुरीति। यस्य। व्रते। ओषधीः। विश्व ऽ रूपाः। सः। नः। पर्जन्य। महि। शर्म। यच्छ ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पर्जन्य! त्वं नः अस्मभ्यं महि महत् शर्म सुखं यच्छ प्रयच्छ यतो हि तवैव व्रते नियमे इयं सर्वसहना विश्वंभरा वसुधा 'नन्नमीति' अत्यर्थं नम्रा भवति। तवैव व्रते कर्मणि पूर्णे सति एतत् शफवत् पादोपेतं गवादिकं 'जर्भुरीति' संभ्रियते पोष्यते च। तवैव च व्रते नियमे ऽवस्थिता इमा ओषध्यो वनस्पतयश्च विश्वरूपा नानारूपाः प्रादुर्भवन्ति।

टिप्पणी—नन्नमीति—नम धातो यँङ् लुक्। लट्। जर्भुरीति—'भृञ् भरणे' यङ्-लुक्। लट्। उकारागमश्छान्दसः। भुरण धारणपोषणयोरिति सायणः। भुर धातुमपि सायणाचार्य इच्छति।

मैक्डानल ने—व्रत का अर्थ 'आदेश', 'जर्भुरीति' का अर्थ 'कूदने लगते हैं', तथा शर्म का अर्थ आश्रय किया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य! आप हमारे लिए बहुत ही जीवनोपयोगी सुख-सुविधा दीजिये क्योंकि आपके ही नियमों में यह माता धरित्री अत्यन्त सुशील रहती है। आपके ही कार्यकौशल के आधार पर यह चरणधारी पशु आदि भरण-पोषण पाते तथा संचार करते हैं और आपके ही नियम में अत्यन्त अवस्थित रहने के कारण ये ओषधि-वनस्पतियां नाना रूपों में पल्लवित तथा उल्लसित होती हैं।

६-

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं

प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङ्ङेतेन स्तनयित्नुनेहि—

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥

पद-पाठः—दिवः । नः । वृष्टिम् । मरुतः । ररीध्वम् । प्र । पिन्वत । वृष्णः अश्वस्य । धाराः । अर्वाङ् । एतेन । स्तनयित्नुना । आ । इहि । अपः । नि ऽ सिञ्चन् । असुरः । पिता । नः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मरुतः । यूयं दिवः सकाशात् नोऽस्मभ्यं वृष्टिं ररीध्वं प्रयच्छत । वृष्णो वर्षकस्य अश्वस्य व्यायिनो मेघस्य धारा जलधाराः प्र पिन्वत प्रपूरयत । हे पर्जन्य ! मेघाभिमानिन् । त्वमपि एतेन खलु स्तनयित्नुना गर्जनशीलेन मेघरथेन 'आ इहि' शीघ्रम् आयाहि । त्वमेव हि नः पिता यो हि शुष्कां पृथ्वीं वसुन्धरां सम्पादयत् उर्वरां करोषि । अपः निरसन् त्वमेव प्राणप्रदः असुरः उदकानां निरसिता । त्वमेव । 'अपो निषिचन्' जलानि निक्षिपन् पृथ्वीमार्द्रां कोमलां सस्यश्यामलां विदधासि ।

टिप्पणी—ररीध्वम्— रीङ् गतौ यङ्लुक् । उपधा ईकारस्य अकारः । लिङ् । स्तनयित्नुना— स्तन—णिच्—इत्नुच् असुरः—अस्यतीति ।

मैक्डानल ने 'अश्वस्य' का अर्थ घोड़ा और 'अर्वाङ्' का अर्थ ऊँचा किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मरुद्गण ! आप सब आकाश से हमारे लिए लाभप्रद वृष्टि प्रदान करें और इसके लिए व्यापक मेघ को सदा संभृत करते रहें । हे मेघ के अभिमानी देवता पर्जन्य तुम भी अपने गर्जनशील मेघ-रथ पर सवार होकर शीघ्र आगमन करो क्योंकि सूखी पृथ्वी को उर्वर बनाकर तुम ही उसे वसुन्धरा बनाते हो । तुम ही जल-क्षेपण करके प्राण-प्रदाता असुर हो । इस कारण तुम ही हमारे प्राणादायक पिता हो ।

७- अभिक्रन्द स्तनय गर्भमाधा—

उदन्वता परिदीया रथेन ।

दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं

समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥

पद-पाठ—अभि । क्रन्द । स्तनय । गर्भम् । आ । धाः । उदन्ऽवता । परि । दीय । रथेन । दृतिम् । सु । कर्ष । विऽसितम् । न्यञ्चम् । समाः । भवन्तु । उत्ऽवतः । निऽपादाः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे जलाभिमानिन् । त्वम् अभिक्रन्द । स्तनय भूमिं प्रति मधुरेण शब्देन आश्वासय । ओषधीषु गर्भस्थानीयं जलमाधेहि : एतदर्थं च उदकवता रथेन परिदीय परितः प्राप्नुहि । दृतिं दृतिवत् जलाधारं विषितं विशेषेण बद्धं मेघं न्यञ्चम् अधोमुखं सुकर्ष सम्यक् वृष्ट्यर्थं कर्षय । तथा कृते सति उद्वतः उन्नतप्रदेशाः निपादाः निम्नप्रदेशाः खल्वपि जलपूर्णतया समा भवन्तु ।

टिप्पणी——उदन्वता—उदक + मतुप् । उदकस्य उदन् आदेशः । दृति= मशक । विषितम्—विपूर्वात् षिञ् बन्धने । विबद्धम् । यद्वा विगतबन्धनम् । उद्वतः—ऊर्ध्ववन्तं उन्नतप्रदेशाः । निपादाः—निकृष्टपादः = निम्नोन्नत प्रदेशाः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! आप पृथ्वी के लिए मंगल-ध्वनि बार-बार कीजिये, जिससे यह पृथ्वी पूर्णतया आश्वस्त हो । ओषधियों में जलीय गर्भ का आधान कीजिये और इसी निमित्त से जलवाही मेघ-रथ पर आसीन होकर चारों ओर विचरण कीजिये ।' दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चम्' दृति (मशक) की भाँति बँधे हुए जलाधार मेघ को वृष्टि के लिए आकृष्ट करके नीचे कीजिये जिससे 'उद्वतः निपादाः' ऊँचे-नीचे सभी प्रदेश जलपूर्ण होकर (समा भवन्तु) बराबर हो जायँ ।

८— महान्तं कोशमुदचा निषिञ्च

स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।

घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि

सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

पद-पाठः—महान्तम् । कोशम् । उत् । अच । नि । सिञ्च । स्यन्दन्ताम् । कुल्याः । वि ऽ सिताः । पुरस्तात् । घृतेन । द्यावापृथिवी इति । वि । उन्धि । सु ऽ प्रपानम् । भवतु । अघ्न्याभ्यः ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—हे पर्जन्य ! महान्तं विशालं कोशं कोशवत् प्रवृद्धं मेघम् उदच उपरि कुरु । निषिञ्च निम्नाभिमुखं सिंच । तथाकृते सति पुरस्तात् पूर्वाभिमुखं कुल्याः जलगर्भा नद्यः स्यन्दन्ताम् प्रवाहोपेताः भवन्तु । एतेन घृतेन जलराशिना दीप्तिमता दिवं च पृथिवीं च वि उन्धि सम्यक् आर्द्रां कुरु । एवं कृते सति अघ्न्याभ्यः गोभ्यः सुप्रपाणं स्वच्छतया पातव्यं जलं सुगमं भवतु ।

टिप्पणी—अच—अञ्चु गतौ लोट् । नकारलोपश्छान्दसः । उन्धि—'उन्दी क्लेदने' लोट् । विषिताः—विगतबन्धनाः ।

मैक्डानल ने कोश का अर्थ 'बाल्टी', घृतेन का अर्थ 'घी' से किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! इस महान् जल-कोश से युक्त मेघ को ऊपर उठाइये और नीचे की ओर तृषाकुल पृथ्वी पर वर्षा द्वारा सिंचन कीजिये । ऐसा कर पर सभी नदियाँ जल से लबालब भर कर पूर्व की ओर चल देंगी । इस प्रकार समस्त आकाश तथा भूलोक जल से गीला हो जायेगा और गायों के लिए भी स्वच्छ-मधुर जल पीने के लिए सुलभ हो पायेगा ।

९— य पर्जन्य कनिक्रदत्

स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।

प्रतीदं विश्वं मोदते

यत् किंच पृथिव्यमधि ॥९॥

पद-पाठः—यत् । पर्जन्य । कनिक्रदत् । स्तनयन् । हंसि । दुः ऽ कृतः ।

प्रति । इदम् । विश्वम् । मोदते । यत् । किम् । च । पृथिव्याम् । अधि ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पर्जन्य । यत् यदा कनिक्रदत् मंगलमयीं वाचं प्रयच्छन् स्तनयन् गर्जन् दुष्कृतः जलदाने संकोचशीलान् अत एव कृपणान् मेघान् हंसि दयावतो विदधासि । हनन साधनेन तान् प्रपीड्य कोमलान् करोषि तदानीं पृथिव्यां यत् किंचित् जडचेतनात्मकं विद्यते तत् सर्वं सानन्दं प्रतिमोदते स्वहर्षमुल्लासयति ।

टिप्पणी—कनिक्रदत् – अतिशयेन क्रन्दति । लटः शतृ । निगागमश्छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! जब आप मंगलमय ध्वनि के साथ गर्जना करते हुए जल-दान में संकोच करने वाले कृपण मेघों पर प्रहार करके उन्हें कोमल तथा सरस बनाते हैं उस समय पृथ्वी पर जितने जड़-चेतन हैं सभी सानन्द होकर अपना हर्ष और आमोद-प्रमोद प्रकट करते हैं । वर्षा ही समस्त संसार के लिए प्रीति और कान्ति का निष्पादक है ।

१०— अवर्षी वर्षमुदु षू गृभाया-

कर्धन्वान्यत्येतवा उ ।

अजीजन ओषधी र्भोजनाय कम्-

उत प्रजाभ्यो ऽविदो मनीषाम् ॥

Ashok kumar Sharma

पद-पाठः—अवर्षीः । वर्षम् । उत् । ऊँ इति । सु । गृभाय । अकः । धन्वानि । अति ऽ एतवै । ऊँ इति । अजीजनः । ओषधीः । भोजनाय । कम् । उत । प्रऽजाभ्यः । अविदः । मनीषाम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पर्जन्य ! त्वं यथेष्टं वृष्टवानसि । 'अवर्षीः वर्षम्' क्षामम् अनतिक्रम्य अस्मभ्यं वृष्टिजलानि लब्धानि । इदानीमुपसंहर । 'उदुसु गृभाय' गृहाण इमां जल मोचनकरीं शक्तिम् । यतो हि 'धन्वानि' अपि निरुदक प्रदेशानपि साध्यानि अकः कृतवानसि । यत्र मरुप्रदेशे महत् जलाभावेन कष्टमासीत् तत्रापि जलवैपुल्यं जातम् । तत्रापि अत्येतवै अतिक्रम्य गन्तुं गमनसाधनं वाच्छन्ति । भोजनाय भोगाय च 'ओषधीः अजीजनः' नानावीर्याः उदपादयः उत्पादितवानसि । एवं शान्ति सुखानि भोग्यानि च वस्तूनि दत्वा कृतज्ञाभ्यः प्रजाभ्यः मनीषां स्तुतिरूपां प्रशंसामपि 'अविदः' लब्धवानसि ।

टिप्पणी—गृभाय—'छंदसि शायजपि' । अविदः—'विद्लृ लाभे' लङ् । म्योर ने मनीषा का अर्थ 'कामना' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! आपने अच्छी वृष्टि की । अब उसका उपसंहार कीजिये । मरु-प्रदेश भी जल से तृप्त और पूर्ण हो गया । प्राणियों के भोग के लिए नाना प्रकार से सामर्थ्य युक्ति ओषधियाँ भी आपने उत्पन्न कर दीं । इस प्रकार सन्तुष्ट कृतज्ञ प्रजा से 'मनीषा' हार्दिक सान्त्वना और प्रशंसा भी आपने प्राप्त कर ली । अब अधिक बरसने का प्रयोजन नहीं रहा ।

मण्डल–६

पूषा-सूक्तम्

सूक्त ५३

ऋषिः—भरद्वाजः, देवता—पूषा, छन्दः—१–७, ६, १० गायत्री ८ अनुष्टुप् ।

१–

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये ।

धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

पद-पाठः—वयम् । ॐ इति । त्वा । पथः । पते । रथम् । न । वाज

सातये । धिये । पूषन् । अयुज्महि ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—उदयं प्रत्यभिमुखः दिवसाभिमानि देवः पूषा । यस्मिन् काले आकाशे प्रकाशः पृथिव्यां च मनागन्धकारोऽस्ति तस्य कालस्य सूर्याभिमानि देवता स्तूयते । हे पूषन् ! पथस्पते ! मार्गस्य पालयितः ! वयं धिये प्रतिष्ठा कर्मणे च वाजसातये धनलाभाय युद्धे रथम् इव त्वाम् अयुज्महि युक्तं कुर्मः । तदर्थं तत्परो भवेति भगवान् प्रार्थ्यते ।

टिप्पणी—पथस्पते—पूषा देवो हि मार्गपालक इति सूच्यते । वाजसातये—वाज इति धन नाम, सातये सातिः संमजनम् धनस्य लाभाय ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषा देव ! आप ही हमारे सन्मार्ग दर्शक हैं अतः बौद्धिक उन्नति एवं 'वाजसातये' धन की प्राप्ति के लिये हम आपको युद्ध के समय में रथ के समान संयुक्त करते हैं । आप हमारी इष्टपूर्ति में तत्काल तत्पर हों ।

२- 84

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् ।

वामं गृहपतिं नय ॥२॥

पद-पाठः—अभि । नः । नर्यम् । वसु । वीरम् । प्रयत ऽ दक्षिणम् । वामम् ।

गृह ऽ पतिं । नय ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! नः अस्मभ्यं वामम् वननीयम् कमनीयं गृहपतिं गृहस्य पालकं पुरुषं गृहस्थं नय प्रापय । कीदृशम् ? वीरम् दारिद्र्यस्य विशेषेण ईरयितारं क्षेप्तारम् । प्रयतदक्षिणम् प्रयत्नपूर्वकं दत्तधनम् । अथवा प्रयतं शुद्धं … यस्य तादृशं वीरं विशिष्टा इरा उत्साहमदो यस्य । अथ च नर्यं वसु नृभ्यो हितं धनम् अभि प्राप्तुं त्वं सदैव साभिलाषो भवास्मान् प्रति ।

टिप्पणी—नर्यम्—नरशब्दात् हितार्थे यत् । वामम्—वन+मत्, … नकारलोपे च कृते रूप सिद्धिः ।

(२) ग्रासमान ने 'नर्यं वसु' का अर्थ किया है 'मानवीय' पूर्ति करने वाला धन ।

हिन्दी-व्याख्या--हे पूषा देवता ! हमारे लिए मनुज-हितकारी धन से हमें तृप्त और पूर्ण कीजिये और इसके लिए 'वीरम्' दरिद्रता के निवारक-प्रयत-दक्षिणम् शुद्ध धन वाले सन्तुष्ट और प्रसन्न गृहपति को दीजिये।

३- **अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय।**

पणेश्चिद् विम्रदा मनः ॥३॥

पद-पाठः—अदित्सन्तम्। चित्। आघृणे। पूषन्। दानाय। चोदय।

पणेः। चित्। वि। म्रद। मनः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आघृणे ! आगत दीप्ते ! पूषन् ! अदित्सन्तं पुरुषम् अनिच्छन्तमपि दातुं दानाय अस्मभ्यं दानार्थं चोदय प्रेरय। पणेश्चित् वार्धुषिकस्य लुब्धस्य मनः विम्रदा मृदू कुरु। कोमलं मनः सम्पादय।

टिप्पणी—म्रदा—'म्रद मर्दने' छान्दसं रूपम्। यद्वा मृदु शब्दात् णिचि म्रदयति, तदा णिचो लोपं सति लोटि मध्यमपुरुषैकवचने। आघृणे - 'घृणिः' शब्दो दीप्तिवाची। आसमन्तात् घृणि दीप्ति र्यस्य, असौ 'आघृणिः' आगतदीप्तिः, तस्य सम्बुद्धौ आघृणे !। पणिः – पणि र्वणिग् भवति, लोभी। धनार्थी। निरन्तरं धनकामः। अन्यान् राष्ट्रकामान् कुलधर्मांश्च विनाश्य यो धनं प्रत्येव गृध्र-दृष्टिः।

हिन्दी-व्याख्या—प्रभाव पूर्ण प्रभा से आलोकित (आघृणे) हे पूषन् ! आप 'अदित्सन्तम्' दान के प्रति अनुदार (अनिच्छुक) पणि को दान के प्रति अति प्रेरित कीजिये और (मनः) इसकी धनासक्त चित्त-वृत्ति को (विम्रदा) अत्यन्त मृदुल बनाइये जिससे कि राष्ट्र धर्म और कुल-धर्मों की व्यवस्था और पालन हो सके।

४- **वि पथो वाजसातये चिनुहि विमृधो जहि।**

साधन्तामुग्र नो धियः ॥४॥

पद-पाठः—वि। पथः। वाज ऽ सातये। चिनुहि। वि। मृधः। जहि।

साधन्ताम् । उग्र । नः । धियः ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—हे उग्र ! दुष्टान् प्रति चण्डस्वभाव ! वाजसातये धन-प्राप्तये पथः मार्गान् उपायान् प्राप्ति प्रकारान् विचिनुहि विशेष प्रकारेण त्वं शोधितान् कुरु। आविष्कुरु । चिन्तय । यैः पथिभिः उपायैः धनानि लभेरन् तान् प्रकारान् उपदिशः । 'मृधः विजहि' मार्गगतान् अवरोधकश्च जहि, विनाशय । तस्करादीन् दूरी कुरु । अरी कुरु । चास्मान् पूरी कुरु मनोरथान् 'साधन्ताम्' च सिद्धयन्तु सिद्धा भवन्तु सफलाः सन्तु । नो ऽस्माकं धियः बुद्धयः कर्माणि च ।

टिप्पणी—वाजसातये—वाजपूर्वस्य षणधातोः क्तिन् । नकारस्याकारः। मृधः—'मृध हिंसायाम्' क्विप् । द्वितीया बहुवचने ।

हिन्दी-व्याख्या— हे दुष्टों के प्रति उग्रस्वभाव ! पूषन् ! आप 'वाजसातये' धन की प्राप्ति के लिए 'पथ विचिनुहि' विशेष मार्गो का हमारे लिए चयन कीजिये। उन उपायों का निर्देश कीजिये जिससे हमारी शोभा-समृद्धि की वृद्धि हो। तथा 'मृधो विजहि' मार्गगत तस्कर आदि कण्टकों का शोधन भी कीजिये । 'धियः नः साधन्ताम्' हमारी बुद्धियों में कर्मसिद्धि, अर्थसिद्धि तथा नैपुण्यसिद्धि प्राप्त हो।

५—

परितृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।

अथेमस्मभ्यं रन्धय ।।५।।

पद-पाठः—परि । तृन्धि । पणीनाम् । आरया । हृदया । कवे । अथ । ईम् । अस्मभ्यम् । रन्धय ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या—हे कवे ! क्रान्तदर्शिन् ! पणीनामनुदाराणां हृदया हृदयानि आरया सूक्ष्म कीलमयेन दण्डेन वेधनकर्मणा 'परितृन्धि' परिविध्य लोभ-पारुष्यम् अपनय । येन राष्ट्रं शुचि कुशलोप—रक्तं प्रशंसितं जायेत । अथ च 'ईम्' एतान् पणीन् अस्मभ्यं रन्धय मृदुमनसः सम्पादय ।

टिप्पणी—तृन्धि—हिंसार्थकस्य तृहधातोः लोटि मध्यम पुरुषैकवचने। आरया ='ऋगतौ' घञ् प्रत्ययः । टाप् । आरा, तया आरया । आरा अथवा आरशब्दः कृषीवलैः वृषभ प्रेरणार्थम् अश्वं वाहोपयोगिनं वा प्रेरणार्थं सूक्ष्म लौह कीलमयं येत्रनसाधनं दण्डमादाय प्रयुज्यते । ईम्-ईम् शब्दः पदपूरणार्थः इति केचित्।

हिन्दी-व्याख्या—हे कवे ! क्रान्तदर्शिन् ! नुकीली कील से चुभाये जाने पर जिस प्रकार बैल या घोड़ा अपने गन्तव्य मार्ग पर प्रेरित होते हैं उसी प्रकार 'आरया' आर से इन धन लोलुप (पणीनाम्) पणियों के (हृदया) हृदयों को (परि-तृन्धि) वेधित करो और उनके लोभ-काठोर्य (कठोरता) को दूर करो। 'अथ च ईम् अस्मभ्यं रन्धय' और इन्हें हमारे लिये 'रन्धय' अनुकूल बनाइये जिससे औदार्य को प्राप्त करके यह लोग भी राष्ट्र धर्म के परिपालन में लगें।

६—

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।

अथेमस्यभ्यं रन्धय ॥६॥

पद-पाठः—वि। पूषन्। आरया। तुद। पणेः। इच्छ। हृदि। प्रियम्। अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—हे पूषन्! आरया प्रतोदेन पणेः वार्धुषिकस्य हृदयं वितुद विविद्य। व्यथय। तस्य पणेः हृदि मनसि प्रियम् अस्माकमानुकूल्यम् इच्छ कुशलां मनोरुचिं जनय। 'अथेम्' अथ च एनान् व्यापारमात्रवृद्धीन् अस्मभ्यं रन्धय अध्यात्मपरायणान् सम्पादय।

टिप्पणी—आरया—वेधनकीलकेन। वितुद—'तुद व्यथने' लोटि।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन्! 'आरया' आर से 'वितुद' वेधन करो, व्यथित करो। 'पणेः हृदि' पणि के हृदय में 'प्रियम्' हमारे प्रति अनुकूलता को स्पष्ट करो। और 'ईम्' इन्हें 'अस्मभ्यम्' हमारे लिये 'रन्धय' साधुकारी बनाओ।

७—

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।

अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥

पद-पाठः—आ। रिख। किकिरा। कृणु। पणीनाम्। हृदया। कवे। अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे कवे ! क्रान्तप्रज्ञ ! पूषन् ! पणीनाम् हृदया हृदयानि आ रिख आ लिख । 'किकिरा कृणु' आलिख्य च कीर्णानि शिथिलानि तेषां हृदयानि सम्पादय । मृदूनि कृत्वा तेषां हृदयानि अथ एनान् अस्मभ्यं रन्धय वशवर्तिनः सम्पादय ।

टिप्पणी—किकिरा—'कृ विक्षेपे' यङ्लुक् । अच् प्रत्ययः । चुत्वाभावश्छान्दसः । आ रिख—आ लिख ।

हिन्दी-व्याख्या—हे कवे ! पूषन् ! इन पणियों के हृदयों को 'आ रिख' खुरच कर स्वच्छ एवं निर्दोष बना दीजिये । 'किकिरा कृणु' इनको कोमल, मृदु एवं सुशील कर दीजिये जिससे इनकी चेतना राष्ट्र-चेतना से संगत हो जाये। और इस प्रकार इन्हें हमारे लिये 'रन्धय' साधुदर्शी बना दीजिये ।

८—

यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।

तया समस्य हृदयमारिख किकिरा कृणु ॥८॥

पद-पाठः—याम् । पूषन् । ब्रह्म ऽ चोदनीम् । आराम । बिभर्षि । आघृणे ।

तया । समस्य । हृदयम् आ । रिख । किकिरा । कृणु ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आघृणे ! संगतदीप्ते ! पूषन् ! पुष्टिकर ! देव ! याम् ब्रह्मचोदनीम् आराम् अध्यात्मप्रेरयित्रीं ब्रह्मशक्ति बिभर्षि स्वहस्ते धारयसि स्वायत्तां करोषि । तया समस्य सर्वस्य लोलुपमनसः हृदयम् आरिख आलिख । किकिरा किकिराणि कीर्णानि शिथिलानि शीतशीलानि कृणु सम्पादय ।

टिप्पणी--ब्रह्मचोदनीम्—ब्रह्म+चुद् प्रेरणे+णिच्+ल्युट् । ब्रह्मपराम्, अन्नप्रेरिकां वा ।

हिन्दी-व्याख्या—हे ब्रह्मदीप्ति से दीप्तिमान् पूषन् । आप जिस अध्यात्म-प्रेरिका-शक्ति (आरा) को धारण करते हैं उससे समस्त लुब्ध व्यक्तियों के मन को प्रशिथिल एवं शील-शीतल बनाइये ।

९—

या ते अष्ट्रा गो ओपशाघृणे पशुसाधनी ।

तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९॥

पद-पाठः—या । ते । अष्ट्रा । गो ऽ ओपशा । आघृणे । पशु ऽ साधनी ।

तस्याः । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आघृणे ! आगत दीप्ते ! पूषन् ! या ते गो ओपशा गाव उपशेरते इति ओपशाः, गाव ओपशा यस्याः सा गो ओपशा । पशुसाधनी पशूनां साधयित्री पशु साधनस्वभावा । अष्ट्रा आर अस्ति, तस्या आरयाः सम्बन्धि सुम्नं सुखं शुभं वयं याचामहे ईमहे । प्रार्थयामः ।

टिप्पणी—अष्ट्रा—अश् व्याप्तौ त्रन् प्रत्ययः । गो ओपशा—गो + आ + उप पूर्वस्व शीङ् स्वप्ने धातो ईः । सुम्नम्—सुष्ठु म्नायते सुम्नं सुखम् राथ ने 'गो ओपशा' अर्थ 'शिरोभूषण' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे प्रकाश पुंज ! पूषन् ! 'गो ओपशा' गायों की सिद्धि और समृद्धि बढ़ाने वाली तथा 'पशु साधनी' पशुओं की प्राप्ति कराने वाली जो आपकी 'अष्ट्रा' आर है । हम आपकी उस आर शक्ति के द्वारा प्राप्त होने वाली सुख-सम्पदा (सुम्नम्) की 'ईमहे' हम कामना करते हैं ।

१०—

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।

नृवत् कृणुहि वीतये ॥१०॥

पद-पाठः—उत । नः । गो ऽ सनिम् । धियम् । अश्व ऽ साम् । वाज ऽ साम् ।

उत । नृ ऽ वत् । कृणुहि । वीतये ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! उत अपि च नः अस्मभ्यं गोषणिं गवां च सनित्रीं च अश्वसां च अश्वानां सनित्रीं वाजसां वाजानामन्नानां सनित्रीं नृवत् नृणां च सनित्रीं एवं भूतां दात्रीं धियं प्रज्ञां कर्म वा ऽ स्माकं वीतये ऽ स्माकम् उपभोगार्थं कृणुहि कुरु ।

टिप्पणी—गोषणिम्-गो + षण् धातोः इन् प्रत्ययः । अश्वसाम्, वाजसाम्—अश्व + षण्, वाज + षण् । विट् प्रत्ययः 'जन सन खन क्रमगमो विट्' ३-२-६७ इति

विट् । 'विड्वनोसुनासिकस्यात्' । इति । नृवत्—नृ + मतुप् । वीतिः = वी + क्तिच् । वीतये—उपभोगाय ।

हिन्दी व्याख्या—हे पूषन् ! 'गोषणिम्' गायों को प्राप्त कराने वाली, अश्वसाम्, वाजसाम्, घोड़ों और अन्न को प्राप्त कराने वाली 'नृवत्' मानवता से सम्पन्न एवं सुशोभित करने वाली 'धियम्' प्रज्ञा तथा क्रिया को 'नः' हमारे 'वीतये' उपभोग के लिये 'कृणुहि' अनुकूल कर दीजिये जिससे सभी प्रसन्न, सानन्द और सुशोभित हो जायें ।

मण्डल ६

पूषा-सूक्तम्

सूक्त ५४

ऋषिः—भरद्वाजः । देवता—पूषा । छन्दः— गायत्री

१— **सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानु शासति ।**

य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥

पद-पाठः—सम् । पूषन् । विदुषा । नय । यः । अञ्जसा । अनु ऽ शासति ।

यः एव । इदम् । इति । ब्रवत् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! यो विद्वान् अञ्जसा सरलतया अनुशासति योग्यता प्राप्त्यु पायान् नष्टपदार्थान् वा ऋजुमार्गेणानयनप्रकारं ब्रवीति तेन सह अस्मान् नय संगमय । यश्च एवमिदं भवदीयं धनं तदेवेति दर्शयति तेन सह सङ्गतिं स्थापय ॥१॥

टिप्पणी—अनुशासति—अनु + शास् लटि प्रथमपुरुषैकवचने छन्दसि । ब्रवत्—ब्रू + लेट् । प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! 'तेन विदुषा नय' हमारी सङ्गति उस विद्वान् के साथ स्थापित कराइये 'यो अञ्जसा ऽ नुशासति' ज्यो सरल मार्ग से योग्यता

सम्पादन के उपाय बतलाता है तथा जो अदृष्ट-पदार्थों की प्राप्ति एवं जानकारी में पूर्ण प्राति से सहायता करता है। 'य एव इदमिति' यह वही आपका नष्ट-धन है जो हमें 'ब्रवत्' स्निग्ध वाणी में ज्ञान करा देता है।

२- **सामु पूऽणा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति।**

इम एवेति च ब्रवत् ॥२॥

पद-पाठः—सम् ! ऊँ इति। पूऽणा। गमेमहि। यः। गृहान्। अभि ऽ शासति। इमे। इव इति। च। ब्रवत् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—पूष्णा देवेन अनुगृहीता वयं संगमेमहि तेन विदुषा संगताः स्याम, संगच्छेमहि यः तान् गृहान् अभिशासति अभिमुखं प्रबोधयति इमे त्वदीया अदर्शनं गताः पशवः 'एव इति ब्रवत्' इहैव वर्तन्ते इति ब्रूयात्।

टिप्पणी—पशवः—दर्शनसाधनानीन्द्रियाणि। गृहाः—गृहणरूपाणि आश्रय-स्थानानि। पूष्णा—तृतीयायाम्। गमेमहि—गम + लिङ् वहुवचने।

हिन्दी-व्याख्या—पूषा देव से अनुगृहीत होकर हम उस महान् व्यक्ति से सङ्गति पाते हैं जो हमारे अदर्शन हुए गृहों की ओर संकेत करता है। जो यह स्पष्ट बता देता है कि तुम्हारे न दिखायी पड़ने वाले पशु इन घरों में तिरोहित हैं। तुम्हारी इन्द्रियाँ, तुम्हारा लक्ष्य यही कहीं भ्रष्ट हुआ है।

३- **पूषणश्चक्रं न रिष्यति न कोशो ऽव पद्यते।**

ना अस्य व्यथते पविः ॥३॥

पद-पाठः—पूष्ण। चक्रम्। न रिष्यति। न। कोशः। अव। पद्यते नो इति। अस्य व्यथते। पविः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—टीका—पूष्णः पोषकस्य देवस्य चक्रं न रिष्यति । नास्यायुधं कदापि क्षतं क्षीणं वा भवति । अस्य चक्रस्य कोशश्च न अवपद्यते न क्षीयते । अस्य पवि र्धारा च न व्यथते नैव क्षीणा क्षता वा भवति । अतः हे पूषन् त्वमपकारकान् इमान् चोरान् लम्पटान् क्रूरान् दुष्टांश्च विनाश्य सुखं शुभं धनं प्रकाशयन्येन जगति शान्तिः संतोष आनन्दश्च जायेरन् ॥३॥

टिप्पणी—पूष्णः—पूषन्, षष्ठी । रिष्यति—रिष् हिंसायाम्, लटि पद्यते—पद् लट् । व्यथते—व्यथ + लट् प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—पूषा देव का चक्र—आयुध कभी क्षीण या क्षत नहीं होता । 'न कोशो ऽव पद्यते' चक्र का कोश भी कभी क्षीण नहीं होता और न तो इसकी 'पवि' धार ही कभी (व्यथते) कुण्ठित होती है । इस हेतु हे पूषन् ! आप कृपा करके हमारे अपकारक इन दुष्टों का विनाश करके सुख सन्तोष और शान्ति की व्यवस्था कीजिये ।

४-

यो अस्मै हविषा विधन्न तं पूषापि मृष्यते ।

प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥

पद-पाठः—यः । अस्मै । हविषा । अविधत् । न । तम् । पूषा । अपि । मृष्यते । प्रथमः । विन्दते । वसु ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यः पुरुषः अस्मैऽपूष्णे देवाय हविषा होतुमादातुं योग्येन पुरोडाशादिना 'अविधत्' विधिवत् परिचरति तं पूषा नापि नैव 'मृष्यते' हिनस्ति । नैवाल्पमपि दुःखं सोढुं ददाति । स किल पुरुषः पूष्णः दृष्टिविधाने प्रथमः उत्कृष्टः उत्कृष्टं च वसु योग्यं धनं विन्दते लभते ।

टिपण्णी—अविधत्—विध + लङ् । मृष्यते—मृष—लट् । विन्दते—विद-लट् । वसु—धनम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जो व्यक्ति (हविष) हवि-पदार्थों से पूषा देव की 'अविधत्' परिचर्या करता है उसे 'न अपि मृष्यति' पूषा देव भी क्षण-मात्र अथवा कण-मात्र भी कष्ट नहीं देते हैं । पूषा देव की दृष्टि में वही व्यक्ति 'प्रथमः' उत्कृष्ट है और वह 'विन्दते वसु' सब प्रकार से सुख-सुविधा का पात्र है ।

५-

पूषा गाः अन्वेतु नः पूषा रक्षु त्वर्वतः ।

पूषा वाजं सनोतु नः ॥५॥

पद-पाठ—पूषा । गाः । अनु । एतु । नः । पूषा । रक्षतु । अर्वतः । पूषा । वाजम् । सनोतु । नः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—पूषा देव एव अस्माकं गा अनु एतु । स एव कृपया ऽनुगृह्णातु न मम तथा शक्तिरस्ति । स एव रक्षतु । स एव पूषा 'अर्वतः' अश्वान् मदीयान् रक्षतु । तथा नो ऽस्मभ्यं वाजम् अन्नं च स एव देवः सनोतु । ददातु ॥

टिप्पणी—अन्वेतु—अनु + इ + लोट् । अर्वतः—अर्वन् द्वितीया—बहुवचने । सनोतु—षणु + लोट् प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—'पूषा गा अन्वेतु नः' हमारी गायों (इन्द्रियों) की रक्षा में पूषा देवता सदा तत्पर रहें । हमारे 'अर्वतः' अश्वों की भी रक्षा पूषा देवता करें । पूषा देवता निरन्तर 'वाजं सनोतु नः' हमारे धन-धान्य की वृद्धि करते रहें ।

६-

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः ।

अस्माकं स्तुवतामुत ॥६॥

पद-पाठ—पूषन् । अनु । प्र । गाः । इहि । यजमानस्य । सुन्वतः । अस्माकम् । स्तुवताम् । उत ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! त्वं 'सुन्वतो यजमानस्य' सोमाभिषवं कुर्वत तत्र व्यापृतस्य यजमानस्य गा अनु इहि पशून् अनु गच्छ । अपि च स्तुवतां स्तोत्र कुर्वतां त्वद्विषये रतानां गा अनुगच्छ रक्षणार्थम् ।

टिप्पणी—सुन्वतः—षु + श्नु + शतृ । षष्ठी । यजमानस्य—यज + शानच् + मुक् । स्तुवताम्—स्तु + शतृ (उवङ्) इहि—इ + लोट् ।

हिन्दी व्याख्या—हे पूषन् ! 'सुन्वतः' सोम-रस का सम्पादन करने वाले (ब्रह्म-रस से निष्यन्द में लवलीन) यजमानों की गायों की रक्षा के लिये 'प्र इहि' आप ही निरन्तर तत्पर रहें। तथा 'स्तुवताम् उत' आपके विषय में जो लोग ब्रह्म-स्तोत्रों में दत्तावधान हैं उनकी भी गायों (इन्द्रियों) की आप तत्परता से रक्षा करें। हम सभी निश्चिन्त एवं निर्विकल्प होकर आपकी स्तुति उपासना में सावधान रहें।

७—

माकिर्नेशन् माकीं रिषन् माकीं संशारि केवटे।

अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥

पद-पाठ—माकिः। नेशत्। माकीम्। रिषत्। माकीम्। सम्। शारि। केवटे। अथ। अरिष्टाभिः। आ। गहि ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! अस्माकं गोधनं माकिः नेशत् न नष्टं भवतु। माकीं रिषत्-हिंसितं मा भवतु। माकीं संशारि केवटे, केवटे कूपे च संशीर्णं मा भूत्। कूपपातेन च नैव नष्टं भवेत्। त्वं चारिष्टाभिः अहिंसिताभिः एताभिः गोभिः सह आगहि गृहं प्रत्यावर्तनकाले गोधूलिवेलायामिहा-गच्छ।

टिप्पणी—नेशत्-णश् लेट् प्रथमपुरुषैकवचने। रिषत्-रिष् लेट्। संशारि—'शॄ विशरणे' लुङ्। अरिष्टाभिः—नञ् + रिष् + क्त + टाप्। आगहि—आ + गम + लोट् मध्यमपुरुषैकवचने। माकिः, माकीम्—एतौ प्रतिषेधवाचिनौ। केवटे= कूपे।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! हमारा गो-धन 'माकिः नेशत्' कभी क्षीण न हो। 'माकीं रिषत्' कभी किसी प्रकार से हिंसित न हो। 'माकीं संशारि केवटे' कभी कूप, गर्त आदि में गिर कर जीर्ण—शीर्ण न हो। आप स्वयं सकुशल इन गायों के साथ निर्विघ्न पधारनें की कृपा करें।

८—

शृण्वन्तम् पूषणं वयमिर्यमनष्ट वेदसम्।

ईशानं राय ईमहे ॥८॥

पद-पाठ—शृण्वन्तम् । पूषणम् । वयम् । इर्यम् । अनष्ट ऽ वेदसम् । ईशानम् । रायः ईमहे ।।८।।

संस्कृत-व्याख्या—'शृण्वन्तम्' अस्माकं स्तोत्राणि सानन्दं शृण्वन्तम् इर्यम् दारिद्र्यस्य निवारकम् अनष्टवेदसम् न नष्टं वेदो धनं यस्य तादृशम् अनष्ट धनम् ईशानमीश्वरं पूषणं देवं वयं रायः धनानि ईमहे याचामहे ।

टिप्पणी—शृण्वन्तम्—श्रु + श्नु = शतृ । ईशानम्—ईश् + शानच् । रायः-रै द्वितीया बहुवचने ।

हिन्दी व्याख्या—'शृण्वन्तम्' हमारे स्तोत्रों को प्यार से सुनने वाले 'इर्यम्' दारिद्र्य के निवारक 'अनष्टवेदसम्' सदा-धन-धान्य से परिपूर्ण 'ईशानम्' सबके ईश्वर से हम 'रायः' धन-वैभव की 'ईमहे' याचना करते हैं ।

९—

पूषन् तवव्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।

स्तोतारस्त इह स्मसि ।।९।।

पद-पाठः—पूषन् । तव । व्रते । वयम् । न । रिष्येम । कदाचन । स्तोतारः । इह । स्मसि ।।९।।

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! पुष्टिकर ! नव व्रते नियमे कर्मणि स्थिता कदाचन न रिष्येम न हिंसिता भवेम । अथ च ते त्वदीया वयं स्तोतारः स्मसि ।

टिप्पणी—रिष्येम—रिष् कर्मवाच्य, लिङ् । उत्तमपुरुषैकवचने । स्तोतारः स्तु + तृच् बहुवचने । स्मसि—अस् + लट् उत्तमपुरुष बहुवचने छन्दसि ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! पोषक देव ! हम आपके पवित्र व्रत में 'कदाचन' कभी भी 'न रिष्येम' हिंसित पीड़ित न हों । और 'ते' आपके हम सदा ही 'स्तोतारः' स्तुतिकर्त्ता बने रहें ।

१०—

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।

पुन र्नो नष्टमाजतु ॥१०॥

पद-पाठः—परि । पूषा । परस्तात् । हस्तम् । दधातु । दक्षिणम् । पुनः । नः । नष्टम् । आ । अजतु ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—पूषा पोषको देवः अस्माकं गोधनस्य रक्षार्थं परस्तात् दूरे ऽपि देशे 'दक्षिणं हस्तं दधातु' स्वकीयं सुखस्पर्शं दक्षिणं हस्तं कृपया रक्षतु येन अस्माकमिन्द्रियाणि गोधनानि सदैव संरक्षितानि सुरक्षितानि जायेरन् । पुनश्च नो ऽस्माकम् नष्टम् अदर्शनं गतं गोधनम् आजतु आगम यतु ।

टिप्पणी—दधातु—धा—लोट् । आजतु—आ + अज—लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—पोषणकारी पूषा देव हमारे गोधन की रक्षा के लिये 'परस्तात्' दूर देश में भी अवस्थित (हमारे गोधन पर) अपने सुखकारी हाथ को (दाहिने हाथ को) बढ़ाये रक्खें । हमारी (नष्टम्) तिरोहित गायें पुनः (आजतु) हमको प्राप्त हों ।

मण्डल ७

आपः सूक्तम्

सूक्त ४६

ऋषि—वसिष्ठ छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१—

समुद्र ज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्

पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।

इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद

ता आपो देवी रिह मामवन्तु ॥१॥

पद-पाठः—समुद्र ऽ ज्येष्ठाः । सलिलस्य । मध्यात् । पुनानाः । यन्ति ।

ति ऽ विशमानाः । इन्द्रः । याः । वज्री । वृषभः रराद । ताः । आपः । देवीः ।

। माम् । अवन्तु ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—'पुनानाः' विश्वं पवित्रयित्र्यः इमा आपः समुद्र एव ज्येष्ठः ...नां ताः खलु सलिलस्य मध्यात् अस्य अन्तरिक्षस्य मध्यात् अनिविशमानाः विश्रामं ...व निरन्तरं प्रवाहोपेताः यन्ति गतिशीलाः दृश्यन्ते । यासां मार्गान् वज्री वज्र-...ः इन्द्र एव रराद विरदति विलिखति । ताः आपो देव्यः अस्मान् सदैव अवन्तु ...था तर्पयन्तु ।

टिप्पणी—समुद्र ज्येष्ठाः—समुद्र एव ज्येष्ठः प्रशस्तो यासां ता आपः । ...द—'रद विलेखने' लिट् ।

मैक्डानल ने—सलिल का अर्थ सागर तथा अवन्तु का अर्थ 'सहायता करें' ...या है ।

हिन्दी-व्याख्या—'अनिविशमानाः' बिना विश्राम किये ही जो निरन्तर ...सलिलस्य मध्यात्' अन्तरिक्ष के मध्य से होकर समस्त वातावरण का 'पुनानाः' ...त्र करती हुई 'आपो देवीः' जलाभिमानिनी देवियां 'यन्ति' गतिशील हैं। ...का प्राप्तव्य लक्ष्य केवल समुद्र है क्योंकि समुद्र को ही ये प्रशस्त मानती हैं। ...मुद्र ज्येष्ठाः)। 'वृषभः वज्री' वज्रधारी जलवर्षक इन्द्र ने ही 'रदाद' खुरच-...कर जिनके लिए मार्ग-निर्माण किया है। वह जलाभिमानिनी देवियां सदा ...रा कल्याण करती रहें।

२—

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति

खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।

समुद्रार्था याः शुचयः पावका—

स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

पद-पाठः—याः । आपः दिव्याः । उत । वा । स्रवन्ति । खनित्रिमाः । उत । वा । याः । स्वयम् ऽ जाः । समुद्र ऽ अर्थाः । याः । शुचयः । पावकाः । ताः । आपः । देवीः । इह । माम् । अवन्तु ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—या आपः दिव्याः अन्तरिक्ष प्रभवाः उत वा स्रवन्ति नदीस्रोतानां निर्झरिणीरूपेण अधस्तात् प्रवहन्ति या श्च आपः खनित्रिमाः खननसाधनेन प्राप्ताः (कूपदीर्घिकारूपेणावस्थिताः) अपि च याः स्वयंजाः स्वत एव हि प्रादुर्भूताः। ताः सर्वा एव आपः समुद्रार्थाः समुद्र एव अर्थो यासां लक्ष्यभूतः । याः आपः शुचयः रागद्वेषरहिता दीप्ताश्च । याः पावकाः पवित्रयित्र्यः । ताः सर्वा एव जलदेव्योऽस्मान् प्रीणयन्तु ।

टिप्पणी—दिव्याः—दिविभवाः ।

मैक्डानल ने शुचयः का अर्थ स्वच्छ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जो जलधारायें 'दिव्याः' अन्तरिक्ष से उत्पन्न होती हैं अथवा जो 'स्रवन्ति' नदी, स्रोत, झरना आदि के रूप में बहती हैं । जो 'खनित्रिमाः' खनन साधन से कूप-बावड़ी आदि रूप में हमें प्राप्त हैं अथवा जो 'स्वयंजाः' स्वतः ही पर्वत आदि से प्रकट होकर समतल की ओर आती हैं । जो 'शुचयः पावकाः' स्वच्छ, शुद्ध, दीप्त तथा पवित्र करने वाली हैं । जिनका गमन-लक्ष्य एकमात्र समुद्र है क्योंकि समुद्रार्थ ही इनका सारा प्रयास है; वह जल-देवियां हमें सदा प्रसन्न, तृप्त और प्रगतिशील बनायें ।

३—

यासां राजा वरुणो याति मध्ये

सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।

मधुश्चुतः शुचयो या पावका—

स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

पद-पाठः—यासाम् । राजा । वरुणः । याति । मध्ये । सत्यानृते इति ।

अव ऽ पश्यन् । जनानाम् । मधुः ऽ श्चुतः । शुचयः । याः । पावकाः । ताः । आपः ।

देवीः । इह । माम् । अवन्तु ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—जनानां सत्यानृते सत्यम् असत्यं च पश्यन् यासां जल-देवतानां मध्येऽवस्थितो वरुणो राजा याति स्वसान्निध्यं प्रकटयति । या आपः मधुश्चुतः मधु क्षरन्त्यः शुचयः पावकाः ता आपः अस्मान् सदैव शोधयन्तु ।

टिप्पणी—वरुणः—जलाभिमानी देवः । शुचयः—रागद्वेषविवर्जिताः ।
मैक्डानल ने 'मधुश्चुतः' का अर्थ माधुर्य को टपकाने वाली तथा 'देवीः' का अर्थ देवतास्वरूप किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—मानवों के सत्य-असत्य कर्मों के साक्षात् साक्षी वरुण भगवान् जिन जलदेवियों का सहारा लेकर अवस्थित होते हैं । जो 'मधुश्चुतः' निरन्तर माधुर्य का ही सम्पादन करती हैं । जो शुची और पवित्र हैं, वे जल-धारायें सदा हमें प्रसन्न और पूजित बनायें ।

४—

यासु राजा वरुणो यासु सोमो

विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।

वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्ट—

स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥

पद-पाठः—यासु । राजा । वरुणः यासु । सोमः । विश्वे । देवाः । यासु ।

ऊर्जम् । मदन्ति । वैश्वानरः । यासु । अग्निः । प्र ऽ विष्टः । ताः । आपः । देवीः ।

इह । माम् । अवन्तु ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—यासु अप्सु वरुणो राजा राजते, यासु सोमो राजा महिमा प्रकाशयति, यासु अप्सु मध्ये विश्वे सर्वे देवा ऊर्जं मदन्ति अनुकूलं हविः प्राप्य सानन्दास्तिष्ठन्ति । यासु अप्सु विश्वेनरा यस्य तादृशः समस्ताग्रगामी देवोऽग्निः स्वप्रभावं प्रकटयन् प्रतिष्ठां लभते ता आपो देव्यः अस्मान् सुखयन्तु ।

टिप्पणी—राजा—'राजृ दीप्तौ' । सोमः—उमया सहितो महेश्वरः । ऊर्जम्—अन्नम् । वैश्वानरः—विश्वेनरा यस्य असौ विश्वानरः, विश्वानर एव वैश्वानरः ।

मैक्डानल ने 'ऊर्ज मदन्ति' का अर्थ 'शक्ति प्राप्त करते हैं' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—जिन जल देवियों के मध्य में वरुण देवता शोभायमान होते हैं, जिनमें अवस्थित होकर सोम देवता अपने महात्म्य का प्रकाशन करते हैं, जिनका सहारा प्राप्त करके सभी देवगण अनुकूल हविष्य प्राप्त होने के कारण सानन्द रहते हैं, जिनके अवलम्बन से वैश्वानर (विश्व का कल्याण करने वाले) अग्नि अपने प्रभाव को प्रकट करके प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं वह जलाभिमानिनी शक्ति हमें सदा सन्तुष्ट रक्खें ।

मण्डल ७

वास्तोष्पति-सूक्तम्

सूक्तम् ५४

ऋषिः—वसिष्ठः देवता—वास्तोष्पतिः छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१—

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्

स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

य त्वेमहे प्रति तन्नो जषस्व

शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

पद-पाठः—वास्तोः । पते । प्रति । जानीहि । अस्मान् । सु ऽ आवेशः

...अनमीवः । भव । नः । यत् । त्वा । ईमहे । प्रति । तत् । नः । जुषस्व । शम् ।

...। भव । द्वि ऽ पदे । शम् । चतुः ऽ पदे ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! गृहस्य स्वामिन् ! वयं त्वदीया इति ...स्मान् प्रतिजानीहि इत्यात्मना स्वीकुरुष्व । त्वं स्वावेशः सुन्दरगृहावासकृत् ...अनमीवः रोगनिवारकश्च नः अस्माकं भव । 'यत् त्वा ईमहे' यद् धनमभिलक्ष्य ...नाम् ईमहे याचामहे 'तद् नः प्रति जुषस्व' तद् धनम् नोऽस्मभ्यं प्रति जुषस्व ...या ददस्व । तथा च 'नः' अस्माक 'द्विपदे' पुत्रपौत्रादिगणाय 'क्षम् अमीवा' सुखप्रदो ...। 'चतुष्पदे च शं भव' गवाश्वादिपशुसमूहाय च सुखकरो भव ।

टिप्पणी—स्वावेशः—शोभन आवेश यस्मादिति बहुव्रीहिः । अनमीवः— ...तद्राहित्यं यत्र । द्विपदे—'पाद' शब्दस्य पदादेशः । बहुव्रीहिश्च वास्तोष्पते— ...धातोः तुण्, वसतु + पति । विभक्ते लुंगभावः । 'षष्ठयाः पति पुत्र०' इति, ...र्गस्य सकारः ।

(२) ग्रासमान ने 'स्वावेश' का अर्थ 'शुभ-प्रवेश' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वास्योष्पते ! गृह के देवता ! 'हम आपके ही सदा बने ...'अस्मान् प्रतिजानीहि' ऐसी कृपा और स्वीकृति आपकी बनी रहे । आप हमारे ...'स्वावेशः अनमीवः भव नः' सदा सुन्दर-गृहप्रदाता तथा नीरोग बनाये रखें । ...त्वा ईमहे' जिस कामना को लेकर हम आपसे याचना करें, 'तत् नो जुषस्व' ...करके हमारी उस अभिलाषा को पूर्ण कीजिये । 'शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे' ...रे द्विपद (पुत्र-पौत्रादि) तथा चतुष्पद (गाय, अश्व आदि) के लिए आप सदा ...याण-प्रद बने रहें ।

२—

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि

गयस्फानो गोभिरश्वेभिरन्दो ।

अजरासस्ते सख्ये स्याम

पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥२॥

पद-पाठः—वास्तोः । पते । प्र ऽ तरणः । नः । एधि । गय ऽ स्फान

गोभिः । अश्वेभिः । इन्दो इति । अजरासः । ते सख्ये । स्याम । पिता ऽ इव

पुत्रान् । प्रति । नः । जुषस्व ।।२।।

संस्कृत-व्याख्या—हे वस्तोष्पते ! गृहपालक ! नः अस्माकं प्रतरणः उद्धारकः प्रवर्धको भव । एधि । गयस्फान श्च एधि । अस्माकं धनानां वृद्धिकृद् भव । इन्दो ! परमैश्वर्यवन् ! आनन्दप्रद ! त्वया ऽ नुगृहीता वयं गोभिः अश्वैः सहिताः 'सख्ये ते' त्वदी ये मैत्रीभावे 'अजरासः' वृद्धत्वरहिताः 'स्याम' भवेम । 'पिता इव' यथा पिता सदैव रक्षकत्वेनोपस्थितः पुत्रान् पालयति तथा त्वम् 'पुत्रान् प्रति नो जुषस्व' अस्मान् प्रति जुषस्व सेवस्व । तवाश्रये वयं वर्धेमहि ।

टिप्पणी—गयस्फानः—गयशब्दो धनवाचकः गृहापत्ययोरपि इति निघण्टौ । गयपूर्वस्य स्फायी + ल्युट् । यकारलोप श्छान्दसः । अजरासः—अजराः, जरा- रहिताः । इन्दुः—इन्दुशब्दः चन्द्रवाची, आह्लादकत्वात्; स च रात्रिप्रहरी । तथैव वास्तोष्पतिरपि ।

(२) राथ और पटोर्सन 'इन्दु' को रात का पहरेदार मानते हैं । हमारा 'वास्तोष्पति' भी प्रहरी ही है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! आप 'प्रतरणः नः एधि' ! हमारे लिए उद्धारकर्ता तथा 'गयस्फानः' धनप्रवर्धनकारी बने जिससे सदा सम्पन्न होकर हम सानन्द रहें । हे इन्द्रो ! आप हमारे पहरेदार हैं अतः हमारी गायों और अश्वों के लिए भी आप सदा कल्याणकारी बने रहें । हम सब भी 'अजरासः ते सख्ये स्याम' निरन्तर वृद्धत्वररित होकर आपकी मैत्री-भावना में स्थिर रहें और आप भी कृपा करके पिता के तुल्य ही हम पुत्रों की 'पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व' सदैव प्रीति और विश्वास से रक्षा करते रहें ।

३—

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते

सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो—

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पद-पाठ—वास्तोः । पते । शग्मया । सं ऽ सदा । ते । सक्षीमहि । रण्वया । गातु ऽ मत्या । पाहि । क्षेमे । उत । योगे । वरम् । नः । यूयम् । पात । स्वस्ति ऽ भिः । सदा । नः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! गृहस्य पालयितः ! देव ! 'रण्वया गातुमत्या शग्मया संसदा ते वयं सक्षीमहि' तव रण्वया रमणीयया गातुमत्या गति-मत्या धनवत्या शग्मया शान्तिकर्या संसदा वयं सक्षीमहि सदैव संगता भवेम । अपि च 'योगे' अप्राप्तस्य लाभाय 'क्षेमे च' प्राप्तस्य रक्षणे च 'वरम्' अस्मदीयं वरणीयं धनं पाहि सदैव रक्ष । 'यूयं पात स्वस्तिभिः सदाः नः' हे वास्तोष्पते ! यूयं सदा नो ऽ स्मान् स्वस्तिभिः कल्याणसाधनैः पात रक्ष । वयमपि श्रद्धया सेवेमहि ।

टिप्पणी—शग्मया—शम्पूर्वस्य गम्धातोः कः प्रत्ययः । उपधालोपः । शमः मकारलोपः छान्दसः । सक्षीमहि—'षच् समवाये' लिङ् (सीयुट्) उत्तमपुरुष बहुवचने ।

(२) लुड्विग ने क्षेम और योग का अर्थ 'विश्राम के समय में तथा कार्य के समय में' किया है । पर सायण कृत अर्थ जो ऊपर लिखा गया है, उपयुक्त है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! हमारे घरों के पालक आप कृपा करके हमें ऐसे बनायें जिससे कि हम आपकी गतिशील, शान्तिदायक, सम्पन्न और रमणीय संसद् के साथ 'सक्षीमहि' सदा संगत रहें । 'योगे' अप्राप्त की प्राप्ति तथा 'क्षेमे' प्राप्त की रक्षा में हमारे प्रीतिकारी ऐश्वर्य (वरम्) की 'पाहि' आप सदा रक्षा करें । 'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः' आप सदैव अपने कल्याण-साधनों से हमारी रक्षा करते रहें । हम भी श्रद्धा से आपकी सेवा करते रहें ।

मण्डल ७

77.

वरुण-सूक्तम्

सूक्त ८६

ऋषि:—वसिष्ठ, देवता—वरुण, छन्द—त्रिष्टुप्।

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि

वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।

प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं

द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥१॥

पद-पाठ—धीरा। तु। अस्य महिना। जनूंषि। वि। यः। तस्तम्भ। रोदसी

इति। चित्। उर्वी इति। प्र। नाकम्। ऋष्वम्। नुनुदे। बृहन्तम्। द्विता।

नक्षत्रम्। पप्रथत्। च भूम ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य वरुणस्य नहिना महिम्ना जनूंषि प्राणिनां जन्मानि धीरा धीराणि स्थिराणि भवन्ति। यः उर्वी रोदसी चिद् वितस्तम्भ द्यावापृथिव्यौ खल्वपि दृढे स्वकीये स्थाने विस्तीर्णे स्वस्थे चाकरोत्। यश्च ऋष्वं महान्तं नाकमादित्यं दर्शनीयं प्रनुनुदे प्रेरयति। नक्षत्रमण्डलं च रात्रौ सूर्यं च दिवसे प्रेरयति—इति प्रकारद्वयम्। यश्च वरुणः भूम भूमिं पप्रथत् अप्रथयत् विस्तारितवान्।

टिप्पणी—तस्तम्भ—स्तम्भ्—लिट्। नुनुदे—णुद—प्रेरणे—लिट्। पप्रथत्—पृथु विस्तारे—लुङ्, वैदिक प्रयोगः।

ऋष्वम्—ऋषी गतौ, वप्रत्ययः। ऋष्वम्—दर्शनीयम्। विशालम्।

मैक्डानल ने धीरा का अर्थ बुद्धिमान्, महिना का अर्थ शक्ति, ऋष्वम् का अर्थ ऊँचा और बृहन्तम् का अर्थ विशाल किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(अस्य वरुणस्य महिना) इसी वरुण के माहात्म्य से (जनूंषि धीरा भवन्ति) प्राणियों के जन्म-जन्मान्तर सुधरते-बनते और स्थिर होते हैं। (यः तस्तम्भ रोदसी चित् उर्वी) जिस वरुण देवता ने विशाल द्युलोक एवं पृथ्वी लोक को अपनी व्यवस्था में धारण किया है। (यः वरुणः नाकं बृहन्तम् ऋष्वं प्रनुनुदे) जो वरुण देवता प्रतिदिन दिवस में प्रकाश और आनंद उत्पन्न करने के लिए सूर्य भगवान् को अत्यन्त दर्शनीय रूप से प्रेरित किया है तथा दूसरे प्रकार से रात्रि में दमक-कान्ति प्राप्त करने के लिए नक्षत्र-मण्डल को नियन्त्रित किया है। ऐसे विशाल एवं महान् वरुण के प्रति मैं अपना नमन प्रस्तुत करता हूं। यह व्यंग्य है।

२—

उत स्वया तन्वाऽसं वदे तत्

कदा नव१न्त वरुणे भुवानि

किं मे हव्यमहृणानो जुषेत

कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम् ॥२॥

पद-पाठः—उत। स्वया। तन्वा। सम्। वदे। तत्। कदा। नु। अन्तः। वरुणे। भुवानि। किम्। मे। हव्यम्। अहृणानः। जुषेत। कदा। मृडीकम्। सुऽमनाः। अभि। ख्यम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(उत स्वया तन्वा संवदे) अहं स्वयमेव स्वकीयया तन्वा शरीरेण आत्मैव आत्मना सह संवदे पृच्छामि (कदा नु वरुणे अन्तः भुवानि) कः कालः स भविष्यति यदा वरुणेन सहान्तरं गता मे भविष्यति? कदाऽन्तर्मग्नः सन् वरुणस्य आनन्दं प्राप्स्यामि? (हव्यं मे किम् अहृणानः जुषेत) किमसौ मदीयमाह्वानं हव्यं च संकोचरहितः सन् स्वीकारिष्यति प्रीतिपूर्वकं सेविष्यते? (कदा सुमनाः तं मृडीकं वरुणम् अभि ख्यम्) कस्मिश्चानन्दमये समये तं सुखस्वरूपं सानन्दः सन् अभि ख्यम् अभि पश्येयम्?

टिप्पणी—सुमनाः—शोभनमनस्कः । मृडीकम्—सुखयितारम् । अहृणानः—हृणीङ् शानच्, ई लोपः । नञ् । हव्यम्—स्तोत्रम्, हविः । भुवानि—भवानि। लोट् । ख्यम्—चक्ष—ख्या—लुङ् छान्दसः प्रयोगः ।

हिन्दी-व्याख्या—(उत स्वया तन्वा संवदे तत्) मैं स्वयं अपने ही आप पूछता हूं (कदा नु अन्त र्वरुणे भुवानि) कब वह आनन्ददायक समय आयेगा जबकि मैं अपने आपको तरुण देवता में अन्तर्मग्न कर दूंगा । (किं मे हव्यम् अहृणानः जुषेत) वरुण देवता कब मेरे हवि-पदार्थ को और मेरी स्तुतियों को संकोच रहित होकर प्रीति से श्रवण करेंगे । (कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्) कब वह मंगलप्रद समय आयेगा जबकि मैं उस सुखदाता को प्रसन्नता के साथ देखूंगा ?

३—

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षू—

पो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।

'समानमिन्मे कवय श्चिदाहु-

रयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ।।३।।

पद-पाठः—पृच्छे । तत् । एनः । वरुण । दिदृक्षु । उपो इति । एमि । चिकितुषः । वि ऽ पृच्छम् । समानम् । इत् । मे । कवयः । चित् । आहुः । अयम् । ह । तुभ्यम् । वरुणः । हृणीते ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—(दिदृक्षु अहं हे वरुण ! तद् एनः पृच्छे । दर्शनाभिलाषी खल्वहं हे वरुण ! तदेनः पापकं पृच्छामि येन हेतुनाहं न ते दर्शनं प्राप्नोमि। (चिकितुषः उपो एमि) अस्मिन् विषये ये ये वृद्धा विद्वांसः सन्ति तानपि (वि पृच्छम्) विविधान् प्रश्नान् प्रष्टुमुपागाम् । (ते कवयः चित् समानम् इत् उत्तरं मे आहुः) ते सर्वे क्रान्तदर्शना अस्मिन् विषये एकमतयः । एकरूपमेव एतेषामुत्तरम्—(हे स्तोतः तुभ्यम् अयं ह वरुणः हृणीते) कोपकारणात् अयं वरुणः त्वाम् अभिक्रुध्यति । उपेक्षाभावं गतः ।

टिप्पणी—दिदृक्षु—दृश—सन्—उः । सुलोपश्छान्दसः । चिकितुषः—कित + क्वसु । द्वित्वमभ्यासकार्यं च । द्वितीया बहुवचने । हृणीते—हृणीङ् लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वरुण ! दर्शन की लालसा लेकर मैं आपसे ही अपने उस पाप को पूछता हूं जिसके कि कारण आपका दर्शन मुझे दुष्प्राप्य हो गया है। (चिकितुषः उपो एमि) इस बारे में बड़े-बड़े वृद्ध-सिद्ध-आचार्यों तक मैं गया हूं और उनसे भी उपेक्षा के बारे में नाना प्रकार से प्रश्न किये हैं। उन सभी महानुभावों का एक जैसा ही उत्तर है—'वरुण देवता तुम्हारे प्रति अवश्य कुपित हैं।'

४— किमाग आस वरुण ज्येष्ठं

यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम्।

प्र तन्मे वोचो दूलभ स्वधावो—

ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

पद-पाठः—किम्। आगः। आस। वरुण। ज्येष्ठम्। यत्। स्तोतारम्। जिघांससि। सखायम्। प्र। तत्। मे। वोचः। दुःऽदभ। स्वधाऽवः। अव। त्वा। अनेनाः। नमसा। तुरः। इयाम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण ! किं मे ज्येष्ठम् आगः आसः अपराधोऽस्ति। यत् येन सखायं स्तोतारमपि जिघांससि हन्तुमुद्यतोऽसि। दुर्दभ अन्यैर्बाधितुमशक्य ! स्वधावन् ! (प्र तन्मे वोचः) तम् अपराधं मह्यं ब्रूहि ये तस्य प्रायश्चित्तं कृत्वा यथाशक्ति अनेनाः स्याम् निरपराधो भवेयम्। त्वां च निष्पापः सन् त्वरया शीघ्रमेव इयाम् उपगच्छेयम्।

टिप्पणी—आगः=पापम्। दूलभ=दुर्दभ=शत्रुभिरधृष्य। स्वधावः स्वधावन्=तेजस्विन्। अनेनाः=एनसा रहितः। निष्पापः।

(२) मैक्डानल ने ज्येष्ठ का अर्थ 'प्रमुख', दूलभ का अर्थ 'जिसे ठगा न जा सके, स्वधावः का अर्थ 'आत्म-निर्भर' और नमसा का अर्थ 'पूजा के द्वारा' किया है।

हिन्दी व्याख्या—(वरुण किम् ज्येष्ठम् आग आस) वह कौन-सा भयंकर अपराध था जिसके कारण हे वरुण ! आप अपने (सखायं स्तोतारम्) सखा एवं

स्तोता को भी (जिघांससि) मार डालना चाहते हैं। (स्वधावः दूडभ) हे महान् शक्ति-सम्पन्न (बाधा रहित) (दुर्दमनीय) (प्र तन्ये वोचः) आप कृपा करके बतलायें जिससे कि मैं (अनेनाः) पाप रहित होकर (नमसा) अपनी नम्रता एवं सत्यशीलता से (त्वा तुर इयाम्) आपके सन्निकट पहुंच जाऊँ।

५- अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नो

ऽव या वयं चकृमा तनूभिः।

अव राजन् पशुतृपं न तायुं

सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥५॥

पद-पाठः—अव। द्रुग्धानि। पित्र्या। सृज। नः। अव। या। वयम्। चकृम। तनूभिः। अव। राजन्। पशु ऽ तृपम्। न तायुम्। सृज। वत्सम्। न। दाम्नः। वसिष्ठम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्याः—हे वरुण! (प्रित्र्या नो द्रुग्धानि अव सृज) अस्माकं पितृतः परम्परया प्राप्तानि द्रुग्धानि बन्धनहेतवः द्रोहान् अवसृज अस्मतः विश्लेषय। (या वयं चकृम तनूभिः) तान्यपि बन्धनानि दूरी कुरु यानि वयं द्रोहजातानि स्वशरीरैः चकृम कृतवन्तः। (राजन्! पशुतृपं न तायुम्) हे राजन् वरुण! पशूनां तर्पयितारं तायुम् इव चौरम् इव कृतप्रायश्चितं (स यथा प्रायश्चितं कृत्वा घासादिना पशूंस्तर्पयति न पुनश्चौरादिकं करोति तथा (वत्सं न दाम्नः) दाम्नः रज्जुबद्धं वत्सम् इव (वसिष्ठम् मां बन्धनात् विमुञ्च।

टिप्पणीः—पित्र्या—पित्र्याणि पितृत आगतानि। यत्प्रत्ययः। छान्दसं रूपम्। द्रुग्धानि—द्रुह + क्त। चकृम — कृ + लिट्। वसिष्ठ = वसु + इष्ठन्। प्राणो वै वसिष्ठः। तनूभिः—परम्पराभिः शरीरयात्राभिः। स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरैर्वा। क्रियाचिन्तनसंस्काररूपाभिः तनूभिः। दाम्नः—रज्जोः।

(२) मैकडानल ने पशुतृप् का अर्थ 'पशुओं को चुराने वाला' चोर किया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे वरुण ! (पित्र्या द्रुग्धानि नो अवसृज) पितृ—परम्पराओं से प्राप्त हमारे द्रोहात्मक बन्धनों को आप शिथिल कर दें। (या वयं चकृमा तनूभि तान्यपि अवसृज) और भय-भ्रम से जो कुछ अनर्थ हमारे शरीरों से हो गया है, उस पाप-बन्धन से भी हमें छुटकारा दीजिये। (राजन् पशुतृपं न तायुम्) जिस प्रकार प्रायश्चित्त आदि का अनुष्ठान करके बन्धन-मुक्त चोर मानव-समाज में प्रेम और विश्वास का पात्र बन जाता है उसी प्रकार मुझे भी बन्धनों से छुटकारा देकर एक अवसर दे दीजिये ताकि मैं भी (दाम्नः वत्सम् इव वसिष्ठम) रस्सी से बंधे बछड़े के समान मुक्त होकर वसिष्ठ बन जाऊँ। आपका कृपापात्र वसिष्ठ बनूं।

६—

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा

सुरा मन्यु र्विभीदको अचित्तिः।

अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे

स्वप्न श्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥

पद-पाठः—न। सः। स्वः। दक्षः। वरुण। ध्रुतिः। सा। सुरा। मन्युः। वि ऽ भीदकः। अचित्तिः। अस्ति। ज्यायान्। कनीयसः। उप ऽ अरे। स्वप्नः। चन। इत्। अनृतस्य। प्र ऽ योता।

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण ! अस्मिन् पाप प्रवृत्तिविषये कारणं (न स स्वः दक्षः) पुरुषस्य स्वो दक्षः नास्ति। न खलु मानवः स्वकीयेनैव दुःसाहसेन पापकर्मणि प्रवृत्ति लभतेऽपितु (ध्रुतिः सा) उत्पत्तिसमय एव निर्मिता स्थिरा दैवगतिः अत्र कारणम्। येन मानवः प्रमादकारिणीं सुरां सेवते, गुरुन् प्रति क्रोधं वा विस्तारयति, अनर्थहेतुं विभीदकं द्यूतसाधनं वाऽङ्गीकरोति, अचित्ति र्वा ऽ ज्ञानम्। अत एव ईदृशी देवरचना एव व्यामोहे पातयन्ती पुरुषान् पापप्रवृत्तौ प्रेरयति। अथापि च (अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे) उपागते समीपे ज्यायान् एत्राधिकः समर्थः प्रभुः येन कनीयान् हीनः पुरुषः पापप्रवृत्तौ रमते। (स्वप्न श्चन इत् अनृतस्य प्रयोता) स्वप्नोऽपि

पापस्य कर्मणि प्रयोता मिश्रयिता भवति । अतः ममापराधें नाहमेवापि दैवगतिरपि कारणम् । क्षन्तव्योऽहम् इति प्रार्थना ।

टिप्पणी—ध्रुतिः—ध्रु + क्तिन् । अचित्तिः—चित् + क्तिन् । नञ् । कनीयसः—युवन् या अल्प + ईयसुन् (कनादेशः) । ज्यायान् = प्रशस्य + ईयसुन् । ज्यादेशः । प्रयोता—प्र + यु + तृच् ।

हिन्दी व्याख्या—(न स स्वः दक्षः) हे वरुण ! पापकर्म में प्रवृत्त करने वाला हमारा अपना ही दुःसाहस कारण नहीं है अपितु (ध्रुतिः सा) उत्पत्ति के समय ही देवगति का स्थिर-विधान भी कारण है । मदिरा (सुरा मन्युः विभीदको अचित्तिः) क्रोध, जुए का पासा तथा अज्ञान आदि भी सहज ही में साहसिक कारण बने । छोटे के अपराध पर उपालम्भ भी तो बड़े को ही मिलता है अतः (अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे) छोटे के निकट यदि बड़ा है तो छोटे की प्रवृत्ति बुरे कर्म में क्यों होती है? (स्वप्नश्चनेद् अनृतस्य प्रयोता) और आपका ही दिया हुआ यह स्वप्न है जिसके कि कारण मनुष्य की अधर्म में प्रवृत्ति होती है । अतः हे वरुण ! मेरे अज्ञान और प्रमाद का नाश कीजिये और मुझको अपनी शरण में लेकर कृतार्थ कीजिये ।

७—

अरं दासो न मीढुषे कराण्य—

—हं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।

अचेतयदचितो देवो अर्यो

गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥७॥

पद-पाठः—अरम् । दासः । न । मीढुषे । कराणि । अहम् । देवाय । भूर्णये । अनागाः अचेतयत् । अचितः । देवः । अर्यः । गृत्सम् । राये । कविऽतरः । जुनाति ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(अहम् अनागाः सन्) पाप हितो भूत्वाऽहम् (मीढुषे भूर्णये देवाय) सेक्त्रे कामानां पूरकाय देवाय जगतो भर्त्रे स्वामिने वरुणाय (अरं कराणि) पर्याप्तं परिचरणं करवाणि (दासो न) सेवक इव । यथा निष्ठावान् सेवकः सम्यक्

परिचर्या करोति तथाऽहमपि (स च देवः अचितः अचेतयत्) स चायं स्वामी अचितः अविवेकिनः अचेतयत् प्रज्ञापयतु प्रचेतयतु (गृत्सं च कवितरः राये जुनाति) अयं च अर्यः स्वामी क्रान्तदर्शी देवः स्तोतारं राये धनप्राप्त्यर्थं जुनाति प्रेरयतु ।

टिप्पणी—भूर्णये—भृ धातोः क्तिन् । उरादेशः, रपरत्वं दीर्घत्वं णत्वम् । मीढुषे=सींचने वाले । अनागाः=अपापः । अर्यः=स्वामी । गृत्सम्=स्तोतारम् । राये=धनाय ।

(२) मैक्डानल ने भूर्णये का अर्थ 'क्रुद्ध' और गृत्सम् का अर्थ 'अनुभवी व्यक्ति' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(मीढुषे भूर्णये देवाय) कामनाओं की तृप्ति-पूर्ति करने वाले, जगत् का भरण-पोषण करने वाले वरुण देव के लिए (अनागा अहम् अरं कराणि) मैं निष्पाप होकर निरन्तर परिचर्या करता रहूं । (दास इव) भृत्य के समान सदा निष्ठावान् रहूँ । (अर्यो देवो ऽ चितोऽचेतयत्) वह स्वामी वरुण सदा हम अज्ञानी पुरुषों को शुभकर्मों की ओर चैतंन्य करते रहें (गृत्सं राये कवितरो जुनाति) और स्तुति करने वाले निष्पाप लोगों को वाह्य और अन्तराल की विभूतियों से सम्पन्न करें ।

८–

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो—

हृदि स्तोम उपश्रित श्चिदस्तु ।

शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।८।।

पद-पाठः—अयम् । सु । तुभ्यम् । वरुण । स्वधा ऽ वः । हृदि । स्तोमः । उप ऽ श्रितः । चित् । अस्तु । शम् । नः क्षेमे । शम् । ऊँ इति । योगे । नः । अस्तु । यूयम् । पात । स्वस्ति ऽ भिः । सदाः । नः ।।८।।

संस्कृत-व्याख्या—हे (स्वधावः ! वरुण) अन्नदातृतम वरण ! (अयं स्तोमः चित् हृदि उपश्रितः अस्तु) अयम् अस्माभिः क्रियमाणः स्तुतिसमूह स्तव हृदि हृदये

सुष्ठु उपश्रितः उपागतो भवतु । 'शन्नः क्षेमे शमु योगे नो ऽस्तु) अप्राप्तस्य प्राप्ति विषये प्राप्तस्य रक्षाविषये चोपद्रवाणां सदा शमनमस्तु । (यूयम्) हे वरुणादयो देवाः यूयं नोऽस्मान् सदैव स्वस्तिभिः स्वकल्याणैः पात रक्षत ।

टिप्पणी—योगः=अप्राप्तस्य प्राप्तिः । क्षेमः—प्राप्तस्य रक्षणम् । स्वधा= अन्नम् । स्तोमः—स्तुतिसमूहः । उपश्रितः अस्तु=उपाश्रयं प्राप्नोतु । स्वधावः= स्वधावन् ।

२. मैक्डानल ने स्वधावः का अर्थ 'आत्म-निर्भर' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(हे स्वधावः वरुण !) हे अन्नों के धारण वरणीयतम वरुण ! (अयं स्तोमः हृदि उपश्रितः अस्तु) यह हमारी स्तुतियाँ आपके मंगलप्रद हृदय का स्पर्श करें । अप्राप्त की प्राप्ति के लिए तथा प्राप्त की रक्षा के लिए उत्पन्न विघ्नों का सदा शमन होता रहे और आप सभी देवता मिलकर हमारा कल्याण करते रहें ।

मण्डल–७

मण्डूक-सूक्तम्

सूक्त १०३

ऋषि—वसिष्ठः—देवता—मण्डूक—छन्दः—१—अनुष्टुप् शिष्टेषु त्रिष्टुप् ।

१–

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वाचं पर्जन्य जिन्वितां प्र मण्डूको अवादिषुः ॥१॥

पद-पाठः—संवत्सरम् । शशयानाः । ब्राह्मणाः । व्रत ऽ चारिणः । वाचम् । पर्जन्य ऽ जिन्विताम् । प्र । मण्डूकाः । अवादिषुः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—व्रतचारिणः संवत्सरसत्रात्मकं व्रतमाचरन्तः ब्राह्मणा इव सरत्कालमारभ्य वर्षाकालं यावत् पूर्णं सम्वत्सरं शशयानाः शिथ्याना वर्षणार्कं तप आचरन्तः इव विले एवं विलसन्तः एते मण्डूकाः पर्जन्यजिन्वितां यथा वाचा पर्जन्यः प्रीतो भवति तां वाचं मण्डूका अवादिषुः प्रवदन्ति ।

टिप्पणी—व्रतचारिणः—व्रत + चर + णिनि । शशयानाः शी + कानच् छन्दसि । जिन्वितम्—जिवि + इट् + क्त + टाप् । अवादिषुः—वद + लुङ् प्रथम पुरुषबहुवचने ।

(२) वर्षकामो वसिष्ठः पर्जन्यं तुष्टाव । तं मण्डूका अन्वमोदन्त । स मण्डूकान् दृष्ट्वा तथा विधांस्तुष्टाव ।

(३) मण्डूकाः–मण्ड एषामोकः, मज्जूका मज्जनात्, मदते र्वा मोदतिकर्मणः, मन्दते र्वा तृप्तिकर्मणः, मण्डयते रिति वा । निरुक्त ९–१ ।

हिन्दी व्याख्या—संवत्सर को सत्ररूप मानकर व्रत का आचरण करने वाले ब्राह्मणों के समान शरत् काल से लेकर वर्षा काल पर्यन्त पूरे वर्ष का मौनव्रत लेने वाले 'शशयाना' बिलों में मौन बैठने वाले (वर्षा के लिये तप का आचरण करने वाले) 'पर्जन्य जिन्वितां वाचम्' जिस वाणी से पर्जन्य (मेघ) सन्तुष्ट होता है, उस वाणी में प्रीति पूर्वक मण्डूक (अवादिषु) बोल रहे हैं ।

२–

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्

दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायु र्वत्सिनीनां

मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥२॥

पद-पाठः—दिव्याः । आपः । अभि । यत् । एनम् । आयन् । दृतिम् । न शुष्कम् । सरसी इति । शयानम् । गवाम् । अह । न । मायुः । वत्सिनीनाम् । मण्डूकानां वग्नुः । अत्र । सम् । एति ।

संस्कृत-व्याख्या—यत् यदा दिव्या आपो दिवि भवानि जलानि सरसी सरस्यां जलाभावात् शुष्कं शयानं शोषमुपगतम् एनं मण्डूकं प्रति आयन् अभिगच्छन्ति दृतिं न दृतिमिव शुष्कं नीरसं मण्डूक गणं प्रति यदा अभिगच्छन्ति तदा वत्सिनीनां गवां सवत्सानां धेनूनां भिव मायू रम्भाध्वनिरिव एषां मण्डूकानां वग्नुः शब्दः समेति

संगच्छते। यथा वत्सैः संगतानां गवां कलकलो जायते तथा वर्षति पर्जन्ये मण्डूकानां घोषो जायते।

टिप्पणी—सरसी—महत्सरः। गौरादिलक्षणेन ङीष्। सरस्याम्। सुपां सुलुगितिसप्तम्या लुक्। 'ईदूतौ च सप्तम्यर्थे' इति प्रगृह्य संज्ञा। वग्नुः—'वच परिभाषणे' नु प्रत्ययः। दिव्याः—दिवि भवाः। शयानम्—शी + शानच्। आयन्—इ + लङ् प्रथम पुरुष बहुवचने। वत्सिनीनाम्—वत्स + इनि + ङीप्। समेति—सम् + इ + लट्। प्रथमपुरुषैकवचने।

हिन्दी-व्याख्या—'यत्' जब 'एनम्' इस मण्डूक गण के प्रति 'दिव्या आपः अभि आयन्' दिव्य (आकाशीय) जलधारायें प्राप्त होती हैं तब 'सरसी शयानम्' सरोवर में सोते हुये 'दृतिं न शुष्कम्' मशक की भाँति शुष्क इन मण्डूकों की (मण्डूकानां वग्नु) ध्वनि (अत्रा समेति) इधर सभी ओर सुनायी पड़ने लगती है मानो (वत्सिनीनां गवाम्) सवत्सा (बछड़े वाली) गायों की (मायुः) महान् ध्वनि (घोष) उठ रही हो।

३— **यदीमेनां उशतो अभ्यवर्षीत्-**

तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।

अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो-

अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥३॥

पद-पाठः—यत्। ईम्। एनान्। उशतः। अभि। अवर्षीत्। तृष्याऽवतः। प्रावृषि। आऽगतायाम्। अख्खलीकृत्य। पितरम्। न। पुत्रः। अन्यः। अन्यम्। उप। वदन्तम्। एति।

संस्कृत-व्याख्या—'यत् ईम् एनान् उशतः तृष्यावतः' तृष्यावतः तृष्णावतः पिपासावतः उशतः कामयमामान् एनान् मण्डूकान् प्रति यदा 'प्रावृषि आगतायाम् अभ्यवर्षीत्' वर्षायाम् आगतायां पर्जन्य स्तुति तृप्तोऽभिवर्षति तदा 'अख्खलीकृत्य' अख्खल इति (अख्खा !) शब्दानुकरणं कृत्वा पितरं प्रति पुत्र इव अन्यो मण्डूकः इतरं वदन्तं मण्डूकं प्रति 'एति' प्राप्नोति।

टिप्पणी—उशतः—वश + शतृ, संप्रसारणम्, द्वितीया बहुवचने । तृष्यावतः-तृष् + क्यप् + टाप् + मतुप् । द्वितीया बहुवचने । अभ्यवर्षीत्—अभि + वृष—लुङ् । अख्खलीकृत्य—अख्खल + च्वि + कृ + लुक् (क्त्वो ल्यप्) । वदन्तम्—वद + शतृ ।

(२) मैक्डानल ने 'उशतः' का अर्थ 'उत्सुक' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'तृष्यावतः' तृष्णा (प्यास) से तड़पते हुए 'उशतः' जल की कामना के लिये विकल 'यत् ईम् एनान्' जब इन मण्डूकों के प्रति 'प्रावृषि आगताम्' वर्षा काल के आने पर 'अभ्यवर्षीत्' स्तुतियों से तृप्त पर्जन्य इन पर वर्षा करता है तब 'अख्खलीकृत्य' हर्ष से फूले न समाते हुए 'अख्खल, अख्खा' करके खिलखिलाकर प्रसन्न होते हुये 'पितरं न पुत्रः' पिता के प्रति पुत्र के समान 'अन्यो अन्यम् उपवदन्तम्' बोलने वाले के पास दूसरा 'एति' पहुंच ही जाता है ।

४—

अन्यो अन्यमनुगृभ्णात्येनो-

रपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।

मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्

पृश्निः संपृंक्ते हरितेन वाचम् ॥४॥

पद-पाठः—अन्यः । अन्यम् । अनु । गृभ्णाति । एनोः । अपाम् । प्र ऽ सर्गे । यत् । अमन्दिषाताम् । मण्डूकः । यत् । अभि ऽ वृष्टः । कनिस्कन् । पृश्निः । सुम् ऽ पृङ्क्ते । हरितेन । वाचम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—'अपां प्रसर्गे' उदकानां प्रसर्जने वर्षणे सति 'यत्' यदा 'अमन्दिषाताम्' एतौ द्वौ मण्डूकौ हृष्टौ अभूताम् । तदा 'अन्यो अन्यम् एनोः अनुगृभ्णाति' एको मण्डूकोऽन्यं मण्डूकं प्रति अनुगम्य गृभ्णातीव अनुग्रहमिव करोति । कदा ? 'यत् अभिवृष्टः मण्डूकः' यदा पर्जन्येन अभिषिक्त एको मण्डूकः कनिष्कन् उत्प्लवं कुर्वन् (प्लुति-प्रदर्शयन्) 'पृश्निः' पृश्निवर्णो मण्डूकः 'हरितेन' हरितवर्णेन अन्येन सह 'वाचं संपृंक्ते' स्वकीयां वाचं संयोजयति । तावुभावपि समानं शब्दं कुरुतः, अत एव परस्परमनुग्रहमिव कुरुतः ।

टिप्पणी—अमन्दिषाताम्—'मदी हर्षे' लुङ् प्रथमपुरुषद्विवचने । गृभ्णाति
गृह्णाति—ग्रह—लट् । अभिवृष्टः—अभि + वृष + क्त । कनिष्कन्—स्कन्द यङ् लुक्
शतृ । संपृंक्ते—सम् + पृची संपर्के + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—जब सुखावह जल वृष्टि होने लगती है तब 'अपां प्रसर्गे य
अमन्दिषाताम्' जलवृष्टि से पूर्ण प्रसन्न हुए मण्डूक एक दूसरे पर 'अनुगृभ्णाति' मा
अनुग्रह-से कर रहे होते हैं । कब ? 'यद् अभिवृष्टः' जब कि जल से अभिषिक्त हु
'कनिष्कन्- अपनी छलांग का प्रदर्शन करता हुआ 'पृश्नि' चित्तकबरा मण्डूक 'हरित
हरे वर्ण वाले से 'वाचं संपृंक्ते' अपनी मधुर वाणी का संयोग मिलाता है।

५— **यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं**
शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व
यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५॥

पद-पाठः—यत् । एषाम् । अन्यः । अन्यस्य । वाचम् । शाक्तस्य ऽ इव
वदति । शिक्षमाणः । सर्वम् । तत् । एषाम् । समृधा । इव । पर्व । यत्
सु ऽ वाचः । वदथन । अधि । अप्सु ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यत् यदा एषाम् एषां मण्डूकानां मध्ये अन्यः ए
मण्डूको ऽ न्यस्य वाचं वदति अनुवदति तदा एवं प्रतीयते शाक्तस्य शक्ति सम्पन्न
शिक्षकस्य शिक्षमाणः शिक्ष्यमाणः शिष्यः कल्याणीं वाचम् अनुवदतीव । हे मण्डूकाः
सुवाचः शोभनवाचः यत् यदा 'अधि अप्सु' वृष्टेषु उदकेषु तरन्तो यूयं वदथन वा
उच्चारयथ तत् तदा एषां युष्माकं पर्व (अध्ययनपर्व, शरीरम्) समृधेव समृद्ध
भवति । ग्रीष्मकाले मृत्तिकायां विलीना मण्डूका वर्षाकाले पुनः अविकलाङ्गाः
सशरीराः प्रादुर्भवन्ति । इति ।

टिप्पणी—शिक्षमाणः—शिक्ष् + शप् + शानच् + मुक् । शाक्तस्य—शक्
क्त + अण् । पर्व—परुष्मच्छरीरम्, अध्ययन पर्व च ।

(२) मैक्डानल ने समृधा इव का अर्थ 'पाठ के समान' । सुवाचः—
स्वनता रखने वाले (आरोह-अवरोह की ध्वनियों में समरूपता वाले) ।

हिन्दी-व्याख्या—(यदेषामन्योअन्यस्य वाचम्) जब इन मण्डूकों में एक दू
की (वाचम्) वाणी को 'शाक्तस्य इव वदति शिक्षमाणः' समर्थ (सशक्त) शिक्षक
वाणी को अभ्यासशील शिष्य के समान 'अनुवदति' बोलता है । यह सब
(अध्ययन—पर्व, शरीर—पर्व) इन मण्डूकों की समृद्धि के लिये ही मानों है जो
मण्डूकगण (सुवाचः) आनन्ददायक वाणी बोलने वाले (अधि अप्सु) वृष्टि के
जल के ऊपर तैरते हुए (वदथन) परस्पर तुम सब संभाषण करते हो ।

६— गोमायुरेको अजमायुरेकः

पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।

समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः

पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥६॥

पद-पाठः—गो ऽ मायुः । एकः । अज ऽ मायुः । एकः । पृश्निः । एकः । ...तः । एकः । एषाम् । समानम् । नाम । बिभ्रतः । विरूपाः । पुरु ऽ त्रा । वाचम् । ...शुः । वदन्तः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—एषु मण्डूकेषु को ऽ पि गोमायुः गोर्मायुरिव मायुः शब्दो ...तादृशः । अन्यो अजमायुः अजस्य वृद्धवर्करस्य मायुरिव मायुः शब्दो यस्य ...। को ऽ पि मण्डूकः पृश्निवर्णः कर्बुरः, एकश्च हरितवर्णः । एते 'विरूपाः' ...रूपाः सन्तो ऽ पि समानम् एकं नाम 'मण्डूकाः' इति बिभ्रति धारयन्ति । एते ...श्च 'पिपिशुः' अवयवीभवन्ति, प्रादुर्भावं गच्छन्ति ।

टिप्पणी—पुरुत्रा—पुरुशब्दाद् 'देवमनुष्य०' ५-४-५६ इति सूत्रेण त्रा ...। पिपिशुः—'पिश अवयवे' लिट्, प्रथमपुरुष बहुवचने । बिभ्रतः—भृ + शतृ । ...दित्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—इन मण्डूकों में कोई 'गोमायु' है जो गाय की ध्वनि के ...रंभाता है । दूसरा 'अजमायु' बूढ़े बकरे की ध्वनि के समान ध्वनि करता है । ...पृश्नि (चितकबरा) है तो दूसरा हरे-पीले रंग का है । यद्यपि ये सब मण्डूक ...पाः' नानारूपों के हैं=आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि की दृष्टि से इनमें ...भिन्नता है तथापि इनका नाम (समानम्) एक ही 'मण्डूक' ही है । सभी मण्डूक ...न्तः' इस प्रकार बोलते हुए 'पिपिशुः' बहुत रूपों में प्रकट होते हैं ।

७—

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे

सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।

संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ

यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥७॥

पद-पाठः—ब्राह्मणासः । अति ऽ रात्रे । न सोमे । सरः । न । पूर्णम् । अभितः । वदन्तः । संवत्सरस्य । तत् । अहरिति । परि । स्थ । यत् । मण्डूकाः । प्रावृषीणम् । बभूव ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मण्डूकाः ! यद् अहः दिनं प्रावृषीणं प्रावृषेण्यं प्रावृषि भवं भवति तस्मिन्नहनि दिवसे यूयं परिष्ठ परितः सर्वतो भवथ । यथा संवत्सरस्य अतिरात्रे सोमयागे (रात्रिम् अतीत्य वर्तते इति अतिरात्रः) । यथा तस्यां रात्रौ पर्यायक्रमेण ब्राह्मणाः स्तुतशस्त्राणि पठन्ति तथा यूयमपि पूर्णां रात्रिं स्वकीयानि शास्त्राणि शंसथ । समस्तं सरः युष्माकं ध्वनिभिः परिपूर्णमिव वर्तते ।

टिप्पणी—ब्राह्मणासः—ब्राह्मणाः ब्रह्मवादिनः । 'आज्जसेरसुक्' । प्रावृषीणम्—प्रावृष् + ख (ईन) । परिष्ठ—परि + स्थ (अस + लट । मध्यमपुरुषैकवचने अतिरात्रः—रात्रिम् अतीत्य वर्तते इति अतिरात्रः सोमयागः । यस्यां रात्रावपि ब्राह्मणा स्तोत्राणि पठन्ति, 'एवमेते मण्डूकाः' इति ध्वनिः ।

(२) मैक्डानल ने 'परिष्ठ' का अर्थ 'कल्लोल करना', 'हर्षोल्लास प्रकट करना' लिखा है ।

हिन्दी-व्याख्या—ये मण्डूकगण ! उस रात्रि में जबकि वर्षाकालीन मेघ गर्जन के साथ जल-सेचन पृथ्वी पर करने लगते हैं, तुम भी अपनी ध्वनि से समग्र सरोवर को कम्पाकुल कर देते हो । अतिरात्र में सोमयागी ब्राह्मणों के समान, जैसे दिन के अनन्तर में बढ़ी रात तक अपने मंत्र-पाठ से क्रमशः रात्रि को ध्वनि संभृत कर देते हैं, उसी प्रकार तुम ही समग्र रात्रि में अपना ध्वनि-संयोजन करते रहते हो ।

८—

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत

ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना—

आवि भवन्ति गुह्या न केचित् ॥८॥

पद-पाठः—ब्राह्मणासः । सोमिनः । वाचम् । अक्रत । ब्रह्म । कृण्वन्तः । परिवत्सरीणम् । अध्वर्यवः । घर्मिणः । सिष्विदानाः । आविः । भवन्ति । गुह्याः । न । के । चित् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—'परिवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः' साम्वत्सरिकं ब्रह्म मंत्रोच्चारणं कुर्वाणाः 'सोमिनः ब्राह्मणासः' सोमसम्पादिनो ब्राह्मणा इव 'वाचम् अक्रत' एते मण्डूका हृदयंगमां वाचम् उच्चारयन्ति । 'अध्वर्यवः घर्मिणः सिष्विदानाः' घर्मिणः घर्मतप्ताः अध्वरस्य नेतार इव एते मण्डूकाः सिष्विदानाः सस्वेदाः स्वित्कायाः सन्ति । सर्वेषु कालेषु गुह्याः तिरोहिताः खल्वपि एते मण्डूकाः सम्प्रति आविर्भूता भवन्ति न केचित् गुह्या न केचिदप्रकटाः ।

टिप्पणी—परिवत्सरीणम्—परिवत्सर + ख (ईन) । कृण्वन्तः—कृवि + शतृ । सोमिनः—सोम + इन् । अक्रत—कृ + लुङ् । सिष्विदानाः—स्विद + कानच्, धातो द्वित्वसभ्यासकार्यं च । घर्मिणः—घर्मेण प्रवर्ग्येण चरन्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—'सोमिनः' सोमयाग का सम्पादन करने वाले (ब्राह्मणासः) ब्राह्मणों के समान (परिवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) वार्षिक ब्रह्म-सत्र का अनुष्ठान करने वाले ये मण्डूक अब (गुह्या न केचित्) कोई छिपे हुए नहीं हैं । सभी (घर्मिण सिष्विदानाः अध्वर्यवः) अध्वर (यज्ञ) के नेताओं के समान धर्म के कारण स्वेद से सने के समान हैं और सभी अपने मंत्रात्मक पाठ के साथ ही साथ अविर्भाव कर रहे हैं ।

९— देवहितिं जुगुपु द्वादशस्य
ऋतुं नरो न प्रमिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९॥

पद-पाठः—देव ऽ हितिम् । जुगुपुः । द्वादशस्य । ऋतुम् । नरः । न । प्रमिनन्ति । एते । सम्वत्सरे । प्रावृषि । आ ऽ गतायाम् । तप्ताः । घर्माः । अश्नुवते वि ऽ सर्गम् ।

संस्कृत-व्याख्या—एते नरः नेतारः अन्येष्वपि ऋतुषु वसन्तादिषु परस्परं भाषणान्यकृत्वा तमृतुं न प्रमिनन्ति न हिंसन्तिनापवादविषयतां प्रापयन्ति । अनेन प्रकारेण ऋतु निन्दां प्रवर्जयन्त एते द्वादशमासान्वितस्य विधानस्य परिपोषणार्थं देवहितिं देवविधिं देवसम्बन्धि विधानं जुगुपू रक्षन्ति । पुनः सम्वत्सरे प्राप्ते प्रावृषि आगतायां वर्षाकाले सम्प्राते घर्माः तप्ताः अतीव ग्रीष्मकालवशात् सन्तप्ताः सन्तः विसर्गम् 'जलसृष्टिमश्नुवते विलात्' विसर्ग विसर्जनं मोचनं वा अश्नुवते प्राप्नुवन्ति। पर्जन्यकाल एव अनुमोदन विधिना वृष्टिहेतवो भवन्ति ।

टिप्पणी—देवहितिम्—देव + धा + क्तिन् । दधाते हिः । जुगुपुः—गुपू + लिट्, प्रथमपुरुष बहुवचने । मिनन्ति—मि + लट् । अश्नुवते—अश् + लट्, प्रथम-पुरुष बहुवचने ।

वर्षोत्सवमेते वर्षाकाले एव विदधति नान्येषु ऋतुषु । अत एव एते देव-विधानस्य रक्षकाः ।

(२) मैक्डानल ने 'नरः' का अर्थ मनुष्य तथा 'घर्माः' का अर्थ 'दुग्ध-दान' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—ये मण्डूक वास्तव में 'नरः' नेता हैं जो 'एते ऋतुं न प्रमिनन्ति' बसन्त आदि ऋतुओं में अपना वर्षोत्सव न मनाकर उस ऋतु को निन्दित होने से बचाते हैं और 'द्वादशस्य' बारह मास वाले 'देवहितिंम्' देवों के विधान को (जुगुपुः) भली प्रकार सुरक्षित रखने में पूर्ण प्रयास करते हैं । पर हां, वर्ष के पूर्ण होने पर 'प्रावृषि आगतायाम्' वर्षा काल के सम्मुख आने पर 'घर्माः तप्ताः' गर्मी से व्याकुल ये मण्डूक 'अश्नुवते विसर्गम्' जल की सृष्टि का आनन्दोत्सव मनाने के लिए छिपे हुए स्थानों से बाहर निकल आते हैं ।

१०—

गोमायुरदादजमायुरदात्

पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।

गवां मण्डूका ददतः शतानि

सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥१०॥

पद-पाठः—गो ऽ मायुः । अदात् । अज ऽ मायुः । अदात् । पृश्निः । अदात् ।

...तः । नः । वसूनि । गवाम् । मण्डूकाः । ददतः । शतानि । सहस्र ऽ सावे । प्र ।

...रन्ते । आयुः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—'गोमायुः अदात्' गो र्मायु रिव शब्दो यस्य तादृशोगोमायु ...डूको ये वसूनि धनानि अदात् । ददातु । अजमायुः पूर्ण बर्करसदृश शब्दो ऽ पि ...डूको मे वसूनि अदात् । ददातु । पृश्निः शबलवर्णो हरितः हरितवर्णो ऽ पि ...डूकगणो मे वसूनि अदात् । ददातु । अस्मिन् सहस्रसावे सहस्रसंख्याका नानारूपा ...षधयः श्रूयन्ते उत्पद्यन्ते यत्र स वर्षाकालः सहस्रसावः । तस्मिन् समये गवां शतानि ...रिमितानि गवां ददतः प्रयच्छन्तः 'प्रतिरन्त आयुः' अस्माकंमायु र्जीवनं प्रवर्ध-...तु । वर्षाकाले मेघा गर्जन्ति । तान् दृष्ट्वा मण्डूका अनुमोदन्ते । अनुमोदमामान् ...डूकान् दृष्ट्वा मेघास्तृप्ता भवन्ति जलं चापरिमितं सृजन्ति । तत ओषधयो ...था स्तृणादयो लताश्च प्रजायन्ते । ततो ऽ स्माकं गावो जीवन्ति । ततो दुग्धादिना ...नवा जीवन्ति । इति कार्याकरण व्यापारादेव मण्डूका आयुः प्रवर्धयन्ति तत्र ...रण त्वं भजन्ते ।

टिप्पणी—अदात्—दा + लुङ्, प्रथमपुरुषैकवचने । सहस्रस्वने—सहस्र + सू + ...। ददतः—दा + शतृ । तिरन्ते—तृ + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—'गोमायुः अदात्' गौ की भांति ध्वनि करने वाला अथवा ...जमायु' बूढ़े बकरे की भांति ध्वनि करने वाला मण्डूक हमें 'वसूनि अदात्' धन की ...न्नता देवे । 'यह मण्डूक ही कारण हैं जिनसे कि हमारी 'गावां मण्डूका ददतः ...तानि' गायें सैकड़ों प्रकार से वृद्धि पाती हैं और अपरिमित संख्या में बढ़ती हैं ...स्रसावे प्रतिरन्ते आयुः' सहस्रों प्रकार से जहां ओषधियां-वनस्पतियां, तृण, लतायें ...दि उत्पन्न होती हैं उनके कारण मण्डूकगण ही हमारी आयु वृद्धि में कारण हैं ...कि वर्षाकाल में मेघ गरजते हैं उनका अनुमोदन मण्डूक करते हैं । उनके अनुमोदन ...मेघ प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर जलवृष्टि करने लगते हैं जिससे लता-प्रसून ...आदि उत्पन्न होते हैं, उनसे गायों की वृद्धि होती है । गायों से दूध-घृत आदि की ...ति से मानव-जीवन पूर्ण और सम्पन्न होता है । इस प्रकार मण्डूक ही हमारे ...न को सम्पन्न और सुभाषी बनने में आशीर्वाद देते हैं ।

मण्डल ८

सोम-सूक्तम्

सूक्त ४८

ऋषिः—कण्वं—पुत्रः प्रगाथः । देवता—सोमः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।
५—जगती।

१— स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः

स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।

विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो-

मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥१॥

पद-पाठः—स्वादोः । अभक्षि । वयसः । सु ऽ मेधाः । सु ऽ आध्यः । वरिवोवित् ऽ तरस्य । विश्वे । यम् । देवाः । उत । मर्त्यासः । मधुः । ब्रुवन्तः । अभि । सम् ऽ चरन्ति ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—यं यत् सोमाख्यम् अन्नं विश्वे देवा दिव्याः अमर्त्याः उत अपि च मर्त्यासः मरणधर्माणोऽपि मधु ब्रुवन्तः मधुरमेतदिति कामयमानाः अभि सञ्चरन्ति तदन्वेषणे कृत प्रयत्ना भवन्ति । प्रकृष्टगानकुशलः स्वाध्यः शोभनाध्ययनः सुमेधाः सुप्रज्ञः तत् वयसः अन्नम् स्वादोः स्वादुभूतस्य वरिवोवित्तरस्य अतिशयेन पूजां लभमानस्य अभक्षि । प्राप्नुयाम ।

टिप्पणी—स्वादोः वयसः वरिवोवित्तरस्य इत्यत्र कर्मणि षष्ठी । वरिवोवित्तरस्य वरिवस् + विद् + क्विप् + तरप् । अभक्षि—भक्ष् + लुङ् । ब्रुवन्तः—ब्रु + शतृ ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस सोम की प्रशंसा करते हुए सभी देवगण तथा मानव गवेषणा में संचरण करते रहते हैं। सभी जिसे मधुर, अमृत कह कर अपनी अभिरुचि प्रकट करते हैं; मैं भी उस स्वादुयुक्त, सबसे प्रशंसा प्राप्त सोम रूप अन्न को प्राप्त करके आत्मानन्द को पुलकित करूं।

२- अन्तश्च प्रागा अदिति र्भवा-

स्यवयाता हरसो दैव्यस्य।

इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः

श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥

पद-पाठः—अन्तरिति। च। प्र। अगाः। अदितिः। भवासि। अव ऽ याता। हरसः। दैव्यस्य। इन्दो इति। इन्द्रस्य। सख्यम्। जुषाणः। श्रौष्टी ऽ इव। धुरम्। अनु। राये। ऋध्याः ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—हे सोम! 'अन्तश्च प्र अगाः' पीतः सन् हृदि प्रविष्टो भवसि। गत्वा च हृदि अदिति र्भवासि दैन्याभावं सम्पादयसि। अथ च सुशीलतादिगुणान् सम्पाद्य दैव्यस्य हरसः क्रोधस्य अवयाता पृथक्कर्ता भवासि। त्वया सोम्यभावं गमिते सति न देवसम्बन्धिनः क्रोधस्य उदयो भवितु मर्हति देवजुष्टे हविषि विद्यमानत्वात्। हे इन्दो! इन्दुवद् आह्लादक सोम! त्वमेव सम्यक् इन्द्रस्य सख्यं सखिभावं जुषाणः सेवमानः सर्वोत्कर्षेण वर्तसे। अतो रायेऽस्माकं धनोपलब्धये क्षिप्रगामी अश्व इव धुरमनु ऋध्याः अनुप्राप्नोषि। यथा क्षिप्रगामी अश्वो धुरं वृत्वा लक्ष्यभूतं देशं शीघ्रमेव प्रापयति तथा त्वं धनोपलाभाय अभिमतदेशं प्रापय।

टिप्पणी---अन्तः—अन्तः इति हृदयस्य यागागारस्य वाऽन्तराले इत्यर्थः। अदितिः—अदीनः। हरसः=क्रोधस्य। हर इति क्रोधनाम। श्रौष्टी—श्रुष्टी इति क्षिप्रनाम। तत्सम्बन्धी श्रौष्टी। अनुऋध्याः—ऋधिरत्र गत्यर्थः। जुषाणः—जुष + शानच्।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! अन्तहृ दय में पहुंच कर आप हमारी दीनता को दूर कर देते हैं । सौम्य भावना से हमारे अन्तःकरण को कोमल, शान्त और निरुपद्रव बना देते हैं जिससे दैवी क्रोध का पात्र मैं नहीं बनता । आप ही इन्द्र के सच्चे और अनुपम सखा हैं । और इन्द्र की प्रीति में दत्तचित्त रहते हैं । जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व अपने लक्ष्य प्रदेश को बिना विलम्ब के प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार हे सोम ! धनोपलब्धि के लिये अभिमत प्रदेशों को प्राप्त कराइये ।

३— **अपाम सोममसृता अभूमा-**

गन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः

किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥

पद-पाठः—अपाम । सोमम् । अमृता । अभूम । अगन्म । ज्योतिः । अवि-दाम । देवान् । किम् । नूनम् । अस्मान् । कृणवत् । अरातिः । किम् । ऊँ इति । धूर्तिः । अमृत । मर्त्यस्य ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—इदानीम् ऋषिः कृतसोमपानः प्राप्तामृतानन्दः ब्रूते—वयं सोमम् अपाम । प्रीतवन्तः । अमृता अभूम । अमृतं सोमं पीत्वा वयमपि अमरधर्माणः संवृत्ताः । अगन्म ज्योतिः । आनन्दमयं ज्योतिः । अगन्म । अविदाम देवान् । ज्ञातवन्तः । नूनम् इदानीम् । अरातिः शत्रुः किं कृणवत् किं कर्तुं समर्थः ? न किमपि । मर्त्यस्य मरणंस्वीकृतवतोऽमरधर्मणः पुरुषस्य धूर्तिः हिंसकः किं कृणवत् ? न किमपि ।

टिप्पणी—अपाम—'पा पाने' । लुङ् । 'गातिस्था घुपा०' इति सिचो लुक् । अभूम—'भू सत्तायाम्' । लुङ् । सिचो लुक् । अगन्म—गम्—लुङ् । अविदाम—विद + लङ् । कृणवत्—कृवि + लेट् । अरातिः—'रा दाने' । 'मंत्रे वृष०' इति क्तिन् । न विद्यते रातिदानं यस्य । धूर्तिः—धुर्वी हिंसार्थः । 'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'

इति क्तिच् । 'तिपुत्र तथ सि०' इति इट् प्रतिषेधः । 'उपधायां च' इत्युपधादीर्घत्वम् । 'राल्लोपः' इति वकार लोपः । सोम-पानम्-उभया सह महेश्वरस्य ज्ञानरसपानम्, सोम पानम् । ऋते ज्ञानान्न मुक्तिरितिवचनात् ।

हिन्दी व्याख्या—ब्रह्म ज्ञानी जिस सोम-रस का पान करते हैं, वह विलक्षण होता है । ऋषि कहते हैं—हमने सोम का रस-पान किया है । सोम स्वयं ही अमृत है अतः सोम-पान से अमरता की प्राप्ति हो गयी है । हमें आनन्द-ज्योति की प्राप्ति हुई है और अब देवों के दिव्यत्व की जानकारी हमें है । अब शत्रु हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता । हे अमृत सोम ! मरणधर्म स्वीकार कर लेने पर भी हम अमर स्वभाव रखते हैं अतः कोई हिंसक हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता ।

४—

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो

पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।

सखेव सख्य उरुशंस धीरः

प्र ण आयु जीवसे सोम तारीः ।।४।।

पद-पाठः—शम् । न । भव । हृदे । आ । पीतः । इन्दो इति । पिताऽइव । सोम । सूनवे । सुऽशेवः । सख्यऽइव । सख्ये । उरुऽशंस । धीरः । प्र । नः । आयुः । जीवसे । सोम । तारीः ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! ब्रह्म-रसायन ! त्वं पीतः सन् हृदे मनसे अन्तःकरणाय कल्याणप्रद आ भव । हे इन्दो ! सुखाधानहेतो ! यथा शुभचिन्तकः पिता सूनवे पुत्राय सुशेवः सुखानन्दजनको भवति तथा त्वं हृदयानन्द जनने शुभो भव । यथा वा सखा सख्यु दोंषान् दूरीकृत्य अहिताच्च निवार्य हितानन्दे स्थापयति तथा हे उरुशंस बहुभिः प्रशंसनीय सोम धीरो ध्यानवांस्त्वं धियं शुभे प्रेरयन् आयुः आयुष्यं प्रतारीः प्रकृष्टतया वर्धय ।

टिप्पणी—जीवसे—'तुमर्थे से०' असेन् । तारीः—तृ + लुङ् । सुशेवः—शेवमिति सुखनाम ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! आप ब्रह्म-रसायन बनकर हमारे अन्तःकरण के लिये शान्तिदायक बनें। पिता के समान आनन्दोत्पादक तथा सखा के समान चिर प्रशंसक बने रहिये। हे सोम ! आप हमारे आयुष्य और मनीषा का सम्वर्धन करें।

५— **इमे मा पीता यशस उरुष्यवो—**

रथं न गावः समनाह पर्वसु।

ते मा रक्षन्तु विस्रस श्चरित्रा—

दुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥५॥

पद-पाठ—इमे। मा। पीताः। यशसः। उरुष्यवः। रथम्। न। गावः। सम्। अनाह। पर्व ऽ सु। ते। मा। रक्षन्तु। वि ऽ स्रसः। चरित्रात्। उत। मा। स्रामात् यवयन्तु। इन्दवः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—इमे सोमाः पीताः सन्तः यशसः यशस्कराः उरुष्यवः रक्षकाः भवन्तु। यथा गावः त्रिवृत्कृताः प्रग्रहाः पर्वसु बद्धाः संधारन्ति तथा शरीर ग्रन्थिषु सोमा दाढ्र्यं स्थापयन्ति। ते सोमा विस्रसः चरित्रात् विस्रस्तात् आचरणात् रक्षन्तु। अपि च मां स्रामात् व्याधेरपि पान्तु। रोगान् यवयन्तु दूरी कुर्वन्तु।

टिप्पणी—उरुष्यवः—उरुष्यती रक्षाकर्मा इति यास्कः। गावः—गौ रज्जुः। अनाह—नह बन्धने। लुङ्। विस्रसः—विपूर्वात् संस धातोः क्विप्। पर्व= ग्रन्थिः। स्रामः—व्याधिः।

हिन्दी-व्याख्या—पान के अनन्तर यह सोम हमारे भीतर यश का सम्पादन करें और संरक्षक बनें। जिस प्रकार जूए आदि ग्रन्थियों को दृढ़ रस्सियों से बाँध देने पर वह स्थान सुदृढ़ हो जाता है उसी प्रकार शरीर के समस्त जोड़ों को सोम पान से दृढ़ता मिलती है। न केवल इतना ही अपितु सोम चरित्र-शैथिल्य को दूर कर देते हैं। वे समस्त विसंगतियों को दूर करें और आनन्ददायक सुख पहुंचाते हुए व्याधियों को भी हमसे दूर रखें।

६— अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः

प्र चक्षय कृणु हि वस्यसो नः।

अथा हि ते मद आ सोम मन्ये

रेवाँ इव प्रचरा पुष्टि मच्छ ॥६॥

पद-पाठ—अग्निम् । न । मा । मथितम् । सम् । दिदीपः । प्र । चक्षय । कृणुहि । वस्यसः । नः । अथ । हि । ते । मदे । आ । सोम । मन्ये । रेवान् ऽ इव । प्र । चर । पुष्टिम् । अच्छ ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! मथितं त्वम् अग्निमिव आधवनेन, संस्कृतम् अग्निमिव मां संदिदीपः संदीपय। प्रचक्षय च प्रकाशोपेतं कुरु। कृणु नः वस्यसः अतिशयेन वसुमतः अस्मान् सम्पादय। हे सोम ! तव मदकरे मदे एवात्मानमहं भोगभागं मन्ये जानामि। धनहीनो ऽ पि रेवान् धनवानिव अहमिति संभावयामि। अथ त्वम् अस्माकं पुष्टिं पोषणम् अच्छ प्रचर प्रभावय।

टिप्पणी—वस्यसः—वसुमत् शब्दात् ईयसुनि 'विन्मतो र्लुक्' इति मतुपो लुकि। ईकारलोपश्छान्दसः। कृणुहि—'कृविंहिंसाकरणयोः' लोटि।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! संस्कृत अग्नि के समान आप हमें दीप्त करें। हमारी अन्तदृष्टि में और अधिक उजाला दें। हमें अतिशय धन दें। हे सोम ! आपसे प्राप्त मद के कारण मैं निर्धन होता हुआ भी अपने को धनाढ्य ही मानता हूं फिर भी आप हमें सभाचर शिष्ट पुरुष बनायें और धनपुष्टि से हमारे सारे अभाव-ग्रस्त शिथिल-जीवन को व्यवस्थित और प्रशंसनीय बनाने की कृपा करें।

७— इषिरेण ते मनसा सुतस्य

भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः।

सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारी—

रहानीव सूर्यो वासराणि ।।७।।

पद-पाठः— इषिरेण । ते । मनसा । सुतस्य । भक्षीमहि । पित्र्यस्य ऽ इव ।

रायः । सोम । राजन् । प्र । नः । आयूंषि । तारीः । अहानि ऽ इव । सूर्यः ।

वासराणि ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! यथा पित्र्यस्य रायः पितृसम्बन्धिनो धनस्य भोगः इषिरेण मनसा इच्छावता मनसा संकोचरहितेन क्रियते तथा सुतं त्वामभिषुतं भक्षीमहि । सेवेमहि । हे राजन् राजमान सोम त्वं न आयुः आयुष्यं प्रतारीः प्रवर्धय । यथा सूर्यः वासराणि वासकानि अहानि दिनानि स्वकीयेन भासा प्रवर्धयति तथा त्वमस्मान् प्रवर्धय ।

टिप्पणी—इषिरेण ईषणेन इति यास्कः । सुतस्य—अभिषुतस्य । पित्र्यस्य—पितृ + यत् । भक्षीमहि—भक्ष + लिङ् । तारीः—तृ + लुङि ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार पितृ-परम्परा के धन का भोग संकोचरहित मन से प्रसन्नतापूर्वक किया जाता है उसी प्रकार हे सोम ! आपका हम रुचिसम्पन्न मन से सेवन करते हैं । हे सोम ! जिस प्रकार भास्वर दिन को सूर्य अपने प्रकाश से सुवासित करते हैं उसी प्रकार आप भी हमारे आयुष्य को प्रसन्न और समृद्ध कीजिये ।

८—

सोम राजन्मृलया नः स्वस्ति

तव स्मसि व्रत्या३स्तस्य विद्धि ।

अर्लति दक्ष उत मन्युरिन्दो

मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ।।८।।

पद-पाठः—सोम । राजन् । मृलय । नः । स्वस्ति । तव । स्मसि । व्रत्याः । तस्य । विद्धि । अर्लति । दक्षः । उत । मन्युः । इन्दो इति । मा । नः । अर्यः । अनु ऽकामम् । परा दाः ।।८।।

संस्कृत व्याख्या—हे सोम ! स्वस्ति दुःखाभावाय निरन्तरं मृलय सुखय । वयं व्रत्याः व्रतशीलाः स्मसि तवैव स्मः । स्वकीयान् अस्मान् आश्वासय । तस्य विद्धि । अस्मान् स्वकीयत्वेन नानीहि । हे सोम ! यदि अस्माकं दक्षः प्रवृद्धः शत्रुः अर्लति उदयं गच्छति उत वा मन्युः क्रोध उदयं गच्छति । तस्य अर्यः अरेः अनुकामं यथेच्छं नः अस्मान् परा दाः दरे कुरु ।

टिप्पणी—मृलय = मृद णिच् । लोट् । व्रत्याः—व्रत + यत् । स्मसि—स्मः । छान्दसः प्रयोगः । विद्धि—विद् + लोट् । अर्यः—अरेः । षष्ठी । छान्दसः प्रयोगः । दाः—दा + लुङ् ।

हिन्दी व्याख्या—हे राजन् सोम ! आप निरन्तर कल्याण के लिए हमको सुख-आनन्द देते रहें । हम सब व्रत-नियम का आचरण करने वाले आप से ही सम्बन्धित हैं, ऐसा ही विचार रखिये । यदि कोई समर्थ शत्रु अपना कुटिल आवेश प्रकट करता है अथवा यदि क्रोध उदित होकर हमारे शील को विकृत करता है, हे सोम ! ऐसे शत्रु को हमसे बहुत दूर कर दीजिये ।

९—

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा—

गात्रे गात्रे निषसत्था नृ चक्षाः ।

यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि

स नो मृल सुषखा देव वस्यः ।।९।।

पद-पाठः—त्वम् । हि । नः । तन्वः । सोम । गोपाः गात्रे ऽ गात्रे । नि ऽ

ससत्थ ' नृ ऽ चक्षोः । यत् । ते । वयम् । प्र (मिनाम । व्रतानि । सः । नः । मृळ । सु ऽ सखा । देव । वस्यः ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! सोमाभिमानिन् देव ! त्वं हि त्वमेव हि नः अस्माकं तन्वः शरीरस्य गोपाः रक्षकोऽसि । त्वमेव नृचक्षाः सर्वेषां नेतृणां दृष्टत्वेन उपस्थितोऽसि । अतः गात्रे गात्रे अङ्गम् अङ्ग प्रति निषसत्था त्वमेव निषीदसि । हे सोम । भ्रमवशात् यत् ते व्रतानि यदि त्वत्सम्बन्धीनि व्रतानि कर्माणि वयं प्रमिनाम हिंस्मः तथापि सुषखा शोभनसखा भवन् वस्यः श्रेष्ठान् न अस्मान् मृल आनन्दमय।

टिप्पणी—तन्वः—तनु + षष्ठी । गोपा—गुपूरक्षणे + क्विप् । नृचक्षाः—नृ + चक्ष् + असुन् । निषसत्थ—नि + सद् + लिट । प्रमिनाम—प्र + मि + लट् । वस्यः—वसु + ईयसुन् । ईकारलोपः छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! आप ही एकमात्र हमारे शरीर रक्षक हैं । आप सभी नायक पुरुषों के उन्नायक तथा दृष्टा हैं अतः हमारे अंग-अंग में आप ही प्रविष्ट होकर हमारी देखभाल कर रहे हैं ! हे सोम ? मूल-भ्रम से आपके निर्दिष्ट व्रतों के पालन में हम शिथिल हो जाते अथवा उल्लंघन कर जाते हैं फिर भी आप सुन्दर सखा हैं अतएव हमारे कष्ट-निवारण में सदैव कृपा रखिये ।

१०—

ऋदूदरेण सख्या सचेय

यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।

अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे

तस्मा इन्द्र प्रतिरमेम्यायुः ॥१०॥

पद-पाठः—ऋदूदरेण । सख्या । सचेय । यः । मा । न । रिष्येत् । हरि ऽ अश्व । पीतः । अयम् । यः । सोमः । नि । अधायि । अस्मे इति । तस्मै । इन्द्रम् ।

तिरम् । एमि । आयुः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—ऋषिः कामयते—अहं हि ऋदूदरेण मृदूदरेण कोमलाशयेन सख्या मित्रभूतेन सचेय संगतो भवानि। अयं पीतः सोमः मा मां प्रति न न कुप्येत। न मे हानिं कुर्य्यात्। हे हर्यश्व! इन्द्र! भवानेव सोम स्वामित्वे। अयं सोमः अस्मे अस्मासु न्यधायि संनिहितोऽस्ति, तस्मै सोमाय प्रतिरम् एमि याचे। तस्य चिरकालावस्थानं ततश्च अस्माकं भूयात्।

टिप्पणी—ऋदूदरः सोमो मृदूदरः इति यास्कः। सचेय—सच्+लिङ्। —रिष्+लिङ्। न्यधायि—नि+धा+लुङ्। चिण्। हर्यश्वः—इन्द्रः।

हिन्दी-व्याख्या—मैं कोमल आशय वाले सोम की संगति में सदा रहूं। पान न्तर यह सोम मित्र बनकर ही रहें कभी किसी प्रकार की हानि न पहुंचायें। श्व=हरी—अश्व हैं जिसके=इन्द्र! यह आनन्ददायक सोम मेरे अन्तःकरण स्थित है। यह आनन्द चिरकाल तक (प्रतिरम्) बना रहे जिससे मैं भी चिर वना रहूं।

११—

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा

निरत्रसन् तमिषीची रभैषुः।

आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया—

अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११॥

पद-पाठः—अप। त्याः। अस्थुः। अनिराः। अमीवाः। निः। अत्रसन्।

चीः। अभैषुः। आ। सोमः। अस्मान्। अरुहत्। वि ऽहायाः। अगन्म।

ऽ तिरन्ते। आयुः ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—त्याः ताः अनिराः क्षेप्तुमशक्या अमीवाः सशक्ताः पीडाः : दूरीभूता भवन्तु। याः तमिषीचीः सबलाः अस्मान् अभैषुः भयप्रदाने दक्षा

आसन् । याश्च अत्रसन् त्रासदायिन्यः । विहायाः महान् सोमः आ अरुहत् अस्
आ विशतु । यत्र यस्मिन् सोमे पीते सति मानवाः आयुः आयुष्यं प्रतिरन्त प्रवर्धयन्ति
स सोमोऽस्मासु प्रवृद्धिमाप्नोतु । हृदि सोमे प्रविष्टे सति सर्वे रोगा अपसरन्ति।

टिप्पणी—अनिराः, अमीवाः—इरा अन्नम्, तदभावः अनिरा दारिद्र्यम्
अमीवा—रोगः । विहायाः—विविधगमनमुक्ताः । महती वा । विहाया इति महन्ना
नि० ३-३-१२ । तमिषीवीः—बलवतीः । अस्थु—स्था + लुङ् । 'गातिस्था०' इ
सिचो लुक् । 'आतः' इति झेर्जुस् ।

हिन्दी-व्याख्या—'अनिराः' दरिद्रता से उत्पन्न अथवा 'अमीवाः' रोगों
उत्पन्न पीड़ा जो कि हमें भय-त्रस्त करके कमवाकुल बना रही थीं जो बड़ी प्रबल
अब वे सभी दूर हो चुकीं क्योंकि महान् सोम हमारे अन्तःकरण को उमंगित
रहा है। सोम ही हमारे आयुष्य के सम्वर्धन में और कष्ट-निवारण में कारण है

१२-

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो—

ऽमर्त्यो मर्त्यां आ विवेश ।

तस्मै सोमाय हविषा विधेम

मृली के अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

पद-पाठ—यः । नः । इन्दुः । पितरः । हृत् ऽ सु । पीतः । अमर्त्यः
मर्त्यान् । आ ऽ विवेश । तस्मै । सोमाय । हविषा । विधेम । मृलीके । अस्य
सु ऽ मतौ । स्याम ।।१२।।

संस्कृत-व्याख्या—हे पितरः ! पीतः हृत्सु यः इन्दु सोमः अमर्त्यः अमरधर्मा
मर्त्यान् मनुष्यान् आ विवेश प्रविष्टवान् । तस्मै सोमाय सोमाभिमानिने देवाय हविषा
विधेम विधिवत् परिचरेम । अस्य च सोमस्य देवस्य मृली के प्रसन्नतादायके सु
सुमतौ कल्याणायां बुद्धौ च सदा स्याम निवसेव ।

टिप्पणी—आविवेश—आ + विश + लिट् । विधेम—विध + लिङ्
स्याम—अस + लिङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पितृगण ! यह आनन्ददायक सोम पान के अनन्तर हृदय ...चकर अमरधर्मा होने पर भी समस्त पृथ्वी-पुरुषों में प्रविष्ट हो रहा है। उस ...शुभकारी सोम के लिए हम निरन्तर पूजा करते रहें और सुख प्राप्त करते ...हम सब सदैव सोमाभिमानी देव की अनुग्रहपूर्ण भावना में आनन्द पाते रहें।

१३-

त्वं सोम पितृभिः संविदानो-

ऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ।

तस्मै त इन्दो हविषा विधेम

वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

पद-पाठः—त्वम्। सोम। पितृ ऽ भिः। सम् ऽ विदानः। अनु। द्यावा-...इति। आ। ततन्थ। तस्मै। ते। इन्दो इति। हविषा। विधेम। वयम्। ...पतयः। रयीणाम् ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! त्वं पितृभिः संविदानः संगत्या वर्तमानः सन् ...थिवी विस्तारयति। एवं भूताय तस्मै ते वयं हविषा पूजा सामग्र्या सदैव परिचरेम। वयं रयीणां धनानां पतयः स्वामिनो भवेम। त्वदनुकम्पया सधना ...ताः स्याम।

टिप्पणी—संविदानः—सम् + विद + शानच्। ततन्थतनु विस्तारे। लिट्।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! पितृ-गण की सङ्गति में रहते हुए आप द्युलोक ...थिवी लोक को सुख-सुविधा में विस्तृत करते हैं। ऐसे गुण स्वभाव वाले ...लिये हम सदैव उत्तम हविष्य से परिचर्या करके आनन्दित होते रहें और ...से रहित होकर निरन्तर हम धन-ऐश्वर्य एवं मोक्ष-सुख के भागी बनें।

१४-

त्रातारो देवा अधि वोचता नो-

मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।

वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः

सुवीरासो विदथमा वदेम ।।१४।।

पद-पाठः—त्रातारः । देवाः । अधि । वोचत । नः । मा । नः । निऽद्रा

ईशत । मा । उत । जल्पिः । वयम् । सोमस्य । विश्वह । प्रियासः । सुऽवीरासः ।

विदथम् । आ । वदेम ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या—हे त्रातारो देवाः ! सर्वदैव अस्मान् स्वकीयेन अधिवचनेन सावधानान् कुरुत । नास्मान् निद्राः स्वप्नप्रमादा अभिभवेयुः । नैव जल्पिः निन्दकः समर्थो भवतु । वयं विश्वह सर्वेषु अहःसु दिनेषु सोमस्य प्रियासः प्रिया भवेम । सुवीरासः कल्याणवीराः सन्तः विदथं स्तोत्रं वदेम ।

टिप्पणी—त्रातारः—त्रा + तृच् । वोचत—वच + लोट् । ईशत- ईश + लोट् । विदथम् = स्तोत्रम्, गृहम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे त्राण करने वाले देवगण ! आप अपने अधिवचनों से हमें सावधान करते रहें जिससे प्रमाद अथवा निद्रा हमें विवश न करे और निन्दक पुरुष भी हमें कर्त्तव्य से बाधित न करें । हम सदा ही सोम के प्रिय पात्र बने रहें और कल्याणकारी पुत्र-पोत्रों के साथ सदैव हमारा सदन मंगल प्रद बना रहे जहाँ निरन्तर ऋचाओं का पाठ अपनी मंगल-ध्वनि से आमोद-प्रमोद बिखेरता रहे।

१५—

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधा-

स्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।

त्वं न इन्द्र ऊतिभिः सजोषाः

पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ।।१५।।

पद-पाठः—त्वम् । नः । सोम । विश्वतः । वयः ऽ धाः । त्वम् । स्वः ऽ वित् । आ । विश । नृ ऽ चक्षाः । त्वम् । नः । इन्दो इति । ऊति ऽ भिः । स ऽ जोषाः । पाहि । पश्चातात् । उत । वा । पुरस्तात् ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या—हे सोम ! त्वम् अस्मभ्यं विश्वतः सर्वतः वयोधाः अन्नधाता भवसि । ऐहिकसुखं सर्वं त्वमेव प्रयच्छसि । अन्नस्य प्रतीकात्मक त्वात् त्वमेव च स्वर्वित् । स्वः स्वर्गसुखस्य लम्भकः । विद्लृ लाभे । आमुष्मिकसुखस्यापि त्वमेव दाता । त्वं नृचक्षाः । कृताकृतद्रष्टा । त्वम् आविश । स्वागमनेन हृदयं पुनीहि । त्वम् अस्माक सोम ! ऊतिभिः रक्षाभिः सह सदैव सजोषाः प्रीयमाणो भव । यद्वा ऊतयः गन्तरो मरुतः तैः सह प्रसन्नः सन् सदैव रक्षातत्परो भव । पश्चात् पुरस्ताच्च सर्वदा पाहि रक्ष ।

टिप्पणी—वयोधाः—वयस् + धा + क्विप् । स्वर्वित्-स्वः + विद् + क्विप् । पश्चातात्—पश्चात् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! आप ही सब ओर से अन्न-प्राप्ति के साधन-निर्माण करते हैं । इस प्रकार ऐहिक समस्त सुख आपकी ही कृपा पर निर्भर हैं । आप ही 'स्वर्वित्' स्वर्ग-सुख के देने वाले हैं । इस प्रकार परलोक-सुख की प्राप्ति के लिये भी आप ही प्रमुख कारण हैं । आप ही 'नृचक्षाः' मनुष्यों के समस्त कृत—क्रियमाण कर्मों के द्रष्टा हैं इस कारण 'सजोषाः' प्रीति और तृप्ति के साथ आप 'ऊतिभिः' अपने रक्षा-साधनों से हम पर सदैव कृपा करते रहें । अथवा सहगामी मरुद्गण के साथ सर्वदा कृपालु बने रहें । अग्रगामी होकर तथा पृष्ठगामी होकर आप सदैव हमारी देख-भाल करते रहें । हम सदैव आप की प्रीति भरी दृष्टि में बने रहें ।

१०–१४

यम-सूक्तम्

ऋषिः—१–१६ यमः । देवता १–५, १३–१६ यमः । ६ लिङ्गोक्ताः । ७–९ लिङ्गोक्ताः पितरो वा । १०–१२ श्वानौ । छन्दः—१–१२ त्रिष्टुप् । १३, १४, १६ अनुष्टुप् । १५–बृहती ।

१–

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु-

बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।

वैवस्वतं संगमनं जनानां

यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥

पद-पाठः—परेयि ऽ वांसम् । प्र ऽ वतः । महीः । अनु । बहुभ्यः । पन्थाम् ।

अनु ऽ पस्पशानम् । वैवस्वतम् । सम् ऽ गमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् ।

हविषा । दुवस्य ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—त्वं राजनं पितृणां स्वामिनं यमं हविषा दुवस्य परिचर। कीदृशं यमम् ? प्रवतः प्रकृष्टकर्मवतो जनान् पुरुषान् महीः कर्मोचितभोगान् प्रापितवन्तम् । तथा च बहुभ्यः पुण्यकृद्भ्यः पन्थां पुण्योचितं मार्गमनुपस्पशानम बाधमानम्। ये पापिन स्तानेव दुःखदे नरके प्रापयति नान्यान् । तादृशं वैवस्वतं विवस्वतः सूर्यस्य पुत्रं संगमनं जनानां पापिनां संगमनं यथावत्—स्थानं प्रापयितारम् ।

व्याकरणम्– परेयिवांसम्—परा + इण् गतौ क्वसुः । द्वितीया । प्रवतः प्रकृष्टकर्मवतो जनान् । प्र + मतुप्—द्वितीया । अनुपस्पशानम्—अनु + स्पश + कानच् ।

पीटर्सन ने 'महीः' का विशेषण मानकर प्रवतः का अर्थ अत्युच्च किया है।

हिन्दी व्याख्या—हे मेरे मन ! तू यमराज की हवि आदि से यथावत् सत्कार कर जो कि श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोगों के शुभ मार्ग को (अनुपस्पशानम्) बाधा रहित बनाते हैं। (जनानां संगमनम्) जो पापी लोगों को निकृष्ट नरक की ओर ले जाने वाले हैं (वैवस्वतम्) जो निवस्वान् (=सूर्य) के पुत्र और प्राणियों के लिये गन्तव्य स्थान हैं।

२–

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद

नैषा गव्यूति रपभर्तवा उ ।

यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु-

रेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनु स्वाः ॥२॥

पद-पाठः—यमः । नः । गातुम् । प्रथमः । विवेद । न । एषा । गव्यूतिः । अप ऽ भर्तवै । ऊँ । इति । यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । परा ऽ ईयुः । एना । जज्ञानाः । पथ्याः अनु । स्वाः ।

संस्कृत-व्याख्या—प्रथमः सर्वेषां श्रेष्ठो यमो नोऽस्माकं गातुं शुभाशुभ-निमित्तं सम्यग् विवेद जानाति । एषा गव्यूति न अपभर्तवैउ—अतिशयज्ञानयोगादियं गव्यूतिः शक्ति र्न केनाप्यपहर्तुमपनेतुं वा शक्यते । 'यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः' अयमेव यम—निर्दिष्टो मार्गो येनास्माकं पूर्वे पूज्याः पितरो गताः । अन्येऽपि गन्तारः तथा अस्यैव निर्देशने गमिष्यन्ति ।

व्याकरणम्—गातुम् = मार्गम् । गाङ् गतौ (=अथवा 'इण्नो गा' आदेशः) अपभर्तवै—अप + भृ + तवै = अपहर्तुम् । तुमुनर्थे तवै । हकारस्य भकारो वा । एना—एनेन । जज्ञाना-जनी-कानच् ।

प्रथम का अर्थ सायणाचार्य ने प्रमुख माना है । मैक्डानल ने कोटि अर्थ में प्रथम माना है, प्रथम कोटि का । गातु का अर्थ वे 'मार्ग' मानते हैं तथा 'स्वाः' का अर्थ 'अनेक' किया है । गव्यूति का अर्थ घास का क्षेत्र करते हैं ।

हिन्दी व्याख्या—'प्रथम यमो नो गातुं विवेद' देवों में प्रमुख यम देवता ही हमारे शुभ-अशुभ के निमित्तभूत मार्ग को जानते हैं और 'एषा गव्यूतिः' यह मार्ग न अपभर्तवा उ' यमराज से कोई छीन नहीं सकता । यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः) जिस मार्ग से हमारे पूर्वज पितर गए हैं और 'एना' इसी मार्ग से 'जज्ञानाः' उत्पन्न होने वाले भी सभी प्राणी 'स्वा पथ्याः' अपने-अपने कर्मानुकूल मार्गों का अनुचयन करते हैं ।

३—

मातली कव्यै र्यमो अङ्गिरोभि—

बृहस्पति ऋक्वभि र्वावृधानः ।

याँश्च देवा वावृधु र्ये च देवान्

स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

पद-पाठः—मातली । कव्यैः । यमः । अङ्गिरःऽभिः । बृहस्पतिः । ऋक्व

ऽभिः । ववृधानः । यान् । च । देवाः । वावृधुः । ये । च । देवान् । स्वाहा । अन्ये ।

स्वधया । अन्ये । मदन्ति ।

संस्कृत-व्याख्या—मातलिः इन्द्रसारथिः, तद्वान् इन्द्रो मातली । स च कव्यैः कव्यभाग्भिः पितृभिः सह वावृधानः ववृधानः वर्धमानः समुल्लसति । यमश्च अङ्गिरोभिः पितृविशेषैः सह, बृहस्पतिश्च अक्वभिः पितृविशेषैः सह उल्लासं तनुते । तत्र देवाश्च इन्द्रादयः कव्यभागादीन् पितॄन् वावृधु वर्धयन्ति । ये चान्ये कव्यभागादयः पितरः ते इन्द्रादीन् देवान् वर्धयन्ति । तेषां मध्ये एते इन्द्रादयः खलु स्वाहा मदन्ति स्वाहा कारेण हृष्टा भवन्ति, अन्ये च पितर स्वधया स्वधाकारेण हृष्यन्ति ।

व्याकरणम्—मातली = मतलस्यापत्यं पुमान् मातलिः इन्द्रसारथिः, तद्वान् इन्द्रो मातली । वावृधानः—वृधु + कानच् ।

टिप्पणी—कव्य, अंगिरः, ऋक्व ये पितरों के विशेष नाम हैं । इनमें इन्द्र के साथ कव्य, यम के साथ अंगिरा तथा ऋक्व के साथ बृहस्पति देवता का प्रयोग होता है । ऋचाओं से सम्बन्ध होने के कारण ऋक्व वे पुरोहित माने जाते हैं जो प्रमुख रूप से स्तोता हों । कर्मकाण्ड विधियों के अनुसार 'स्वाहा' से देवता तथा 'स्वधा' से पितर सन्तुष्ट होते हैं ।

मैक्डानल ने वावृधानः का अर्थ किया है—दृढता के साथ वृद्धि ।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र जिनका कि सारथी मातलि है, कव्य नामक पितरों के साथ प्रसन्न होते हैं, यम अङ्गिरा नामक पितरों से तथा बृहस्पति देवता ऋक्व नामक पितरों से आनन्दित होते हैं । इनमें इन्द्र आदि देवगण (यान् देवा वावृधुः) जिनका सम्वर्धन करते हैं अथवा (ये च देवान्) जो पितर इन्द्र आदि देवों का संवर्धन करते हैं; वे (स्वाहा अन्ये स्वधया अन्ये मदन्ति) इन्द्र आदि देवता स्वाहा से अथवा वषट्कार से तथा अङ्गिरा आदि पितृगण स्वधा से प्रसन्न होते हैं ।

४—

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदा—

ङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।

आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्तु—

एना राजन् हविषा मादयस्व ॥४॥

पद पाठः—इमम् । यम । प्र ऽ स्तरम् । आ । हि । सीद । अङ्गिरः ऽ भिः ।

पितृभिः । सम् ऽ विदानः । आ । त्वा । मत्राः । कवि ऽ शस्ताः । वहन्तु । एना ।

राजन् । हविषा । मादयस्व ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे यम ! अङ्गिरोभिः पितृभिः ऐकमत्यं गतस्त्वम् इमं प्रस्तरं विस्तीर्णं यज्ञविशेषमासीद आगत्य उपविष्टो भव । 'आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्तु' कविभिः क्रान्तदर्शिभिः शस्ताः प्रशस्ता ऋत्विग्भिः प्रयुक्ता मंत्रास्त्वामा वहन्तु त्वां हि अत्र प्रापयन्तु । हे राजन् ! 'एना हविषा मादयस्व' एतेन प्रयुज्यमानेन तृप्ति-वर्धनेन हविषा त्वं सन्तुष्टः सन् अस्मान् अपि हर्षय ।

व्याकरणम्—प्रस्तरम्—प्र + स्तृ + अच् । संविदानः—सं विदधातोः शानच् । कविशस्ताः + कविभिः प्रशस्ताः । मंत्राः—मनधातो ष्ट्रन् । मादयस्व—मदीहर्षे णिच्, लोट् । मध्यमपुरुषैकवचने ।

मैक्डानल ने प्रस्तर का अर्थ 'विस्तीर्ण कुशासन' तथा मादयस्व का अर्थ 'प्रसन्न करो' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे यम ! 'इमं प्रस्तरमाहि सीद' इस विस्तीर्ण यज्ञ में 'संविदानः' सहमति के साथ आकर 'अंगिरोभिः पितृभिः' अङ्गिरा आदि पितरों के साथ विराजिये । 'आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्तु' विद्यासम्पन्न ऋषियों के द्वारा प्रयुक्त हमारे ये मन्त्र आपका इस यज्ञ में पूजा के साथ आवाहन करें । 'एना राजन् हविषा मादयस्व' हे देदीप्यमान यम ! राजन् ! आप हमारी इस हवि-सामग्री से प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर हमें भी हृष्ट-पुष्ट कीजिये ।

५— अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभि—

यम वैरूपैरिह मादयस्व ।

विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते—

ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥

पद-पाठः—अङ्गिरः ऽ भिः । आ । गहि । यज्ञियेभिः । यम । वैरूपैः । इह । मादयस्व । विवस्वन्तम् । हुवे । यः । पिता । ते । अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । आ । नि ऽ सद्य ॥५॥

संस्कृत व्याख्या—हे यम ! (वैरूपैः अङ्गिरोभिः यज्ञियेभिः आ गहि) विविधरूपैः यज्ञयोग्यैः अङ्गिरोभिः सह आगहि आ गच्छ । (इह मादयस्व) आगत्य चास्मान् मादयस्व हर्षयुक्तान् कुरु । यः विवस्वान् ते तव पिताऽस्ति, अस्मिन् यज्ञे तं विवस्वन्तं हुवे अहम् आह्वयामि । सोऽपि अस्मिन् यज्ञे उपविश्य अस्मान् हर्षयतु ।

व्याकरणम्—आ गहि—आ गच्छ इति स्थाने वैदिक प्रयोगः । यज्ञियेभिः यज्ञार्हैः, यज्ञियैः = यणमर्हति घः, घस्येयादेशः । तृतीया । निषध = नि + सद् क्त्वा—ल्यप् ।

मैक्डानल ने यज्ञिय का अर्थ आराध्य किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे यम ! 'वैरूपैः अङ्गिरोभिः यज्ञियेभिः आगहि' विविध प्रकार के मन्त्रों से सुसज्जित तथा अलङ्कृत यज्ञ के योग्य अङ्गिरा आदि पितरों के साथ आप इस यज्ञ को गौरान्वित कीजिये । (विवस्वन्तं हुवे) मैं उस विवस्वान् का आवाहन करता हूँ जिनके कि आप सुपुत्र हैं; वे भी (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आ निषद्य) इस विस्तीर्ण यज्ञासन पर आसीन हों और हम सबको आनन्दित करें ।

६— अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा—

अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियाना—

मपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥

पद-पाठः—अङ्गिरसः । नः । पितरः । नवऽग्वाः । अथर्वाणः । भृगवः । सोम्यासः । तेषाम् । वयम् । सुमतौ । यज्ञियानाम् । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः सोम्यासः नः पितरः) अङ्गिरो नामधेयाः अथर्वनामकाः भृगु संज्ञकाश्च अस्माकं ते सोम्याः सोमम् अर्हन्तीति सोम्या नवनीताकृतयः प्रसन्नपुलकितवदना मृदवः पितरः अस्माकं नवग्वाः अभिनवगमनयुक्ताः सदैव नवनवप्रीत्युत्पादकाः सन्तुः (तेषां यज्ञियानां सुमतौ वयम्) तेषां कल्याणप्रदायां बुद्धौ वयं सदैवानन्दमनुभवामः अपि च (भद्रे सौमनसे स्याम) सौमनसस्य कारणे कल्याणप्रदे फले स्याम तिष्ठेम ।

व्याकरणम्—नवग्वा—नवपूर्वस्य गम धातो ड्वंन् । सोम्यासः सोममर्हति यत् प्रत्ययः । सोम्याः । बहुवचने । सौमनसे—शोभनं मनः सुमनस्, तस्य भावः इति अण् प्रत्यये ।

टिप्पणी —नवग्व (णु स्तुतौ) से नव स्तुति में अर्थ प्रयुक्त होता है । इसका अर्थ यह हुआ प्रणव (=प्रकर्ष स्तुति में) चतुर । वे पूर्वज पुरोहित जो स्तुतियों के प्रयोग में कुशल पौरोहित्य का कार्य करते थे । गौ वाग्देवता को भी कहते हैं, इससे वे पुरोहित स्पष्ट होते हैं जो कि अभिनव गौ (वाक्-गौ) के आवाहन अथवा लाने में कुशल हों । अभिनव गमना कहकर सायण ने उन पुरोहितों की ओर संकेत दिया है जो अतिथि के समान अपने प्रिय-आगमन से सन्तुष्ट-प्रसन्न करते हैं । राथ ने नवग्व, अथर्वा इन दोनों को प्राचीनकाल की धार्मिक जातियाँ बतलाया है और सोम्यासः का अर्थ उन्होंने किया है—सोमरस प्रदान करने वाले ।

हिन्दी-व्याख्या—(अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः सोम्यासः नः पितरः) अङ्गिरा, अथर्वा, भृगु नामक हमारे कल्याण-प्रद पितर (नवग्वाः) नित नूतन ज्ञानमय आनन्द-दायक सन्देश के साथ हमारे यहाँ पधारें । (तेषां वयं सुमतौ) उन यज्ञार्ह पितरों की आनन्ददायक सुमति में और (अपि भद्रे सौमन से स्याम) कल्याण-प्रद शुभ कार्यों में हम सदा लगे रहें ।

७— प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि—

यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।

उभा राजाना स्वधया मदन्ता

यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

पद-पाठः—प्र । इहि । प्र । इहि । पथि ऽ भिः । पूर्व्येभिः । यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । परा ऽ ईयुः । उभा । राजाना । स्वधया । मदन्ता । यमम् । पश्यासि । वरुणम् । च । देवम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अस्मात् संसारात् जिगमिषो जीव ! त्वं (यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः स्थानं प्रति प्रेहि-प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः) यत्र यस्मिन् कल्याणप्रदे स्थाने नः अस्माकं पुरातनाः पितरः पितामहादयः परेयुः गताः पूर्व्येभिः पूर्वकालभवैः अनादिकालत एव गतागतिं कुर्वद्भिः मार्गैः तत्स्थानं त्वमपि प्रेहि प्राप्नुहि । तत्र (राजानौ उभौ स्वधया मदन्तौ यमं वरुणं च देवं पश्यासि) गत्वा च स्वधया ऽ मृतेन तृप्यन्तौ उभौ राजानौ यमं वरुणं च द्रष्टा ऽ सि । तौ द्योतमानौ देवौ दृष्ट्वा सुखं शान्तिं चाप्नुहि ।

व्याकरणम्——पूर्व्येभिः—पूर्वैः, भवे ऽ र्थे यत् । तृतीया । परेयुः—परा—इण्—लिट्—बहुवचने । उभा राजाना—उभौ राजानौ मदन्ता—मदन्तौ—मदी हर्षे शतृ द्विवचनम् । पश्यासि—पश्यसि—पश्य—लेट् ।

टिप्पणी—यहाँ यम और वरुण को राजा कहा गया है । पुराणों में यमराज प्रसिद्ध ही है । छन्दावस्था में भी इन्हें राजा कहा गया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः) जिस मार्ग से हमारे पुराने पितृगण गये हैं (पूर्व्येभिः पथिभिः प्रेहि-प्रेहि) हे संसार से गमन करने वाले जीव ! आप भी उसी मार्ग से शुभगमन कीजिये । वहां पर (उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्) उन दोनों राजाओं को अमृत के अन्न से तृप्त होते हुए आप देखेंगे, उनमें से एक तो यही यमराज हैं और दूसरे महाराज वरुण हैं ।

८—

संगच्छस्व पितृभिः सं यमेन—

इष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।

हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि

संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

पद-पाठः—सम् । गच्छस्व । पितृभिः । सम् । यमेन । इष्टापूर्तेन । परमे । विऽओमन् । हित्वाय । अवद्यम् । पुनः । अस्तम् । आ । इहि । सम् । गच्छस्व । तन्वा । सुऽवर्चाः ।

संस्कृत-व्याख्या—(संगच्छस्व पितृभिः परमे व्योमन्) हेजिगमिषो जीव ! त्वं परमे उत्कृष्टे व्योमनि तृप्तिप्रदे स्थाने स्वपितृभिः सहानन्द मनुभवन् संगच्छस्व । इष्टापूर्तेन श्रुतिसम्पादितेन स्मृतिप्रतिपादितेन च दानफलेन रक्षितः सन् संगच्छस्व । त्त्र च (अवद्यं हित्वाय अस्तं पुनः एहि) समग्रपापमलान् दूरीकृत्य प्रक्षालित शरीरः सन् पुनः इच्छितं शरीररूपं गृहं प्राप्नुहि । अथ च (तन्वा सुवर्चाः) सुवर्चसा तेजस्विना शरीरेण युक्तः पुनरानन्दममान् भोगान् स्वीकुरु ।

व्याकरणम्—इष्टापूर्तेन = इष्टेन पूर्तेन च कर्मणा । दीर्घः । व्योमन्—व्योमनि । विभक्तिलोपश्छान्दसः । हित्वायओहाक् त्यागे क्त्वा—हित्वा, यकारोपजनश्छान्दसः । सुवर्चाः सुवर्चसा—तृतीया । छान्दसो लोपः । अस्तम्—गृहम्, अस्यते: ।

टिप्पणी—इष्टापूर्त का अर्थ राथ ने इच्छाओं की पूर्ति लिखा है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे यम की ओर उन्मुख जीव ! (संगच्छस्व पितृभिः) अपने पितृ-पितामहों के साथ (परमे व्योमनि) तृप्तिप्रद स्थानों में सुख-शान्ति का अनुभव करते हुए जाइये । (इष्टापूर्तेन संगच्छस्व) अपने पूर्व रूप शुभ संकल्पों को पूर्ण करने वाले कर्मों के साथ तथा दान आदि इष्ट के साथ सदा सुरक्षित रहते हुए आप अनुगमन करें । (हित्वाय अवद्यं पुनः अस्त मेहि) समग्र पाप रूप मलों का

प्रक्षालन करके पुनः इच्छित शरीर रूपी गृह को प्राप्त करें तथा (तन्वा सुवर्चाः) अपने तेजस्वी शरीर से पुनः उत्कृष्ट कर्म करके स्वर्ग लोक की आनन्ददायक प्राप्ति करें।

६— अपेत वीत वि च सर्पतातो—

ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।

अहोभिरद्भिरक्तुभि र्व्यक्तं

यमो ददात्यवसानं यस्मै ॥६॥

पद-पाठः—अप। इत। वि। इत। वि। च। सर्पत। अतः। अस्मै। एतम्। पितरः। लोकम्। अक्रन्। अहः ऽ भिः। अद् ऽ भिः। अक्तु ऽ भिः। वि ऽ अक्तम्। यमः। ददाति। अव ऽ सानम्। अस्मै ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पिशाचादयः! (अपेत वीत वि सर्पत अतः) इतः प्रमृज्यमानदहनस्थानात् यूयं अपेत अपगच्छत, वीत विशेषतया इत गच्छत। वि सर्पत च। इदं स्थानं व्यक्तवा दूरं पृथक् भवत। (अस्मै एतं पितरो लोकम् अक्रन्) अस्मै परित्यक्तदेहाय पुरुषाय एतं लोकम् इदं दहन स्थानं पितरः अक्रन् कृतवन्तः। यमस्याज्ञया सम्पादितवन्तः। यमो ऽपि (अहोभिः अद्भिः अक्तुभिः) दिनैः अभ्युक्षण जलैः रात्रिमिश्य व्यक्तम् कालजलादिभिः शोधितम् दहनस्थानयस्मै मृताय पुरुषाय ददाति दत्तवान्।

व्याकरणम्—अक्रन्—कृ लुङि बहुवचने छान्दसः प्रयोगः, अकुर्वन् व्यक्तम्—विपूर्वस्य अञ्जू + क्तः। अक्तुभिः रात्रिभिः अनक्ति सिञ्चत्यवश्यायेन। अवसानम्—अवपूर्वस्य षो ऽन्तकर्मणि ल्युट्।

हिन्दी-व्याख्या—(अपेत वीत विसर्पत अतः) हे पिशाचआदि! तुम सब यहाँ से दूर हटो। (अस्मै एवं पितरो लोकम् अक्रन्) इस परित्यक्त शरीर वाले देही के के लिए इस दहन-स्थान को पितरों ने संगत किया है। यम की ही आज्ञा से इस दहन-स्थान का निर्माण हुआ है। यम ने भी (अहोभिः अद्भिः अक्तुभिः) अपने दिवस,

जन तथा विश्रामदायिनी रात्रियों के द्वारा (अवसानम् अस्मै ददातु) इस मृत पुरुष के लिए शान्ति प्रदान करें ।

१०—

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ

चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।

अथा पितॄन् सुविदत्राँ उपेहि

यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०॥

पद-पाठः—अति । द्रव । सारमेयौ । श्वानौ । चतुः ऽ अक्षौ । शबलौ । साधुना । पथा । अथ । पितॄन् । सु ऽ विदत्रान् । उप । इहि । यमेन । ये । सध ऽ मादम् । मदन्ति ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—(एतौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ श्वानौ अति द्रव साधुना पथा) हे अग्ने ! इमं प्रेतं यौ श्वानौ प्रेतस्य बाधकौ तौ अतिक्रम्य परित्यज्य साधुना समीचीनेन मार्गेण द्रव गच्छ नय । कीदृशौ श्वानौ सारमेयौ सरमा देवशुनी तस्याः पुत्रौ । चतुरक्षौ उपरिभागे ऽपि नयनद्वयं ययोः, पुनः कीदृशौ श्वानौ शबलौ कर्बुरवर्णौ । (अथ पितॄन सुविदत्रान् उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति) अनन्तरं ये पितरः यमेन सह सहर्षं मदन्ति आनन्दं लभन्ते तान् सुविदत्रान् शोभनज्ञानान् पितॄन् उपेहि प्राप्नुहि ।

व्याकरणम्—सारमेयौ—सरमाया अपत्यं पुमान्, ढक् । द्विवचनम् । सुविदत्रान्=शोभनं विदत्रं ज्ञानं येषां ते सुविद्रताः, तान् । सधमादम्—सह माद्यम् । हकारस्य धकारः छान्दसः । द्रव—द्रुधातो र्लोटि । मध्यमपुरुषैकवचने ।

टिप्पणी—मिश्र के प्राचीन पिरामिडों में भी ऐसे कुक्कुरों का चित्र मिलता है जो मृतक के बाहर रक्षक के रूप में सावधान रहते हैं । अवेस्ता में भी चार आंखों वाले कुत्ते का वर्णन मिलता है ।

मैक्डानल ने 'सुविदत्रान्' का अर्थ दानशील और सधमादम् का अर्थ 'उत्तम भोज' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(चतुरक्षौ शवलौ सारमेयौ श्वानौ अतिक्रम्य साधुना प[थ] द्रव) हे अग्ने ! इन चार आंखों वाले चितकबरे सारमेय (सरमा के पुत्र) कुत्तों [से] बचाकर भले मार्ग से इस मृतक पुरुष को ले जाना। 'अथ' इसके अनन्तर (यमेन [ये] सधमादं मदन्ति) जो अङ्गिरा आदि पितर यम के साथ आनन्द-भोग करते हैं (तान् सुविदत्रान् पितॄन् उपेहि) उन पवित्र ज्ञान वाले अङ्गिरा पितरों के साथ परम सुख को प्राप्त करो।

११—

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ

चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।

ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्

स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥

पद-पाठः—यौ । ते । श्वानौ । यम । रक्षितारौ । चतुःऽअक्षौ पथिरक्षी इति पथिरक्षी । नृऽचक्षसौ । ताभ्याम् । एनम् । परि देहि । राजन् । स्वस्ति । च । अस्मै । अनमीवम् । च । धेहि ।

संस्कृत-व्याख्या—हे राजन् यम ! (यौ ते श्वानौ) यौ ते श्वानौ विद्येते (ताभ्यामेनं परिदेहि) ताभ्यां रक्षणार्थमेनं प्रेतं परिदेहि प्रयच्छ । कीदृशौ श्वानौ (रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ) यौ यमगृहस्य रक्षकौ चतुरक्षौ नयनचतुष्ट[य]युक्तौ पथिरक्षी मार्गस्य द्रष्टारौ नृचक्षसौ नृभि र्नेतृभिः मनीषिभिः ख्याप्यमानपौरुषौ श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासाभिज्ञाः पुरुषास्तौ प्रख्यापयन्ति । (स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि) ताभ्यामित्थं श्वभ्यां दत्वाऽस्मै प्रेताय स्वस्ति शोभनमस्तित्वं क्षेमं च सम्पादय, अथ च अनमीवं च नैरोग्यमपि च धेहि।

व्याकरणम्—पथिरक्षी—इनि—मार्गस्य रक्षकौ । नृचक्षसौ—नृभिः ख्याप्यमानौ । नरः चक्षते—असुनि । अनमीवम्—अमीवाया अभावः ।

मैक्डानल ने नृचक्षसौ का अर्थ 'मनुष्यों को देखने वाले' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(यौ ते श्वानौ रक्षितारौ ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्) हे राजन् ! यम जो आपके द्वार-रक्षक कुत्ते हैं, रक्षा के लिए इस प्रेत के निमित्त उन्हें

दीजिये। ये कुत्ते (चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ) चार आँखों वाले, मार्गद्रष्टा वेद-स्मृति-पुराणों के विद्वान पुरुषों के द्वारा ख्यापित हैं। (स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि) इस प्रकार अपनी रक्षा में ही इस प्रेत पुरुष को लेकर इसके लिए अस्तित्व की चिन्ता कीजिये तथा ऐसा कीजिये जिससे कि त्रिविध तापों से दूर यह पुरुष पुनः शान्ति और आनन्द के अस्तित्व को प्राप्त कर सके।

१२—

उरुणसा वसुतृपा उदुम्बलौ

यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।

तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय

पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥

पद-पाठः—उरु ऽ नसौ। असु ऽ तृपौ। उदुम्बलौ। यमस्य। दूतौ। चरतः। जनान्। अनु। तौ। अस्मभ्यम्। दृशये। सूर्याय। पुनः। दाताम्। असुम्। अद्य। इह। भद्रम्।

संस्कृत-व्याख्या—(यमस्य दूतौ जानान् अनु चरतः) यमस्य दूतौ सम्बन्धिनौ जनान् अनु प्राणिनः प्रति लक्ष्यीकृत्य अबाधगत्या विचरतः। तौ श्वानौ कीदृशौ? उरुणसौ दीर्घनासिकायुक्तौ असुतृपौ परकीयैः प्राणैः स्तृप्यन्तौ उदुम्बलौ उरु बलौ बलयुक्तौ (तौ उभौ दूतौ दृशये सूर्याय) सूर्यस्य दर्शनार्थम् अद्य भद्रम् असुं प्राणं पुनरस्मभ्यं दाताम् दद्यास्ताम्।

व्याकरणम्—उरुणसौ उरू विस्तीर्णे नासिके ययोः। तौ। असुतृपौ—असुभिः तृप्यतः—असु + तृप + क्विप्। द्विवचने। उदुम्बलौ—उरु बलं ययोस्तौ। रेफस्य दकारो मुमागमश्च। दृशये—दृश + कि = चतुर्थी। दाताम्—दत्तामिति स्थाने प्रयोगः।

मैक्डानल ने 'जनाँ अनु' का अर्थ किया है मनुष्यों के बीच में। भद्रमसुम् का अर्थ किया है—श्रेष्ठ जीवन। पीटर्सन ने उदुम्बलौ का अर्थ 'कृष्ण वर्ण वाले' किया है।

'पुनर्दाताम्'—यह कहकर पुनर्जन्म की सिद्धि को प्रामाणिक आधार दिया गया है।

हिन्दी-व्याख्या—(यमस्य दूतौ चरतो जनान् अनु) मनुष्यों को लक्षित करके यम के ये दोनों दूत निर्बाध गति से विचरते रहते हैं। ये दूत (उरुणसो असुतृपा उदुम्बलो) लम्बी नाक वाले, प्राणियों के प्राणों से तृप्ति पाने वाले और महान् बलशाली हैं। (दृशये सूर्याय) सूर्य भगवान् के रमणीय दर्शन के निमित्त वे (अस्मभ्यम् असुं भद्रम् अद्य पुन दाताम्) हमें प्राणप्रद शक्ति से सम्पन्न करें जिससे कि हम पुनः जीवन का नव संचार पा सकें।

१३—

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।

यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्नि दूतो अरङ्कृत ॥१३॥

पद-पाठः—यमाय। सोमम्। सुनुत। यमाय। जुहुत। हविः। यमम्। ह। यज्ञः। गच्छति। अग्नि ऽ दूतः। अरम् ऽ कृतः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे ऋत्विजः! यमाय यममेव देवं लक्ष्यीकृत्य सोमं सुनुत सोममभिषुणुत! यमार्थं च हवि र्जुहुत। अग्निरेव दूतस्थानीयो यस्मिन् सोऽग्निदूतः 'अग्नि र्हि देवानां दूत आसीत्'। इत्यन्यत्राप्याम्नातम्। अरंकृतः बहुद्रव्यैरलङ्कृतस्तादृशो यज्ञो यमं ह यममेव प्राप्नोति।

व्याकरणम्—सुनुत—'षुञ् अभिषवे' लोट् मध्यमपुरुषैकवचने। अरंकृतः अलङ्कृतः। अरम्+कृ+क्त।

मैकडानल ने अरंकृतः का अर्थ 'भली प्रकार किया गया' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे ऋत्विग्—गण! आप लोग यम के लिए ही सोम का सम्पादन कीजिये। (यमाय जुहुत हविः) और नाना प्रकार के हवि से यम को ही उद्देश्य मानकर हवन कीजिये। अग्नि रूप दूत से अलङ्कृत तथा विविध प्रकार की सामग्री से सुसज्जित यज्ञ यम को ही प्राप्त होता है।

१४—

यमाय घृतवद्धवि र्जुहोत प्र च तिष्ठत।

स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

पद-पाठः—यमाय । घृत ऽ वत् । हविः । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत । सः ।
देवेषु । आ । यमत् । दीर्घम् । आयुः । प्र । जीवसे ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या—(यमाय घृतवद् हवि जुहोत) हे ऋत्विजः ! यूयं पुरोडाशा हविषा यमाय घृतवद् घृतेन संयुक्तं च हवि र्जुहुत । (प्र च तिष्ठत) तमेव लक्षीकृत्य उपतिष्ठध्वं च । (स नो देवेषु प्रजीवसे दीर्घमायुः आ यमत्) देवेषु श्रेष्ठतमः सः यमो देवः प्रजीवसे उत्कृष्टजीवन प्राप्तये नोऽस्माकं दीर्घमायुः आयमत् यच्छतु ।

व्याकरणम्—प्रतिष्ठत—प्र + स्था + लोट् । मध्यम पुरुष बहुवचने । आ यम्—लोट्—आयच्छतु । प्रजीवसे - तुमुनर्थे असे प्रत्ययः । प्रजीवनाय ।

पीटर्सन ने 'प्रतिष्ठत' का अर्थ निकट पहुंचना । मैक्डानल ने घृतवत् का घृत सम्पन्न किया है ।

हिन्दी व्याख्या - हे ऋत्विक् लोगों ! आप (यमाय) यम देवता के लिये (घृतवद् हवि) घृत से सम्पन्न आहुति देकर प्रसन्न करें । (प्र च तिष्ठत) यम के ही उपासना करें । (स नो देवेषु) वही हमारे देवों में श्रेष्ठतम देव हैं । (दीर्घम् आयुः प्रजीवसे स नो आ यमत्) वही प्रसन्न होकर श्रेष्ठ जीवन तथा दीर्घायुष्य प्रदान करते हैं ।

१५- यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ।।१५।।

पद-पाठ—यमाय । मधुमत् ऽ तमम् । राज्ञे । हव्यम् । जुहोतन । इदम् ।
ऋषिभ्यः । पूर्व ऽ जेभ्यः । पूर्वेभ्यः । पथिकृद्भ्यः ।।१५।।

संस्कृत-व्याख्या—हे ऋत्विजः ! (यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन) अतिमधुरं पुरोडाशारिकं हव्यं जुहोतन जुहुत । (पूर्वेभ्यः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्यः इदं नमोऽस्तु) पूर्वजेभ्यः सृष्ट्यादा वुत्पन्नेभ्योऽस्मत्पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः जीवनसम्पादकेभ्यः ऋषिभ्यः श्रद्धया इदं नमो भवतु । यैरस्माकं जीवनमार्ग कृतः ।

व्याकरणम्—मधुमत्तमम्—मधु + मतुप् + तमप् । हव्यम्—हु + यत्।
जुहोतन—जुहुत छन्दसि जुहोतन । पथिकृद्भ्यः—पथिन् + कृ + क्विप् ।

हिन्दी-व्याख्या--(यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन) हे ऋत्विग्-गण!
आप राजा यम के लिए अतिशय मधु हव्य-सामग्री से हवन करें। (पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्य इदं नमोऽस्तु) सृष्टि के आदि से ही हमारे मार्ग का प्रदर्शन
करने वाले उन श्रेष्ठ ऋषियों हमारे पूर्व-पूर्वजों को हमारा नमन स्वीकार हो
जिन्होंने हमारी पवित्र एवं प्रसिद्ध जीवन-प्रणाली निर्धारित की है।

१६- त्रिकद्रुकेभिः पतति षड्वीरेकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥

पद-पाठः—त्रि ऽ कद्रुकेभिः पतति । षट् । उर्वीः । एकम् । इत् । बृहत् ।
त्रि ऽ स्तुप् । गायत्री । छन्दांसि । सर्वा । ता । यमे । आहिता ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—कौमारं यौवनं जरा इति त्रिकद्रुकान् । (पतति) तान्
प्रत्यङ्ग भावाय संरक्षणार्थं च पतति । अथवा त्रिकद्रुका यागविशेषा ज्योतिरायुर्गौ-
रिति ख्याताः, तान् यमः प्राप्नोति । षडुर्वीः षट्पदी षड्बाधा तद्यथा—उत्पन्नस्य
क्षुत्पिपासे प्ररूढस्य शोकमोहौ वृद्धस्य जरामृत्यू—ता एताः षडुर्वीरिति प्रसिद्धाः
अथवा षण्मा उर्वीरंहसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चापश्चौषधयश्चोर्क् च सूनृता चेति
तत्र एक भित् बृहत् महज्जगत् परिपालनीयं यमश्च प्रतिपालनीयः अथ च यानि
त्रिष्टुप् गायत्र्यादीनि छन्दांसि सन्ति तानि सर्वाणि (सर्वा ता यम आ हिता) यमे एव
आहितानि स्तुतित्वेन तत्रैव अवस्थितानि सन्ति ।

व्याकरणम्—त्रिकद्रुकेभिः–त्रि + कद्रु + कन् । तृतीया बहुवचने । आ हिता
= आ + धा + क्त । आ हितानि । सर्वा ता आ हिता = सर्वाणि तानि आ हितानि ।

मैक्डानल ने त्रिकद्रुक का अर्थ किया है—सोम योग के तीन दिन । यही
अर्थ ग्रिफिथ और पीटर्सन ने भी किये हैं । ग्रिफिथ ने इसे 'अभिप्लोव' भी कहा है ।
षडुर्वी का अर्थ गेल्डनर और मैक्डानल ने तीन स्वर्ग लोक और तीन पृथ्वी लोकों
की गणना की है ।

हिन्दी-व्याख्या–(त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीः एकमित् बृहत्) कुमारावस्था,
यौवनावस्था तथा वृद्धावस्था को त्रिकद्रुक कहा गया है । अथवा-ज्योति-आयु और

जो याग विशेष हैं उन्हें त्रिकद्रुक कहा गया है। षडुर्वी को षट्पदी भी
है—क्षुधा—पिपासा, क्रोध—मोह, जरा और मृत्यु; अथवा द्यौ - पृथिवी,
—ओषधि, उर्क और सूनृता; ये षट् भूमियाँ कही गयी हैं। इनसे युक्त
एक संसार परिपालन के योग्य है अथवा यह अधिष्ठाता रूप में विराजमान
की उपासना के योग्य हैं। त्रिष्टुप्—गायत्री आदि छन्द सब कुछ यम के ही
अंत सन्निहित रहते हैं। वही सुख-दुःख का एक मात्र प्रशासक अधिष्ठाता है।

१०-३४

अक्ष-सूक्तम्

ऋषि—कवष ऐलूषः। ऋक्षो वा मौजवान्। देवता—अक्ष-- कृषि छन्द —
। ७ जगती।

प्रावेपामा बृहतो मादयन्ति

प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो-

बिभीदको जागृवि र्मह्यमच्छान्॥१॥

पद-पाठः—प्रावेपाः। मा। बृहतः। मादयन्ति। प्रवाते ऽ जाः। इरिणे।
ताः। सोमस्य ऽ इव। मौज ऽ वतस्य। भक्षः। बि ऽ भीदकः जागृविः।
अच्छान् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—(एते बृहतो मा मादयन्ति) एते बृहतो बिभीतकस्य फल-
भूताना अक्षा मां मादयन्ति। कीदृशा अक्षाः (प्रावेणः, इरिणेवर्वृतानाः)

प्रावेपाः प्रवेपिणः कम्पनशीलाः इरिणे ववृ ताना: स्फारे देशे वर्तमानाः । (प्रवातेजाः) प्रवणे देशे जाताः । एते हर्षयन्तो मां मोहाकुलं विदधति । (जागृविः विभीदकः) जयपराजयाभ्यां हर्ष— शोकदानेन विभीदको विभीतकविकारोऽक्षो (मह्यम् अच्छान्) मह्यम् अचच्छदत् अत्यर्थं मादयति । सोमस्येव मौजवतस्य मुजवति पर्वते जातो मौजवतः, तत्र हि उत्तमसोमोत्पत्तिः । भक्षः पानं देवान् यजमानांश्च मादयति, तद्वत् ।

व्याकरणम्—जागृविः—जागृ + विन् । अच्छान् = अचच्छदत् । मौजवतस्य मुजवति जातस्य ।

टिप्पणी – मैक्डानल ने जागृवि का अर्थ स्फूर्तिदायक और अच्छान् का अर्थ 'प्रसन्नकारी' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृ तानाः) बृहत् विभीतक के फलरूप में विद्यमान प्रवातेजाः पवन-प्रकम्पित विस्तीर्ण भूमि में उत्पन्न ये अक्ष मुझे मद-मत्त बना रहे हैं । जय और पराजय के कारण हर्ष-शोक के चढ़ाव-उतार में यह द्यूत (जागृवि) सदा ही मुझे जगाता रहता है और अच्छान् = सदा ही मूढ-मद से आच्छादित करता रहता है (सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः) मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न उत्कृष्ट सोम के समान यह अक्ष (=द्यूत) मुझे सोम-पान के समान ही हर्षोत्कर्ष में डुबाता रहता है ।

४| २– **न मा मिमेथ न जिहीड एषा**

शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।

अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो-

रनुव्रतामप जायामरोधम् ॥२॥

पद-पाठः—न । मा । मिमेथ । न । जिहीडे । एषा । शिवा । सखिऽभ्यः । उत । मह्यम् । आसीत् । अक्षस्य । अहम् । एकऽपरस्य । हेतोः । अनुऽव्रताम् ।

अप । जायाम् । अरोधम् ।।२।।

संस्कृत-व्याख्या—(एषा मदीया जाया न मा मिमेथ न जिहीडे) इयं मदीया धर्मानुरागिणी पत्नी न कदापि मां प्रति मिमेथ उल्लंघनं कृतवती नैव च जिहीडे प्रियाकांक्षायां संकोचं कृतवती। अपि चेयं (शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्) मम सन्हचरेभ्यो मह्यं चातीवोदारहस्ता प्रसन्नाऽनुकूला चासीत्। (अक्षस्याहम् एकपरस्य हेतोः) स एवंविधोऽपि प्राप्तसमग्रसुखोऽपि शुभजानिरपि एकेनैव अक्ष प्रधानेन दोषेण दूषितः सन् (अनुव्रतां जायामप अरोधम्) अनुव्रतां शिवामपि तादृशीं पत्नीं दुर्भाग्य-परवशां कृतवानस्मि।

व्याकरणम्—एकपरस्य—एकः परः प्रधानं यस्य तस्य।

टिप्पणी—मैक्डानल ने मिमेथ का अर्थ तर्जना देना तथा जिहीडे का अर्थ कुपित होना किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(एषा मदीया जाया न मिमेथ न जिहीडे) यह मेरी धर्मानुरागिणी पत्नी कभी भी मेरी बात का उल्लंघन नहीं करती थी और न तो प्रियकारी कार्य में किसी प्रकार का संकोच ही करती थी। (शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्) और मेरे लिये तथा मेरे मित्रों के लिये सदैव सोत्साह तथा प्रसन्न रहती थी पर बड़े खेद की बात है कि केवल एक जुवे के ही दोष के कारण आज मैं अपनी ऐसी अनुकूल धर्मपरायण पत्नी से भी बिछुड़ गया हूं (अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः अनुव्रताम् जायाम् अप अरोधम्।

३— **द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि**

न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।

अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य

नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ।।३।।

पद-पाठः—द्वेष्टि । श्वश्रूः । अप । जाया । रुणद्धि । न । नाथितः । विन्दते

मंडितारम् । अश्वस्य ऽइव । जरतः । वस्न्यस्य । न । अहम् । विन्दामि ।

कितवस्य । भोगम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—(द्वेष्टि श्वश्रूः) जायाया माता खल्वपि द्वेषभावमाचरति (जाया अप रुणद्धि) गृहाभिमुखमागच्छन्तं मां दृष्ट्वा सा तादृशी जायापि द्वारपिधानं करोति। (न नाथितो विन्दते मंडितारम्) परयन्त्रप्रपीडितः कितवो न कुतोऽपि सुखयितारं सहायकमाप्नोति। (जरतो वस्न्यस्य अश्वस्य इव कितवस्य भोगं नाहं विन्दामि) मूल्यपतितस्य वृद्धाश्वस्य इव कितवस्य न क्वापि भोगसुखं खलु जानाम्यहम्। सर्वथा निकृष्टतां गतः कितवः खलु भवति वृद्धाश्व इव।

व्याकरणम्—वस्न्यस्य—वस्नं मूल्य तदर्हति वस्न्यस्य। नाथितः = याचितः, उपतप्त्यः।

टिप्पणी – मैक्डानल ने 'अपरुणद्धि' का अर्थ 'भगा देती है' और वस्न्य का अर्थ 'विक्रयार्थ ले जाया गया' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(द्वेष्टि श्वश्रूः) पत्नी की मां भी जुवारी से घृणा करने लगती है और (जाया अप रुणद्धि) पत्नी भी आते हुए देखकर घर के क्विाड़ बन्द कर लेती है। ऋणदाताओं की ओर से (न नाथितो विन्दते मंडितारम्) पीड़ित होने पर कहीं भी सुखदाता सहायक उसे नहीं मिलता। जुवारी की दशा उस घोड़े के सदृश है जो कभी बहुत मूल्यवान् आंका जाता था पर (अश्वस्य इव जरतो वस्न्यस्य) आज बूढ़ा हो चला है और अब उसका मूल्य वृद्धत्व के कारण घट गया है। जुवारी भी जूवे में हार जाने के कारण जीवन के समस्त मूल्यवान् क्षणों से हार जाता है। (नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्) अब रक्खा ही क्या है, कहीं द्यूतकर के लिये भोग-सुख की कल्पना मैं नहीं कर सकता।

77 84

४- अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य

यस्यागृधद् वेदने वाज्य१क्षः।

पिता माता भ्रातर एनमाहु-

र्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥४॥

पद-पाठः—अन्ये । जायाम् । परि । मृशन्ति । अस्य । यस्य । अगृधत् । वेदने । वाजी । अक्षः । पिता । माता । भ्रातरः । एनम् । आहुः । न जानीमः । नयत । बद्धम् । एतम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या— (यस्य वेदने वाजी अक्षः अग्रधत्) यस्य कितवस्य वेदने धनमभिलक्ष्य वाजी बलवान् अक्षः अगृधत् गृद्धदृष्टिं निक्षिपति तस्य (अन्ये कितवा अस्य जायां परिमृशन्ति) वस्त्रकेशाद्याकर्षण दुर्भाषणादिना परिसृशन्ति पराभवदृष्टया संस्पर्शं कुर्वन्ति । न तावदेतावदेव अपितु (पिता माता भ्रातर एन माहु र्न जानीमः नयत एतं बद्धम) अनुकम्पनशीलः पिताऽपि स्नेहैकहृदया मातापि सोदर्य प्रीतिपुष्टा भ्रातरो ऽपि जल्पन्ति 'न वयमेनं जानीमः, यत्र कुत्रचिदिच्छथ बद्धमेनं तत्र-तत्र नयत ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने वाजी का अर्थ 'विजयी' किया है तथा परिमृशन्ति का अर्थ—'आलिंगन करते हैं' ।

हिन्दी व्याख्या—(यस्य वेदने वाजी अक्षः अगृधत्) जिसके धन की ओर लालच भरी गृद्धदृष्टि से बलवान् जुआ निहारता है उस जुवारी की (जायाम्) पत्नी को (अन्ये परिमृशन्ति) दूसरे जुवारी वस्त्र-केशाकर्षणा आदि कष्ट से अपमान-पूर्वक संस्पर्श करते हैं । अन्य की तो बात ही क्या है ? (पिता, माता भ्रातर एनम् आहुः) स्नेहसौजन्य की मूर्ति बने पिता भी, माता भी और भ्राता भी कह देते हैं (न जानीम्ः) हम इसे नहीं पहचानते । जहाँ चाहो (नयत बद्धमेतम्) इसे बाँध कर ले जाओ । इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ।

५—

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः

परायद्भ्यो ऽव हीये सखिभ्यः ।

न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतं-

एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥

पद-पाठः—यत् । आ ऽ दीध्ये । न । दविषाणि । एभिः । परायत् ऽ भ्यः । अव । हीये । सखि ऽ भ्यः । नि ऽ उप्ताः । च बभ्रवः । वाचम् । अक्रत । एमि । इत् एषाम् । निः ऽ कृतम् । जारिणी ऽ इव ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(यद् आदीध्ये) यदा—यदाऽहंध्यायामि चिन्तापरवशो भवमि (न दविषाणि एभिः) नाहं पुनः अक्षैः सह देविष्यामि । अथ च (परायद्भ्यः सखिभ्यः अवहीये) स्वयमेव परागच्छद्भ्यः सखिभ्यः अवहीयेऽवहितो भविष्यामि। पृथग्भूतः सन् स्थास्यामि परं (एते बभ्रवः अक्षाः न्युप्ताः सन्तः वाचम् अक्रत) बभ्रु-वर्णाः कितवैराक्षिप्ता अक्षाः शब्दं कुर्वाणा माम् आह्वयन्तीव दरीदृश्यन्ते । परवशोऽहं (जारिणी इव) स्वच्छन्दचारिणी योषिदिवाहं व्यसनाभिभूतः सन् एमीत् गच्छाम्येव एषामक्षाणां निष्कृतं स्थानम् ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने 'इत्' का अर्थ सीधा किया है । एमीत् मैं सीधे वहाँ चला जाता हूं ।

हिन्दी-व्याख्या—(यद् आदीध्ये) मैं जब-जब चिन्तन करता हूं कि (न दविषाणि एभिः) इन पासों से अब नहीं खेलूंगा और (परायद्भ्यः सखिभ्योऽवहीये) इस मित्र मण्डली से दूर ही रहूंगा । पर विडम्बना देखिये कि (बभ्रवः न्युप्ताश्च वाचम् अक्रत) जब ये भूरे वर्ण वाले शब्द करने लगते हैं तब मैं विवश होकर (एषां निष्कृतं जारिणी इव एमि इत्) इनके स्थान पर स्वच्छचारिणी कुलटा के समान व्यसनाभिभूत होकर चला ही जाता हूं ।

६—

सभामेति कितवः पृच्छमानो-

जेष्यामीति तन्वा ३ शूशुजानः ।

अक्षासो अस्य वितिरन्ति कामं

प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

पद-पाठः—सभाम् एति । कितवः । पृच्छमानः । जेष्यामि । इति । तन्वा । शूशुजानः अक्षासः । अस्य । वि । तिरन्ति । कामम् । प्रति ऽ दीव्ने । दधत । आ । कृतानि ।।६।।

संस्कृत-व्याख्या—(तन्वा शूशुजानः कितवः सभामेति) तन्वा शरीरेण शूशुजानः शोशुचानः कितवः दीप्यमानः पुलकपूर्ण विकसित शरीरः सभां प्राप्नोति । क्व वर्तते विजेता (जेष्यामि इति पृच्छमानः) इतस्ततः पृच्छन् जेष्यामि-जेष्यामि-इत्येव कितवस्य चेतसि संकल्पः । (तत्र प्रतिदीव्ने) प्रतिदेवित्रे कितवाय (कृतानि) देवनोपयुक्तानि कर्माणि (आदधतः) जयार्थं धारयतः (अस्य) कितवस्य (अक्षासः कामं वितिरन्ति) अक्षाः कामं संकल्पं संवर्धयन्तियेन उल्लासं तन्वन्नसौ क्रीडत्येव न विरतिं गच्छति ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने 'तन्वा शूशुजानः' का अर्थ किया है 'लड़खड़ाता हुआ' । कामं वितिरन्ति=इच्छानुसार पासे पड़ते हैं । कृतानि का अर्थ किया है—भाग्यशाली पासों का पड़ना ।

हिन्दी-व्याख्या—(तन्वा शूशुजानः पृच्छमानः कितवः) द्यूतकर धन की गर्मी में दमकता हुआ—मेरा मित्र कहाँ गया—ललकारता हुआ (सभाम् एति) जूवे के रंग-मंच पर उतरता है (जेष्यामि इति) साहस उसे उत्तेजित करता रहता है, जयशील भावना उसे उकसाती रहती हैं 'आज तो जीतूंगा ही ।' (=क्यों नहीं, मानों ओझे की मुद्रिका पहन आया है !) (प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि) उस समय दूसरे जुवारी के साथ खेलते-खेलते (अक्षासः अस्य कामं वितिरन्ति) इसकी विजयिनी इच्छा को पासे और भी उन्मादित करते हैं । वह इस उन्माद का पिंजर-पंछी बन जाता है ।

७-

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो-

नि कृत्वानस्तपना स्तापयिष्णवः ।

कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो

मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा ।।७।।

पद-पाठः—अक्षासः । इत् । अङ्कुशिनः । नि ऽ तोदिनः । नि ऽ कृत्वानः । तपनाः । तापयिष्णवः । कुमार ऽ देष्णाः । जयतः । पुनः ऽ हनः । मध्वा । सम् ऽ पृक्ताः । कितवस्य बर्हणा ॥ ७॥

संस्कृत-व्याख्या—अक्षास इत् अंकुशिनः) एते अक्षा अंकुशवन्तः (नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः) कितवगजस्योपरि अंकुशा इव नितोदिनः व्यथाकारकाः कशा इव, निकृत्वानः निकर्तनशीलाः तापयिष्णवः समस्तमेव कुटुम्बं संतापयुक्तं विदधति तपना दहनशीलाः । (कुमारदेष्णाः) जयशीलस्य कितवस्य गृहे जातवत्सोत्सवाः खल्वक्षा धनवृद्धया कुमारदायिनो भवन्ति परं (जयतः पुनर्हणः) जयिनोऽपि कितवस्य पुनः नाशनशीलाः (कितवस्य बर्हणा मध्वा संपृक्ताः) बर्हणा सर्वस्व हरणेनापि एते मधुना संपृक्ताः सन्ति । विषकुम्भा पयोमुखाः ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने अंकुशिनः का अर्थ नोकदार किया है । निकृत्वानः= प्रवंचना करने वाले और बर्हणा का अर्थ इन्द्रजाल की शक्ति से किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(अक्षासः इत् अंकुशिनः नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः) ये जूवे निश्चय ही जुवारी रूपी हाथी के लिए अंकुश हैं, जुवारी रूपी घोड़ के लिये क्षण-मात्र को उल्लसित करने वाले चाबुक हैं । ये हृदय पर चलने वाले तीक्ष्ण कर्त्तनशील आरे हैं और निरन्तर दाह देने वाले ठण्डे अंगारे हैं, सारे कुटुम्ब को झुलसा देने वाले प्रचण्ड आग हैं । (कुमारदेष्णाः जयतः पुनर्हणः) जीतने वाले जुवारी के लिये ये पासे पुत्रोत्सव-सा आनन्द देते हैं और धन की अज्ञात वृद्धि से पुत्रानन्द का भी सम्पादन करते हैं परन्तु अन्त में पुन र्नाश ही करते हैं । सर्वस्व (मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा) हरण कर लेने पर भी ये पाशें मधु से संसृष्ट जान पड़ते हैं—मधु से पूर्ण गरल-घट जैसे ।

८—

त्रिपञ्चाशः क्रीडति व्रात एषां

देव इव सविता सत्य धर्मा ।

उग्रस्य चि न्मन्यवे ना नमन्ते

राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

पद-पाठः—त्रि । पंचाशः । क्रीडति । व्रात । एषाम् । देवः ऽ इव । सविता । सत्य ऽ धर्मा । उग्रस्य । चित् । मन्यवे । न । नमन्ते । राजा चित् । एभ्यः । नमः ऽ इत् । कृणोति ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(एषां व्रातः त्रिपंचाशः क्रीडति) एषाम् अक्षाणां संघः त्रिपंचाशः आस्फारे क्रीडति विहरं तनुते (सत्य धर्मा सविता देव इव) सत्यधारकः सर्वप्रेरकः सूर्यदेव इव ।। (उग्रस्य चित् मन्यवे ना नमन्ते) एते अक्षाः क्रूरस्यापि कोपाय न नम्रा भवन्ति । (राजा चिद् एभ्यो नम् इत् कृणोति) राजा खल्वपि प्रशासकोऽपि यदि कितवसक्त स्तदा सोऽपि एभ्यो नमस्कारमेव करोति । नैते वशवर्तिनः कस्यापि ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्रिपंचाशः=एषां व्रातः क्रीडति देव इव सविता सत्य धर्मा) सत्य के धारक सूर्य भगवान् के समान इन जुवारियों के ५३ तिरपन लोगों का संघ जुवा में क्रीडा-विहार करता है । (उग्रस्य चित् मन्यवे ना नमन्ते) उग्र कर्कश क्रोधी के भी सामने नहीं झुकते हैं (राजा चिद् एभ्यो नम इत् कृणोति) राजा को भी इनके सामने हाथ जोड़ते ही बनता है । जुवा किसी के वश में नहीं रहता, सबको अपने वश में ही रखता है ।

९—

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति-

अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।

दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः

शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

पद-पाठः— नीचाः । वर्तन्ते । उपरि । स्फुरन्ति । अहस्तासः । हस्त ऽ वन्तम् । सहन्ते । दिव्याः । अङ्गाराः । इरिणे । नि ऽ उप्ताः । शीताः । सन्तः ।

हृदयम् । निः । दहन्ति ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—(नीचा वर्तन्ते) एते निचीनस्थले वर्तमाना अथापि (उपरि स्फुरन्ति) सर्वोपरि चमत्कुर्वन्ति । एते (अहस्तासः खल्वपि हस्तवन्तं सहन्ते) स्वयं खलु हस्तरहिता अथापि पराजयदानेन सिद्धहस्तमपि पुरुषं तिरस्कुर्वन्ति । (दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः) इन्धनरहिते आस्फारे उप्ता एते अक्षा दिव्या विलक्षणाः खलु; (शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति) शीतस्पर्शाः सन्तोऽपि हृदयं निर्दहन्ति, दग्धं कुर्वन्ति ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने—उपरि स्फुरन्ति का अर्थ किया है—ऊपर को उछलते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—(नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति) ये पासे नीचे अक्ष-पट पर लहराते हैं पर नीचे रहते हुए भी ऊपर उछलते हैं । (अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते) बिना हाथ के हैं फिर भी बड़े-बड़े हाथ वालों पर अपने हाथ दिखा देते हैं । (दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः) जुवा के ये पासे बहुत विलक्षण है, ये दिव्य अंगारे हैं जो अक्ष-पट पर फेंके जाते हुए (शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति) शीतल स्पर्श देते हैं पर हृदय को दग्ध कर देते हैं ।

१०—

जाया तप्यते कितवस्य हीना

माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।

ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो-

ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

पद-पाठः—जाया । तप्यते । कितवस्य । हीना । माता । पुत्रस्य । चरतः । क्व । स्वित् । ऋणऽवा । बिभ्यत् । धनम् । इच्छमानः । अन्येषाम् । अस्तम् । उप । नक्तम् । एति ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या— (कितवस्य हीना जाया तप्यते) द्यूतकरस्य पत्नी सर्वथा र्वदभावमापन्ना दैन्यमनुभवन्ती अभावग्रस्ता त्रस्ता सती पीड्यते सन्तप्ता भवति । स्वित् चरतः पुत्रस्य माता खल्वपि) क्व सम्प्रति कथं वा भविष्यतीति चिन्ता-ा तस्य माता खल्वपि नितरां पीडामनुभवति । (धनमिच्छमानश्च ऋणावा यत्) अक्षपराजयाद् इतस्ततो धनमिच्छन् स ऋणवान् सर्वतो बिभेति । न्येषां चास्तमुपनक्तमेति) रात्रौ च प्राप्तायां धनार्थी च चोरकार्यं कर्तुमन्येषां ं प्रति दत्त दृष्टि र्भवति ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने बिभ्यत् का अर्थ डरता हुआ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या— जुवारी की पत्नी (जाया तप्यते कितवस्य हीना) हीनावस्था अभावग्रस्त होकर निरन्तर पीड़ित रहती है (माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्) की माता भी पुत्र की चिन्ता में व्याकुल रहती है— न जाने इस समय कहां पर गा? (ऋणावा बिभ्यद् धनमिच्छमानः) जूवे में पराजय पाने के कारण ऋण के र से सदा दबा रहता है और धन की इच्छा से (अन्येषाम् अस्तम् उपनक्तम् एति) री करने के लिए अन्य घरों पर दृष्टि डालता रहता है ।

विशेष—ऋणावा = ऋणवान् । अस्तम = गृहम् ।

११—

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापा-

अन्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।

पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्

सो अग्ने रन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

पद-पाठः—स्त्रियम् । दृष्ट्वाय । कितवम् । ततापा । अन्येषाम् । जायाम् । कृतम् । च । योनिम् । पूर्वाह्णे । अश्वान् । युयुजे । हि । बभ्रून् । सः । अग्नेः । न्तै । वृषलः । पपाद ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—(स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप अन्येषां जायां सुकृतं च योनिम्) परनारीं साध्वलङ्कृतां शोभमानां सुभूषितं तस्या गृहं स्वभावमधुरं चतुर विलासं च दृष्ट्वा नितरां संतापं प्राप्नोति। तस्य पत्नी धनाभावादसत्कृता गृहं चाव्यवस्थितं चेति कामयमानः। अयं स एव द्यूतकरः (पूर्वाह्णे, अश्वान् युयुजे हि बभ्रून) यः बभ्रुवर्णान् रमणीयान् अश्वान् पूर्वप्रहरे अक्षपटेऽक्षान् युयुजे स एव सम्प्रति (सोऽग्नेरन्ते वृषलः पपाद; रात्रौ वृषलधर्मा अग्ने निकटे शीत पीडितः समयं गमयति।

टिप्पणी—मैक्डानल ने अश्वान् का अर्थ घोड़े तथा वृषल का अर्थ भिखारी किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्) जुवारी संस्कृत तथा अलंकृत पर नारी को तथा उसके व्यवस्थित घर को देखकर अपनी शोचनीय दशा पर आँसू बहाता है। (पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून) जो दिन के पहले पहर में भूरे वर्ण वाले पासों से क्रीडा-विहार करता था वही अब (सोऽग्नेरन्ते वृषलः पपाद) अग्नि के किनारे धर्महीन होकर रात काट रहा है।

१२—

यो वः सेनानी महतो गणस्य

राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।

तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि

दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

पद-पाठः—यः। वः। सेनाऽनीः। महतः। गणस्य। राजा। व्रातस्य। प्रथमः। बभूव। तस्मै। कृणोमि। न। धना। रुणध्मि। दश। अहम्। प्राचीः। तत्। ऋतम्। वदामि ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—(यो वः सेनानीः महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव) अधुना द्यूतकरः पुनः दृढं संकल्पं प्रथयति, हे अक्ष राजन्! महतो गणस्य यो राजा व्रातस्य चास्य प्रमुखः (तस्मै दश प्राचीः अहं कृणोमि) तस्मै दशभिरंगुलीभिः

युक्तमञ्जललिमहं बध्नामि नेत: परमहं (धना रुणध्मि) द्यूतार्थं धनसंग्रहं करिष्यामि। (तदहमृतं वदामि) सत्यमेव तद् यदहं सम्प्रति निश्चयेन ब्रवीमि।

टिप्पणी—गणव्रातयोर्मध्येऽल्पीयानेव भेद:।

हिन्दी-व्याख्या—(यो व: सेनानी: महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव) हे अक्षाधिराज ! तुम्हारे गण का जो राजप्रमुख है, (तस्मै कृणोमि दश प्राची: अहम्) उसके लिए दश अंगुलियों से युक्त मैं अब अंजली जोड़ रहा हूं। अब बहुत हो चुका। अब आगे जूवे के लिये मैं (न धना रुणध्मि) धनावरोध नहीं करूँगा। (तद् ऋतं वदामि) यह मैं सत्य ही कह रहा हूं। आज से द्यूत कर्म से मैं अपने आपको विरत करता हूं।

विशेष—मैक्डानल ने 'राजा' का अर्थ राजा के तुल्य किया है और रुणध्मि का अर्थ किया है—रोकता हूं।

१३—

अक्षैर्मा दीव्य: कृषिमित्कृषस्व

वित्ते रमस्व बहु मन्यमान:।

तत्र गाव: कितव तत्र जाया

तन्मे विचष्टे सवितायमर्य: ॥१३॥

पद-पाठ:—अक्षै:। मा। दीव्य:। कृषिम्। इत्। कृषस्व। वित्ते। रमस्व। बहु। मन्यमान:। तत्र। गाव: कितव। तत्र। जाया। तत्। मे। वि। चष्टे। सविता। अयम्। अर्य: ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या:—(बहु मन्यमान:) मम वचने विश्वास प्रकटयन् (अक्षै: मा दीव्य:) द्यूत मा कुरु। (कृषिमित् कृषस्व) कृषि मेव कुरु। (वित्ते रमस्व) कृष्यादिना सम्पादिते धने शुभं लभस्व। (तत्र गाव: कितव तत्र जाया) तत्र नियमपूर्वकं सम्पादितायां कृषिक्रियायां गावो विलसन्ति जाया खल्वपि सस्नेहं सुखम् उत्पादयति। (सविताऽयमर्य: तन्मे विचष्टे) सविता सर्वस्य प्रेरक: खलु महेश्वर: अयम् एवं विचष्टे विविधप्रकारेण आख्यापयति।

संस्कृत-व्याख्या—(देवानां नु वयं जाना प्रवोचाम) अदिति र्दाक्षायणी बृहस्पति र्वा ऽऽ दित्योत्पत्तिप्रकारं ब्रूते—वयं देवानाम् आदित्यानां जाना जन्मानि प्रवोचाम प्रवक्तुं प्रवृत्ता भवाम। (विपन्यया) विश्वासार्थं वचनम्, विपन्यया वाचा स्पष्टया व्यवहारदक्षया वाण्या। (उत्तरे युगे) अनन्तरं वर्तमानं (उक्थेषु शस्यमानेषु) यागेष्वनुष्ठीयमानेषु स्तोतारं स्तुवन्तं (यः पश्यात्) यो देवगणः पश्यति।

टिप्पणी—विपन्यया = वि + पन्य + अच् + टाप। तृतीया।

जाना—जन्मानि छान्दसः प्रयोगः।

पश्यात्—पश्यति। लेट् प्रयोगः।

(२) पीटर्सन ने विपन्यया का अर्थ 'चमत्कृत शब्द-चित्र में सुन्दर प्रणाली से कहना' किया है। ग्रिफिथ ने 'ध्वन्यात्मक-वक्रोक्ति-विषय में वर्णन' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—अदिति अथवा बृहस्पति देवोत्पत्ति (आदित्य आदि की) के विषय में कहते हैं (देवानां नु वयं जाना) हम देवों के जन्मों के विषय में (विपन्यया) दक्षतापूर्ण वाणी में (प्रवोचाम) कहने को प्रवृत्त होते हैं। (यः) जो देवों का समूह (उक्थेषु शस्यमानेषु) यागों के अनुष्ठान के समय में (उत्तरे युगे) अनन्तर समय में स्तोतृजनों को (स्तुति करने वाले महापुरुषों को) देखता है।

२—

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्।

देवानां पूर्व्ये युगे ऽसतः सदजायत ॥२॥

पद-पाठः—ब्रह्मणः। पतिः। एता। सम्। कर्मार ऽ इव। अधमत्। देवानाम्। पूर्व्ये। युगे। असतः। सत्। अजायत ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(ब्रह्मणस्पतिः एता कर्मार इव समधमत्) ब्रह्मणः अन्नस्य-पतिः अदितिः एता एतानि देवानां जन्मानि कर्मार इव स्वर्णकार इव स यथा भस्त्रायामग्निमुपधमति तथा अदितिः देवानां प्रज्वलनार्थम् आदिसृष्टौ उदपादयत्। देवानां पूर्व्ये युगे ऽसतः सद् अजायत) अस्मात् कार्यव्यापाररूपात् संसारात् प्राक् नामरूपादिरहिताद् ब्रह्मणः सकाशाद् असद् रूपात् इदं सद् अजायत नामरूपादिकं जगद् अजायत निष्पन्नं जातम्।

टिप्पणी—अधमत्—ध्मा धातो धर्मादेशः। लङ् प्रथमपुरुषैकवचनम्। ब्रह्म = अन्नम्।

(२) पाश्चात्य विद्वान् असत् का अर्थ करते हैं 'जिसकी सत्ता न हो'। सत् का अर्थ करते हैं 'जिसकी सत्ता हो'।

(३) लुडविग ने 'एता' का अर्थ 'इमान् लोकान्' किया है जो उचित नहीं है।

(४) पूर्व्ये युगे का अर्थ ग्रिफिथ ने 'देवताओं के आरम्भिक युग में' तथा पीटर्सन ने 'सर्जना के आरम्भ में' किया है।

(५) तै० उ० २-७ में असत् से सत् की उत्पत्ति तथा छान्दोग्य ६-२-२ में सत् से ही सत् की उत्पत्ति का प्रतिपादन हुआ है। इसका समाधान यह है कि नाम-रूप आदि योजना से शून्य (अव्याकृत-अवस्था) तथा नाम-रूप आदि योजना से युक्त (व्याकृत-अवस्था) अवस्थाओं का यहाँ निदर्शन है।

हिन्दी-व्याख्या—(ब्रह्मणः पतिः) अन्नदाता परमात्मा ने (एता) इन देवों के जन्म-संस्कार को प्रोज्ज्वल बनाने के लिए (कर्मार इव सम् अधमत्) स्वर्णकार के समान (=वह जिस प्रकार भट्टी में अग्नि को धौंकनी से शुद्ध करता है, उसी प्रकार) दीप्त किया। (देवानां पूर्व्ये युगे) इस दिव्य-सृष्टि के आदि में (असतः सत् अजायत) असत् से सत् की उत्पत्ति हुई। असत् से सत् की सृष्टि का अभिप्राय यही है कि यह कार्यरूप में दृष्टिगोचर जगत् पहले अपने कारणरूप जगत् में जिसकी व्याख्या नाम-रूप देकर नहीं हो सकती थी—उस असत् से सत् की सृष्टि हुई।

३—

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।

तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

पद-पाठः—देवानाम्। युगे। प्रथमे। असतः। सत्। अजायत। तत्। आशाः। अनु। अजायन्त। तत्। उत्तानऽपदः। परि ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—(प्रथमे युगे देवानाम्) प्रकृष्टतमे तस्मिन् देवानां प्रथम-सृष्टिप्रसरे तेषामुपादानभूतात् कारणात् (असतः) असत्समानात् स्रष्टुः सद् अजायत देवादिकमुत्पन्नम्। (तद् अनु) आशाः दिशो (अजायन्त) ततोऽनन्तरं च (उत्तानपदः) ऊर्ध्वशाखाः वृक्षा अजायन्त उत्पन्नाः।

टिप्पणी—(१) उत्तानपदः—उत्तानाः पादा येषां ते, उत्तानपदः। ते ह उत्तानाः उच्यन्ते। उत्तान+पद+क्विप्।

(२) असतः सद् अजायत। ततः सतः आशा दिशः, ततश्च वृक्षादिकम् उत्पन्नम्।

(३) ओल्डेन वर्ग ने 'उत्तानपदः' का अर्थ 'ऊर्ध्व विस्तीर्ण' किया है। ग्रिफिथ ने जगत्-जननी अदिति को 'उत्तानपदः' कहा है जिसका अर्थ 'ऊपर को

फैल गए हैं चरण जिसके' किया है । पीटर्सन ने भी इसी अर्थ का समर्थन किया है। वालिम ने सायण का समर्थन करते हुए अर्थ किया है 'ऊर्ध्व-विस्तीर्ण वृक्ष' किया है ।

(४) आशा: = दिश: ।

हिन्दी-व्याख्या—(देवानां प्रथमे युगे) देवों की उस प्रोज्ज्वल आदि-सृष्टि की पावन-बेला में (असत: सद् अजायत) असत् से ही सत् की सृष्टि हुई। कारण—जगत् से कार्य-जगत् का प्रादुर्भाव हुआ । जो दृग्गोचर नहीं हो रहा था वह अनुभूयमान स्थिति में आया । (तद् अनु आशा अजायन्त) उसके अनन्तर उस अनुभूयमान अवस्था के अनन्तर दिशाओं की सृष्टि की अनुभूति हुई । (तद् उत्तानपद: परि) दिशा की सर्जना के अनन्तर ऊपर की ओर शाखाओं वाले वृक्षों की सृष्टि हुई ।

४—

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदिति: परि ॥४॥

पद-पाठ:—भू: । जज्ञे । उत्तान ऽ पद: । भुव: । आशा: । अजायन्त । अदिते: । दक्ष: । अजायत । दक्षात् । ऊँ इति । अदिति: । परि ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(उत्तानपद:) ऊर्ध्वविस्तीर्णात् तत: सत: (भू: जज्ञे) पृथिवी प्रादुर्भूता । 'भुव आशा अजायन्त' पृथिवीसृष्टेरनन्तरम् आशा दिश: प्रादुर्भूता: । 'अदिते: दक्ष: अजायत' अदिति रेव दक्षजननी ततस्तस्य प्रादुर्भावात् (दक्षात् उ अदिति: परि) दक्ष देव वा अदितिरुत्पन्ना । नोत्पन्नं कार्यं स्वस्यैव कारणम् संभवति विरोधात् । उपपन्नमेतत् एकप्रकृतीनां देवानाम्, इतरेतरजन्मानो हि देवा आत्म-दृष्ट्या समग्रमुपपन्नम् ।

टिप्पणी—उत्तानपद: का अर्थ करते समय बहुत से लोग भ्रान्त हो जाते हैं जगत् को देखकर ही सृष्टि-प्रपंच को देखना-समझना है तो सादृश्य अर्थ लगाकर समझें । जैसे कि हम वृक्ष-धर्म देखते हैं कि ऊपर को फैला है, इसी प्रकार इस आकार वृक्ष को देखें जो कि ऊपर को विस्तीर्ण होकर फैला है ।

(२) अदिति से दक्ष और दक्ष से अदिति यह सृष्टि-व्यापार की अनिर्वचनीयता प्रतीत होती है जो आजकल भी चलती है कि पहले बीज उत्पन्न हुआ या वृक्ष ? यह सृष्टि-प्रक्रिया का नैरन्तर्य प्रतिपादित है जैसा कि नासदीय प्रकरण में कहा गया है' कामस्तदग्रे०' ।

(३) यास्क ने भी इसे इसी प्रकार समझाया है—'समानजन्मानौ वा स्यातामित्यपित्रा देवधर्मेणेतरजन्मानौ स्यातामितरेतरप्रकृती ? (नि० ११-२३) इति।

हिन्दी-व्याख्या— (उत्तानपदः भूः जज्ञे) ऊर्ध्वविस्तीर्ण उस आकाश-वृक्ष से यह पृथिवी प्रकट हुई। (भुवः आशा अजायन्त) इस पृथ्वी से दिशायें जानी गयीं। (अदितेः दक्षः अजायत) अदिति से दक्ष (दक्षात् उ अदितिः परि) और दक्ष से भी अदिति का जन्म हुआ। कहीं भी उत्पन्न कार्य अपने ही लिए उत्पादक नहीं बनता, अतएव दिव्य-सृष्टि के कारण सदैव कारण-कार्य समन्वय रहता है। प्रत्येक ज्ञात अज्ञात की ओर तथा अज्ञात ज्ञात की ओर उन्मुख रहता है इसी को असत्-सद्विलक्षण कहा गया है।

अदिति र्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।

तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥

पद पाठः—अदितिः। हि। अजनिष्ट। दक्ष। या। दुहिता। तव। ताम्। देवाः। अनु। अजायन्त। भद्राः। अमृत ऽ बन्धवः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे दक्ष! (या तव दुहिता) या तव दोहन कर्त्री पुत्री-स्थानीया अदितिरभूत् सैव (अदितिः अजनिष्ट) स्वजन्मनाऽन्यानपि भावयामास। (ताम् अनु एव देवाः अमृतबन्धवः भद्रा अजायन्त) ततोऽनन्तरं जनमीमनु भद्रा भजन-स्वभावा अमृतबन्धवः अमृतबन्धना देवाः प्रादुर्भूताः।

टिप्पणी—अमृतबन्धवः=अमृतबन्धनाः। अमृतेमेव बन्धु येषां ते। बन्धु=बन्धकम्।

(१) दक्ष की पुत्री अदिति और अदिति को देवों की भगिनी कहा गया है, ऐसा पीटर्सन मानते हैं पर सर्वत्र अदिति को देवमाता ही कहा गया है। जैसा कि इसी सूक्त में आठवाँ मंत्र।

(३) अमृतबन्धवः का अर्थ मैक्समूलर तथा ग्रिफिथ ने अमरजीवन के संगी, ग्रासमान और पीटर्सन ने अमरजीवन के लब्धप्रतिष्ठ किया है। वर्गन ने अमृत जीवन में भागीदार बताया है।

हिन्दी-व्याख्या—हे दक्ष (या तव दुहिता अदितिः) जो आपकी पुत्री (रस-दोहनी) अदिति है। उसने ही (देवान् आदित्यान् हि अजनिष्ट) समग्र आदित्यों को प्रकट किया। और उसी की कृपा से (ताम् अनु) (देवा अजायन्त) समग्र देवों का

प्रादुर्भाव हुआ । कैसे हैं वे देव ? (भद्राः) कल्याण करने वाले एवं स्तुतियों से पूजा योग्य हैं और (अमृतबन्धवः) अमर-बन्धु-स्नेह से पुलकित रहने वाले हैं ।

६—

यद् देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।

अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥६॥

पद-पाठः—यत् । देवाः । अदः । सलिले । सु ऽ संरब्धाः । अतिष्ठत । अत्र । वः : नृत्यताम् ऽ इव । तीव्रः । रेणुः । अप । आयत ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(अदः सलिले यद् देवाः) अदः अस्मिन् सलिले सलिलवद् विद्यमाने शान्ते ब्रह्मणि देवाः (सुसंरब्धाः) लब्धधियः (अतिष्ठत) स्थिता यूयम् । (नृत्यताम् इव) अभिनयवतां गात्रविक्षेपणशीलानां वः युष्माकं (अत्र वः तीव्रः रेणुः अपायत) तीव्रो धूलिसमूहः अपायत उदञ्चत् ।

टिप्पणी—(१) नृती गात्रविक्षेपे शतृ नृत्यताम् । इव । उत्प्रेक्षालङ्कारः । सुसंरब्धाः—सुसम् पूर्वस्य रमधातो निष्ठा ।

(२) आपो वा इदं सर्वम् । तै० आ० १०—१२ । अप एव ससर्जादौ—मनु० ।

(३) सायणः प्रतिपादयति—अस्मिन मंत्रेऽग्रे चादित्याः स्तूयन्ते ।

(४) पीटर्सन कहते हैं कि इस मंत्र में देवों को विश्वोत्पादक-शक्ति से युक्त दर्शाया गया है । वालिस ने नृत्य करते हुए ही सहज भाव से उन परमाणु शक्तियों का उद्बोधन किया जिनसे कि पृथ्वी की सृष्टि हुई । ग्रिफिथ ने कहा है कि देवगण यहाँ नटरूप में चित्रित किये गए हैं, उनके चमत्कारपूर्ण नृत्य-झनकार से घनीभूत रेणु-मेघ उठ पड़े ।

हिन्दी-व्याख्या—(अदः सलिले यद् देवाः) इस सलिल के समान शान्त शुभ्र ब्रह्म में हे देवगण ! (सुसंरब्धा अतिष्ठत) आप ध्यानस्थ होकर स्थित हुए और (अत्र वः नृत्यतामिव) नाट्य-कला कुशल आपके अभिनव-गात्र-विक्षेप से मानों (तीव्रो रेणुः अप आयत) धूलि-समूह का तीव्र-संघात उदञ्चित हुआ । उठ पड़ा ।

७—

यद् देवा यतयो यथा भुवनान्य पिन्वत ।

अत्रा समुद्रआगूढ मा सूर्यमजभर्तनः ॥७॥

पद-पाठः — यत् । देवाः । यतयः । यथा । भुवनानि । अपिन्वत । अत्र । समुद्रे । आ । गूढम् । आ । सूर्यम् । अजभर्तन ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे देवाः ! यथा यतयो मेघा जलवर्षणेन भुवनानि अपिन्वत पूरयन्ति तद्वद् यूयमपि स्वकर्मभि र्भुवनानि प्रपूरयथ । तथा च सूर्यं समुद्रे आगूढं तिरोहितं मग्नं यूयम् आ अजभर्तन आहृतवन्तः ।

टिप्पणी—(१) यत् = यदा । देवाः = सम्बोधनम् अत्र । यतयः—यम धातोः ...न् । बहुवचने । मेघाः—वर्षणेन नियमयन्ति ।

(२) पीटर्सन ने अजभर्तन का अर्थ किया है—दूध को मथकर बाहर निकालना अर्थात् जिस प्रकार दूध को मथकर मक्खन बाहर निकाल लेते हैं उसी प्रकार समुद्र-मन्थन के द्वारा देवों ने सूर्य को बाहर निकाला ।

(३) यतयः का अर्थ सायण ने मेघ किया है । पीटर्सन 'ग्वाला' अर्थ करते हैं । ग्रिफिथ ने 'ईश्वर-पूजक' अर्थ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यतयो यथा भुवनानि अपिन्वत) जिस प्रकार घने मेघ भुवनों को नियंत्रित करते हैं अथवा जल-वर्षा से प्रेरणा देते हैं, उसी प्रकार (यद् देवाः) हे देवगण ! आप भी अपने तेजस्वी क्रिया-कलाप से भुवनों को पूर्ण कर देते हैं । आपने ही (समुद्रे आ गूढं सूर्यम्) समुद्र के अन्तराल में अन्तर्निहित सूर्य को अपने सामर्थ्य से (आ अजभर्तन) बाहर निकाला है ।

८—

अष्टौ पुत्रासो अदिते र्ये जाता स्तन्व१स्परि ।

देवाँ उपप्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥८॥

पद-पाठः—अष्टौ । पुत्रासः । अदितेः । ये । जाताः । तन्वः । परि । देवान् । उप । प्र । ऐत् । सप्त ऽ भिः । परा । मार्ताण्डम् । आस्यत् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(अदितेः अष्टौ पुत्रासः ये जाताः तन्वः परि) अदितेः मित्रादयः अष्टौ पुत्राः तन्वः परि शरीराज्जाताः । सा सप्तभिः पुत्रैः देवान् उपप्रैत् उपागच्छत् । अष्टमं च पुत्रं मार्ताण्डं सूर्यम् उपरि परास्यत् प्राक्षिपत् ।

टिप्पणी—(१) अष्टौ पुत्रासः = ताननुक्रमिष्यामः, मित्रश्च वरुणश्च, धाता चार्यमा च अंशश्च भगश्च । विवस्वानादित्यश्च । तै० स० ६-५-६-१ ।

पुत्रासः—पुत्राः आज्जसेरसुक् । आस्यत्—असु क्षेपणे—आ + अस्यत् ।

(२) पीटर्सन ने मार्ताण्ड का अर्थ 'मृतम् + अण्डम्' किया है जिसे अदिति ने मरा अण्डा (मृत-पक्षी) समझकर फेंक दिया । उनके अनुसार ऋ० २-३८-८ में भी यह विवरण दिया गया है ।

(३) ग्रिफिथ ने परा आस्यत् का अर्थ किया है—'दूर फेंक दिया'।

हिन्दी व्याख्या—(अदितेः तन्वः परि अष्टौ पुत्रासः जाताः) अदिति के शरीर से आठ पुत्र निष्पन्न हुए । उनमें से (सप्तभिः पुत्रैः देवान् उप प्रैत्) सात पुत्रों के साथ वह देवों से मिलने गयी और आठवें पुत्र मार्तण्ड को (मार्ताण्डं परा ऽऽस्यत्) अलग फेंक दिया । मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य अदिति के आठ पुत्र हैं ।

९—

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुपप्रैत्पूर्व्यं युगम् ।

प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुन र्मार्ताण्डमाभरत् ॥९॥

पद-पाठः—सप्त ऽ भिः । पुत्रैः । अदितिः । उप । प्र । ऐत् । पूर्व्यम् । युगम् । प्रजायै । मृत्यवे । त्वत् । पुनः । मार्ताण्डम् । आ । अभरत् ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—(अदितिः सप्तभिः पुत्रैः) अदितिः तैः मित्रादिभिः सप्तभिः पुत्रैः (पूर्व्यं युगम् उप प्रैत्) पुराणं युगं प्राप्ता । (प्रजायै मृत्यवे त्वत्) प्राणिनां प्रजाया: प्रजननार्थं मरणार्थं च (मार्ताण्डम्) मृतादण्डाज्जातं सूर्यं (पुनः आभरत्) आहृत्य द्युलोके स्थापितवती । उदयास्तवेलाभिः सूर्य एव जन्ममरणावधारकः । तै० सं० ६-५-६-१ ।

टिप्पणी—पीटर्सन लिखते हैं कि अदिति ने उस फेंके हुए पक्षी को फिर उठा लिया और जनन-मरण रूप परिवर्तन के लिए पुनः उसे स्थापित किया ।

पूर्व्यम्—पूर्वे भवम् = पूर्व्यम् । यत् प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—(अदितिः सप्तभिः पुत्रैः) अदिति उन सप्त पुत्रों के साथ (पूर्व्यं युगम् उप प्रैत्) उन पूर्व युग के देवताओं के पास मिलने गयी । और (प्रजायै मृत्यवे त्वत्) प्रजाओं की उत्पत्ति और विनाश के लिए (पुनः मार्ताण्डम् आभरत्) द्युलोक में उसने सूर्य को सुबद्ध किया । सूर्य ही अपने उदय-अस्त रूप प्रपंच से प्राणियों में जन्मोत्साह तथा मरण-भय स्थापित करता है ।

मण्डल १०

पुरुष-सूक्तम्

सूक्त ९०

ऋषिः—नारायणः। देवता—पुरुषः

छन्द—१—१६ अनुष्टुप्—१५—त्रिष्टुप्

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमिं विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पद-पाठः—सहस्र ऽ शीर्षा । पुरुषः । सहस्र ऽ अक्षः । सहस्र ऽ पात् । स । [भू]मिम् । विश्वतः । वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दश ऽ अङ्गुलम् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—समष्टिरूपेणावस्थितो यो ऽयं ब्रह्माण्डशरीरः पुरुषः स [सह]स्रशीर्षा सहस्राण्यसंख्यातानि शिरांसि यस्य सो ऽयं सहस्रशीर्षा । सहस्र-[श]ब्दो ऽत्रोपलक्षणम् । सर्वप्राणिनां शिरांसि तद्देहान्तर्गतत्वात्तस्यैव तानि । एवमेव [सह]स्राण्यसंख्यातानि अक्षीणि नेत्राणि यस्य, सहस्राण्यसंख्याताः पादा यस्येति च । [स] विराट् पुरुषः भूमिं ब्रह्माण्डगोलकं विश्वतो वृत्वा सर्वतः समावेष्ट्य दशाङ्गु-[लप]रिमाणं देशमधिष्ठाय अत्यतिष्ठत्—अतिक्रम्य उपस्थितः । दशाङ्गुलमिति चोप-[लक्ष]णम् । ततो ऽपि बहि र्वर्तते इत्यर्थः ।

व्याकरणम्—सहस्र शीर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपात्=सहस्राणि शिरांसि यस्य [स] सहस्रशीर्षा, सहस्राणि अक्षीणि यस्य स सहस्राक्षः, सहस्राणि असंख्याताः पादा [य]स्य स सहस्रपात् । पुरुषः—पुरि शेते । दशाङ्गुलम्=दशानामङ्गुलीनां समाहारः । [दश]+अंगुली+अच् (समासान्तः) रि लोपः । दशाङ्गुलम् ।

टिप्पणी—वृत्वा के स्थान पर स्पृत्वा का भी पाठ मिलता है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह परम् विराट् पुरुष् सहस्रों शिर, नेत्र, पैर वाला है । [सम]स्त प्राणियों के अन्तर्गत विराजमान होने के कारण सबके सिर, सबकी आंखें, [स]बके चरणः उसी के सिर, उसी के नेत्र और उसी के चरण हैं । वह (स भूमिं [वि]श्वतो वृत्वा) इस समग्र ब्रह्माण्डगोलक को सभी ओर से आवृत करके इसे परे

पार भी दशाङ्गुल बढ़ा हुआ है। वह सबके भीतर विद्यमान होने पर भी सबसे बाहर अवस्थित है।

२— पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ॥२॥

पद-पाठः—पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भाव्यम् । उत । अमृत ऽ त्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अति ऽ रोहति ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(इदं सर्वं विद्यमानं जगत् तत्सर्वं पुरुष एव) यदिदं दृश्यमानं जगत् विराजते ऽत्र अस्ति-भाति-प्रीणातिरूपः पुरुष एव। तस्यैव सत्तया इदं भाति-प्रीणाति = तस्य भासा सर्वमिदं विभातीत्युक्तत्वात्। यदतीतं यच्चानागतं (यद् भूतं यच्च भाव्यम्) तदपि सर्वं पुरुष एव (यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तत् सर्वमोङ्कार एव)। यथा ऽस्मिन् कल्पे सर्वे प्राणिनस्तस्यैव पुरुषस्यावयवास्तथैवातीतानागतयोरपि कल्पयोर्ज्ञातव्यम्। (उत अमृतत्वस्य ईशानः) अपि चायमेव पुरुषो देवत्वे कर्मणि ईशानः स्वामी, अमृतत्वस्य तदधीनत्वात्। (यद् अन्नेन अतिरोहति) यद् यस्माद् हेतोरयम् अन्नेन भोग्येन प्रपंचेन स्वीयां कारणावस्थामतिहाय अतिरोहति प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थां स्वीकरोति।

टिप्पणी—(१) भाव्यम्—भू + ण्यत्। ईशानः—ईश् + शानच्।

(२) पीटर्सन ने 'यदन्नेनातिरोहति' का अर्थ किया है—जो वस्तु अन्न से उत्पन्न होती अथवा पुष्ट होती है, पुरुष उसका स्वामी है।

(३) अमृत शब्द इसी मंत्र के साथ अन्यत्र भी आया है। अथर्ववेद—१९-६-४ में भी आया है। अमृत शब्द अमृत (सुधा) अन्न और जल का वाचक है। अर्थात् स्थलवर्ती, जलवर्ती तथा अन्तरिक्षवर्ती जड़-चेतन (चराचर जगत्) का वही एकमात्र ईशान (= प्रभु, स्वामी) है।

हिन्दी-व्याख्या—(यत् भूतं यच्च भाव्यं तस्य सर्वस्य स एव स्वामी = इदं सर्वं पुरुष एव) जो यह वर्तमान् जगत् दृष्टिगोचर होता है, यह सब उस पुरुष का ही उल्लास है। इसी प्रकार इसी प्रमाण से सहजतया यह जान लेना चाहिये कि भूत-भविष्यत् का भी नियंत्रक वही एक पुरुष है। वही अन्न, जल तथा सुधा का दान करके अमृतत्व का सम्पादक है, पर वही (उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति)

प्राणियों के भोग्य प्रपंचरूप अन्न का सम्पादन करने के लिए कारणावस्था का उल्लंघन करके जगदवस्था को स्वीकार करता है।

३—

एतावानस्य महिमा तो ज्यायां ऽ च पूरुषः।

पादो ऽ स्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

पद-पाठः—एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः ।

पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रि ऽ पात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या—(एतवान् अस्य महिमा अतो ज्यायान् च स पुरुषः) अतीत-वर्तमान-अनागतरूपं यावज्जगदस्ति स सर्वो ऽ प्यस्यैव महिमा—ऐश्वर्यचमत्कारः। स पुरुषो नैवावधारित रूपः अतो ज्यायानपि अतो ऽ प्युल्लघ्य स्थितः। (पादो ऽ स्य विश्वाभूतानि) एतानि समग्राणि भूतजातानि अस्य पादमात्रतां भजन्ते, चतुर्थ एवांशे स्थितमिदं जगत्। (त्रिपादस्यामृत दिवि) अवशिष्टं च त्रिपास्वरूपम् तदमृतं नाशर-हितं दिवि द्योतनात्मके तस्य स्वे महिम्नि वर्तते। यद्यपि तस्य परब्रह्मणो नास्ति इयत्ता तथापि निरूपयितुमशक्यत्वात् पुरुषापेक्षया ऽ त्यल्पमिदं जगदिति द्योतयितुं श्रुतिः कामयते।

टिप्पणी—एतावान्—एतत् + सतुप्। 'आ सर्वनाम्नः'। महत् + इमनिच्—महिमा। ज्यायान्—'ज्य च' इति प्रशस्यस्य स्थाने 'ज्य' आदेशः, ईयसुनि, ईकारस्य 'आ' आदेशः त्रिपात्—त्रयाणां पादानां समाहारः, 'पादस्य लोपो०'।

मैक्डानल ने दिवि का अर्थ स्वर्ग और पीटर्सन ने आकाश किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(एतावान् अस्य महिमा) यह भूत-भविष्यत् वर्तमान रूप समस्त जगत् उसी एक ईश्वर के आदर्श का चमत्कार है। (अतो ज्यायांश्च पुरुषः) पर वह पुरुष इतना ही सीमित नहीं है, वह इससे भी अत्यधिक है। (पादो ऽ स्य विश्वा भूतानि) यह समस्त प्राणिमात्र उसके चतुर्थांश में ही अवस्थित है पर अवशिष्ट तीन चतुर्थांश उसकी अपनी ही अमृत-विभूति में जगमगा रहा है। यद्यपि इस ब्रह्म की सीमा का वर्णन नहीं हो सकता परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह समस्त भुवन उस पुरुष की अपेक्षा अत्यन्त अल्प है (त्रिपादस्यामृतं दिवि)।

४— त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादो ऽस्येहाभवत्पुनः ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥

पद-पाठः—त्रि ऽ पात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनदिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनायशने इति । अभि ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(त्रियादूर्ध्व उदैत् पुरुषः) अयं त्रिपात्पुरुषः ऊर्ध्व उदैत् = एतस्मात् कार्यात् संसाराद् दूरवर्ती विद्यते ऽस्पृष्टत्वात् । (पादो ऽस्येहाभवत् पुनः) अस्यायं पादः चतुर्थांश इह मायायां स्वकीयं वैभवं व्यतनोत् । पुनः पुनश्च सृष्टिदशायां स्वकीयमैश्वर्यं प्रख्यापयति । 'एकांशेन स्थितो जगत्' इति ख्यापनात् । (ततो विष्वङ् व्याक्रमत्) मायाप्रविष्टो ऽयं पुरुषो विष्वङ् देव-मनुष्यतिर्यगादिरूपेण विविधं व्याप्तवान् । कथमिव ? साशनानशने अभि—साशनानशने अभिलक्ष्य भोजनादि-व्यवहारोपेतं भोक्तृप्रपञ्चं तद्रहितं च भोग्यप्रपञ्चमुभयविधं सम्यक् संस्थाप्य अवस्थितः ।

टिप्पणी—साशनानशने—अश + ल्युट् = अशनम्, अशनेन सहितः साशनः, अनशनं च = साशनानशने ते अभिलक्ष्य साशनानशने अभि । विष्वङ्—विषु सर्वत्रा-ञ्चतीति विषु + अञ्चु + क्विप् ।

(२) मैक्डानल ने साशनानशने का अर्थ भोजन करने वाले तथा न करने वाले और पीटर्सन ने सजीव-निर्जीव जगत् किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः) वह पुरुष इस माया-जगत् से उत्कृष्ट = बहुत दूर है । इस जगत् के संस्पर्श से रहित होने के कारण वह सदा अपने अमृतधाम में अवस्थित रहता है । (पादो ऽस्येहाभवत् पुनः) वह अपने चतुर्थांश से ही अपनी माया-वैभव का विस्तार विविध रूप से प्रदर्शित करता रहता है। वही उत्पत्ति और प्रलय का मूल कारण है । (ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि) वही भोक्तृ-प्रपंच तथा भोग्य प्रपंच = चेतन और जड़ रूप से समग्र सृष्टि को विधिवत् व्यवस्थापित करके इसी में अनुप्रविष्ट हो रहा है ।

५– तस्माद् विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥ ✓

पद-पाठः—तस्मात् । वि ऽ राट् । अजायत । वि ऽ राजः । अधि । पुरुषः ।

सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् । अथो इति । पुरः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(तस्माद् विराड् अजायत) तस्मात् पुरुषात् कारणात्मनो विराड् ब्रह्माण्डदेहोऽजायत प्रादुर्भूतः । विविधानि भूतानि राजन्तेऽत्रेति विराट् । (विराजो अधिपूरुषः) तदनन्तरं विराजमधिकृत्य तद्देहाभिमानी पुरुषः प्रकटीभूतः । (स जातो अत्यरिच्यत) ततोऽतिरिक्तो व्यभवत् देवमनुष्यतिर्यग रूपपतितः कोषांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव भावयन्नास्ते । (पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः) अनन्तरमेषां जीवानां भावाय भूमिं सृष्टवान् पुनः जीवानां पुरः पूर्यन्तेऽत्र कामाः, पूर्यन्ते धातुभिरिति पुरः शरीराणि सृष्टवान् ।

टिप्पणी—विराट्—विविधं राजते, राज् + क्विप् । पुरः =पूः—पुरौ—पुरः पॄ + क्विप् । पूर्यन्तेऽत्र कामाः, पुरः शरीराणि ।

हिन्दी-व्याख्या—(तस्माद् विराड् अजायत) उस आदि पुरुष से विराड्-देह उत्पन्न हुआ, यही ब्रह्माण्ड अथवा यह व्यक्त संसार है (विराजो अधि पूरुषः) उस ब्रह्माण्ड रूप विराट् का आश्रय लेकर पुरुष-सृष्टि हुई । (स जातो अत्यरिच्यत) वह उत्पन्न पुरुष सृष्टि के अन्य प्रपंचों से अतिरिक्त हो गया । चेतनता के कारण वह भोक्तृरूप से सृष्टि का संचालक बना । (पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः) इसके अनन्तर इस भोग्य प्रपंच के रूप में भूमि-जल आदि का विस्तार हुआ तथा नाना कामनाओं की पूर्ति जिससे सम्भव हो सके उन शरीरों की रचना सम्भव हुई ।

६– यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म शरद्धविः ॥६॥

पद-पाठः—यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यज्ञम् । अतन्वत । वसन्तः ।

अस्य । आसीत् । आज्यम् । ग्रीष्मः । इध्मः । शरद् । हविः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(देवा यत् पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत) बाह्यद्रव्याभावात् पुनः सृष्टिसिद्ध्यर्थं मनसा हविर्भावं तु संकल्प्य पुरुषेणैव पुरुषाख्येन हविषा मानसं यज्ञम् अतन्वत—अन्वतिष्ठन् । (वसन्तो अस्यासीद् आज्यम्) वसन्तमृतुमेव देवा आज्यत्वेन घृतत्वेन संकल्पितवन्तः । (ग्रीष्म इध्मः) ग्रीष्मश्चेध्मस्थानीय आसीत्। तेषां (शरद् हविः) शरच्च हवि र्भूता । हवी रूपेण पूर्वं पुरुष एव सामान्यरूपेण संकल्पितः, पुनश्च वसन्तादय आज्यादिविशेषरूपतया सम्पादिताः ।

टिप्पणी—यत् = यदा । अतन्वत—तनु—लङ् । प्रथमपुरुषैकवचने । आज्यम्—घृतम् । अञ्जू + ण्यत् । इध्मः—इन्ध—निपातनात् ।

(२) उव्वटः कथयति—वसन्त—ग्रीष्म—शरत् = एते ऋतवः सत्त्वरजस्तमोऽभिव्यञ्जकास्तत एव सृष्टेः प्रादुर्भावात् ।

हिन्दी-व्याख्या—(यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञम् अतन्वत) जब देवताओं ने सृष्टि-प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए पुरुषरूप हवि से मानस-यज्ञ का संकल्प किया। उस समय वसन्त को घृत, ग्रीष्म को समिधा तथा शरत् को हवि का रूप दिया। अर्थात् पहले सामान्य रूप से पुरुष को ही हवि का रूप दिया । इसके अनन्तर वसन्त आदि ऋतुओं को विशेषरूपता प्राप्त हुई ।

७-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

पद-पाठः - तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् । पुरुषम् । जातम् । अग्रतः । तेन । देवाः । अयजन्त । साध्याः । ऋषयः । च । ये ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्) यज्ञरूपं तं पुरुषं बर्हिषि मानसे संकल्परूपे यज्ञे प्रोक्षितवन्तः । (तेन देवा अयजन्त) तं जातं पुरुषम् अग्रतः कृत्वा देवास्तं मानसं यज्ञं सम्पादितवन्तः । के ते देवा आसन् ? साध्याः सृष्टिव्यवहारहेतवः प्रजापति प्रमुखाः, ऋषयो मंत्रद्रष्टरश्च ये आसन् सर्वे ते मिलित्वाऽयजन्त ।

टिप्पणी—प्रौक्षन्—प्र + उक्ष + लङ् बहुवचने । साध्याः साध + ण्यत् ।

(२) ग्रिफिथ और पीटर्सन ने 'साध्याः' का अर्थ किया है देवों की विशेष श्रेणी, सर्वप्रथम हविष्य निरूपण करने वाले ।

हिन्दी-व्याख्या—(पुरुषं जातम् अग्रतः) इस पुरुष की सृष्टि के बारे में पहले ...देश किया जा चुका है। उसी पुरुष को लेकर (तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्) देवों ने ...रूप मानस-यज्ञ में जल-प्रोक्षण से सिद्ध किया और (तेन देवा अयजन्त) उसी ...से मानस-यज्ञ का सम्पादन किया गया। कौन थे जिन्होंने इस यज्ञ का इस रूप ...सम्पादन किया? (साध्या: ऋषयश्च ये) ये हमारे सृष्टि व्यवहार को कुशल ...देने वाले साध्य श्रेणी के देवगण थे और मंत्रों के आदि द्रष्टा मनीषी ऋषि ...ग थे।

८—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।

पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८॥

पद-पाठः—तस्मात्। यज्ञात्। सर्व ऽ हुतः। सम् ऽ भृतम्। पृषत् ऽ ...ज्यम। पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्यान् ग्राम्याः। च। ये ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः) तादृशात् मानस-रूपाद् यज्ञात् ...भृतं पृषदाज्यम्) सर्वहुतः पुरुषात् पृषदाज्यं दधिमिश्रितमाज्यं संभृतम्। दधि च ...ज्यं च यद् भोग्यजातं तत्सर्वं सम्पादितम्। (पशून् तान् चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ...म्याश्च ये) तथा च वायव्यान् वायुदेवता सम्बन्धिनः पशून् उत्पादितवान्। ...रण्यका हरिणादयः ग्राम्याश्च गवादयः तान् सर्वानपि चक्रे उत्पादितवान्।

टिप्पणी—सर्वहुतः—सर्व + हु + क्विप्। पृषदाज्यम् = पृषच्च आज्यं च ...दाज्यम्। वायव्यान्, ग्राम्याः, यत् प्रत्ययः। आरण्यान्—ण प्रत्ययः।

(२) वायव्य कहकर वन्यचारी तथा आकाशचारी प्राणियों का ग्रहण है। ...ण्य तथा ग्राम्य प्राणियों का पृथक् ग्रहण किया गया है।

हिन्दी-व्याख्या—(तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः) सर्वव्यापक उस पुरुष रूप मानस-...ज्ञ से (पृषद्—आज्यं संभृतम्) दधि और घृत का सम्पादन हुआ। दधि और घृत ...के कथन से सभी प्रकार के भोग्य-पदार्थों का सृजन हुआ, यह सूचना मिलती है। (पशून् तान् चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये) इसके साथ ही वायु-सम्बन्धी ...णी उत्पन्न हुए और वे भी पशु उत्पन्न हुए जो कि वन में ही रहते हैं तथा गौ-अश्व ...आदि ग्रामीण पशुओं की भी सृष्टि हुई।

९—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजु स्तस्माद जायत ॥९॥

पद-पाठः—तस्मात् । यज्ञात् । सर्व ऽ हुतः । ऋचः । सामानि । जज्ञिरे । छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् । यजुः । तस्मात् । अजायत ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—(सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे) सर्वद्रष्टा सर्वव्यापकः पुरुषो यस्मिन् यज्ञे हुतः तस्मात् पुरुषरूपात् यज्ञादेव ऋचः सामानि च जज्ञिरे उत्पन्नानि । तस्मादेव (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुः तस्माद् अजायत) छन्दांसि गायत्र्यादीनि यज्ञाच्छन्दांसि जज्ञिरे तस्मादेव यज्ञाद् यजुरप्यजायत ।

टिप्पणी—ऋचः = ऋग्वेदः, सामानि = सामवेदः, छन्दांसि = अथर्ववेदः, यजुः = यजुर्वेदः । ऋचः = ऋच् + क्विप् । बहुवचनम् । जज्ञिरे = जनी + लिट् । अजायत = जनी + लङ् ।

हिन्दी व्याख्या—(सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे) सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक पुरुष जिस संकल्पात्मक यज्ञ में हवन कर दिया गया, उसी से ऋग्वेद, सामवेद उत्पन्न हुए । (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुः तस्माद् अजायत) अथर्ववेद तथा गायत्र्यादि नाना प्रकार के छन्द और यजुर्वेद भी उसी पुरुष से प्रकट हुए ।

१०—

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

पद-पाठः—तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त । ये । के । च । उभयादतः । गावः । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः । अजावयः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या – (तस्माद् अश्वा अजायन्त उसी यज्ञ रूप पुरुष से अश्व उत्पन्न हुए । (ये के चोभयादतः) ऊर्ध्वाधोभागयोर्दन्तयुक्ताः प्राणिनो ऽप्युत्पन्ना । (गावो ह जजिरे तस्मात् तस्माज् जाता अजावयः) तस्मादेव यज्ञरूपाद् ब्रह्मणः सकाशाद् गाव उत्पन्नाः अजाश्च अवयश्च जाताः ।

टिप्पणी—उभयादतः—उभयतो दन्ता येषां ते उभयादतः । दन्तस्य दत्—
दसो दीर्घश्च ।

हिन्दी-व्याख्या—(तस्माद् अश्वा अजायन्त ये के च उभयादतः) उस यज्ञरूप
से अश्व उत्पन्न हुए । दोनों ओर दाँत वाले पशु प्रकट हुए । (गावो ह जज्ञिरे
मात्) गायें उत्पन्न हुई और (तस्माज् जाता अजावयः) बकरी, भेड़, गधा,
र, ऊँट आदि पशु उसी से उत्पन्न हुए ।

११—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

पद-पाठः—यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् ।
म् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरू । इति । पादौ । उच्येते
॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टि विषये वक्तुं प्रारभते—
पुरुषं व्यदधुः) प्रजापतेः प्राणभूता देवा यदा पुरुषं संकल्पेनोत्पादयामासुः तदानीं
तिधा व्यकल्पयन्) कियद्भिः प्रकारैः विविधं कल्पितवन्तः ? (मुखं किमस्य कौ
का ऊरू पादा उच्येते) अस्य पुरुषस्य किम् मुखमासीत् ? बाहुरूपेण कौ
ताम् ? का ऊरू ? कौ च पादौ जातौ ?

टिप्पणी—प्रथमतस्तु सामान्यरूपेण प्रश्नः कृतः पुनः मुखं किमित्यादिना
शिष्टाः प्रश्नाः कृताः ।

(२) कति + धा । प्रकारार्थे धा ।

हिन्दी-व्याख्या—(यत् पुरुषं व्यदधुः) जब देवों ने उस विराट् पुरुष को
क्त किया तब (कतिधा व्यकल्पयन्) कितने प्रकार से विकल्पित किया ? इस
का मुख कौन था (मुखं किमस्य, कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते) भुजा के रूप
कौन था ? ऊरू तथा पैर के स्थान में कौन-कौन उपयुक्त माने गये ।

१२—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

पद-पाठ—ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू इति । राजन्यः । कृतः । ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ।।१२।।

संस्कृत-व्याख्या—अधुनोक्तप्रश्नानामुत्तराणि दीयन्ते—(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) अस्य प्रजापतिरूपस्य पुरुषस्य ब्राह्मण एव मुखस्थानीयः । (बाहू राजन्यः कृतः) राजन्यः क्षत्रियश्च बाहूकृतः । प्रजायतेः (ऊरू तदस्य यद्वैश्यः) ऊरुभूतो वैश्यः सम्पन्नः । (पद्भ्यां शूद्रोऽजायत) पादाभ्यां च शूद्रो जातः ।

टिप्पणी—चारों वर्णों की रचना का विकास-क्रम यहां देखने को मिलता है । यजुर्वेद में भी इसका स्पष्ट निर्देश है । अवेस्ता में भी इसी प्रकार वर्णों का विभाजन किया गया है ।

(२) राजन्यः—राजन् (राजश्वसुराद्यत्) यत् प्रत्ययः ।

(३) ब्रह्मन् + अण् = ब्राह्मणः ।

हिन्दी-व्याख्या—(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) उस प्रजापति रूप ब्रह्म का मुखस्थानीय ब्राह्मण बना । (बाहू राजन्यः कृतः) भुजा बन कर क्षत्रिय उत्पन्न हुआ । (ऊरू तदस्य यद् वैश्यः) ऊरु के स्थान पर वैश्य तथा पद्भ्यां शूद्रोऽजायत) चरण-स्थानीय शूद्र हुआ ।

१३–

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।।१३।।

पद-पाठः—चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः । अजायत । मुखात् । इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ।।१३।।

संस्कृत-व्याख्या—यथा दध्याज्यादीनि द्रव्याणि गवादयः पशवः ऋगादयो वेदाः ब्राह्मणादयो मानवाः स्तस्माद्यज्ञरूपात् पुरुषात् उत्पन्नाः, एवम् (चन्द्रमा मनसो जातः) प्रजापते मनसः सकाशात् चन्द्रमा उत्पन्नः । (चक्षोः सूर्योऽजायत) चक्षुषः सूर्य उत्पन्नः । अस्य प्रजापते मुखाद् इन्द्रश्च अग्निश्च देवौ प्रादुर्भूतौ (प्राणाद् वायुरजायत) प्राणाच्च वायुरुत्पन्नः ।

टिप्पणी—पुरुषस्य मनसि या शान्तिः स चन्द्रगुणः चक्षुषि यः प्रकाशः स

सूर्यगुणः वाचि या प्रकाशनात्मिका शक्तिः सा चाग्नेः प्राणे च वायोः पक्षपातशून्यता दृश्यते ।

(२) चक्षोः—चक्षुषः इति स्थाने ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रजापति से दधि-घृत आदि पदार्थ, गाय आदि पशु, ऋग् आदि वेद, ब्राह्मण आदि मानव उत्पन्न हुए उसी यज्ञ-पुरुष से (चन्द्रमा मनसो जातः) मानस शक्ति द्वारा चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । (चक्षोः सूर्योऽजायत) चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ । मुख शक्ति से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए और प्राण-शक्ति से वायु उत्पन्न हुआ ।

१४–

मंत्र—नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमि दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।१४।।

पद-पाठः—नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् । अवर्तत । पत्ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् अकल्पयन् ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या—यथा यज्ञ पुरुषस्य मनः प्रभृतिभ्यः चन्द्रादीन् अकल्पयंस्तथा (नाभ्या आसीद् अन्तरिक्षम्) प्रजापतेः नाभेः अन्तरिक्षं जातम्, शीर्ष्णः शिरसः सकाशात् शिरःस्थानीया द्यौरुत्पन्ना । (पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्) पादाभ्यां भूमिरुत्पन्ना श्रोत्राच्चास्य दिश उत्पन्नाः । एवम् अस्य पुरुषस्य सामर्थ्यात लोका उत्पन्नाः ।

टिप्पणी—नाभ्याः—नाभि शब्दात्पंचमी । शीर्ष्णः—शिरसः शीर्षन् आदेशः ।

हिन्दी-व्याख्या-(नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्) उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, चरण से भूमि और श्रोत्र से दिशायें उत्पन्न हुईं । इसी प्रकार लोकों की भी रचना हुई ।

१५–

मंत्र—सप्तास्यासन् परिधय स्त्रिः सप्त समिधः कृता ।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।।१५।।

पद-पाठः—सप्त । अस्य । आसन् । परि ऽधयः । त्रिः । सप्त । सम् ऽ

इधः । कृताः । देवाः । यत् । यज्ञम् । तन्वानाः । अबध्नन् । पुरुषम् । पशुम् ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—(सप्तास्य आसन् परिधयः) अस्य यज्ञपुरुषस्य गायत्र्यादीनि सप्तच्छन्दांसि परिधय आसन् । सप्त परिधयोऽत्र सप्तच्छन्दोरूपाः । तथा समिधः त्रिः सप्त त्रिगुणिताः सप्त-संख्याका एकविंशतिः कृताः । द्वादश मासाः, षडृतवः त्रयो लोका इत्येकविंशतिः । (यद् यज्ञं तन्वाना देवाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्) देवाः प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपा यज्ञं तन्वानाः तं मानसं यज्ञं कुर्वाणाः विराट् पुरुषमेव पशुत्वेन कल्पितवन्तः ।

टिप्पणी—परिधि—परि + धा + किः । परिधयः । समिधः सम्-इन्ध-क्विप् । बहुवचने । तन्वानाः—तनु + उ + शानच् । बहुवचने ।

हिन्दी व्याख्या—इस प्रकार सर्वद्रष्टा पुरुष को देवों ने अपने विचार-बन्धन में सम्पादन किया । (सप्तास्यासन् परिधयः) गायत्री आदि सात छन्द ही इस यज्ञ-पुरुष के परिधि बने और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) द्वादश—मास, षट् ऋतु, तीन लोक = मिलकर इक्कीस समिधायें इस यज्ञ की बनी (= सायण ने १२मास + ५ ऋतु + ३ लोक और १ सूर्य को गिनकर २१ भेद बताये हैं) देवों ने (प्रजापति—प्राण तथा इन्द्रिय) इस प्रकार यज्ञ का विस्तार करते हुए विराट पुरुष को ही पशु रूप में भावित किया ।

१६— 22

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-

स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त

यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

पद-पाठः—यज्ञेन । यज्ञम् । अयजन्त । देवाः । तानि । धर्माणि । प्रथमानि ।

आसन् । ते । ह । नाकम् । महिमानः । सचन्त । यत्र । पूर्वे । साध्याः सन्ति । देवा ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—(यज्ञेन देवा यज्ञम् अयजन्त) ते देवाः मानससंकल्पेन यज्ञं तं पूजनीयं प्रजापतिं यथोक्तम् अयजन्त, पूजितवन्तः । (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) तस्मात् तानि प्रसिद्धानि धर्माणि धारकाणि जगद्रूपविकाराणां पोषकाणि तत्वानि प्रथमानि मुख्यानि आसन् । एतान्येव सृष्टिप्रतिपादनपराणि मुख्यानि सूक्तानि अधुना उपासना तत्फलानुवादश्च संगृह्यते । (यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः) यत्र विराट् प्राप्तिरूपे दुःखाभाव—जनके जाके पूर्वे साध्याः विराडुपासनतत्पराः साधकाः देवाः सन्ति ते देवाः (महिमानः सचन्त) विराट् प्राप्तिरूपं ते समासाद्य महिमानस्तदुपासका महात्मानः स्वर्गं सचन्ते प्राप्नुवन्ति ।

टिप्पणी—धृ—मनिन् । प्रथमा बहुवचन । नाकम्—कमिति सुखनाम, तत्प्रतिषेधः, अकम्, न अकम् नाकम् । महिमानः – महद् + इम निच् । प्रथमा—बहुवचन । सचन्त – षच + लङ्, अडभावः । साध्याः, साध + ण्यत् ।

(२) विराट् का अर्थ मैक्डानल ने यज्ञ-शक्ति किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यज्ञेन देवा यज्ञम् अयजन्त) उन देवों ने यज्ञ रूप उस प्रजापति की पूजा की । (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) जगत् रूप विकारों के धारक वे तत्व ही मुख्य थे । यह सृष्टि-प्रतिपादन के विषय में कहा गया । अब उसके फल के रूप में (उपासना और उपासना के फल को दिखाते हैं) जहाँ पर दुख की अत्यन्ताभाव रूपी दशा में उपासना तत्पर साध्य लोग अपनी महिमा का सम्पादन करते हुए ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ।

१०-१२१

हिरण्यगर्भ-सूक्तम्

ऋषि—हिरण्यगर्भः । देवता—कः, प्रजापतिः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पद-पाठः—हिरण्य ऽ गर्भः । सम् । अवर्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः । एकः । आसीत् । सः । दाधार । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—(हिरण्यगर्भः समवर्तत अग्रे) हिरण्यानि हिरण्यवद्वर्तमानानि सूर्यचन्द्रग्रहनक्षत्रादीनि गर्भे विद्यमानानि यस्यासौ सूत्रात्मा परमात्मा हिरण्यगर्भः । स एवाग्रे समजायत मायाध्यक्षत्वेनात्म न प्रकटयामास । (भूतस्य जातः पतिरेक-आसीत्) स एव जातमात्रः सन्नेको ऽ द्वितीयः पतिरासीत् । (स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्) स एव इमां पृथिवी दिवं च धारयति (कस्मै देवाय हविषा विधेम) तं देवं प्रजापतिं वयं हविषा विधेम परि-चरेम ।

टिप्पणी—कस्मै = कम् (क्रिया ग्रहणं कर्त्तव्यम कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी कः = प्रजापतिः, सुखस्वरूपः, अनिर्ज्ञातरूपः प्रजापतिः, कस्मै देवाय = कं देवमभिलक्ष्य ।

(२) पीटर्सन ने हिरण्यगर्भ का अर्थ 'स्वर्ण-बीज' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे) सृष्टि के आदि में परमात्मा ने (हिरण्यगर्भ) रूप में सर्वप्रथम अपने को अभिव्यक्त किया । अंधकारावृत्त लोक में ग्रह-नक्षत्र, सूर्य-चन्द्र, स्वर्ण आदि रमणीय-वमनीय पदार्थों में सर्व-प्रथम चमक-दमक जानी गयी । (भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्) वही एकमात्र जगत् का आदि नियन्ता था । (स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्) वही पृथिवी और द्यौलोक को निरन्तर धारण कर रहा है । (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उसी सुखस्वरूप देव की हम नित्य ही परिचर्या करें ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

पद-पाठः—यः । आत्म ऽ दा । बल ऽ दा । यस्य । विश्वे । उप ऽ आसते । प्र ऽ शिषम् । यस्य । देवाः । यस्य । छाया । अमृतम् । यस्य । मृत्युः । कस्मै । देवाय । हविषा विधेम ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(य आत्मदा) यः प्रजापतिः आत्मनां शोधयिताऽस्ति)। (बलदा)=बलस्य दाता शोधयिता वा । (यस्य विश्वे उपासते प्रशिषम्) यस्य प्रशिषं प्रकृष्टं शासनमाज्ञां विश्वे सर्वे प्राणिन उपासते प्रार्थयन्ते । (यस्य देवाः) देवाः अपि यस्याज्ञां सेवन्ते । (यस्यच्छायामृतम्) यस्यामृतं सुधा छायेव वशवर्ति विद्यते (यस्य मृत्युः) मृत्युश्च यस्यच्छायेव विद्यते तस्मै कस्मै देवाय हविषा परिचरेम ।

टिप्पणी—प्रशिषम्—प्र+शास्+क्विप् । 'शास इदङ्हलोः' इतीत्वं, 'शासिवसिघसीनां च' इति षत्वम् ।

आत्मदा—बलदा=दैप् शोधने—क्विप् ।

अमृतम्=सुधा, मोक्षः, नास्ति मृतं मरणम्=अमृतम् ।

(२) आत्मदा-बलदा का अर्थ सायण ने आत्मा अथवा बल को देने वाला अथवा शोधन करने वाला किया है । उव्वट और महीधर ने भुक्ति-मुक्ति का प्रदाता माना है 'यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः' का अर्थ दयानन्द, उव्वट और महीधर ने किया है—'जिसकी कृपा अमृतरूप मोक्ष का कारण है तथा जिसकी अकृपा ही मृत्युरूप आवागमन का कारण है ।'

(३) पीटर्सन ने 'आत्मदा' का अर्थ 'प्राणदाता' तथा उव्वट और महीधर ने 'आयुष्य प्रदान करने वाला' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जो परमात्मा (आत्मदा बलदा) प्रत्येक प्राणी में जीवन का संचार करके शुद्धि देता है, जो सबमें बलाधायक है । (यस्य प्रशिषं विश्वे उपासते यस्य देवाः) जिसकी आज्ञा के पालन और सम्पादन में सभी प्राणी लगे रहते हैं जिसकी देवगण भी सेवा में लगे लगते हैं । (यस्य च्छायाऽमृतम्, यस्य मृत्युः) अमृत-रूप आनन्द छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं और मृत्यु भी जिसकी छाया के समान है, उस आनन्दप्रद प्रभु की हम परिचर्या सदा करते रहें ।

३— य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक—

इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपद श्चतुष्पद:

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पद-पाठः—यः । प्राणतः । नि ऽ मिषतः । महि ऽ त्वा । एकः । इत् । राजा । जगतः । बभूव । यः । ईशे । अस्य । द्वि ऽ पदः । चतुः ऽ पदः । कस्मै । देवाय । हविषा विधेम ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—यः परमात्मा (प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एक इत् राजा बभूव) समग्रस्य प्राणिजातस्य स्वकीयेन महत्वेन एक एव राजा महेश्वरो ऽस्ति । (अस्य द्विपदः चतुष्पदः य ईशे) यश्च पादद्वय युक्तस्य मनुष्यादेः पादचतुष्टयोपेतस्य च गावादेश्च यः परमात्मा शासको ऽस्ति । तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा परिचरेम ।

टिप्पणी—प्राणतः का अर्थ श्वास—प्रश्वास लेने वाले अर्थात् चेतन और निमिषतः का अर्थ सोने वाले अर्थात् अन्तः संज्ञा वाले अचेतन वृक्षादि; पीटर्सन भी कहते हैं—जो सक्रिय हैं अर्थात् जो सांस लेते हैं, जो निद्रिय हैं अर्थात् सोते हैं ।

(२) प्राणतः, निमिषतः—शतृ प्रत्ययः ।

(३) महित्वा— महत्व । तृतीया छान्दसः प्रयोगः । द्विपदः चतुष्पदः द्वौ पादौ यस्य = द्विपात्, षष्ठ्येकवचने । तथा चतुष्पदः । चत्वारः पादा यस्य । ईशे—ईष्टे—तकार लोपश्छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—(यः प्रणतो निमिषतो महित्वा एक इद्राजा जगतो बभूव) जो श्वास लेने अथवा न लेने वाले (=केवल सोने वाले) प्राणियों (जड़-चेतन प्राणियों) का एक मात्र व्यवस्थापक राजा है और अपनी ही महिमा से सब पर छाया हुआ है (य ईशे अस्य द्विपदः चतुष्पदः) जो दो पैर वालों तथा चार पैर वालों

(समस्त मनुष्य-पक्षी-पशु आदि प्राणियों) का एक मात्र ईश्वर है, उसी सुख स्वरूप देव की हम सब स्तुति—उपासना आदि करें—करते रहें।

४–

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा

यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू—

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

पद-पाठ—यस्य । इमे । हिम ऽ वन्तः । महित्वा । यस्य । समुद्रम् । रसया । सह । आहुः । यस्य । इमाः । प्र ऽ दिशः । यस्य । बाहू इति । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(यस्य इमे हिमवन्तः महित्वा यस्य समुद्रं रसया सह आहुः) हिमसम्बन्धिन एते महान्तः प्रलयाद्रयः यस्य महत्वमैश्वर्य माहात्म्यमाहुः कथयन्ति। (रसया सह यस्य समुद्रम् आहुः) रसाभिर्नदीभिः सह सर्वान् समुद्रान् यस्य माहात्म्यम् आहुः। (यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू) यस्य इमा दिशः प्रदिश बाहवः सन्ति। तस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा विधेम परिचरेम।

टिप्पणी—हिम + मतुप्—बहुवचने—हिमवन्तः। रसया = रसो जलम् यस्या अस्तीति रसा नदी (मतुवर्थेऽच्) जातावेकवचनम्। समुद्रम् इत्यत्रापि जातावेकवचनम्। 'बाहू' द्विवचन प्रयोगो बहुवचनार्थे।

(२) 'रसा' एक नदी का नाम है, ऐसा पीटर्सन कहते हैं। हिमवन्तः का अर्थ उन्होंने 'हिमयुक्त पर्वत' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(हिमवन्तः यस्य इमे महित्वा आहुः यस्य च समुद्रं रसया सह आहुः) बड़े-बड़े हिमवान् पर्वत जिसके महत्व का प्रतिपादन करते हैं और बड़ी-बड़ी नदियों के साथ ये महान महासागर जिसके सौभाग्य के प्रतीक हैं। (यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू) विशाल व्यापक दिशायें जिसकी भुजा बन कर कीर्ति का ख्यापन कर रही हैं। हम सब उसी आनन्दमात्र कमनीय प्रजापति को स्तुतियों द्वारा हवि प्रदान करें।

५— येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा

येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।।

पद-पाठ—येन । द्यौः । उग्रा । पृथिवी । च । दृढा । येन । स्व १ रिति स्वः । स्तभितम् । येन । नाकः । यः । अन्तरिक्षे । रजसः । वि ऽ मानः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या—(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) येन सर्वशक्तिमता परमात्मना इयमुग्रा द्यौः स्थिरीकृता पृथिवी च गहनेयं स्वतेजोभिः स्थापिता (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) स्वर्गश्च येन दृढीकृतः सूर्यश्च येनोपरि स्थापितः । (यो ऽन्तरिक्षे रजसो विमानः) यो ऽन्तरिक्षे लोके रजसः उदकस्य निर्माता विद्यते तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा तृप्तिं सम्पादयेम ।

टिप्पणी—उग्रा – उद् + गुरी उद्यमने, क प्रत्ययः । टाप् । स्तभितम्—स्तब्धम् । निपातनात् । विद्यमानः = विविध मानं निर्माणं यस्यासौ विमानः । वि + मा + ल्युट् ।

(२) सायणः उग्रेति पृथिव्या विशेषणं मनुते, उव्वटमहीधरौ वृष्टिदात्री द्यौरिति । पीटर्सनः उग्रा = महती इति अर्थं करोति । स्वः इत्यस्य सायणः स्वर्गः, महीधर आदित्यः, पीटर्सनः विस्तृत आकाश इति अर्थं मन्वते । नाकः इत्यस्य सायणः आदित्य इति महीधरः स्वर्गो लोक इति अर्थं कुर्वाते ।

हिन्दी-व्याख्या—(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) सर्वशक्तिमान् जिस परमात्मा ने विशाल द्यौः लोक का निर्माण किया है और पृथ्वी लोक को अपने नियम में दृढ़ किया है । जिसने स्वर्ग लोक का सृजन किया है । अन्तरिक्ष लोक में जो उदक-संघात का निर्माता है, उसी सुख स्वरूप दिव देन की हम सदा पूजा-उपासना आदि किया करें ।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने

अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।

यत्राधि सूर उदितो विभाति

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पद-पाठ—यम् । क्रन्दसी इति । अवसा । तस्तभाने इति । अभि । ऐक्षेताम् । मनसा । रेजमाने इति । यत्र । अधि । सूरः । उत् ऽ इतः । वि ऽ भाति । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ।

संस्कृत व्याख्या-(तस्तभाने क्रन्दसी अवसा यम् अभ्यैक्षेताम् मनसा रेजमाने) राजमाने दीप्यमाने द्यावापृथिव्यौ क्रन्दन शीले अवसा रक्षणेन यम् निरन्तरं पश्यत इव दृश्येते । (यत्राधि सूर उदितः विभाति) आधारभूते च यस्मिन् प्राजापतौ उदयं प्राप्तोऽयं सूरः सूर्य विभाति राजते, तस्मै परमात्मने हविषा विधेम ।

टिप्पणी—क्रन्दसी—क्रन्दतेः असुन् स्त्रियां द्विवचने । तस्तभाने—स्तम्भ + शानच् + टापि, प्रथमा द्विवचने । रेजमाने—राजृ + शानच् । उपधा—एकारः ।

(२) 'अवसा' इत्यस्य रक्षणेन सायणः, हविषाऽन्नेन च उव्वट महीधरौ कृतोऽर्थम् । रेजमाने इत्यस्यार्थं सायणः करोति (दीप्यमाने) महीधरश्च 'शोभमाने' उव्वटश्च 'कम्पनशीले' ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस परमात्मा को यह क्रन्दनशील पृथिवी और आकाश देखते रहते-से प्रतीत होते हैं । जो परमात्मा के नियम में स्थिर-से हैं और सदा शोभायमान (=सुहावने से) लगते हैं । जिस परमात्मा के स्वामित्व में यह उदित होता हुआ सूर्य जगमगा रहा है । उसी सुख प्रदाता परमेश्वर के लिये हम सेवा किया करें ।

७— आपो ह यद् बृहती विश्वमायन्

गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पद-पाठ—आपः । ह । यत् । बृहतीः । विश्वम् । आयन् । गर्भम् । दधानाः । जनयन्तीः । अग्निम् । ततः । देवानाम् । सम् । अवर्तत । असुः । एकः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(आपः ह यद् बृहतीः विश्वम् आयन् गर्भं दधाना जनयन्तीः अग्निम् । आप एव बृहत्यः महत्यः अग्निं जनयन्तीः (आकाश-वायु-अग्निप्रभृतीन् उत्पादयन्त्यः गर्भं दधानाः गर्भभूतं प्रजापतिं दधाना धारयन्त्यः प्रथमतएव महति ब्रह्माण्डे सर्वं जगद् व्याप्नुवन् । (ततो देवानाम् असुः एकः समवर्तत) आप एव विश्वमायन् विश्वात्मनावस्थिताः, अनन्तरं प्रजापतेः सकाशाद् देवानां प्राणभूतो वायुः समवर्तत अजायत । अथवा तत् एव अद्भ्यः असुः प्राणात्मकः प्रजापति निष्क्रान्तः ।

टिप्पणी—गर्भ का अर्थ पीटर्सन ने बीज किया है । बृहतीः बृहत्यः के स्थान पर वैदिक प्रयोग । आयन्—इण् गतौ—प्रथमपुरुष लङ् बहुवचन ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्व में जलीय-शक्तियाँ (आपः) ही अपने बृहत् रूप में व्याप्त हो गयीं । (गर्भं दधाना जनयन्ती : अग्निम) अग्नि आदि पाँचों भूतों को अभिव्यक्त करती हुई और अपने अन्तराल में गर्भ रूप प्रजापति का इन जलीय-तत्वों ने ही प्रथम अनावरण किया । (ततो असुः एकः) उन जलीय-शक्तियों से ही देवों ने प्राणात्मक वायु का स्पन्दन किया । उस दिव्य विधान धारण करने वाले विश्वात्मा प्रजापति के लिए हवि का श्रद्धापूर्वक हम सम्पादन करें ।

८– य श्चिदापो महिना पर्यपश्यद्—

दक्षं दधाना जनयन्ती र्यज्ञम् ।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

पद-पाठः—यः । चित् । आपः । महिना । परि ऽ अपश्यत् । दक्षम् ।
दधानाः । जनयन्तीः । यज्ञम् । यः । देवेषु । अधि । देवः । एकः । आसीत् ।
कस्मै । देवाय हविषा विधेम ॥८॥

संस्कृत--व्याख्या—(यज्ञं जनयन्तीः) समस्त जगद् व्यापार रूप विकार की सृष्टि करती हुई (दक्षं दधानाः) प्रपंचात्मा वर्धिष्णुं दक्षं प्रजापतिं धारणशीला: आपः यः महिना स्वकीयेन माहात्म्येन स्वयमेव पर्यपश्यत् परितो दृष्टवान् । यश्च देवेष्वपि ईश्वरत्वेनाधिष्ठाता सन् एक एवाद्वितीय आसीत् विद्यते तस्मै सुखात्मने परमात्मेन वयं हविषा विधेम ॥

टिप्पणी—महिना–महिम्ना । आपः=अपः व्यत्ययेन प्रयोगः । द्वितीया बहुवचनमिष्टं पर्यपश्यत्=अपः दृष्टवान् । आसीत् इति भूतकालः छान्दसः प्रयोगः अस्ति, आसीत्, भविष्यति ।

(२) निहारिका रूपाणि जलान्येवात्र कारणत्वेनोक्तानि । यथा च ऋग्वेदे १०–१२९–३ इत्यत्र (सलिलं सर्वमा इदम्) यत्र तत्र सर्वत्र समुद्र एवासीत् प्रकाश-रहितः 'तम् आसीत्' ।

(३) दक्ष का अर्थ सायण ने 'प्रपंचात्मक वर्धिष्णु प्रजापति' महीधर ने कुशल प्रजापति, पीटर्सन ने 'उत्साह-शक्ति' किया है । यज्ञ का अर्थ सायण ने 'यज्ञ रूप विकार–प्रपंच' महीधर ने 'सृष्टि-यज्ञ' पीटर्सन ने 'यज्ञ' ही किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'दक्षं दधाना जनयन्तीः यज्ञम् । प्रजापति रूप दक्षता को धारण करने वाली तथा विश्वप्रपंच को प्रकट करने वाली जिन (आपः महिना परि अपश्यत्) जल शक्तियों को अपनी ही महिमा से प्रथम जिस परमात्मा ने साक्षात्

देखा (यो देवेषु अधि देव एक आसीत्) जो समग्र देवों में एक अद्‌भुत अधिष्ठाता है। उसी आनन्दमय परमात्मा की हम सदा भक्ति-उपासना आदि किया करें।

९-

मा नो हिंसी ज्जनिता यः पृथिव्या—

यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।

यश्चापश्चन्द्रा बृहती र्जजान—

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

पद-पाठः—मा। नः। हिंसीत्। जनिता। यः। पृथिव्याः। यः। वा। दिवम्। सत्य ऽ धर्मा। जनान। यः। च। अपः। चन्द्राः। बृहतीः। जजान। कस्मै। देवाय। हविषा विधेम ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—(मा नः हिंसीत् जनिता यः पृथिव्याः)। यः परमात्मा पृथिव्या जनिता जनियता उत्पादकोऽस्ति स नोऽस्मान् मा हिंसीत् न कदापि बाधताम्।(यः सत्य धर्मा दिवं जजान) यः सत्य धर्मा समस्तस्य जगत आधारत्वेन धारकः यो वा समस्तम् आकाशं वायुम् अग्निं जलं चोत्पादयामास। (यः बृहतीः चन्द्राः अपः जजान) यश्च आह्लादनस्वभावा बृहतीः अपः जनयामास। तस्मै परमेश्वराय वयं हविषा विधेम।

टिप्पणी—मा हिंसीत्-(न- माङ् योगे) इत्यद्रभावः। जनिता-जनयिता। 'जनिता मन्त्रे' इति निपातनात्। चन्द्राः-चदि-अचि नुमागमः।

सत्यधर्मा-सत्यं धर्मोयस्य। धर्मः जगतो धारणरूपं कर्मयस्य।

(२) पीटर्सन ने सत्यधर्मा का अर्थ 'विश्वसनीय' किया है।

हिन्दी-व्याख्या—(मानो हिंसीत् जनिता यः पृथिव्याः) पृथ्वी का जनक हमें विध्वंस न करे। (यो वा दिवं सत्य धर्मा जजान) जिस परमात्मा ने आकाश-वायु-अग्नि-जल आदि चमत्कार पूर्ण भूत प्रपंच की रचना की है वह परमेश्वर हमें अबाधित सुख देता रहे। (यश्चापः चन्द्राः बृहती र्जजान) जिस प्रजापति की कृपा से आनन्ददायक जलीय-तत्व की सृष्टि हुई है, उसी प्रभु की लीलाओं का गुण-गान करते हुये सेवा किया करें।

१०— प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो

विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुम स्तन्नो अस्तु

वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

पद-पाठ—प्रजापते । न । त्वत् । एतानि । अन्यः । विश्वा । जातानि । परि । ता । बभूव । यत् ऽ कामाः । ते । जुहुमः । तत् । नः । अस्तु । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—(प्रजापते न त्वद् एतानि अन्यः विश्वानि जातानि परि बभूव) त्वां विहाय हे जगदात्मन् ! नास्ति कस्याप्यपरस्य शक्ति र्यः इमानि सर्वाणि चराचररूपेणावस्थितानि समग्र-विकारभाज्जि भूतजातानि परि भवति परितो व्याप्य स्थितो भवति । त्वमेव खल्वेतादृशः । त्वमेव विधाता विधर्ता च । (वयं यत्कामाः यत्-यत् कामयमाना वयं ते तुभ्यं जुहुमः हवींषि प्रयच्छामः । (तत् नोऽस्तु) स स कामः अस्माकं सफलो भवतु शुभपरिणामः । तथा (वयं स्याम पतयः रयीणाम्) वयमभ्युदय निःश्रेयस-धनानामधिपतयो भूयास्म ।

टिप्पणी—विश्वा = विश्वानि । ता = तानि । 'शेश्छन्दसि बहुलम्बी ।

(२) जुहुमः का अर्थ भारतीय व्याख्याकारों ने हवि प्रदान करते हैं, पीटर्सन ने 'पुकारते हैं' अर्थ क्रिया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे प्रजाओं के स्वामिन् ! (विश्वा जातानि एतानि न त्वद् अन्यः परिवभूव) अन्य किसी में ऐसा सामर्थ्य नहीं है जो कि इस समस्त भवनों के की रचना प्रपंच में अधिव्याप्त हो सके । आप ही अपनी लीला-सामर्थ्य से सहज स्वभाव से ही इन समस्त भुवनों को धारण करके प्रकाशित कर रहे हैं । (यत् कामास्ते जुहुमः) जिस-जिस संकल्प को हृदय में रखकर हम आपकी स्तुति-पूजा-उपासना हवि-सम्प्रदान आदि करते हैं (तद् नोस्तु) वह-वह हमारी कामनयें आपकी असीम कृपा से परिपूर्ण हों । (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) हम सब इस संसार में अभ्युदय प्राप्त करें और आध्यात्मिक शान्ति भी हम परमानन्द के साथ प्राप्त हो ।

१०-१२५

वाक्-सूक्तम्

अस्य सूक्तस्य देवता परमात्मा। ऋषि र्वाक् (अम्भृणस्यापत्यं स्त्री) छन्दः-त्रिष्टुप्, द्वितीये तु जगती।

१- अहं रुद्रेभि र्वसुभिश्चरामि-

अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि-

अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

पद-पाठः—अहम्। रुद्रेभिः। वसुभिः। चरामि। अहम्। आदित्यैः। उत। विश्वदेवैः। अहम्। मित्रा वरुणा। उभा। बिभर्मि। अहम्। इन्द्राग्नी इति। अहम्। अश्विना। उभा ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—जगत्वकारणं ब्रह्म, तद्रूपा वाक् सा चैवंभूता रुद्रैरेकादशभिः अहं तदात्मना चरामि, विचरामि। एवं चाहं वसुभिरपि तदात्मना चरामि। अथ च मित्रं च वरुणं च ब्रह्मीभूताऽहमेव बिभर्मि, धारयामि। अहमेव च इन्द्रम् अग्निं च धारयामि। उभौ चाश्विनावपि अहमेव धारयामि। मयि हि सर्वं जगत् ओतं प्रोतं च। वागेव जगदाकारेण विपरिणमते। एतादृश्यां वाचि चाधारत्वेन स्थितायां सर्वस्य जगत उत्पत्तिः।

व्याकरणम्—रुद्रैः इत्यस्य स्थाने रुद्रेभिः। मित्रावरुणा, उभा, अश्विना इत्यत्र लोके भाषायां मित्रावरुणौ, उभौ, अश्विनौ इति प्रयोगः।

हिन्दी व्याख्या—अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् ब्रह्म के साथ तादात्म्य अनुभव करती हुई कहती है (अहं रुद्रेभिर्वसुभिः चरामि) मैं ही रुद्रों, वसुओं के साथ विच-

करती हूं। (एकादश रुद्र, आठ वसु, द्वादश आदित्य और युगलमूर्ति अश्विनी
जाते हैं) (अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः) मैं ही आदित्यों और विश्वदेवों के
में विचरण करती हूं। (अहं मित्रा वरुणोभा बिभर्मि) मित्र और वरुण देवताओं
मैं ही धारण करती हूं। (अहम् इन्द्राग्नी अहम् अश्विनोभा) मैं ही इन्द्र और
को तथा अश्वि देवताओं को भी मैं ही धारण करती हूं।

२-

अहं सोममाहनसं बिभर्मि--

अहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते

सुप्राव्येउ यजमानाय सुन्वते ॥२॥

पद-पाठः—अहम्। सोमम्। आहनसम्। बिभर्मि। अहम्। त्वष्टारम्।
। पूषणम्। भगम्। अहम्। दधामि द्रविणम्। हविष्मते। सु प्र। आव्ये।
मानाय सुन्वते ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(आहनसं सोमम् अहम् बिभर्मि) आहन्तव्यम् अभिषोतव्यं
आहन्तारं वा शत्रूणाम् आत्मानं द्योतनात्मके दिवि वर्तमानम् अहमेव बिभर्मि
मि। त्वष्टारं पूषणं भगं चाहमेव बिभर्मि। (अहं दधामि द्रविणं हविष्मते)
हविष्मते हविर्भि र्युक्ताय (सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते) सोमाभिषवं कुर्वते शोभनं
प्रापयित्रे तर्पयित्रे यजमानाय भागफलरूपं प्रविणं धनम् अहमेव दधामि
मि ब्रह्मैव सर्वथाऽत्र फलदातृत्वेन समर्थितम्।

हिन्दी-व्याख्या—आहनन करके अभिषव करने योग्य सोम-रस को अथवा
करने वाले सोम देवता को मैं ही धारण करती हूँ। व्याप्त होने वाले त्वष्टा
को, पोषण करने वाले सूर्य देवता को तथा भजनीय ऐश्वर्य के देवता को भी
धारण करती हूं। (सु प्राव्ये यजमानाय हविष्मते) देवताओं को तृप्त प्रसन्न
वाले एवं सुन्दर हवि पहुंचाने वाले यजमान के लिये फलस्वरुप मैं ही धनवैभव
एवं वृद्धि करती हूँ।

व्याकरणम्—आहनसम्—आहन्तव्यम्। आङ् पूर्वक हन् धातोरसुन्। द्वितीयायाम्। त्वष्टारम्—तृच्, द्वितीया। हविष्मते—हविष्—मतुपि, चतुर्थी। सुप्राव्ये—सुप्रपूर्वकस्य अवधातोः ई प्रत्ययः। चतुर्थी।

सुप्राव्ये का अर्थ पीटर्सन ने 'धार्मिक', राथ ने सतर्क एवं उत्साही किया है।

३-

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां

चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा—

भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

पद-पाठः—अहम्। राष्ट्री। सम् ऽ गमनी। वसूनाम्। चिकितुषी। प्रथमा यज्ञियानाम्। ताम्। मा। देवाः। वि। अदधुः। पुरु ऽ त्रा। भूरि ऽ स्थात्राम् भूरि। आ ऽ वेशयन्तीम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अहं सर्वस्य संसारस्य राष्ट्री राष्ट्राभिमानिनी देवता तथा वसूनां निवासहेतूनां धनानां भक्तानां वा संगमनी गमयित्री प्रापयित्री। चिकितुषी। चेतनाविषयं यत् परं ब्रह्मचैतन्यं तद्विषयकज्ञानवती साक्षात्कारिणी। अत एव यज्ञार्हा देवा स्तेषु प्रथमा उत्तमा। तामेवं विधां मां भूरिस्थात्रां बहुधाप्रकारे प्रपञ्चात्मनाऽवस्थितां भूरि भूरीणि बहूनि भूतजातानि जीवभावेन आत्मानं प्रवेशयन्ती मामीदृशीं पुरुत्रा बहुषु स्थानेषु देवा व्यदधुः। विदधति परिचरन्ति। विश्वरूपता मास्थाय विराजमानत्वात्। यत् किमपि ते कुर्वन्ति तत्सर्वं कृत्वा मामेव परिचरन्ति।

व्याकरण—राष्ट्री मतुबर्थे इनि। स्त्री लिंगम्। संगमनी–संपूर्वागमे—ल्युट् ङीप्। चिकितुषी—कित–निवासे क्वसु, ङीप्। यज्ञियानाम्—यज्ञमर्हति, घ। इय् पुरुत्रा—त्रल् –टाप्। भूरिस्थात्राम्—स्था–तृच्––टाप्। लोके दीप्–भूरिस्थात्री राथ, लुड विग, ग्रासमान ने चिकितुषी का अर्थ जानने वाली किया है। यज्ञिय का अर्थ 'देवता' करते हैं।

हिन्दी-व्याख्या—(अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्) मैं ही सारे जगत की ...ष्ट्राभिमानिनी देवता हूँ। निवास चाहने वाले भक्तों, उपासकों एवं समग्र ऐश्वर्यों ...मैं ही अधिष्ठात्री (=प्रापयित्री, संगमन कराने वाली हूं।) (चिकितुषी प्रथमा ...ज्ञियानाम्) समस्त देवों में सर्वोत्तम मैं हूं क्योंकि मैं ही प्रथम ब्रह्म का साक्षात करने ...ली हूं। (भूरि स्थात्रां भूरि आवेशयन्तीं तां मा देवाः पुरुत्रा व्यदधुः) बहुत से ...लों पर रहने वाली तथा सब कुछ अपने में समेट लेने वाली ही मुझको जानकर ...ों में सर्वत्र ही मुझे स्थान दिया है। सर्वत्र मेरी ही पूजा-प्रशंसा होती है।

४—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति,

यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।

अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति,

श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

पद-पाठः—मया। सः। अन्नम्। अत्ति। यः। वि ऽ पश्यति। यः। ...णिति। यः। ईम्। शृणोति। उक्तम्। अमन्तवः। माम्। ते। उप। क्षियन्ति। ...धि। श्रुत। श्रद्धिवम्। ते। वदामि ॥४॥

संस्कृ-व्याख्या—यो ऽयि भोग्यं भुनक्ति स भोक्तृ शक्ति परया मयैव शक्ति-...साद्य अन्नमत्ति। न मया विना कोऽपि उपस्थितमपि भोगं भोक्तुं समर्थः। यो ...पश्यति यो वा प्राणिति यो वा उक्तं शृणोति एते सर्व एव द्रष्टारः श्वासव्यापार-...राः श्रोतारो वा मत्त एव शक्तिमासाद्य विविधं पश्यन्ति जिघ्रति शृण्वन्ति वा। ...मीमन्तर्यामितया सर्वशक्ति शालिनीं मां ये अमन्तवः अमन्यमानास्त उपक्षियन्ति ...क्षीणा भवन्ति। मद्विषयकज्ञानरहिताः संसारदशायां क्षीणाः सन्तो दुःख माप्नु-...न्ति। अत एव हे श्रुत! बहुश्रुत! विश्वासयोग्य मे वचनं शृणु। मदीयं वचनं ...द्धिवम्=श्रद्धायुक्तम्। ईदृशं श्रद्धालभ्यं प्रयत्नेन प्राप्यं वस्तु ब्रह्मात्मकं त उप-...दामि।

व्याकरणम्—अमन्तवः-नञ्पूर्वस्य मन्धातोः तुः, बहुवचने। श्रुधि—श्रु धातो र्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने वैदिकं रूपम्। श्रद्धिवम्=श्रदा—श्रद्धि—मतुवर्थे व प्रत्ययः। केशवः, अर्णव इति यथा।

लुडविग, ग्रासमान, राथ ने श्रुत और श्रद्धिव को जोड़कर कर्मधारय माना है। उनका अर्थ—जो प्राचीन परम्परा से श्रुत एवं श्रद्धा के योग्य है।

हिन्दी-व्याख्या—यो विपश्यति, यः प्राणिति, य ईं शृणोति—उक्तम् इस संसार में जो कि विविध प्रकार से देखता है, जो सत्ता के लिये श्वासधारी है अथवा जो कही गयी बात को श्रवण-शक्ति से सुनता है; यह सब सारा व्यापार मेरे ही कारण से होता है। मैं ही शक्ति देती हूं तभी (मयासोऽन्नमत्ति) प्राणी अन्न-भोग में सामर्थ्य पाते हैं। (अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति) जो इस प्रकार अन्तर्यामिरूप अन्तस्थित होकर शक्ति प्रदान करने वाली मुझको नही मानते वे नाना प्रकार से उपक्षीण होकर दुःख उठाते हैं। (श्रुत श्रुधि श्रद्धिवं ते वदामि) श्रवण में निपुण हे मानव! तू सुन। तेरे लिये श्रद्धामय वचन मैं बोल रही हूं।

५—

अहमेव स्वयमिदं वदामि

जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि

तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

पद-पाठः—अहम्। एव। स्वयम्। इदम्। वदामि। जुष्टम्। देवेभिः। उत। मानुषेभिः। यम्। कामये। तम्ऽतम्। उग्रम्। कृणोमि। तम्। ब्रह्माणम्। तम्। ऋषिम्। तम्। सुऽमेधाम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अहमेव स्वयं ब्रह्मात्मकमिदं प्रीत्यासेवन-योग्यं वदामि—उपदिशामि। ममैतद्वचनं देवैरिन्द्रादिभिः मानवैश्च सम्यक् सेवितम्। यं यं रक्षितुमहमिच्छामि तं तं पुरुषमहमुग्रं प्रकर्षं करोमि। तं ब्रह्माणं स्रष्टे विधातारं तं

व ऋषिं कृणोमि येनासौ अतीन्द्रियानपि पदार्थान् पश्यति। तमेव सुमेधां शोभन-प्रज्ञानं संपादयामि।

व्याकरणम्—जुष्टम्—जुष धातोः क्तः। देवेभिः मानुषेभिः देवैः, मानुषैः। वैदिकप्रयोग। सुमेधाम्—सुमेधसम्।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र आदि देवता तथा श्रेष्ठ मानव जिस ब्रह्म की प्रीति-पूर्वक सेवा करते हैं, उस आदि ब्रह्म का निर्देश मेरे द्वारा ही होता है। यह मेरी (वाग्देवी) की ही कृपा है कि जिसको-जिसको मैं चाहती हूं उसको-उसको बलाधिक बना देती हूं। विधाता की शक्ति, ऋषि की दृष्टि और देवता की प्रज्ञा मैं ही तो हूं।

६—

अहं रुद्राय धनुरातनोमि

ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।

अहं जनाय समदं कृणोमि—

अहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

पद-पाठः—अहम्। रुद्राय। धनुः। आ। तनोमि। ब्रह्म ऽ द्विषे। शरवे। हन्तवै। ॐ इति। अहम्। जनाय। स ऽ मदम्। कृणोमि। अहम्। द्यावाप्रथिवी। इति। आ। विवेश ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अपकारिषु रुद्राय अहमेव धनुष्सुसंधानं करोमि येन समर्थः सन्नसौ ब्रह्मद्विषे ब्रह्म विद्वेषिणे हननप्रबलो भवति। त्रिपुर निवासिनो ऽसुराश्च विहता भवन्ति। स्तोतृजयार्थं संग्राममहमेव करोमि। दिवं च पृथिवी च व्यापितया ऽ हमेव प्रविश्य स्थिता वर्ते।

व्याकरणम्—रुद्राय—षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। ब्रह्मद्विषे—ब्रह्म + द्विष् + क्विप्। चतुर्थी। शरवे—शृ हिंसायाम्—उ प्रत्ययः। चतुर्थी। हन्तवै—तुमर्थे तवै। समदम्-समानं माद्यन्त्यस्मिन्निति समत्संग्रामः।

पीटर्सन ने ब्रह्म का अर्थ परमात्मा, शरु का अर्थ वाण किया है।

हिन्दी व्याख्या— ब्रह्म द्वेषी असुरों के वध के लिये मैं ही रुद्र की प्रत्यंचा को चढ़ाती हूँ। मैं ही उपासकों के कल्याण के लिये संग्राम करती हूँ। मैं ही द्यु लोक तथा पृथ्वी लोक में व्याप्त हूँ। त्रिपुर निवासी असुरों का विध्वंस मैं ही करती हूँ।

७-

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्,

मम योनिरप्स्व १ न्तः समुद्रे।

ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वा—

उतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥७॥

पद पाठः—अहम्। सुवे। पितरम्। अस्य। मूर्धन्। मम। योनिः। अप् ऽसु। अंन्तरिति। समुद्रे। ततः। वितिष्ठे। भुवना। अनु। विश्वा। उत। अमूम्। द्याम्। वृष्मणा। उप। स्पृशामि ॥७॥

संस्कृत व्याख्या— अहं पितरं दिवं प्रसुवे उत्पादयामि। द्यौः पिता। समुद्रवन्ति भूतजातान्यस्मादिति समुद्रः परमात्मा। अस्य परमात्मनो मूर्धनि परम-कारण भूतेऽन्तरिक्षादि कार्यजात तन्तुषु पट इवाहं जनयामि तत्राप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिष्वन्तर्मध्ये यद् ब्रह्म चैतन्यं तदे मम योनिः कारणम्। एवंभूताऽहं विश्वानि भुवनानि सम्यगनुप्रविश्य विविधं व्याप्य तिष्ठामि। उतापि च स्वकीयेन वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन शरीरेण समग्रं विकार जातमुपस्पृशामि यद्वा—अस्य भूत-मात्रस्य मूर्धनि पितरमाकाशमह मुत्पादया समुद्रे चोदकेषु मम कारणभूतोऽम्मयेषु देवशरीरेषु परम विद्यते। एवं कारणात्मिका सती सर्वाणि भुवनान्यह जनयामि।

व्याकरणम्—मूर्धन्—मूर्धनि। वर्ष्मणा शरीरेण—वृषु सेचन मनिन्। तृतीया।

राथ ने वर्ष्मणा का अर्थ उच्चतम स्थान किया है।

हिन्दी-व्याख्या—इस भूत मात्र की मूर्धा पर मैं आकाश को देती हूँ जो कि जगत् का आदि पिता है। मेरा मूल कारण ब्रह्म है कि प्राणिमात्र का मूल कारण है। परमकारण रूप आकाश से ही तन्तुओं से पट के समान जगत की सृष्टि होती है। मैं ही किसी प्रकार से व्याप्त होकर सकल भुवन में अनुप्रवेश कर रही हूं। मैं ही अपने मायामय शरीर से समग्र विकारों का स्पर्श कर रही हूं।

८—

अहमेव वात इव प्रवामि—

आरभमाणा भुवनानि विश्वा।

परो दिवा पर एना पृथिव्या—

एतावती महिना सबभूव ॥८॥

पद-पाठः—अहम् । एव । वातः ऽ इव । प्र । वामि । आ ऽ रभमाणा । भुवनानि । विश्वा । परः । दिवा । परः । एना । पृथिव्या । एतावती । महिना । सम् । बभूव ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(अहम् एव वात इव प्रवामि) यह वातः परेणा—प्रेरितोऽपि स्वेच्छयैव प्रवाति तथाऽहमपि सर्वाणि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेण जनमन्ती स्वयमेवाप्रेरिता सती प्रवृत्ता भवामि। दिव आकाशस्य परस्तात् अस्याः पृथिव्याः च परस्तात्=एतत्सहिता, समस्तादेव विकारजातात् सङ्गोदासीनकूटस्थब्रह्म चैतन्यरूपा ऽहं स्वकीयेन महिना महिम्ना एतावती संबभूव सर्वजगदात्मनाऽहं संभूता प्रवृत्ता चास्ति।

व्याकरणम्—आरभमाण—आपूर्वस्य रभेः शानच्, टाप्। परः परस्तर्थें। एना—इदम् शब्दस्यान्वादेशे एना—एनेन। तृतीय एतावती—एतत्—मतुप्—ङीप्। 'आ सर्वनाम्नः' इत्याकारादेशः महिना—महत् इमनिच्। तृतीया। महिम्ना।

हिन्दी-व्याख्या—किसी भी प्रेरणा के बिना ही मैं पवन के समान स्वेच्छा से कारण रूप में अवस्थित होकर समस्त भूतमात्र का सृजन करती हूँ। पृथ्वी से भी आगे और आकाश से भी आगे व्याप्त होकर ब्रह्म चैतन्य रूप में अवस्थित मैं अपने कार्य में व्यापृत और प्रवृत्त होती हूँ। अपनी ही स्वयम्भू नाम से मैं सबको अतिक्रान्त करती हुई महान् परिणाम कार्य करती हूँ।

नासदीय-सूक्तम्

अस्यां सृष्टेः प्रागवस्थायां शास्त्रकारा विवादं तन्वते। केचन् तावदाहुः असतः सज्जायते नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्। अर्थात् क्षेत्रे निर्गलितादेव बीजाद् अङ्कुरोत्पत्ति दृश्यते, ते मन्यामहे असतएव कारणात्सज्जायते। बौद्धानां वचनं मण्डयन्तः खण्डयन्तश्च नैयायिका आहुः—असत एव सज्जायते, यतः कार्या, प्रागवस्थायां कार्यमसद्रूपेणैवावस्थितमासीत् यद्यभविष्यत्कार्यं तदा कारणसामग्रया आवश्यकतैव का? अतो निमित्तरूपेणोपादानरूपेणावस्थितया कारणशक्त्या किमपि व्यापारदृशा कार्यं सम्पादितमतः कार्यरूपस्य जगत उत्पत्तिर्जाता। वेदान्तिनस्त्वाहुः एकं समग्रं ब्रह्मैव सद्वस्तु, अन्यत् सर्वम् असत् अतः सतः खल्वसज्जायते। सांख्यवृद्धास्त्वाहुः सत एव सज्जायते यतो हि पूर्वोक्तेषु सिद्धान्तेषु प्रधानं न सिद्ध्यति—प्रधीयते ऽस्मिन् कारणसामग्रीति। अतः सतः कारणात् सद्रूपा सृष्टिरुचिता यथा दुग्धाद् दधि, तिलात् तैलम्, काष्ठाद् अग्निरिति।

एवं दर्शनबीजमुदभावयन्ती श्रुति राह—

प्रस्तावना—हिन्दी—इस सृष्टि की प्रागवस्था के बारे में शास्त्रकारों ने बहुत से सम्भावित प्रश्न उठाये हैं। बौद्धों का कहना है कि 'असत् से ही सत् की उत्पत्ति होती है। बीज जब तक गल नहीं जाता अंकुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार सृष्टि की प्रागवस्था असद् रूप में ही थी। नैयायिक कहते हैं कि असत् से ही सत् की उत्पत्ति होती है क्योंकि कार्य व्यापार से पहले यह कार्य-जगत् नहीं था। यदि था तो सृष्टि की आवश्यकता ही क्या थी? अतः यह प्रमाणित होता है कि कारण सामग्री ने निमित्त रूप से अथवा उपादान रूप से कुछ कार्य प्रस्तुत किया जिससे कि सृष्टि की उपस्थिति हुई। वेदान्ती इन समस्त पक्षों का विरोध करते हैं। उनका कहना है कि सृष्टि की यह सद्रूपता असद्रूपता का ही उल्लास है क्योंकि ब्रह्म ही एक सद्वस्तु है। यह अस्ति-भाति-प्रीणाति रूप जो

सृष्टि का है, यह सब ब्रह्म ही के कारण है। यह जगत् शिव के बिना शव है। अतः सत् से असत् की उत्पत्ति होती है। सांख्याचार्य इन सभी पक्षों का विरोध करते हैं। उक्त तीन कल्पों को स्वीकार कर लेने पर 'प्रधान' की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि प्रधान उसे कहते हैं जिसमें कारण सामग्री रक्खी जाये। इस कारण सत् से ही सत् की उत्पत्ति माननी चाहिये जैसा कि दूध से दही, तिल से तेल तथा काष्ठ से अग्नि की सिद्धि मानी जाती है।

१– **नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं**

नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्-

नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥१॥

पद-पाठः—न। असत्। आसीत्। नो इति। सत्। आसीत्। तदानीम्। आसीत्। रजः। नो इति। वि ऽ ओम। परः। यत्। किम्। आ। अवरीवरिति। कुह। कस्य। शर्मन्। अम्भः। किम्। आसीत्। गहनम्। गभीरम् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—इदानीं निरस्तसमस्तप्रपञ्चा प्रलयावस्था सृष्टेः प्रागवस्था वा वर्ण्यते। तदानीं प्रलयकालीने समये जगतो मूलं कारणं यदासीत्तदसद् रूपेण विद्यमानं नासीत्। न खलु तस्मात्तादृशादसतः कारणात् सद्रूपेण विद्यमानस्य जगतः सृष्टिः सम्भवति। अस्तु तर्हि 'सदेव सोम्य' इति निर्देशात् सदात्मकं निर्वाच्यं कारणं स्यात्। श्रुतिराह—नो सदासीत् तदानीम्' तदानीं सृष्ट्युत्पन्न वेलायां कल्याणप्रचुरं कारणं सदात्मभूतमपि नो नैवासीत्। सदसदात्मकं विलक्षणमेव सृष्टिप्रपञ्चरूपमेतत्। तम—आसीत्तमसा गूढमिति प्रतिपादयिष्यते। पृथिव्यादीनां भावानां सत्ता तदा स्वीकारात् कथं 'नो सद' इत्युच्यते? तत्राह—'नासीद् रज' इति 'लोका रजांस्युच्यन्ते' (निरु० ४-१९) सामान्येनैकवचननिर्देशः। पृथिव्यन्ताः सर्वे लोका नासन्नित्यर्थः। अथ च व्योम आकाशं तदपि नो नैवासीत्। परो व्योम्न आकाशादपि परः परस्तात् किमपि नासीत्। अनेन लीलाभाञ्जि चतुर्दश भुवनानि

ब्रह्माण्डरूपाणि सर्वाण्ये सद्रूपेण निषिद्धानि । एवम् आवार्यरूपं किमपि नासीत् तर्हि तस्यावरकरूपमपि निषिद्धं भवति । 'किमावरीवः' इति । आव्रियमाणरूपमावरकरूपं किमपि तत्वं तदा नासीत् । 'कुह' कुत्र देशे स्थित्वाऽऽवरकतत्वमावृणुयात् ? कोऽप्याधारोऽपि नासीदित्यर्थः 'कस्य शर्मन्' कस्य भोक्तुर्जीवस्य सुखदुःखसाक्षात्कारा‌य शर्मणि निमित्तमासाद्य तदावरकं तत्वमावृणुयात् ! भोक्तृ प्रपञ्चस्य भोगार्था हि सृष्टिः । सत्यामेव सृष्टौ ब्रह्माण्डस्य भूतैरावरणमुचितम् । प्रलयदशायां तु जीवाः प्रलयं गता उपाधेरयावात् । अतो न कश्चिद् भोक्ता नापि भोग्यम् । भोक्तृप्रपञ्च भोग्यप्रपञ्चे तदा नैवास्ताम् । 'इदमग्रे सलिलमासीत्' (तै० स० ७-१-५-१) इति श्रुत्या सलिलस्य सद्भावोऽपि नासीदित्युक्तम् -- अम्भः किमासीत् गहनं गभीरं किमम्भस्तदानीमगाधमासीत् । नैवासीत् । सृष्टेरनन्तमेव सलिलं न ततः प्रागिति ।

व्याकरण्—किमावरीवः वृणोते र्यङ्लुङन्ताच्छन्दसि लङि तिपि । कुह किं शब्दात् सप्तम्यर्थे ह प्रत्ययः । कु तिहोः (७-२-१०४) शर्मन् शर्मणि । सप्तम्या लुक् 'सुपां सुलुक्' ।

मैक्डानल ने 'रजः' का अर्थ वायु और 'शर्मन्' का अर्थ रक्षा किया है ।

हिन्दी व्याख्या— इस सूक्त का परमेष्ठी प्रजापति ऋषि है, देवता— परमात्मा (उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय का कर्ता) छन्दः—त्रिष्टुप् ।

'तदानीं न असद् आसीत्' सृष्टि उत्पत्ति से पहले प्रलयावस्था में 'असत्' अभाव रूप कुछ भी तत्व नहीं था । (न सद् आसीत्) और सत्ता रूप में भी विराजमान कोई तत्व नहीं था । (न रजः आसीत्) पृथ्वी आदि कोई लोक सत्ता में नहीं थे । (न व्योमा परो यत्) आकाश और आकाश से परे भी कुछ नहीं था । (किम् आवरीवः) आवरण करने वाला तत्व भी नहीं था । 'कुह' किस आधार पर अवस्थित होकर आवरक-तत्व आव्रियमाण-तत्व का आवरण करें ? (=न कोई ढकने योग्य वस्तु ही थी और न तो उसका कोई ढक्कन ही था) 'कस्य शर्मन्' किसकी सुख-सुविधा के लिये यह सृष्टि कार्य करे जबकि सभी जीव अपने-अपने कारण में लीन थे ? यद्यपि सावरण ब्रह्माण्ड का निषेध हो जाने से उसके अन्तर्गत सलिल तत्व का भी निराकरण हो गया फिर भी सृष्टि के आदि में जल तत्व की सत्ता का वर्णन आता है अतः जल की सत्ता की भी आशंका दूर करते हैं 'किं गहनं गभीरम् अम्भः आसीत्) यह गहन-गंभीर सलिल क्या था ? वह भी नहीं था । सृष्टि के अनन्तर ही सलिल आदि की सत्ता का निरूपण हो सकता है. पहले नहीं ।

२—

न मृत्यु रासीदमृतं न तर्हि

न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं

तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

पद-पाठः—न । मृत्यु । आसीत् । अमृतम् । न । तर्हि । न । रात्र्याः । अह्नः । आसीत् । प्र ऽ केतः । आनीत् । अवातम् । स्वधया । तत् । एकम् । तस्मात् । ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आस ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्याः सृष्टेः संहारदशायां सर्वमेवादर्शनं गतमित्युक्तम् । तर्हि कोऽपि संहर्ता सृष्टेः कवलयिता कोऽपि महाकालः स्यात् । स च प्रधानभूतो मृत्यु विद्यत एव । आह—'न मृत्युः आसीत्' कुतः संहर्त्रपेक्षा ? मृत्यु रेव नासीत् । एवं तर्हिः मृत्योरभावरूपम् अमृतं स्यात् ? श्रुतिराह—(अमृतं न तर्हि) तदानीम् मृत्योरभावात्मकं तत्दम् अमृतमपि नासीत् । अस्तु तर्हि महाकालरूपा रात्रिः स्याद् अथवा प्रकाशात्मकं दिनं स्यात् 'न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः) प्रकेतः प्रज्ञानं तदानीं रात्र्या अह्नो वा प्रज्ञानं नासीत् । तद्धेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात् सर्वेषां प्राणिनां भोगहेतुभूतं परिपक्वं कर्म फलोपमुक्तमासीत् तदानीं भोगाभावाद् भोक्तृ-प्रपंचस्य प्रलीनाच्च सर्व भोग्यं निष्प्रयोजनमेवासीत् । तदैव संजिहीर्षा जायते । अत एवोक्तम्—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनम् ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ क० उ० ३–२५

(आनीत् अवातम्) तदा एकमेवाद्वितीये ब्रह्म प्राणितवत् । ननु प्राणन क्रिया जीव धर्म इति कथं ब्रह्मणि निरूप्यते ? आह—'आनीत्' इति कथनेन क्रियाव्यापारः, तत्कारणं, कालसम्बन्धश्च द्योतन्ते । 'अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध' इति निर्देशात्' स शुद्धः प्राणसम्बन्धाभावात् । इदानीमिति कीर्तितं यद् ब्रह्म तस्यैव प्रागपि सत्ता विधीयते । एवं तर्हि एवं विधस्य ब्रह्मणो मायया सह सम्बन्धाभावात् सांख्याचार्यैरभिमता स्वतंत्रा सद्रूपा प्रकृतिरेव सत्वरजस्तमोबहुनाऽन्वाख्यातेति चेत् कथं 'नो सत्' इत्युच्यते । उच्यते—'स्वधया तदेकम्' स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्तते इति स्वधा माया । तया तद् ब्रह्म एक मिश्रीभूतम् अविभागापन्नमासीत् । ननु—आनीदवातमिति स्वधया इति दग्—दृश्यरूपमुभयं स्वीक्रियते चेत् 'नासीद् रजः' इत्यादिना कथं प्रतिषेधः क्रियते ? अत आह—'तस्माद्धान्यन् न परः किंचन आस ।

तस्मात् स्वधा (माया) सहिताद् ब्रह्मणो नान्यत् किंचन वस्तुतत्वमासीत्। परः परस्मात् वर्तमानमिदं जगत् तदानीं नैवासीत्।

व्याकरणम्—प्रकेतः—प्र + कित ज्ञाने घञ्। स्वधया तदेकम्—सह युक्ते ऽप्रधाने (२-३-१९) इति तृतीया। सह शब्दयोगाभावे ऽपि वृद्धो यूना (१-२-६५) इति निर्देशात्।

मैक्डानल के अनुसार आनीत का अर्थ श्वास लेने वाला। अवातम् का अर्थ वायु से रहित। स्वेधया का अर्थ अपनी शक्ति से।

हिन्दी-व्याख्या—(न मृत्युः आसीद् अमृतं न तर्हि) उस प्रलय काल में जगत का संहार करने वाली मृत्यु नहीं थी और न तो मृत्यु का अभाव रूप अमृत ही था। रात्रि और दिन का भी कोई संकेत नहीं मिल रहा था (न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः) क्योंकि सूर्य-चन्द्र का भी कहीं पता नहीं था। फिर भी यह तदानीम् = उस समय यह प्रयोग गौणरूप से ही किया गया है। (आनीद् अवातम् स्वधया तद् एकम्) केवल एक ब्रह्म तत्व ही निष्क्रिय होकर प्राणवान् स्थिति में अपनी माया के साथ मिश्रित था = पृथक्-पृथक् इनका विभाग नहीं हो रहा था। अविभक्त होकर दोनों 'एक' में अवस्थित थे। (तस्माद् ह अन्यत् न परः किंचन आस) उस मायामिश्रित ब्रह्म से भिन्न कुछ भी अनुभूयमान नहीं था। उससे आगे भी अविभागापन्न अवस्था के कारण कुछ भी प्रतीत नहीं होता था।

३—

तम आसीत्तमसा गूल्हमग्रे—

ऽप्रकेतं सलिल सर्वमा इदम्।

तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्

तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥३॥

पद-पाठः—तमः। आसीत्। तमसा। गूल्हम्। अग्रे। अ प्र ऽकेतम्। सलिलम्। सर्वम्। आः। इदम्। तुच्छ्येन। आभु। अपि ऽहितम्। यत्। आसीत्। तपसः। तत्। महिना। अजायत। एकम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—'अग्रे' सृष्टेः प्रागवस्था या मिदं जगत् (तमसा गूढम तम ...सीत्) आसीददं तमोभूतमिति मनो निर्देशात् । तमसा ऽ अन्धकारेण गूढम् आवृतं ...एव आसीत् । अत्र शङ्कोदेति—यदि जगदिदं नासीत कथं तर्हि जगतो जन्म ...जनि ? कारणस्य च नियतपूर्ववर्तित्वात् सर्व एव भोग्य प्रपंचो भोक्तृप्रपञ्चश्च ...द्धो भवति । उच्चते='स्वधया तदेकम्' इति प्रतिपिपादयिषया सृष्टेः कारणं ...इति प्रतिपादितम् अधुना तदेव सप्रपञ्चं निरूप्यते । तम एव भावरूपम् अज्ञान ...कारणनावस्थितम् आसीत् (अप्रकेतं सलिलं सर्वम आ इदम्) तच्च तमः अप्रकेतम् ...ज्ञायमानम् सलिलम् सरणशीलं जलमिवेदं सर्वं दृश्यमानं जगद् आः आसीत्) ...च्छयेन आभु अपिहितं यद् आसीत्) आसमन्ताद् भवतीति आभु, तुच्छयेन तुच्छ-...येन निःसारेण भावरूपात्यकेन अज्ञानेन अपिहितम् आच्छादितम् एकम् एकीभूतम् ...विभागापन्नम् विद्यमानम् आसीत् । कारणरूपेण तमसा पृथाभूतं न ज्ञायतेस्म । ...पसः तद् महिना अजायत एकम्) सृष्टि व्यापारपर्यालोचनरूपस्य तपसः महिना ...म्ना महात्म्येय तद् एकीभूतम् अजायत प्रज्ञायमानायाम् अवस्था यामागातम् ।

व्याकरणम्—सलिलम्—षल गतौ—इलच् । आः अस्ते—

मैक्डानल ने लँङि 'आः इदम्' का अर्थ भावरूप में आने वाला किया है । ...पसः' का अर्थ उष्णता तथा महिना का अर्थ शक्ति किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(तम आसीत् तमसा गूढम् अग्रे) पहले प्रलय दशा में सारा ...त् तम=अज्ञान से आच्छादित था । यह जगत् में मूल कारण में अवस्थित 'तम' ...में ही था, जैसा कि मनु कहते हैं—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥१—५॥

जिस प्रकार रात्रि का घना अन्धकार सारे पदार्थों को आवृत कर लेता है ...ी प्रकार दृक् शक्ति तथा दृश्य दोनों ही अन्धकार से आवृत थे । आत्मा का ...वरक होने के कारण यह अज्ञान (ज्ञान का अभाव नहीं अपितु) भावात्मक था । ...ी तम कारण के रूप में अवस्थित होकर जगत् का आच्छादक बना । उस ...च्छादक तम से पृथक् होकर नाम-रूप में इस जगत् का आविर्भाव ही इसका जन्म ...लाया । इससे कारण अवस्था में असत् रूप में अवस्थित कार्य की उत्पत्ति होती ...इस कथन का प्रत्याख्यान हो गया । असत्कार्यवादी यह कह रहे थे कि असत् से ...की उत्पत्ति होती है । यहाँ पर फिर यह शङ्का उठती है कि आवरक तो तम है ...र यह जगत् आवृत है, दोनों में (जगत् कर्म, तम कर्ता) एकात्मकता कैसे मानी ...य? इसी हेतु कहा—अप्रकेतम्=कुछ भी जाना-पहिचाना नहीं जाता था । ...पि यह बात युक्ति से सिद्ध की जा सकती है कि तम के द्वारा जगत् आवृत था ...र भी व्यवहार दशा में नाम-रूप आदि का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो रहा था । ...नहीं प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था ? (सलिलं सर्वम् आः) सभी जगत् कारण से ...त था । विभागापन्न—अवस्था में नहीं था । जिस प्रकार दूध के साथ अवि-

भागापन्न—अवस्था में सलिल (जल) का ज्ञान सुगम नहीं है इसी प्रकार तम से मिश्रित जगत् का ज्ञान आशक्त था। तुच्छ्येन आभु अपिहितं यद् आसीत्) क्षीर के समान तम भी बलवान् है, फिर तो अशक्त जगत् का प्रादुर्भाव ही संभव नहीं—इस हेतु कहा—तुच्छ सदृश सत् और असत् से विचित्र भाव रूप अज्ञान से 'अपिहितम्' यह जगत् आच्छादित था। (तपसः तद् महिना ऽ जायत एकम्) कारण रूप तम से मिश्रित यह जगत् अपने सृष्टा के माहात्म्य से प्रकट हुआ। कहा भी है—यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।

४—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि

मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्

हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

पद-पाठः—कामः। तत्। अग्रे। सम्। अवर्तत। अधि। मनसः। रेतः। प्रथमम्। यत्। आसीत्। सतः। बन्धुम्। असति। निः। अविन्दन्। हृदि। प्रति ऽ इष्य। कवयः। मनीषा ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना पुनः पृश्न उदेति जगतः पुनरुत्पत्तौ किं कारणम्? उच्यते (कामः तद् अग्रे समवर्तत) अस्य विकाररूपेणावस्थितस्य जगतः प्रागवस्थायां परमात्मनो मनसि कामः समवर्तत। काम एवाजायत। स्रष्टुश्चेतसि सर्जनाय संकल्पः समजनि। 'मनसो रेतः प्रथमं यद् आसीत्' मनसो ऽन्तः करणस्य मायायां विलीने सति वासनाशेषतया ऽन्तः करणे समवेतं रेत एव कारणपक्षे निक्षिप्तम्। अथ सामान्येनैकवचनम्। सर्वेषां प्राणिनामन्तः करणे संगृहीतम् इति यावत्। गुणो मनसो धर्मः, नात्मन इत्येतेनोक्तं भवति। तादृशं भाविनः प्रपञ्चस्य बीजभूतं रेतः कारणमासीत्। तच्च यद्यत् प्राणिभिः प्रथमे कल्पे कृतं कर्म परिणामोन्मुखमासीत्, तदेव ऋतमित्युक्तम्। (मनसो रेतः प्रथमं यद् आसीत्) तदेव परिपक्वं तत् फलोन्मुखं

वर्धमानम् आसीत् । अत एव सर्वाध्यक्षस्य सर्वसाक्षिणः परमात्मनश्चेतसि सिसृक्षा जाता उक्तं च (सो ऽकामयत बहु स्याम् तै० आ० ८-६) सतो बन्धुम् असति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्य कवयो मनीषा' सत्तात्मकस्य सर्वजनानुभूयमानस्य जगतो बन्धुं बन्धन हेतु भूतं कल्पान्तरे प्राणिभिः कृतं कर्मसमूहं कवयः क्रान्तदर्शिन ऋषयः अतीतानागतवर्तमानविषयायाभिज्ञा हृदि हृदये निरुद्धया मनीषया बुद्धया प्रतीष्य सम्यङ् निभाल्य असति सद्विलक्षणे ऽव्याकृते कारणे निरविन्दन् निष्कर्षतया-ऽलभन्त । सम्यक् प्रकारेण निष्कृष्य अजानन् ।

व्याकरणम्—प्रति + इष् ल्यप् ।

हिन्दी-व्याख्या—'कामः तद् अग्रे समवर्ततत' परमात्मा की—ईक्षण—रूप महिमा से (=ज्ञानरूप तप से) इस विकार मात्र सृष्टि की प्रथमावस्था में कामः समवर्ततः सम्यगुत्पन्नः । सिसृक्षा=सृजन की इच्छा प्रकट हुई । समस्त संहार दशा में (मनसः रेतः प्रथमं यदासीत्) मनसः अन्तःकरण की वासना ही शेष थी । समग्र प्राणियों के अन्तःकरण की यह एकत्र वासना ही आगे आने वाली सृष्टि का बीज बनी । यही रेत जो भावी जगत्-प्रपञ्च का कारण बना, यह प्राणियों के पिछले कर्म ही अब परिपक्व होकर फलोन्मुख हो रहे थे । (सतो बन्धुम् असति निः अविन्दन् हृदि प्रतीष्य कवयो मनीषा) सद् अवस्था में आकर जो यह जगत् अनुभव का विषय बन रहा था, यह जगत् का बन्धक (=हेतुभूत अन्य कल्पों में सम्पादित कर्म-समूह ही) कविजन (=क्रान्तदर्शी महर्षि जो कि अतीत–अनागत एवं वर्तमान के द्रष्टा के थे) द्वारा हृदय प्रदेश में निरुद्ध मनीषा शक्ति से विचार करके असत् में (सद्विलक्षण में अव्याकृत कारण में जाना गया । निरविन्दन् (=निष्कृष्य अविन्दन् विविच्य अजानन्) ।

५—

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा—

मधः स्विदासी३दुपरि स्विदासीत् ।

रेतोधा आसन् महिमान आसन्

स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

पद-पाठः—तिरश्चीनः । वि ऽ ततः । रश्मिः । एषाम् अधः । स्वित् ।

आसी इ त् । उपरि । स्वित् । आसी इ त् रेतः ऽ धाः । आसन् । महिमानः ।

आसन् । स्वधा । अवस्तात् । प्र ऽ यतिः । परस्तात् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—एवम् अविद्या वा स्यात् कामो वा स्यात् पूर्व संचितानि कर्माणि वा स्युः कारणत्वेनोक्तानि सृष्टेः, नासदासीदित्य विद्यायाः प्रतिपादनं कृतम्, 'कामस्तदग्रे' इत्यादिना कामः प्रतिपादितः, 'मनसो रेतः' इति संचितानि कर्माणि प्रोक्तानि । (तिरश्चीनो विततो रश्मिः एषाम्) एषामविद्याकामकर्मणाम् आकाशादिभूतिजातानि सृजतां यथा सूर्यरश्मिरुदयानन्तरं क्षिप्रमेव सर्वं जगद् व्याप्नोति तद्वत् समग्र एव कार्यवर्गो विस्तृतः समजायत् ।—'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशद्वायु र्वायोरग्निः तै० आ० ८–१' इति निर्देशात् विद्युत्सम्पातवत् शीघ्रमेव क्रमस्य दुर्लक्ष्यत्वात् सर्वं जगदुत्पन्नम् । इयमधुना या सृष्टि दृश्यते सा तिरश्चीना मध्य उत्पतिता, अधोवर्तमाना, उपरि वाऽवलम्बिता वर्षमयी ऋतुमयी, अन्नमयी शीतोष्णवर्षाभिरनुक्रान्ताऽण्डाकारा ब्रह्माण्डवृत्तिः सा न वक्तुं भक्यतेऽधो वा, तिर्यग् वा, मध्ये वा, उपरि वाऽवस्रंसिता विद्यते । अस्मिं ल्लीलामये ब्रह्माण्ड प्रपञ्चे चेयान् विशेषः—केचन भावाः (रेतोधा आसन्) रेतसः कर्म—बीजभूतस्य धारकाः कर्तरो भोक्तारश्च विधारका जीवाः आसन् । एवं सा मायावान् समस्तं सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । अनु प्रविश्य च भोतृभोग्यरूपेण प्रपञ्चेनाव—स्थाय प्रविभागं कृतवान् । (महिमान आसन्) एते च महान्त आकाशादयो भोग्यरूपेणावस्थिता आसन् । तत्र च (स्वधा अवस्तात्, प्रयतिः परस्तात्) स्वधेति अन्न नाम । स्वधा भोगप्रपञ्चोऽवस्तान् निकृष्ट आसीत् प्रयतिः प्रयत्नशीलश्च भोक्तृप्रपञ्चः परस्ताद् उत्कृष्ट आसीत् । भोगयप्रपञ्चो भोक्तृप्रपञ्चस्याधिकारे स्थापितवान् इत्यर्थः ।

व्याकरणम्—आसी इत् । विचार्यमाणानाम् ८-२-९७ इति प्लुतः । अवस्तात्—अस्ताति च ५-३-४० इति अवरशब्दस्य अवादेशः । प्रकृतिभावः ।

हिन्दी-व्याख्या—पूर्व निर्देश में सृष्टि—प्रक्रिया के तीन कारण बताये गये—'नासदासीत्, से अविद्या, 'कामस्तदग्रे' । से संकल्प और 'मनसोरेतः' से प्राणियों के पूर्व कर्म रूप बीज –इन तीन कारणों को देखकर स्रष्टा ने वस्तुओं में सूर्य-किरण के समान शीघ्र ही सृजन का काम प्रारम्भ कर दिया । एक वस्तु से दूसरी वस्तु के निर्माण-क्रम में अति सूक्ष्मता थी । इस अण्डाकार वृत्त के कारण दिन-मास-ऋतु-वर्ष

बनने लगे। नहीं कहा जा सकता कि यह वृत्त तिर्यक था, नीचे था, मध्य में था या ऊपर था। इतना विशेष है कि (रेतोधा आसन्, महिमान आसन्)इस सृष्टि में रेत रूप कर्म-विपाक के धारक-तत्व जो कि भोक्तृ-प्रपञ्च के रूप में अवस्थित थे और दूसरे भोग्य प्रपञ्च में अवस्थित तत्व अपनी महिमा में विद्यमान थे। 'स्वधा अवस्तात् इनमें अन्न आदि रूप में अवस्थित जड़ जगत् निकृष्ट रूप में तथा (प्रय तिः परस्तात्) प्रयत्नशील जीवजगत् जो कि चैतन्य होने के कारण इस सृष्टि का विधारक था, वह उत्कृष्ट रूप में सामने आया।

मैक्डानल ने तिरश्चीनः का अर्थ आर-पार, विततः का अर्थ फैला हुआ, रश्मि का अर्थ रस्सी, महिमानः का अर्थ शक्तियाँ, प्रयतिः का अर्थ मानसिक आवेग किया है।

६—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् ४। ऋ१०२९७

कुत आ जाता कुत इयं विसृष्टिः।

आर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना—

था को वेद यत आ बभूव ॥६॥

पद-पाठः—कः। अद्धा। वेद। कः। इह। प्र। वोचत्। कुतः। आ ऽ जाताः। कुतः। इयम्। वि ऽ सृष्टिः। अर्वाक्। देवाः। अस्य। वि ऽ सर्जनेन। अथ। कः। वेद। यतः। आ ऽ बभूव ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—जडचेतनमयी खल्वियं सृष्टि र्भोग्य-प्रपञ्चभोक्तृप्रपञ्चरूपात्मिका प्रतिपादिता। इदमन्नमयमन्नाद इति। कथं नेदं विधे विधानं सृष्टिसम्-

बन्धि विस्तरेण प्रतिपादितम् ? अत आह—(को अद्धाद वेद) क: खलु सम्यक् प्रका
णेदमित्थमिति वेद ज्ञातुं शक्नोति ? (क इह प्रवोचत्) को वाऽस्मिन् संसारे त
विद्वान् य: प्रवक्तुं शक्नुयात् ? 'कुत आ जाता कुत इयं विसृष्टि:' इयं विविध
कारा सृष्टि: क्वचिद् भोग्यरूपेणावस्थिता क्वचिच्च भोक्तृप्रपञ्चात्मिका, सापि
प्रकारा कुत: कस्मादुपादानस्वरूपा, कारणात् कस्माद्वा निमित्तरूपात् कारणा
विभूंता। न कोऽपि सम्यगेतदु—भयं जानाति प्रवक्तुं शक्नुयाद्वापि। ननु देवा: स
चास्मिन् विषये प्रवक्तारो ज्ञातारो वा। सर्वज्ञा: खलु ते। कथ न वदिष्यन्ति ? अ
आह—(अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेन) अस्य विसर्जनेनानन्तरं देवा उत्पन्ना:। स्व
प्रागुत्पन्नाया: सृष्टे विषये कथमिव ते वक्तुं शकुन्यु:। वयं तु तां सृष्टिमाश्रि
वदामो या दैवत सृष्टेरपि प्राग्जाता। आकाशाद्यनन्तरं विविध भौतिक सर्जनं जा
ततो देवाउत्पन्ना:। सतय वादिन: खलु देवा:। पूर्वकालीमाया: सृष्टे विषये स तेऽ
किमपि जानन्ति। एतेन सृष्टे र्दुविज्ञानत्वं प्रतिपादितं भवति यस्मिन विषये दे
अपि न जानन्ति तस्मिन् विषये क: खलु वराको मानवो वक्तुं ज्ञातुं वा शक्नोति
(अथा को वेद यत आ बभूव) यत: कारणात् समग्रमिदं जगज्जातं तत् कारणा
कारणमति दुर्बोधम्।

हिन्दी व्याख्या—(को अद्धा वेद) वास्तविक रूप से भला कौन इस विषय
जानता है ? (क इह प्रवोचत्) और इस सृष्टि की उत्पत्ति का विवरण भला क
दे सकता है ? (कुत आ जाता कुत इयं वि सृष्टि:) यह विविध प्रकार से उत्प
हुई सृष्टि किस उपादान कारण से अथवा किस निमित्त कारण से प्रकट हुई है
यदि यह कहें कि देवगण सर्वज्ञ हैं, वे ही यथावत् वर्णन कर सकते हैं तो (अर्वा
देवा अस्य विसर्जनेन) हम उस सृष्टि प्रपञ्च के सम्बन्ध में जिज्ञासा कर रहे हैं
कि देवों से भी पूर्व प्रागवस्था में प्रकट हुई। देव सत्यवादी हैं और ? अनन्तर उत्प
हुए हैं, अपने से पूर्व उत्पन्न हुई सृष्टि के बारे में कैसे विवरण दे सकते हैं ? अ
जिस विषय को देवगण भी दुर्बोध समझते हैं उस विषय में (अथा को वेद यत अ
बभूव) अन्य दुर्बल मानव की शक्ति ही क्या है कि कुछ भेद बता सके ?

७—

इयम् विसृष्टि र्यत आ बभूव

यदि वा दधे यदि वा न।

यो अस्माध्यक्षः परमे व्योमन्

सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

पद-पाठः—इयम् । वि ऽ सृष्टिः । यतः । आ ऽ बभूव । यदि । वा । दधे । वा । न । यः । अस्य । अधि ऽ अक्षः । परमे । वि ऽ ओमन् । सः । अङ्ग । यदि । वा । न । वेद ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—इत्थं यथैत सर्जनं दुर्बोधं तथेदं जगद् दुर्धमपि । (इयं ष्टि र्यत आ बभूव) यतः परमात्मन उपादानकारणादियं विविधि प्रपञ्चा सृष्टि व (यदि वा दधे यदि वा न) स सर्वशक्तिमान् सृष्टिमिमां दधे धारयति, अथवा रयति, एतदपि ज्ञातुं कः शक्नुमात् । स एवास्याः सृष्टेर्धारकः, स एवोपादान-त्वं च भजते । अत्र सन्ताः सन्तः केचन प्रकृतिमेव, अपरे स्वभावमेव, अन्ये नेवोयादानभूतानाहुः । अनेन तु मंत्रेण स्रष्टुः सृष्टेश्च दुर्बोधत्वमेव सूच्यते । दूपादानभूताद् ईश्वरादियं सृष्टिराबभूव जगज्जन्म जातं तं परमात्मनं को ज्ञातु- शकनोति ? स एव परमात्मा सृष्टे रूपादान भूतः स एव च निमित्तभूतोऽपि अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्) योऽस्य समग्रस्य भोक्तृभोग्यप्रपञ्चस्य जगतोऽध्क्षोऽस्ति ोमनि आकाशवत्स्वप्रकाशे स्वे महिम्नि विशेषेण तृप्ते निरतिशयानन्द स्वरुपे तः । (सोऽङ्ग वेद यदि वा न वेद) सोऽपि जानाति यदि वा न जानाति, इति जानीयात् । स एव निरतशयानन्दमज्जुलो जानीयान्नवा जानीयादिति सर्वं स ानाति ।

व्याकरणम्—व्योमन्—व्योमनि स्वप्रकाशमये आकाशे । स्वमहिम्नि । यतः— कर्तुः प्रकृतिः १-४-३० इत्यपादानसंज्ञायां पंचम्यास्तसिल् यस्मात् परमात्मन् ानभूतान् ।

मैक्डानल ने दधे का अर्थ विदधे=धारण करना । परमव्योमन् का अर्थ ाम अध्ययन । अध्यक्ष का अर्थ निरीक्षण करने वाला ।

हिन्दी-व्याख्या—(इयं विसृष्टि : यत आ बभूव) यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस कारण रूप ब्रह्म से उत्पन्न हुई (यदि वा दधे यदि वा न) वह शक्तिपुन्ज परमात्मा इस सृष्टि को धारण कर रहा है, अथवा धारण नहीं कर रहा है। जनि धातु की प्रकृति में अपादान कारक होता है, पाणिनि के इस निर्देश के अनुसार यह सिद्ध है कि परमात्मा ही इस सृष्टि का उपादान कारण तथा वही निमित्त कारण भी है। (यो अस्माध्यक्षः परमे व्योमन्) वह अध्यक्ष रूप से अवस्थित परमात्मा इस सृष्टि का कर्ता और धारक होता हुआ भी अपने आकाशवत् प्रकाशित आनन्दप्रद तृप्तिकारी स्वरूप में अवस्थित रहता है। (सो अङ्गवेद यदि वा न वेद) वह अपनी अध्यक्षता में अवस्थित इस सृष्टि प्रपंच को जानता है, अथवा नहीं जानता, यह भी वही जानता है।

———

परिशिष्टम्

पृथिवी-सूक्तम्

पृथिवी के अभिनन्दन में यह सूक्त बहुत ही सुन्दर और सुखद है। आर्य-
जाति के योग्यतम पूर्वजों ने इस सूक्त को प्राप्त किया, अभिनन्दन किया और सुख
तथा आनन्द का जीवन व्यतीत किया।

पृथिवी के अभिनन्दन में ५-८४ सूक्त ऋग्वेद का दृष्टव्य है जहाँ उदार वाणी
में पृथिवी के लिये मंगल-वचन कहे गये हैं। ५-८५-५ में वरुण देवता सूर्य के द्वारा
पृथिवी का माप लेते रहते हैं। यहीं पर पूर्व के मंत्रों में बताया गया है कि पूजनीय
देवता पृथिवी को कोमल, भावार्द्र तथा उर्वर बनाये रखते हैं। २-१२-२ में कहा
गया है कि इन्द्र देवता पृथिवी की अव्यवस्था तथा अनवस्था को दूर करते रहते हैं।
इन्द्र के ही शासन में यह पृथिवी अवनत तथा सुशील रहती है। १-८५ में अपने को
नाना प्रकार के अलंकरणों से सजाने वाले मद्‌गण को पृथिवी का पुत्र कहा गया है।
इसी सूक्त के दूसरे मंत्र में पृथिवी को 'गौ' तथा 'पृश्नि' कहा गया है। १-६७ में
अग्नि के अभिनन्दन में कहा गया है कि पृथिवी का धारण-पोषण वही करते तथा कर
सकते हैं। १-६३-१ में इन्द्र को ही पृथिवी का धारक कहा गया है अथवा पृथिवी
को धारण करने में इन्द्र का सामर्थ्य अपेक्षित बताया गया है। १-३५-८ में कहा
गया है कि पृथिवी की आठों दिशाओं का नियमन सविता देव करते रहते हैं।
१-३४-८ में अश्विनी देवों की प्रशस्ति में कहा गया है कि स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण
रूप में अवस्थित पृथिवी का संधान तथा संस्थापन वे ही करते हैं। १-१३-९ में
इडा, सरस्वती के साथ मही अर्थात् महिमा से मण्डित पृथिवी का स्तवन किया
गया है।

सायणाचार्य ने 'ग्रामपत्तनादि रक्षणार्थम्' ग्राम, नगर राष्ट्र की रक्षा के लिये
पृथिवी की स्तुति का अभिनन्दन उच्च माना है। नक्षत्र कल्प-१७ में 'पार्थिवीं भूमि-
आयस्य' कहकर पृथिवी की अशान्ति को दूर करने के लिए सत्प्रयासों का अभिनन्दन
किया गया है। कौशीतकी ५-२ में 'भौमस्य इति कर्मणि' इति कर्मणि अर्थात् आदर-
कार्य में विजयोत्सव अथवा मंगलोत्सव के प्रयोजन में पृथिवी-सूक्त द्वारा पृथिवी का
अभिनन्दन रुचिकर तथा उचित माना गया है।

इस पृथिवी-सूक्त में बहुत सी सूक्तियाँ पृथिवी के महत्व तथा मंगलमय संस्पर्श
की सूचना देती हैं। बारहवें मन्त्र में कहा गया है कि 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'

भूमि माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। ऋग्वेद में भी ५–५९–६ में 'सुजातासो जनुषा पृश्नि माता:' जो पृथिवी को माता समझते हैं वे ही पुण्यात्मा, कुलीन तथा शालीन हैं। ५–६०–५ में भी बताया गया है कि कोई बड़ा नहीं है, कोई छोटा नहीं है; सभी सौभाग्य की समृद्धि के लिये बन्धु-प्रेम के साथ एक दूसरे का सम्वर्धन करें।

यह पृथिवी सूक्त बड़े महत्व का है। राष्ट्र-प्रेम, मानव-प्रेम, प्राणि-प्रेम तथा औषधि-वनस्पतियों के प्रति प्रेम-भावना के साथ समग्र पृथिवी का नाना प्रकार से वर्णन है। जिस पृथिवी पर नाना प्रकार से बहती हुई नदियाँ जल लाकर उर्वर कोमल भावना का सूत्रपात करती रहती हैं। नाना प्रकार के रसायन जहाँ प्राप्त होते हैं, जहाँ पर मणि, माणिक्य, मोती, स्वर्ण आदि प्रकट होते हैं, जहाँ पर समुद्र से जल लाकर मेघ घन-गर्जना के साथ कृषि-जगत् को मंगल-शब्द सुनाते रहते हैं जहाँ पर मानव जिज्ञासा-वश उत्तम अनुसन्धान करते हैं, वह हमारी पृथिवी 'वर्धयद् वर्धमाना' निरन्तर सम्पदा को प्राप्त करे और हमें सम्पन्न बनाये। वह पृथिवी—'असपत्नं मा पृथिवी कृणोतु', ४१ मुझे शत्रु-रहित बनावे। जिस प्रकार माता बच्चे के लिए दुग्ध-दान करके उसे पुष्ट तथा सम्पन्न बनाती है उसी प्रकार 'सा नो भूमि विसृजतां माता पुत्राय मे पय:' १०; यह पृथिवी मुझे दुग्ध-दान से हृष्ट-पुष्ट बनाये।

जिस पृथिवी पर हमारे यशस्वी नेता, उपाध्याय तथा ऋषिगण नाना प्रकार के संकलन-व्यवकलन से ऐतिहासिक कार्य करके पृथिवी का महत्व बढ़ाते हैं, उसी प्रकार हम भी यज्ञ और तप के आचरण से पृथिवी को सुप्रतिष्ठित करें। ३९

इस पृथ्वी को अपने प्रज्ञान के बल से मनीषी लोग संभूषित करते हैं।८। इस पृथ्वी की वे ही रक्षा करते, कर सकते हैं जो प्रमाद-रहित हैं। देवगण अतन्द्र (अस्वप्न) होकर इस पृथ्वी की रक्षा करते हैं—७। यह राष्ट्र तभी उत्तम, उज्जवल तथा श्री सम्पन्न हो सकता है जबकि यहाँ के लोग फिर उस अभिनन्दन को हृदय प्रदान करें जहाँ कि ऋचा कहती है—'सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे'—८। वह भूमि हमारे राष्ट्र में कान्ति, दीप्ति, ओज और बल को धारण करे जिससे कि हमारा राष्ट्र उत्तम = उच्चतम बना रहे।

अथर्व-वेद

(द्वादशं काण्डम्)

पृथिवी-सूक्तम्

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

पद-पाठः—सत्यम् । बृहत् । ऋतम् । उग्रम् । दीक्षा । तपः । ब्रह्म । यज्ञः ।

...वीम् । धारयन्ति । सा । नः । भूतस्य । भव्यस्य । पत्नी । उरुम् । लोकम् ।

...वी । नः । कृणोतु ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—इयम् अस्माकं कल्याणरमणीया सुखानन्द—प्रवर्धनशीला ...भूमिः सर्वोत्कर्षेण वतते । तां प्रति प्रणतोऽस्मि । इमां भूमिं सत्यं बृहत् ऋतं ...ार्थं ज्ञानं कर्म चोग्र दीक्षा विद्योपादानव्रतं तपः कष्टसहन ब्रह्म संयम नियमपूर्वक ... यज्ञः शुभं हवनदानादिकर्मानुष्ठानम् एतानि पवित्राचरणानि धारयन्ति, धारणे ...र्यानि भवन्ति । सा विशिष्ट गुणकर्मस्वभावाऽस्माकं मातृभूमिः भूतस्य अतीतस्य ...स्य भव्यस्य अनागतस्य समयस्य वर्तमानस्य च पत्नी पालिकाऽस्ति । सा पृथिवी अस्मभ्यम् उरुं विस्तीर्णं लोकं स्थान कृणोतु सम्पादयतु ।

टिप्पणी—सत्यम्—सत्सु भवम् । सत्यमेव जयते । बृहत् —बर्हति वर्धते इति ...त् । वृह + कति । ऋतम्—ऋच्छति—प्राप्नोतीति ऋतम् । क्तः । यथार्थं ज्ञानम् । ...म् —उच्यति समवैतीति उग्रम् । बलम् । ब्रह्म—बृंहति वर्धते तद् ब्रह्म । महेश्वरो ... व्रतंतपोवा यज्ञः—यज + नङ् । पृथिवी—प्रथते विस्तीर्णा भवतीति पृथिवी । ...+ षिवन् । भूतस्य— भू + क्त । भव्यस्य—अचोयत् । पत्नी—पा + डति = पतिः, ... नुक् । उरुम्—ऊर्णु अाच्छादने । ऊकारस्य ह्रस्वत्वम् । ऊर्णोत्याच्छादयति ...ान् इति उरु महत् ।

हिन्दी व्याख्या—यह हमारी मातृ भूमि कल्याण और आनन्द की जननी है। इसके प्रति निरन्तर हमारी नमन-भावना बनी रहे। इस पृथिवी की सत्य, ऋत, दीक्षा तप, ब्रह्म, यज्ञ आदि शिष्टाचार तथा पावन-व्रत रक्षा करते हैं। वह भूत तथा भविष्यत् की देख-रेख करने वाली पृथिवी सदैव हमारे लिए यशस्वी लोकों का सृजन करे। हम सदैव नम्रता और ओजस्विता के साथ अभ्युदय और आनन्दप्रद कार्यों का निर्माण करते रहें।

२—

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।

नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

पद-पाठः—असम्ऽबाधम्। मध्यतः। मानवानाम्। यस्याः। उत्ऽवत

प्रऽवतः। समम्। बहु। नानाऽवीर्याः। ओषधीः। या। बिभर्ति। पृथिवी। न

प्रथताम्। राध्यताम्। नः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्याः पृथिव्या मानवानां मध्ये प्रवतः उद्वतः उच्चा सत्यपि (केचन श्रेष्ठाः केचन लघव स्तथापि) गुणयोगात् सर्वे दक्षतामधिगन्तुम् यत्र बहु आधिक्येन समम् साम्यमैक्यभावोऽस्ति। असंबाधम् कुत्रचिदपि बाधावि नास्ति। या पृथिवी नानाप्रभावा रोगनिवारिका ओषधीः धारयति सा नोऽस निरन्तरं दानादिना जायमानां कीर्तिम् उत्पादयेत्, शौर्यादिना च जायमानं प्रकटयेत् ॥२॥

टिप्पणी—उद्वतः, प्रवतः—'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' इति वतिः। मध्यत मध्य+तस्। बध्यत इति पाठभेदः। असंबाधम—संबाधारहितम्। ओषधीः— दाहे—ओषः, ओषो धीयतेऽत्र ओष+धा+किः, द्वितीया बहुवचने ओषधी प्रथताम्—प्रथ—विस्तारे। राध्यताम्—संसिद्धौ। उभयत्र लोट्।

हिन्दी-व्याख्या—जिस मातृभूमि के मननशील मनुष्यों के मध्य (योग्यता, पद, क्षमता, धन, ऐश्वर्य आदि के कारण) ऊँच-नीच की भावना रह

भी बाधा-रहित साम्य रहता है। एक दूसरे की प्रीति तथा पूर्ति के लिये एक-भावना से जहाँ कार्य किये जाते हैं। जो पृथिवी प्रभावपूर्ण गुणकारी औषधियों को धारण करती है। पृथ्वी की ही कृपा से हम निरामय (रोग-रहित) होकर उत्साहवर्धक कार्य करते हैं। वह पृथ्वी सदैव हमारे लिये दानादि से उत्पन्न कीर्ति तथा शौर्य आदि से उत्पन्न यक्ष को सम्पन्न करें।

३—

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

पद-पाठः—यस्याम् समुद्रः। उत। सिन्धुः। आपः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। सम्ऽबभूवुः। यस्याम्। इदम् जिन्वति। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। पूर्वऽपेये। दधातु ॥ ३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यां सुखप्रदां भूमि मासाद्य समुद्रः स्वाश्रयं प्राप्नोति स्यन्दन शीला नद्यश्च यां प्राप्य प्रवोहोपेता जायन्ते यां च लब्ध्वा अन्याः कूप—कूल्या—निर्भरगता जलधारा रसायनानि उग्दिरन्ति, यस्यां पृथिव्यां स्वभावजन्यम् अन्नं लभते यस्यां च कृषिजन्यानि धान्य—गोधूमेक्षुशाक प्रभृतीनि जीवन जीविकोप—युक्तानि अन्नफलमूलानि वस्तूनि सुखसाध्यानि भवन्ति, यस्यां 'प्राणत् एजत् जिन्वति' श्वसन क्रियायुक्तो गति—सम्पन्नश्च लोकः प्रीतिं तृप्तिं चानुभवति शिल्प कर्माणि उद्योगांश्च स्थापयति। सा माता पृथिवी नः अस्मान् 'पूर्वपेये' पूर्वत एव सिद्धे स्थले स्थापयतु संसिद्धां श्च सम्पादयतु येन वयं शरीर मनोविषये चात्मविषये सर्वप्रकाराम् उर्वरां भूमि प्राप्नुयाम।

टिप्पणी—सिन्धुः—'स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च'। स्यन्दन्ते प्रस्रवन्त्युदकान्य स्मिन्निति सिन्धुः। आपः—'लाप्लट व्याप्तौ' क्विप्। अस्य नित्यं बहुवचनत्वं स्त्रीत्वं च। कृष्टयः—कृष + क्तिन्। प्रथमाबहुवचने। पूर्वपेये—पूर्वं पेयं भोग्यजातं यत्र। प्राणत्—प्र + अन् + शतृ। एजत्—एजृ कम्पने शतृ।

हिंदी-व्याख्या—जिस सुखप्रद प्रथिवी का आश्रय पाकर स्वाश्रित-प्राणियों के साथ समुद्र निश्चलता को प्राप्त होता है। स्यन्दन शील नदियाँ जिस पृथिवी से सम्बल पाकर जन-कल्याण के लिए विचरण करती है। अन्य प्रकार के जल कूप,

वावली, ताल, राजवाह आदि के आश्रय से जहाँ मनुष्यों को प्रसन्न और तृप्त करते हैं। जहाँ पर स्वयम् उत्पन्न अन्न अथवा कृषि-उद्योग आदि से प्राप्त अन्न-धन प्राणियों के कल्याण में कारण बनता है जहाँ पर सभी प्राणधारी और गतिशील लोग नाना प्रकार के उद्यम से जीवन-साफल्य प्राप्त करते हैं। वह माता भूमि हमें पूर्व से ही सिद्ध उर्वर स्थानों में शारीरिक और बौद्धिक उर्वरना का सम्पादन करने में पूर्ण करे ॥३॥

४—

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टयः संबभूवुः।

या बिर्भति बहुधा प्राणदेजत् सानो भूमि र्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

पद-पाठः—यस्याः चतस्रः। प्रऽदिशः पृथिव्याः। यस्याम्। अन्नम् कृष्टयः। सम् ऽ बभूवुः। या। बिर्भति। बहुऽधा। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। गोषु। अपि। अन्ने। दधातु ॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्याः पृथिव्या मानार्थं चतस्रो दिशः प्रदिशश्च प्रबोधयन्ति। यस्यां पृथिव्यां नाना विधान्यन्नानि जायन्ते कृषियोग्यानि च धान्यादीनि प्रादुर्भवन्ति। या मातृभूमि बहुधा बहुप्रकारान् प्राणधारिणः कम्पनशीलान् गतिमतो जीवांश्च दीनान् दक्षांश्च पोषयति। सा करुणामयी भूमि र्गोषु निमित्तभूतासु अन्नेषु च निमित्तभूतेषु अस्मान् बुद्धिसमृद्धान् कुर्यात्। विविध-बुद्धि वृद्धिव्यवहारेषु प्रवृत्ता वयं सुखं सौजन्यं शान्ति च लभेमहि।

टिप्पणी—गोषु—अन्ने='निमित्तात्कर्मयोगे सप्तमी वक्तव्या' इति सप्तमी। कृष्टयः—कर्मवन्तो मनुष्याः। भूमिः—भवन्त्यस्यां भूतानि। 'भुवः कित्'। मिप्रत्ययः।

हिन्दी व्याख्या—जिस पृथिवी का मान-संकेत चार दिशायें-उपदिशायें कर रही हैं। जिस पृथिवी पर नाना प्रकार के अन्न स्वयम् अथवा कृषि-कर्म की विपुलता के कारण उत्पन्न होते हैं। जो पृथिवी नाना प्रकार के उद्योग-धंधों में लगे लोगों को गतिशील-उन्नति तथा प्रगति देती है। वह माता भूमि गायों के निमित्त से अथवा अन्न के निमित्त से हमें निरन्तर उद्बोधन देती रहे। ('अन्ने' यहाँ पर समुदाय—अभिप्राय से एकवचन है")।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वत्नां वयसश्च विष्ठा भगंवर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

पद-पाठ—यस्याम् । पूर्वे । पूर्वऽजनाः । विऽचक्रिरे । यस्याम् । देवाः ।

असुरान् । अभिऽ अवर्तयन् । गवाम् । अश्वानाम् । वयसः । च विऽस्था । भगम् ।

वर्चः । पृथिवी । नः । दधातु ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां ज्ञानधना ब्राह्मणाः शौर्यधनाः क्षत्रियाः कौशलधना वैश्याः कर्मधनाः शिल्पिनश्च स्वानि कर्माणि विक्रमगर्भाणि सम्पादयन्ति। यस्यां दिव्य भूमौ देवगणाः—असुरान् अभिभवन्ति। या धात्री गवाम् अश्वानाम् पक्षिणां च निवासस्थानीयाऽस्ति। सा पृथिवी सौभाग्यम् अस्माकं तेजश्च सर्वदा प्रवर्धयेत् ।

टिप्पणी—पूर्वजनाः—पूर्वपुरुषाः, पूर्वे च ते जनाश्च । विचक्रिरे—वि + कृ + लिट् । अश्वः—अश् + क्कन् । अश्नुतेव्याप्लोती—ति अश्वः । वयसः—वेति गच्छतीति वयः पक्षी, तस्य । वेतेः—असुन् । विष्ठा—वि + स्था + क + टाप् । भगम्—ऐश्वर्यादिकम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस मातृभूमि से सम्बल पाकर आत्मवान् पुरुष ज्ञान शौर्य-कृषि-व्यापार-शिल्प आदि कार्यों को उत्साह के साथ सम्पन्न करते हैं। जिस पृथिवी पर देवों ने असुरों पर विजय प्राप्त की। जहाँ केर गौ, अश्व, पक्षी आदि नाना प्रकार के प्राणी स्थैर्य प्राप्त करते हैं; वह माता भूमि हमारे लिए भी धन-एश्वर्य-ज्ञान आदि से विभूषित करके तेजास्र्णता का समगदन करें।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

पद-पाठः—विश्वम्ऽभरा । वसुऽधानी । प्रतिऽस्था । हिरण्यऽवक्षाः । जगतः ।

निऽवेशनी । वैश्वानरम् । बिभ्रती । भूमिः । अग्निम् । इन्द्रऽऋषभा । द्रविणे । नः ।

दधातु ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—या मुदिनाकारा मातृभूमिः सर्वान् बिभर्ति, विविधानां मणिरत्नादीनां या निकेतभूता, या सर्वेषां प्रतिष्ठा, या स्वर्णपूर्णरस्का या च जगतो गतिप्रदायिनी सर्वेषाम् आश्रयभूता च । या भूमिस्तमग्निं धारयति यो विश्वेषां नेता प्राणधारकश्च । यस्याः गोरुपायाः पृथिव्या इन्द्र एव (सूर्य एव) ऋषभः वृषभस्थातीयः। सा भूमिः सर्वथा सर्वप्रकारामुन्नतिं श्रियं च नो धारयतु ।

टिप्पणी—विश्वंभरा—विश्व + भृ + खच् । मुम् । टाप् । विश्वं बिभर्ति। वसुधानी—वसूनि धीयन्ते यस्याम् । वसु + धा + ल्युट् । ङीप् । प्रतिष्ठा—प्रति + स्था + क + टाप् । हिरण्यवक्षाः—हिरण्यानि हितरमणीयानि वक्षसि यस्याः सा। निवेशनी—निविशन्ति यस्याम् । नि + विश + ल्युट् + ङीप् । वैश्वानरम्—विश्वे नरा यस्यासौ विश्वानरः, विश्वानर एव वैश्वानरः । इन्द्र ऋषभा—इन्द्र ऋषभो यस्याः सा ।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथिवी समस्त भुवन को धारण करने वाली है, जिसमें नाना प्रकार के रत्न विद्यमान हैं, जो सकल जगत् की एक मात्र प्रतिष्ठा है, जिसके वक्षस्थल पर नाना प्रकार के स्वर्ण-रत्न-मणि-मुक्ता आदि के आकर (खान) हैं। जो जगत् को विश्राम देती है। जो विश्व-प्रिय अग्नि को धारण करती है, जिस गोरुप पृथिवी के लिए वृषभ रूप में इन्द्र (सूर्य) ही अवस्थित है। वह पृथिवी हमें रत्न-धन से सदा सम्पन्न रक्खे ॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीम प्रभादम् ।

सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

पद-पाठः—याम् । रक्षन्ति । अस्वप्नाः । विश्वऽदानीम् । देवाः । भूमिम् । पृथिवीम् । अ प्र ऽ मादम् । सा । नः । मधु । प्रियम् । दुहाम् । अथो इति । उक्षतु । वर्चसा ॥ ७ ॥

संस्कृत व्याख्या—यां मधुप्रसविनीं दक्षाम् उदारां विश्वदानीं समग्रपूरयित्रीं सावित्रीं भूमिं देवाः स्वप्नराहित्येन निरन्तरं सावधानाः पालयन्ति न कदाचित् कुत्रापि प्रमादमालस्यां वा कुर्वन्ति। सा कल्याणिनी भूमि र्नो ऽ स्मभ्यं मधु दोग्धु। प्रियं मधुरं च दोग्धु। अथ च निरन्तरं वर्चसा तेजसाऽऽनन्दं सिंचतु।

टिप्पणी—अस्वप्नाः—स्वप्नरहिताः, निरालसाः। विश्वदानीम्—विश्व+दा+ल्युट्। ङणेप्। दुहाम्—दुग्धाम्। लोटि प्रथमयुसर्षैकवचने छन्दसि प्रयोगः।

हिन्दी-व्याख्या—वैज्ञानिकों, विद्वानों, शिल्पियों और विशेषज्ञों से रक्षित पृथिवी निरन्तर आनन्द का सम्पादन करती है, इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जिस दानशील, प्रसवित्री पृथ्वी की रक्षा में देवगण प्रमाद-रहित होकर जागरूक रहते हैं। वह पृथिवी सदा हमारे लिए प्रिय-मधु का दोहन करती रहे और हम पर अमृत का सिंचन करती रहे।

८—

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।

यस्या हृदयं परमे व्योऽमन् त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।

सानो भूमि स्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥ ८॥

पद-पाठः—या। अर्णवे। अधि। सलिलन्। अग्रे। आसीत्। याम्। मायाभिः अनुऽअचरन्। मनीषिणः। यस्याः। हृदयम् परमे। विऽओमन्। सत्येन। आऽवृतम्। अमृतम्। पृथिव्याः। सा। नः। भूमिः। त्विषिम्। बलम्। राष्ट्रे। दधातु। उत्ऽतमे॥ ८॥

संस्कृत-व्याख्या—या भूमिरग्रे ऽर्णवे प्रशस्ते समुद्रे सलिलम् सरणशीलेव जलमयं रूपमास्थाय आसीत् कारण प्रपञ्चे लीनेव व्यवस्थिताऽऽसीत् यां मायाभिः शिल्पसहस्रगुणै र्मनीषिणः सुधीराः पुरुषा अन्वचरन् अनुकूलतया परिचर्यया सेवितवन्तः। यस्या भूमे र्हृदयं परमे व्योमन् उत्कृष्टे गगनेऽमृतमिव सत्य संकल्पबलेन

अभिव्याप्रमस्ति । सा भूमिरस्मान् उत्कृष्टे राष्ट्रे त्विषिं कमनीयां कान्तिं बलं शौर्यं सैन्य शक्तिं चार्पयतु ॥ ८ ।

टिप्पणी—अर्णवे —प्रशस्तान्यर्णांसि विद्यन्ते यत्र, सोऽर्णवः, समुद्रः, तस्मिन् । वकारो मत्वर्थीयः । सलिलम्—सरिरम्—सरण—शीलमुदकम् । पृथिव्याः करण-प्रपंचरूपम् । अग्रे—सृष्टेः प्राक् । मायाभिः—प्रज्ञानैः । मनीषिणः— मत्वर्थे इनिः । व्योमन्—सप्तम्या लोपः छान्दसः । अन्वचरन्—अनु + चर + लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—सृष्टि के प्रारम्भ में जो पृथिवी अतिशय जल-युक्त महासागर में सरणशील बनकर सलिल रूप में ही अपने कारण—प्रपंच में अवस्थित थी । जिस पृथिवी की शुश्रूषा में अत्यन्त मनीषी, ऋषि आदि सहस्रों गुणों तथा शिल्पों के साथ तल्लीन रहे हैं, जिस पृथिवी का हृदय परम—गगन में अमृतरूप में अपने शुभ—सत्य संकल्प के साथ अवस्थित है वह भूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में कान्ति, तेज, बल, साहस तथा आत्म—शक्ति धारण करे । (पृथिवी के परमाणु आकाश में अनश्वर–स्थिति में रहते हैं और अगली सृष्टि के लिए कारण बनते हैं)

९—

यस्यामापः परिचराः समानी रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमि र्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९॥

पद-पाठः—यस्याम् । आपः । परिऽचराः । समानीः । अहोरात्रे इति । अप्रऽमादम् । क्षरन्ति । सा । नः । भूमिः । भूरिऽधारा । पयः । दुहाम् । अथो इति । उक्षतु । वर्चसा ॥ ९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां परितश्चरणशीलाः समस्वभावाः आपः जलधारा अहोरात्रे नक्तन्दिवम् अप्रामादं प्रमादेन विना निरन्तरं क्षरन्ति प्रवहन्ति । सा कल्याणी पृथिवी भूरिधारा बहुधारा युक्ता नाना विधैरुपायैः प्रवर्तमाना पयो दोग्धु । अथ च वर्चसा तेजसाऽस्मान् उक्षतु सिंचतु ॥ ९ ॥

टिप्पणी—परिचाराः—परितश्चरन्तीति चरेष्टः । अहोरात्रे—अहश्च रात्रिश्च इति अहोरात्रम् 'हेमन्तशिशिरावहोरात्रे चच्छन्दसि' इत्यर्थातिदेशात् २–४–२८ अप्रमादम्—प्रमाद आलस्य तद्रहितम् । दुहाम्—दुग्धाम् । छान्दसः प्रयोगः । समानी—समन्तादानयति—आनयतेः (ण्यन्ताद् 'अन प्राणने') डः । (३-२-१०१ वा०)

हिन्दी व्याख्या—सभी प्रकार से आनन्द प्रद जलधारा में जिस पृथिवी पर निरन्तर निरालस होकर बहती रहती हैं, वह पृथिवी हमें नाना प्रकार से=नाना स्रोतों से सुखदायक दुग्ध का दोहन करती रहे और सर्वदा तेज की वर्षा करती है।

१०—

यामश्विनावमिमातां विष्णु र्यस्यां विचक्रमे।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शचीपतिः।

सा नो भूमि र्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

पद-पाठः—याम्। अश्विनौ। अमिमाताम्। विष्णुः। यस्याम्। विऽचक्रमे। इन्द्रः। याम्। चक्रे। आत्मने। अनमित्राम्। शचीऽपतिः। सा। नः। भूमिः। वि। सृजताम्। माता। पुत्राय। मे। पयः ॥१० ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्या मान—वर्धनं कर्तुम् अश्विनौ सूर्यो देवश्चन्द्रश्च अमिमाताम् सक्षमौ भवतः, अश्विनावेव समर्थौ ज्ञातुम् इयं पृथ्वी इयती, ईदृशी वा। यस्यां पृथिव्यां भगवान् विष्णुः समस्तं जगद् वेवेष्टि स्वकीयं शौर्यबलं च प्रख्यापयति यां रमणीयां रणसमर्थां वा पृथिवी रणरणककर्मणि योग्यां मत्वा शतक्रतु र्वज्रबाहुरिन्द्र आत्मने कामयते। या पृथिवी सर्व—पोषकत्वहेतुना शत्रुरहिता राजते। साऽभिनन्दनीया मे माता जननी पय आप्यायनरूपं दुग्धं विसृजताम्। वितरतु।

टिप्पणी—शची पतिः—शची इन्द्राणी, शक्तिः, वाक्—तस्याः पतिः। विचक्रमे—विपूर्वस्य क्रमे लिट्। अनमित्राम्—नास्त्यमित्र यस्मा साऽनमित्रा, ताम्। अमिमाताम्— माङ् माने शब्दे च' लङ्। प्रथम पुरुष द्विवचने।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी की नाप-तोल 'अश्विनौ' सूर्य और चन्द्र करते रहते हैं। जिससे पृथिवी को आधार मान कर पराक्रम शाली विष्णु देवता अपने शौर्य कार्य करते रहते हैं। रमणीय रण के लिए समर्थ मान कर जिस पृथिवी को इन्द्र देवता अपनाते हैं। जो पृथिवी सबके प्रति स्नेहदायिनी होने के कारण शत्रु-बाधा से रहित है वह माता पृथिवी हम पुत्रों के लिए सर्वदा दुग्धपान कराती रहे।

११— गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणी विश्वरूपां ध्रुवा भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।

अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।। ११ ।।

पद-पाठः—गिरयः । ते पर्वताः । हिमऽवन्तः । अरण्यम् । ते पृथिवी । स्योनन् ।

अस्तु । बभ्रम् । कृष्णाम् । रोहिणीम् । विश्वऽरूपाम् । ध्रुवाम् । भूमिम् । पृथिवीम् ।

इन्द्रऽगुप्ताम् अजीतः । अहतः । अक्षतः । अधि । आस्याम् । पृथिवीम् । अहम् ।।११।।

संस्कृत व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वया संधृता वयं ग्रामे नगरेऽरण्ये गहने कान्तारे घने पर्वते दुर्गमे हिमवत्प्रदेशे त्व सर्वत्रैव सुखिनो निरुपद्रवा भवेम । त्वं च सततं कल्याणोगाया स्याः । अलं पृथिवीम् अध्यष्ठाम्—प्रतिष्ठया स्थितो भवेयम् । या पृथिवी क्वचिद् बभ्रुवर्णा कुत्रचित् कृष्णवर्णा क्वपि रोहिणी लोहितवर्णाऽस्ति । यद्वा ता पृथिवी बभ्रः—भरणशीला, कृष्णा—कृषि कर्म योग्या—रोहिणी—स्वतः पिप्पल —वटोदुम्बर—पर्कटी—बिल्वादिवनस्पतिभिः संयुक्ता रोहण स्वभावा । ताम् इन्द्र गुप्ताम् इन्द्रेण ऐश्वर्यशालिना देवेन रक्षितां विश्वरूपां नानारूपां ध्रुवां स्वकीये नियमे नियतां भूमि महमाश्रये । तया पृथिव्या पालितो रक्षितोऽहं सदैव सशक्तो भूयासम्, जयशीलो भूयासम्, अक्षतोऽपीडितो भूयासम् ।। ११ ।।

टिप्पणी—गिरयः—गिरति गृणाति वा गिरिः, इप्रत्ययः किच्च । पर्वताः—पर्वति पूर्णो भवतीति पर्वतः । पर्व विद्यतेऽस्मिन् इतिवा । अत्र यत्वर्थीयस्तकारः । अरण्यम्—ऋच्छन्ति यत्रतद् अरण्यम् । नास्ति रण्यं रकणीयं वा यत्र । स्योनम्—बाहुलकान्नप्रत्यये ऊठि यणि गुणे सिद्धम् । बभ्रु—बिभर्ति सर्वमिति भृधातोः कुः प्रत्ययो द्वित्वं च । रोहिणी—रुहेः इनन् । स्त्रियां ङीष् । अजीतः—ह्रस्वत्व छान्दसत्वात् । अध्यष्ठाम्—'गातिस्थान' इति सिचो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे माता, पृथिवी ! आपकी कृपा से समस्त पहाड़ियों, हिमवान् पर्वत, वन—कान्तार आदि हमारे लिए शान्त, सुखदायक तथा निरुपद्रव हों । मैं पृथिवी का ही आश्रय लेता हूँ जो सर्वदा इन्द्र—देवता से सुरक्षित हैं । जो

भरण शील, कृषियोग्य तथा रोहण स्वभाव वाली (उर्वर) है। जो अपने नियमों में निश्चल, नाना रूपों वाली तथा विस्तीर्ण है। मैं सर्वदा जयशील, पीडा—बाधा—रहित होकर प्रगति—पथ पर अग्रसर रहूं ॥११॥

१२-

यत्ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।

धेह्यभि

तासु नो ह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पर्जन्यः पिता स ऊँ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

पद-पाठः—यत्। ते। मध्यम्। पृथिवी। यत्। च। नभ्यम्। याः। ते। ऊर्ज तन्वः। सम् ऽ बभूवुः। तासु। नः। धेहि। अभि। नः। पवस्व। माता। भूमिः। पुत्रः। अहम्। पृथिव्याः। पर्जन्यः। पिता। स। ऊँ इति। नः। पिपर्तु ॥ १२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी! यद् रमणीयं वस्तु तव मध्यदेशस्य भूषणभूतमस्ति यद्वा वस्तु ते नाभिप्रदेशम् अलङ्करोति। या वा ते मनुजादिरूपा बलवर्णवृद्धिकराः तन्वः (शरीराणि) सन्ति। तासु पूजार्हासु अस्मानपि प्रशस्तान् विधाय पोषय। अभिनः पवस्व—पवित्रानस्मान् विधेहि। भूमिरस्माक माता मातृरूपा, अहं च भूमे र्मातुः पुत्रोऽस्मि। वृष्टे र्देवः पर्जन्य एव अस्माकं पिता पालयिताऽस्ति। स देवः पर्जन्यः सदैव समये वृष्टिप्रदानेनास्मान् पिपर्तु सुखयतु ॥ १२ ॥

टिप्पणी—नभ्यम्—'नाभि नभं च' 'उगवादिभ्यो यत्' ५-१-२ इति यत्। नाभये हितं नभ्यं स्थानम्। पिपर्तु—पृ पालन—पूरणयोः' लोटि। पर्जन्यः—पर्षति सिंचतीति पर्जन्यः। षकारस्य जकारो निपातनात्।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथ्वी मां! आपका अलङ्कृत मध्यभाग, अथवा नाभि-प्रदेश अथवा बल-वर्ण आदि में विभक्त्य जो आपके नाना रूप हैं, उन शरीरों में हमें भी आस्था, प्रतीष्ठा से युक्त कीजिये और मनसा, वाचा, कर्मणा हमें भी पवित्र-पावन बना दीजिये। निश्चय ही यह भूमि माता है और मैं इसका भाग्यवान् पुत्र हूँ। पर्जन्य (मेघ का अभिमानी देव) हमारा पालक पिता है, वह हमारी तृप्ति—पूर्ति करता रहे ॥१२॥

१३-

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।

यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामुर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ॥

सा नो भूमि र्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । वेदिम् । परिऽगृह्णन्ति । भूम्याम् । यस्याम् । यज्ञम् ।

तन्वते । विश्वऽकर्माणः । यस्याम् । मीयन्ते । स्वरवः । पृथिव्याम् । उध्र्वाः शुक्राः ।

आऽहुत्याः । पुरस्तात् । सा । नः । भूमिः । वर्धयत् । वर्धमाना ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या – यस्यां पृथिव्यां सर्वतो वेदिं स्वीकुर्वन्ति । यस्यां विश्वकर्माणो नानाकर्माणः शिल्पिनो विविधान् संकलन-व्यवकलनरूपान् यज्ञान् विस्तारयन्ति । यस्यां स्वरवः यज्ञस्तम्भान् कीर्तियूपान् निर्माणन्ति यशस्विनः । ये खलु कीर्तिस्तम्भा ऊर्ध्वाः शुक्रा दीप्तिमन्तः आहुत्याः शोभनाह्वानयुक्ताः सर्वेषां पुरतः गुणकर्माणि गायन्ति । सा सततं वर्धमाना भूमिरस्मानपि वर्धयत श्रेष्ठे कर्मणि योजयतु ॥ १३

टिप्पणी - विश्वकर्माणः—विश्वानि कर्माणि येषां ते । शिल्पिनः । स्वरवः—स्वृशब्दोपतापयोः, उप्रत्ययः, । यज्ञस्तम्भाः, कीर्तिस्तम्भा वा । स्वर्यन्ते यशस्विन—एभिः वर्धमाना—वृधु + शानच् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी पर अपनी विद्यमानता के लिए वेदी की रचना की जाती रही है, जिस पृथिवी पर शिल्पी लोग नाना प्रकार के चमत्कार युक्त कार्य करते हैं, जिस पृथ्वी पर ऊँचे, कान्तिमान्, आहुतियों के साथ कीर्ति—स्तम्भ स्थायित किये जाते हैं । वह पृथ्वी निरन्तर समृद्धि को प्राप्त करे और इस पृथ्वी की कृपा से हम भी धन-धान्य से परिपूर्ण हों ।

१४

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।

तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

पद-पाठ—यः । नः । द्वेषत् । पृथिवि । यः । पृतन्यात् । यः । अभिऽदासात्

मनसा । यः । वधेन । तम् । नः । भूमे । रन्धय । पूर्वऽकृत्वरि ॥ १४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! योऽस्मान् द्वेष्टि यो वाऽस्म्याक्रमते सेनाया अभिषेणयति । यो वाऽस्माकं कर्माणि कर्म—व्यवहारन् नाशयति, मनसा वा कर्मणा वा यः शत्रुसंचारं चरति । हे पूर्वकृत्वरि पूर्वमेव कर्तुं शीले तं तथा भूतं दुष्टं रन्धय विगलितशरीरं कुरु ।।१४।।

टिप्पणी—द्वेषत्—द्विष् + लेट् । पृतन्यात्—पृतना = सेना, तया याति पृतन्यति—लिङ् । अभिदासात्—अभि + दसु उपक्षये, लिङ् । पूर्वकृत्वरि—पूर्वमेव कर्तुं शीलं यस्याः सा—पूर्व + कृ + क्वरप् + ङीप् ।।१४।।

हिन्दी-व्याख्या—हे माता पृथिवी ! जो संस्कार-हीन व्यक्ति हमसे द्वेष—बुद्धि रखते हैं और जो हम पर नाना प्रकार के अभियान चलाते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से (मनसा योजनाओं द्वारा) आयुध के साथ अथवा निरायुध होकर हमारी कल्याण प्रद योजनाओं को आहत करते हैं, उन्हें पूर्व ही निष्फल कर दो । हे मां हमारी योजनायें और प्रतिभायें सदा उज्ज्वल तथा उर्वर रहें ॥१४॥

१५—

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।

तवेमे पृथिवि पंचमानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः ।

उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

पद-पाठः—त्वत् । जाताः । त्वयि । चरन्ति । मर्त्याः । त्वम् । बिभर्षि ।

द्विऽपदः । त्वम् । चतुःऽपदः । तव । इमे । पृथिवि । पञ्च । मानवाः । येभ्यः ।

ज्योतिः । अमृतम् । मर्त्येभ्यः । उत्ऽयन् । सूर्यः । रश्मिऽभिः । आऽतनोति ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! एते सर्वे प्राणिनस्त्वदेव उत्पन्ना अथ च त्वयि एवाधारभूतायां जीवनव्यापारं साधयन्ति । त्वमेव द्विपद्भूतान् मनुष्यादीन् अथ चतुष्पद्रूयान् पशून् पोषयसि । एते निषादपंचमा श्चत्वारो वर्णा ज्ञानिनः शू व्यवसायिनः सेवापरायणाश्च शिल्पिनः सर्वे वयं तवैवात्म भूताः; येभ्योऽमृतं ज्योति प्रयच्छन् रश्मिभि; सूर्यो भैभवं विस्तारयति ॥१५॥

टिप्पणी—त्वत् जाताः—त्वमेवोपादानभूता, अतः त्वत् इमें जाता उत्पन्नाः मर्त्याः—मरणधर्माणः, मनुस्याः । पंच मानवाः—पंच—गुण कर्मस्वभावाः उद्यन्—उत्+इ+शतृ ॥१५॥

हिन्दी व्याख्या—हे पृथिवि ! इन समस्त प्राणियों के निर्माण में आप उपादान कारण हैं, अतः सारी सृष्टि के आधार रूप में आप ही सम्बल देती हो समस्त प्राणी आपके ही अवलम्बन में अपना-अपना कार्य-व्यवसाय करते हैं । आ ही द्विपद्—चतुष्पद् जीवों को धारण-पोषण कर रही हो । पाँच स्वभाव के मान आपके ही आत्म-भूत हैं जिनके लिये भगवान् सूर्य भी अमृतमय ज्योति का सृजन औ विस्तार करते हैं ॥१५॥

१६—

ता नः प्रजाः सं दुह्लतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

पद-पाठः—ताः । नः प्रऽजाः । सम् । दुह्लताम् । सम्ऽअग्राः । वाचः । मधु पृथिवि । धेहि । मह्यम् ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! वयं सर्वे तवैव पुत्रभूताः परस्परं व्यवहार आनन्ददायिनः कुर्याम । मह्यमपि हे पृथिवि ! वाचो मधु रसायनं देहि यया प तृप्तः पूर्णोऽहं सुखमानन्दं च विन्देयम् ॥ १६ ॥

टिप्पणी—वाचः मधु—सत्यं हितं प्रियं ध्यातमाम्नातं च वाचो मधु धेहि—धा+लोट् । सं दुह्लताम्—'बहुलं छन्दसि' ७–१–८ इति रुडागमः ॥१६॥

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवि ! हम सभी आपके ही पुत्र हैं । हम परस्पर अप व्यवहार को पवित्र, आकर्षक और सावधान रक्खें जिससे सभी प्रसन्न और सान रहें । हे मां ! आपकी प्रेरणापूर्ण कृपा से मैं वाणी के मधु को प्राप्त करुं जिस सभी के साथ विवेकपूर्ण, सत्य, प्रिय और हितकर एवं मधुर वाणी में व्यवहार क सकूँ ॥ १६ ॥

१७–

विश्वस्वंऽमातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणाधृताम् ।

शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥

पद-पाठः –विश्व ऽ स्वऽम् । मातरम् । ओषधीनाम् । ध्रुवाम् । भूमिम् ।

पृथिवीम् । धर्मणा । धृताम् । शिवाम् । स्योनान् । अनु । चरेम । विश्वहा ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—या पृथिवी विश्वस्य स्वभूता स्वत्वाधायिनी वर्तते। या ओषधीनां माताऽस्ति । तां धर्मेण संधृतां नियतां शिवां कल्याणप्रदां भूमिं विश्वहा सर्वदावयं तन्मयेन चेतसाऽनु चरेम । सदाचारतया पूजयेम ॥१७॥

टिप्पणी—विश्वस्वम्—विश्वस्य सर्वस्वभूताम् । धर्मणा—धृ+मनिन् । तृतीया । धृताम्—धृ+त+टाम् । विश्वहा—विश्वेषु अहः सुः ॥१७॥

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथिवी सर्वस्व रूप में सबकी प्रतिष्ठा का कारण है, जो औषधियों की जननी है । उस नियमनशीला पृथ्वी की अनुकूलता में हम सदा सदाचार का सेवन करें । यह पृथ्वी धर्म से ही धारण की जा सकती है। धर्म से ही यह पृथिवी दुःखनाशक, कल्याणप्रद और समस्त सुखों की जननी है ॥१७॥

१८–

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथु र्वेपथुष्टे ।

महाँ स्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।

सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥

पद-पाठ—महत् । सधऽस्थम् । महती । बभूविथ । महान् । वेगः । एजथुः ।

वेपथुः । ते । महान् । त्वा । इन्द्रः । रक्षति । अ प्रऽमादम् । सा । नः । भूमे । प्र ।

रोचय । हिरण्यस्यऽइव । सम्ऽदृशि । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ।।१८।।

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वदीयं सधस्थं सह स्थान भूत निवास योग्य स्थलं महदस्ति । आश्रयदानेन त्वं च महती विशालाऽसि । तव एजथु वेपथुः क्षणमात्रा कम्पनमपि न स्वल्पाय नाशाय भवति, अतस्त्वं सर्वथैव प्राणभूताऽसि । महान् एवेन्द्र खलु यश्च अप्रमादं सावधानतया तव रक्षां विदधाति । हिरण्य संदर्शनेव भूमे ! त्वं नोऽस्यभ्यं प्ररोचय रुचिकरी भव। न कश्चन पुरुषोऽस्मान् प्रति द्वेष कुर्यात् ।।१८।।

टिप्पणी—सधस्थम्—सह स्थानम् = निवास स्थानम् । बभूविथ—भू + लिट् मध्यमपुरुषैकवचने । एजथुः—एजृ कम्पनेअथुच् प्रत्ययः । वेपथुः—टुवेपृ कम्पने + अथुच् । अप्रमादम्—प्रमादरहितम् । सदृशि—संदर्शने, सम् + दृश् + क्विम् ।।१८।।

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! आपकी कृपा से प्राप्त हमारा निवास-स्थान विशाल, विमल और विपुल है । सबसे लिये आश्रय देने के कारण आप उर्वर और विपुल सम्पदाओं की स्वामिनी हैं । आपका क्षण-मात्र का कम्पन भी विशाल विध्वस का कारण बनता है, अतः आप ही सबकी प्राणदायिनी हैं । वह इन्द्र भी महान् है जो निरन्तर आपके रक्षा-विधान में संलग्न है । स्वर्ण-पुष्पों से आप सर्वत्र अलङ्कृत हैं, अतः हमारे लिए सर्वत्र ही मनोरजन और आनन्द का सृजन कीजिये हे मां ! आपका कोई पुत्र (पृथ्वी-पुत्र) हमसे द्वेष-भावना न रक्खे ।।१८।।

१९—

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।

अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ।।१९।।

पद-पाठः—अग्निः भूम्याम् । ओषधीषु । अग्निम् । आपः । बिभ्रति । अग्निः अश्मऽसु । अग्निः । अन्तः । पुरुषेषु । गोषु । अश्वेषु । अग्नयः । ।।१९।।

संस्कृत-व्याख्या—पृथिवीस्थानीयो ऽधुना प्रधानभूतोऽग्निः सः स्तूयते । अग्निरेव भूम्यां भूमे निमित्तभूतोऽवस्थितोऽस्ति सर्वास्वोषधीषु चाग्निरेव पक्वतां पुष्टिं च निदधाति । इमा आपश्च विद्युद्रूपमग्निं स्वे दमे बिभ्रति धारयन्ति । अश्मसु स्वर्ण-मणि-हीरकरत्नेष्ववस्थितोऽग्नि र्महते कल्याणाय सिद्धयति । पुरुषेषु गोषु

इवेषु सर्वत्र यत्र कुचन विभूतिमत्तेजो वर्तते तत्सर्वमग्नेरेव परमात्मनो ज्योतिषा
ोतते ॥१९॥

टिप्पणी—जीवनोपायभूतोऽग्निरेव स च पृथिव्यामेव अवस्थितो विराजते ।

हिन्दी-व्याख्या—समस्त जीवन का उपाय अग्नि में ही सन्निहित है। भूमि,
ोषधि, जल, पत्थर, पुरुष, गौ, अश्व आदि सभी की स्थिति और विभूति का मूल
ारण अग्नि ही है। अग्नि ही मानव-जीवन का ओज है और अग्नि ही परम विवेक
ा उत्पादक है जिससे मानव मोक्ष की प्राप्ति करता है ॥१९॥

२०—

अग्निर्दिव आतपत्यग्ने र्देवस्स्योर्व १ न्तरिक्षम् ।

अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥

पद-पाठः—अग्निः । दिवः । आ । तपति । अग्नेः । देवस्य । उरु । अन्त-
क्षिम् । अग्निम् । मर्तासः । इन्धते । हव्यऽवाहम् घृतऽप्रियम् ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—द्योतनात्मके द्युलोके सूर्यरूपोऽग्निरेव परितपन् प्रकाशं
ज्श्च स्थापयति येन लोकः पुष्टस्तृप्तश्च जायते । अग्निना एव देवेन प्रकाशितं विभु
शालम् अन्तरिक्षं विद्योतते । दीप्त्यर्थं प्रीत्यर्थं रोगनिवारणाय सुखाय चायमेव
तप्रियो हव्यवाहनोऽग्नि हूयते स्तूयते च मानवसमूहेन ॥२०॥

टिप्पणी—देवस्य—दीव्यति इति देवः, तस्य । दिवु+घत्र् । हव्यवाहम्—
व्यं वहति, हव्य+वह+अण् । घृतप्रियम्—घृतं प्रियं यस्य तम् । इन्धते—
ाइन्धी दीप्तौ । । प्रथमपुरुष बहुवचने ॥२०॥

हिन्दी-व्याख्या—द्युलोक में विराजमान सूर्यरूप में अग्नि ही अपना प्रकाश
र तेज स्थापित कर रहा है जिसके कारण समस्त लोक पुष्ट और परितृप्त है। अग्नि
ता के ही कारण प्रकाशित यह विशाल अन्तरिक्ष धारण और पोषण में सक्षम
ा है। दीप्ति, प्रीति, कीर्ति, रोगनिवारणार्थ और सुखार्थ यही घृत—प्रिय, हव्य—
हन अग्नि हवन के लिए तथा स्तुति के लिए पात्र बनता है ॥२०॥

२१—

अग्निर्वासाः पृथिव्यऽसितज्ञू स्त्वषीमन्तं

संशितं मा कृणोतु ॥२१॥

पद-पाठः—अग्निऽवासाः । पृथिवी । असितऽज्ञूः । त्विषीऽमन्तम् । सम्ऽशितम् । मा । कृणोतु ।।२१।।

संस्कृत-व्याख्या—अग्निनाऽऽच्छादितेयं च असितज्ञूः पृथिवी असिते जानुनी यस्याः कृष्णवर्णेत्यर्थः। यद्वा असितज्ञूः—बन्धनरहिते आसिते जानुनी यस्याः सर्व-समर्था कठोरावयवा सशक्ताऽस्माकं पृथिवी सा मां त्विषीमन्तं कान्तिमन्तं संशितं प्रशंसितं सशक्तमुदारं सुवीरं कृणोतु सम्पादयतु ।२१॥

टिप्पणी—अग्निवासाः—अग्निरेव वासःस्थानीयो यस्याः, स्ववीर्यगुप्ता। असितज्ञूः—असिते कृष्णे बन्धन-रहते वा जानुनी यस्याः। न सिते असिते। यद्वा षिञ् बन्धने क्त प्रत्ययः। संशितम्—सम् + शो + क्तः ।।२१॥

हिन्दी-व्याख्या—अग्नि रूप वस्त्र से आच्छादित यह पृथ्वी सदैव आकर्षक= कृष्णवर्ण वाली और बन्धन रहित है। यह पृथिवी हमें कान्तिमान्, यशस्वी और प्रशंसनीय तथा तीक्ष्ण बुद्धि से संपन्न करे ।।२१।।

२२—

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरं कृतम्। हव्यमरं

भूम्यां मनुष्याऽजीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ।।२२।।

पद-पाठः—भूम्याम् देवेभ्यः। ददति। यज्ञम्। हव्यम्। अरमऽकृतम्। भूम्याम्। मनुष्याऽः। जीवन्ति। स्वधया। अन्नेन। मर्त्याः। सा। नः। भूमिः। प्राणम्। आयुः दधातु। जरत्ऽअष्टिम्। मा पृथिवी। कृणोतु ।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या—अलंकृतं यज्ञं होतुं वस्तु च मानवाः पृथिव्यामेव देवेभ्यः समर्पयन्ति। स्वधया स्वत्वधारणशक्त्याऽन्नेन च मानवाः पृथिव्यामेव जीवन्ति

सामर्थ्यं प्रकटयन्ति । सा एवंरूपा पृथिवी नोऽस्मभ्यं प्राणशक्तिं स्वास्थ्यम् आयुश्च
ातु पोषयतु । मां पृथिवी जरदष्टिं जरन्ती स्तुत्या अष्टिः देहयष्टि र्यस्य तथा
ोतु करोतु । यथाऽहं प्रतिष्ठितः प्रशंसितश्च भूयासम् ॥२२॥

टिप्पणी—अरंकृतम्—अलङ्कृतम् । हव्यम्—यत् प्रत्ययः । स्वधया—स्वं
ातीति स्वधा, तया । जरदष्टिम्—जरन्ती स्तुतियोग्या वृद्धत्वमापन्ना वाऽष्टिः
रीरं यस्य असौ जरदष्टिः, तम् ॥२२॥

हिन्दी-व्याख्या—भूमि के ही आधार पर मानव अलङ्कृत यज्ञ तथा पूज्य
ा-सामग्री को देवों तक ले जाते हैं । भूमि के ही अवलम्बन से मानव स्वत्व की
रणा-शक्ति एवम् अन्न से जीवन-लाभ करते हैं । वह भूमि हमारे भीतर सदा
ण संचार करती रहे, प्रशंसनीय आयु दे । मेरे शरीर को पुष्टपकू तथा स्तुत्य
ादे जिससे मन, वचन और कर्म से मैं निष्ठावान् बना रहूँ ॥२२॥

३—

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूवयं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।

यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु ।

मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३॥

पद-पाठः—यः । ते । गन्धः । पृथिवि । सम् ऽ बभूव । यम् । बिभ्रति ।
ोषधयः । यम् । आपः । यम् । गन्धर्वाः । अप्सरसः । च भेजिरे । तेन । मा ।
रभिम् । कृणु । मा नः । द्विक्षत । कः । चन ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! येन गन्धेन त्वं गन्धवतीति विख्याता ।
सि्विनः पुरुषा येन गन्धेन पुष्टिवर्धना जायन्ते । औषधीषु जलेषु यस्ते गन्धः प्रभावं
ाति येन गन्धेन गन्धर्वाः स्वरसाधनसमर्था अप्सरसश्च येन गन्धेन नृत्य-दुग्ध मुग्धा
वन्ति । तेनैव गन्धेन मामपि कलाकौशलपूर्णं विधेहि । वयं सर्वे कला-सौष्ठवयुक्ता
ना उन्नताशया भवेम । न कश्चन दोषद्वेषशंकाकलङ्कदीनो विहीनो वा भवेत् ॥२३॥

टिप्पणी—गन्धः—यशो वै पुरुषस्य गन्धः । गन्धर्वः—गच्छतीति गम् स्वर-विद्या तां धरतीति गन्धर्वः—स्वरशास्त्रपारंगतः । अप्सरसः—अप्सु नृत्यकर्मसु सरन्तीति अप्सरसः । ओषधयः—ओषोऽत्रधीयते । ओषः पुनः रोगदहनकारी ।।२३।।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथ्वी ! जिस गन्ध के कारण अपको गन्धवती कहा गया है । यशस्वी लोग जिस गन्ध के कारण पुष्ट और प्रख्यात हुए हैं । ओषधियों और जल-तरंगों में जो आपका गन्ध है, जिस गन्ध से गन्धर्व गान-कला में तथा अप्सरायें नृत्य कला में प्रवीण मानी गयी हैं । उसी गन्ध से मुझे भी यशस्वी बना दीजिये । हम परस्पर प्रेम से रहें । कोई आपस में द्वेष-बुद्धि न रक्खे ।।२३।।

२४— **यस्ते गन्धः पुष्कर माविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।**

अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु ।

मा नो द्विक्षत कश्चन ।।२४।।

पठ-पाठः—यः । ते गन्धः । पुष्करम् । आऽविवेश । यम्‌संम्ऽजभ्रुः । सूर्यायाः । विऽवाहे । अमर्त्याः । पृथिवि । गन्धम् । अग्रे । तेन । मा । सुरभिम् । कृणु । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ।।२४।।

संस्कृत व्याख्या—हे मातः । पृथिवि ! यो गन्धस्ते पुष्करे । पुष्टिकरे पद्मे आविवेश प्रविस्टोऽस्ति । यं च गन्धं सूर्याया उषसो विवाह काले विवहनसमयेऽग्रेऽमर्त्या देवा दिव्या इमेधारयन्ति । नासिकारन्ध्रं प्रभातवेलायां सुरभिवायुना प्रपूरयन्ति । तेनैव मनः प्रसादकारिणा गन्धेनं ममापि प्राणमात्मानं सुरभिमयं कृणु कुरु । अहमपि प्रकाशानन्द-जुषाऽरविन्दवायुनाऽऽत्मानं सुखयेयम् न कश्चनास्मान् प्रति द्वेषभाव कुर्य्यात् ।।२४।।

टिप्पणी—पुष्करम्—पुष्णातीति पुष्करम् । अरविन्दम् । पुष + करन् । कित् । सूर्यायाः—'सूर्याद्देवतायां चाब्वक्तव्यः ।' ४-१-४८ इति वार्तिकेन सूर्या, ततः षष्ठी । अमर्त्याः—देवाः, मरणरहिताः । मृति + यत् । न मर्त्योऽमर्त्यः । आविवेश—आ + विश + लिट् । संजभ्रुः—सम् + भृ + लिट् । बहुवचने ।।२४।।

हिन्दी-व्याख्या—हे मां पृथिवी ! आपके ही गन्ध से गन्धवान् कमल का पुष्प जिस कोमल-आनन्द को वहन कर रहा है अथवा जिस गन्ध को उषा के विवाह-काल (प्रभात-वेला) में वायु आदि देवता धारण करते हैं। उसी आनन्दप्रद गन्ध से आप मुझे भी सुरभित कीजिये। मैं कीर्ति-गन्ध से विकसित और सदा आनन्दित रहूँ। कोई कभी हमसे द्वेष-भावना न करे ॥२४॥

२५—

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रूचिः।

यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु।

कन्याऽयां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज।

मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

पद-पाठः—यः। ते। गन्धः। पुरुषेषु। स्त्रीषु। पुम्ऽसु। भगः। रूचिः। यः। अश्वेषु। वीरेषु। यः। मृगेषु। उत। हस्तिषु। कन्याऽयाम्। वर्चः। यत्। भूमे। तेन। अस्मान्। अपि। सम्। सृज। मा। नः। द्विक्षत। कः। चन ॥ २५ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे मातः ! भूमे ! पौरुष प्रधानेषु शूरेषु स्त्रीषु पुरुषेषु अश्वेषु विजयशीलेषु मृगेषु हस्तिषु यस्ते गन्धोऽभिव्यक्तोऽस्ति येन गन्धेन ते चकुरा मानिनो मनस्विन स्तेजस्विनः प्रभवन्ति। येन गन्धेन कन्या कमनीया ब्रह्मचारी च कान्तिमाञ्जायते, तेन गन्धेन अस्मान् अपि पूर्णान् वीरान् समरसहान् विधेहि। वयं धीराः कान्तिमन्तो मनस्विनो मनीषिणश्च भवेम। नैव कश्चन अस्मान् प्रति द्वेष-बुद्धिं धारयेत्। सर्वे प्रियाः प्रेयांसः श्रेष्ठा जायेरन् ॥२५॥

टिप्पणी—रुचिः—रुच् दीप्तौ, कि प्रत्ययः। वर्चः वर्च + असुन् ॥२५॥

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! पौरुष से युक्त शूरों में, नारियों में, मानवों में, अश्वों में, जयशील वीरों में, मृगों में, हस्तियों में तथा अन्य वैभव युक्त प्राणियों

में जो ऐश्वर्य तथा कान्ति है। कन्याओं में अथवा ब्रह्मचारियों जो में कान्ति तथा ब्रह्म तेज है, उससे हम हम सबको भी कान्तिमान् तथा तेजस्वी बना दीजिये। सभी स्नेह और निष्ठा से परस्पर योग देकर उन्नति करें। कोई पुरुष अन्य पुरुष से अथवा हम लोगों से द्वेष-भावना न रक्खे ॥२५॥

२६—

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

पद-पाठः—शिला। भूमिः। अश्मा। पांसुः। सा। भूमिः। सम्ऽधृता। धृता। तस्यै। हिरण्यऽवक्षसे। पृथिव्यै। अकरम्। नमः ॥ २६ ॥

संस्कृत व्याख्या—शिला, भूमिः मृण्मयी पृथिवी, अश्मा प्रस्तरयुक्तो भूखण्डः, पांसुः धूलिप्रदेशः ; इत्येतावन्मात्रमेव नैवास्माकं मातृस्थानीयेम जननि भवति, अपितु इयं देवर्षिभि र्महर्षिभी राजर्षिभिः सधृता सम्यक् पोषिता पालिता अकिंचित्करी खल्वपि विश्वंभरा मातृचरणा चिन्मयी। अस्यै हिरण्यवक्षसे स्वर्णाभरणायै पृथिव्यै श्रद्धयाऽहं नमोवचनेन मनीषया स्तौमि, अभिवादयेऽभिनन्दामि ॥ २६ ॥

टिप्पणी—हिरण्यवक्षसे—हिरण्यं स्वर्णमयं भूषणोपेतं वक्षो यस्याः सा, तस्यै ॥ २६ ॥

हिन्दी-व्याख्या—शिला, भूमि, मिट्टी, पत्थर, धूल, इतने मात्र को ही पृथिवी नहीं कहा जा सकता। यह पृथिवी हमारी माता (निर्माता=निर्मात्री) है। यह देवर्षि, महर्षि और राजर्षियों से पालित, वन्दित और अभिनन्दित चिन्मयी (चैतन्य रूपा) शक्ति है। देवताओं ने इसे सराहा और शुभाधार दिया है। इस स्वर्णाभरण से जगमगाने वाली मातृभूमि का मैं अभिनन्दन करता हूं ॥२६॥

२७—

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥ २७ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । वृक्षाः । वानस्पत्याः । ध्रुवाः । तिष्ठन्ति । विश्वहा ।

पृथिवीम् । विश्वऽधायसम् । धृताम् । अच्छ ऽ आ वदामसि ॥ २७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां फलच्छायासमन्विता गन्धाढ्या नानाकारा वृक्षाः सुखानन्ददायिनः स्थिताः सन्ति । मूल-पत्र-पुष्प-दुग्धोपेता वनस्पतयश्च यस्यां स्थित्वा रोगान् निवारयन्ति निरन्तरं च सर्वेषु दिनेष्ववस्थिताः सर्वत्र सुखवर्धनानि निरुपद्रवाणि निष्पापानि रक्षणानि तन्वन्ति । तां विश्वधायसं सर्वपोषिकां मातरं पवित्रामात्यबलेन अवस्थिताम् अच्छ आवदामसि । प्रियं हितं मधुरं बुद्धिगम्यं वचनं वदामः । तां प्रति तत्पुत्रान् प्रति च सदैव स्निग्धेन व्यवहरामः ॥२७॥

टिप्पणी—विश्वहा—विश्वेषु अहःसु, सर्वेषु दिनेषु । विश्वधायसम् —विश्वं दधाति । विश्व + धा + अयसुन् ॥२७॥

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथ्वी पर फल—छाया से युक्त गन्ध से भरे हुए नाना प्रकार के वृक्ष हैं, जहां पर नाना प्रकार से ओषधि वनस्पति के वृक्ष अवस्थित हैं, जो हमारी रोग-मुक्ति तथा पुष्टि में निमित्त बनते हैं । उन सब जड़ी-बूटियों, वृक्षों, वनस्पतियों, रसायनों को धारण करने वाली पृथ्वी की हम निष्ठा के साथ स्तुत्य-वचनों के द्वारा स्तुति करते हैं ॥२७॥

२८—

उदीराणा उतासीना स्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।

पद्भयां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥

पद-पाठः—उत्ऽईराणाः । उत । आसीनाः । तिष्ठन्तः । प्रऽक्रामन्तः ।

पत्ऽभ्याम् । दक्षिणऽसव्याभ्याम् । मा । व्यथिष्महि । भूम्याम् ॥ २८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मातः पृथिवि ! भूम्यां मा व्यथिष्महि न कदापि कमपि ते पुत्रं पीडयेम । न मत्तः कोऽपि दुःखभाग् भवेत् । यदि वयम् उद् ईराणाः किमपि प्रयोजनमुद्दिश्य क्वापि व्रजामः, उद्वा यद् आसीवाः स्थिता वयम्, यद्वा लब्धस्थानाः, यद्वा मिश्रप्रयोजनाः प्रतिद्वन्द्विताम् आपन्नाः संघर्षकर्मणि प्रक्रामन्तः अभिभवभावनया

उत्कटकोटिं स्थितिं भजमाना:, यद्वा वामेतरचरणाभ्यां धीरोद्धतां गतिमापन्ना: कदापि क्वापि न कोऽपि जन: पीडास्यमद् अनुभवेत् । सर्वे कुशला: सुखिन: सानन्दा वसेयु: ।२८

टिप्पणी—उदीराणा:—उत् पूर्वस्य ईर् गतौ शानच्, आने मुक् । प्रक्रामन्त: प्र + क्रम + शतृ । दक्षिण सव्याभ्याम—सव्य शब्दो वाम पर्याय: ।

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! हम आपके किसी भी पुत्र को कभी किसी प्रकार की पीड़ा न पहुंचायें । किसी को कष्ट या वेदना न पहुंचे । यदि हम किसी आन्तरिक प्रयोजन के कारण कहीं जा रहे हों अथवा बैठ कर कोई मन्त्रणा कर रहे हों या प्रतिष्ठा अथवा पद-प्राप्ति के अनन्तर आनन्द में अवस्थित हों अथवा सम-तुल्य प्रयोजनों के कारण आपस में प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी हो अथवा संघर्ष में एक दूसरे के प्रति आश्रय लेते हुए भी अभिभूत हो रहे हों कहीं किसी भी दशा में किसी के प्रति भय अथवा दु:ख में हम कारण न बनें । दाहिने-बायें चरणों से चलते हुए हम कभी उद्धत न बनें । हम सदा अनुशासित, शिष्ट और सन्तुलित होकर सुख—आनन्द की प्राप्ति करें ।।२८।।

२९—

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।

ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ।।२९।।

पद-पाठ:—विऽमृग्वरीम् । पृथिवीम् । आ वदामि । क्षमाम् । भूमिम् । ब्रह्मणा । वावृधानाम् । ऊर्जम् पुष्टम् । बिभ्रतीम् । अन्नऽभागम् । घृतम् । त्वा । अभि । नि । सीदेम । भूमे ।। २९ ।।

संस्कृत-व्याख्या—विमृग्वरीं गवेषणाबुद्ध्या मार्गणशीलां प्रचेतनेन चेतयन्तीम् पृथिवीमहमावदामि, इयमेव भूमि र्मुक्तिमुक्तिप्रदायिनीति गिरा संभृतया प्रशंसामि । इयं भूमि: समर्थाऽपि क्षमाशीला, सर्वेषां मातृभूता ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरेण च वावृधाना प्रवर्धनशीला वृद्धित्वमापन्ना ऊर्जं मनोबलं पुष्टं शरीरबलं च बिभ्रती धारयन्ती नानाविधान्यन्नानि पोषयन्ती दीप्तं घृतं च रक्षन्ती स्तुत्या खल्वियं सुखरमणीया भूमि: । हे पृथिवि ! वयं सदैव तव सकेतान् पालयेम । ।२९।।

टिप्पणी—विमृग्वरीम्—विविधेन प्रकारेण मृऽग्वरीम्—मार्गणशीलाम्—वि + मृजू + क्वरप् । ङीप् । वावृधाना—वृध् + कानच् । बिभ्रती—डुभृञ् + शतृ + ङीप् ।।२९।।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथ्वी निरन्तर चेतना दे रही है, कौतूहल तथा ज्ञानोद्गम के लिए जो सदा उकसाती रहती है। उस पृथ्वी की मैं हृदय से सराहना करता हूँ। यह पृथ्वी क्षमाशील, प्राणियों का आश्रय, वेद तथा परमात्मा के द्वारा सम्वर्धनशील, मनोबल तथा शारीरिक बल को बढ़ाने वाली, नाना प्रकार के अन्नों से प्रजाओं का पालन करने वाली, घृत जैसे तत्व के लिए जो मूल-कारण है, उस पृथ्वी के प्रति हम सदा उदार और पवित्र बन कर रहें। हे पृथिवी ! आपके मनोरम संकेतों का हम सदा पालन करते रहें ॥२९॥

३०—

शुद्धा न आप स्तन्वे ऽ क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः।

पवित्रेण पृथिवी मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

पद-पाठः—शुद्धाः। नः। आपः तन्वे ऽ। क्षरन्तु। यः। नः। सेदुः। अप्रिये। तम्। नि। दध्मः। पवित्रेण। पृथिवी। मा। उत्। पुनामि ॥ ३० ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्मभ्यम् आपः शान्ताः शुद्धा निरुपद्रवाः क्षरन्तु निष्पतन्तु। यो नः सेदुः शोकोद्भव स्तम् अप्रिये नि दध्मः। समस्तां विकृतिं नियम्य प्रकृतौ स्थापयामः। स्वे महिम्नि चात्मानम्। शोकः शत्रौ हर्षप्रकर्षश्चात्मनि। हे पृथिवी ! तव सुरभिणा पवित्रेण निरन्तरम् आत्मानं शोधयामि। यशो वै मनुष्यस्य सुरभिः। सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् इति श्रुतेः ॥३०॥

टिप्पणी—तन्वे—शरीराय। सेदुः—'पद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु' उप्रत्ययः, अकारस्य एत्वम्। शोकः। पवित्रेण—पुवः इत्रः। पवित्रेण=ऋषिवद् आचरणेन।

हिन्दी-व्याख्या—हमारे लिए शान्त, निर्मल, रमणीय, निरुपद्रव जल सदा प्रसन्नता के साथ प्राप्त हो। शोक, सन्ताप, ग्लानि, शंका आदि मानसिक कष्ट निरन्तर दूर होते रहें जिससे कि हमें स्वाभाविक रूप से स्थिरता प्राप्त हो। हे पृथ्वी ! ऋषियों समान आचरण करता हुआ मैं सर्वदा अपनी आत्मा को प्रसन्न और पवित्र बनाता रहूं ॥३०॥

३१—

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीची र्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्।

स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

पद-पाठः—याः। ते। प्राचीः प्रऽदिशः। याः उदीचीः। याः। ते। भूमे। अधरात्। याः। च। पश्चात्। स्योनाः। ताः। मह्यम्। चरते। भवन्तु। मा। नि। पप्तम्। भुवने। शिश्रियाणः।। ३१।।

संस्कृत-व्याख्या—हे भूमे! यास्ते प्राची—दक्षिण—प्रतीची—उदीची चतस्रो दिशः सन्ति, या वा आग्नेय—नैऋत्य—वायव्य—ईशाना—ख्याः प्रदिशः सन्तिः याश्च तवाधोभागे पृष्ठभागे वा दिशः सन्तिः ताः सर्वा दिशः प्रदिशचरते मह्यं स्योना भवन्तु सुखसम्पादयित्र्यः सम्भवन्तु। हे भूमे! अस्मिन् भुवनेऽहम् आश्रयं भिक्षमाणः कदापि पतनं न स्वीकुर्याम् ।।३१।।

टिप्पणी—प्राचीः, उदीचीः—प्र, उत् पूर्वस्य अञ्चतेः 'अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्' इति ङीप्। क्विन्। =प्र+अञ्चु+क्विन्+ङीप्। एवमेव उदीचीः। स्योनाः—सिवु धातोः न प्रत्ययः। 'ऊठ्' आदेशे कृते स्योनं सुखम्। सन्तनोति,सीव्यति वा सुखान्तूत्। मा नि पप्तम्—पत्लृ गतौ, लृदित्वात् अङ् 'पुषादि०' अङि० परतः 'पतः पुम्' इति पुमागमः। 'न माङ् योगे' इत्यड् अभावः। शिश्रियाण.—श्रि धातोः लिडर्थे कानच् ।:३१।।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी! आपके ही कारण पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर दिशाओं की तथा आग्नेय-नैर्ऋत्य-वायव्य-ईशान नाम वाली प्रदिशाओं की प्रतीति होती है, इसी प्रकार ऊपर और नीचे (भूगोल और खगोल) का ज्ञान प्राप्त होता है। यह सभी दिशायें ज्ञान के लिए गवेषणा करने वाले उत्सुक मुझ मानव के लिए कल्याणप्रद हों। मैं इस महान् भुवन में ज्ञान-विज्ञान के लिए तरसता हुआ कहीं पतनावस्था को न प्राप्त कर सकूं ।।३१।।

३२—

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो
वरीयो यावया वधम् ।। ३२ ।।

पद-पाठः—मा । नः । पश्चात् । मा । पुरस्तात् । नुदिष्ठाः । मा । उत्तरात् । अधरात् । उत । स्वस्ति । भूमे । नः । भव । मा । विदन् । परिऽपन्थिनः । वरीयः । यवय । वधम् ॥ ३२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! पश्चात् पुरस्ताद् वा ऽ शुभे कर्मणि अस्मान् 'मा नुदिष्ठाः' न प्रेरय । उत्तराद् अधाराद् वा देशात् अस्मान् न दुःख बहुले सम्पाते पातय । हे भूमे ! सदैव नः अस्मभ्यं सुखप्रदा भव । सुमनस्कास्त्वां सदैव मित्रभूतां पश्येम । न च प्रगुणे कर्मणि वर्तमानान् परिपन्थिनों दुष्टा अस्मपून् ज्ञातारो भवन्तु । घातकस्य विघातकम् अस्त्रं हे पृथिवी ! यावय क्षिप्रं दूरे निक्षिप ॥३२॥

टिप्पणी—पुरस्तात्—अस्ताति प्रत्ययः । नुदिष्ठाः—नुद प्रेरणे । लोट् । मध्यमपुरुषैकवचने । परिपन्थिनः—परिपथ शब्द—पर्यायः परिपन्थशब्दोऽस्ति । तस्मादिनिः, परिपन्थिन् । बहुवचने । परिपन्थिनः । चौराः । वरीयः—ईयसुन् प्रत्ययः । अतिशयिते ।।३२॥

हिन्दी व्याख्या—हे पृथ्वी ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे, ऊपर किसी ओर से भी हमें अशुभ-मार्ग की ओर प्रवृत्त मत होने दो । हमारे लिए सदैव आनन्द प्रद प्रेरणा देती रहो । हमें शुभ मार्ग में तत्पर जान कर कभी भी चोर-दस्यु हमारा पीछा न करें । दुष्टों के घातक आधात से हे पृथिवी ! हमें सदा दून रक्खो ॥३२॥

३३—

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।

तावन्मे चक्षु र्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

पद-पाठः—यावत् । ते । अभि । विऽपश्यामि । भूमे । सूर्येण मेदिना । तावत् । मे । चक्षुः । मा । मेष्ट । उत्तराम् ऽ उत्तराम् । समाम् ॥ ३३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! यावत्ते रहस्यं द्रष्टुं ममाधिकारोऽस्ति तावत् स्निग्धेन सूर्येण सहास्माकं नेत्रमुज्ज्वलं ज्योतिर्धतुं समर्थं विमलं सशक्तं च तिष्ठेत् ।

चक्षु में बहिरन्तश्च अवस्थितं स्थूलं सूक्ष्मं च चक्षुः सदैव सम्पन्नाम् उर्वरां पुष्कलां च समृद्धिमाप्नुयात् । न कदाचन क्षीणताया अनुभवो भवेत् । उत्तरामुत्तरां समाम्— अतीतकालवद् भाविन्यपि काले नेत्रज्योतिः सदैव अन्यैरवयवैरिन्द्रियैश्च सह प्रसन्नं स्वस्थ सावधानं विलसेत् ।३३ ।।

टिप्पणी—मेदिना—ञिमिदा स्नेहने—इनि प्रत्ययः । मा मेष्ट—मिष धातुः स्पर्द्धायां तुदादौ दृश्यते । घञि कृते निमेष इति भवति । अनेकार्था धातवो भवन्तीति मा येष्ट = निमेषोन्मेषक्रियायां चक्षुर्ह्रासं न व्रजेदित्यभिप्रायः । छान्दसत्वात् लुङि आत्मनेपदत्वम् । समाम्—वर्षपर्यायः समाशब्दः । मा माने, 'आतश्चोप सर्गे' ३-३-१०६ इति अङ् । यद्वा—षम ष्टम वैक्लव्ये । समति विक्लवं करोति-पचाद्यचि, टाप् । यद्वा —अमा शब्दोऽमावास्यायां श्रूयते । समानस्य स भावो विदितः । अमया सह वर्तते, इति समा । यद्वा मा शब्दो लक्ष्मीवाचकः । सह मया वर्तते इति समा ।।३३।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! विविध—दृष्टियों से जहाँ तक मेरी सामर्थ्य है. आपके विविध ऐश्वर्यों की गवेषणा मैं करता रहूँ । चमकता हुआ सूर्य सर्वदा हमको प्रकाश प्रदान करता रहे । हमारे निमेष—उन्मेष की प्रक्रिया में अन्त-र्दृष्टि और बाह्य—दृष्टि सदैव शान्त और सावधान रहे । कभी भी मुझे क्षीणता अथवा शैथिल्य का अनुभव न हो ।।३३।।

३४—

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।

उत्ताना स्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।

मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरी ।। ३४ ।।

पद-पाठ—यत् । शयानः । परिऽआवर्ते । दक्षिणम् । सव्यम् । अभि । भूमे । पार्श्वम् । उत्तानाः । त्वा । प्रतीचीम् । यत् पृष्टीभिः । अधिऽशेमहे । मा हिंसीः । तत्र । नः भूमे । सर्वस्य । प्रतिऽशीवरि ।। ३४ ।।

संस्कृत-व्याख्या—हे भूमे ! निद्राकामो यदाऽहं दक्षिणं दक्षिणेतरं वा पार्श्वं पर्यावर्ते परिवर्तनं करोमि यद्वा यदा वयं उत्तानाः सन्तः पृष्ठतो वा शायनं कुर्मः ।

ऽसावधानान् अस्मान् विज्ञाय सर्वतो रक्ष । सर्वेषां त्वमेव विश्रामदायिनी विश्वस्ता तेवावलम्बनभूता, अतः त्वामेव शरणं गता वयं त्वय्येव वीतशोकायां लब्धप्रति- ायां स्थितिं याचामहे ।।३५।।

टिप्पणी—शयानः—शीङ् स्वप्ने । लटि शानच् । पर्यावर्ते—परि + आ + उत्तानः—उत् + तन + अण् । प्रतिशीवरी—प्रति + शी + क्वरप् ।

हिन्दी व्याख्या—हे पृथ्वी ! निद्रा के कारण जब कभी मैं दायीं—बायीं वट लेटूँ अथवा यदि हम उतान सो रहे हों अथवा पीठ के सहारे लेट रहे हों, प सर्वदा हमारी रक्षा करना । कभी किसी प्रकार की क्षति अथवा पीड़ा हमें न । हे पृथिवी ! आप ही सब का एक मात्र सम्बल हो, इस कारण हम सर्वदा ऐसा तावरण बनायें कि एक-दूसरे को एक-दूसरों से पीड़ा, शंका कलह—कष्ट का व न हो ।

५—

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।

मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

पद-पाठः—यत् । ते । भूमे । विऽखनामि । क्षिप्रम् । तत् अपि । रोहतु ।

। ते । मर्म । विऽमृग्वरि । मा । ते हृदयम् । अर्पिपम् ।। ३५ ।।

संस्कृत व्याख्या—हे दयावति भूमे ! भैषज्यार्थं पुष्ट्यर्थं रोगनिवारणार्थं यत् किमपि जडं मूलं क्षुपं लतां वा विविधया धिया खनामि तदपि विनष्टं तत्वं क्षिप्रं प्ररोहमाप्नोतु । तद् विश्वस्तं वस्तु यथा पुनरुपलब्धं भवेत् । हे मार्गणशीले यं मर्मस्थलं न कदाप्यहं पीडयेया । त्वदीयमन्तरालं रहस्यभूतं वा स्थलं नैवाहं रमेयम् ।

टिप्पणी—विमृग्वरि—विविधेन प्रकारेण मार्गणशीला, तत्सम्बुद्धौ । वि + + क्वरप् । ङीप् । हृदयम्—'वृहोः षुग्दुकौ च' इति कयन् प्रत्यये दुगागमः । हम् अहम् अर्पिपम्—'उर्ऋत्' इति पक्षे गुणात्यवादः । णिलोपस्य 'द्विर्वचनेऽचि' स्थानिवत्वात् पिशब्दस्य द्विर्वचनम् । ऋकाराभावपक्षे गुणे 'नन्द्राः' इति रेफस्य न निषेधात् पिशब्दस्य द्विर्वचने 'मा अहम् अर्पिपम्' इति सिद्धयति ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दया, दान की अधिष्ठात्री माँ पृथिवी ! औषध—उपचार ए, पुष्टि के लिए अथवा रोग-निवारण के लिए जो कुछ जड़ी-बूटी, पौधा,

लता आदि मैं नाना प्रकार के विचारों से उत्पादन (उखाड़ूँ) करूँ। वह शीघ्र ही पुनः जम जाय जिससे भविष्य में भी उसकी पूर्ति होती रहे– निरर्थक विनाश न करूँ। हे पृथ्वी ! आपके अन्तराल में हमारी गवेषणा-बुद्धि सदा जागरूक रहे पर मुझसे कभी भी आपको मार्मिक-कष्ट न पहुंचे। कभी भी मैं आपके हृदय को परिक्लेशित न करूँ ॥ ३५ ॥

३६— **ग्रीष्मस्ते भूमे व वर्षाणि शरध्देमन्तः शिशिरो वसन्तः ।**

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६॥

पद-पाठः—ग्रीष्मः । ते भूमे । वर्षाणि । शरत् । हेमन्तः । शिशिरः । वसन्तः । ऋतवः । ते । विऽहिताः । हायनीः । अहोरात्रे इति । पृथिवि । नः । दुहाताम् ॥३६

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! षड् ऋतवः ग्रीष्मो, वर्षा, शरत् हेमन्त वसन्तः, एतेऽवस्थिता पुष्पेण फलेन पत्रेण मूलेन चास्मान् निरन्तरं शोभयन्ति सुखय संवर्धयन्तिच । एकस्मिन्नेव हायने वर्षे एते षड्तवोऽस्माकमेव भारतं देशं यश भूयसा भोगेन अन्नेन च पोषयन्ति । हे पृथिवि ! एवमेव सम्पन्ने अहोरात्रे । अ रात्रेश्च युगलम्) सुखं रसं च प्रपूरयेताम् ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—ग्रीष्मः—ग्रसते शीतं रसादिकं वा । ग्रसधातो ग्रींभावः । षुगागम निपातनात् । वर्षम् =वर्षाणि—वृणोति—आवृणोति धनेन गगनमिति वर्षम् । वृ स । 'वृतृवदि' इति सप्रत्ययः । शरत्—'शृदृभसोऽदिः' इति शृधातोः आदिः प्रत्यय शृणाति हिनस्त्यस्मिन् इति शरत् । हेमन्तः—यो हन्ति शीतेन स हेमन्त हन्ते र्मुट्हि च । हन् + झच् + मुट् । हन्ते र्हि भावः । शिशिरः—शश + किरच् शशति दिनाल्पत्वात् शीघ्रं गच्छति—इति शिशिरः । निपातनात् । वसन्तः— वसति यत्र वा वसन्ति स वसन्तः । वस + झच् ॥ ३६ ॥

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! आपकी कृपा से भारत को ही यह सौभा प्राप्त हुआ है कि ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त = ये छः ऋ अपने-अपने अवसर पर पुष्प, पौधे, अन्न, पत्र, फल आदि से इस देश को विभू प्रपूर्ण और सम्पन्न करती हैं । हे माता ! प्रतिदिन और हर रात ऐसे ही शोभाश बने रहें जिससे देश सदा भरा-पूरा सम्पन्न और सानन्द रहे ॥ ३६ ॥

३७—

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी-

यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।

परा दस्यून् ददती देवपीयून्-

इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।

शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ।। ३७ ।।

पद-पाठः—या । अप । सर्पम् । विजमाना । विऽमृग्वरी । यस्याम् । आसन् । अग्नयः । ये । अप्ऽसु । अन्तः परा । दस्यून् । ददती । देवऽपीयून् । इन्द्रम् । वृणाना । पृथिवी । न । वृत्रम् । शक्राय । दध्रे । वृषभाय । वृष्णे ।। ३७ ।।

संस्कृत-व्याख्या—या पृथिवी विमृग्वरी सदैव गवेषणाविधौ धृतोपकारा । चलन्तीव स्थिरा दरीदृश्यते । इमामेव भूमिमाश्रित्य अप्सु अन्तः विद्युद् रूपा अग्रयः प्रादुर्भवन्ति । या देवपीयून् दिव्यापहारकान् शत्रुन् पराकरोति=विनाशयति । इयं पृथ्वी वीरभोग्या, अतएव ऐश्वर्यशालिनम् इन्द्रम् इयं वृणोति नावरणकारिणं वृत्रम् । इयं पृथिवी वर्षणशीलाय धर्माचारिणे शुभाचाराय एवात्मानं धारयति ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—शक्रः—शक+रक् । शक्नोति समर्थो भवति सशक्रः । विमृग्वरी —विविधेन प्रकारेण मार्गण योग्या=रहस्यभूता, औत्सुक्य-प्रदायिनी—वि+मृज् +क्वरप् । ङीप् । दस्युः—दस्यति नाशयति परपदार्थान् इति दस्युः । दस+युच् । देवपीयून्=देव शक्ते, हसिकान् देव+पा+उण् । देवान् पिबतीति शोषयति देवपीयुः । दैत्यस्वभावः । युगागमो निपातनात् ।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथ्वी निरन्तर औत्सुक्य प्रदान करने से 'विमृग्वरी' है।जो चंचल रहने पर भी स्निग्ध और स्थिर है। जिस पृथ्वी के आश्रय से जलाश्रम

(मेघ) में विद्युत् के रूप में अग्नि का प्रादुर्भाव होता रहता है । जो पर-पदार्थ के नाशक तथा अपहारक (=दस्यु=नाशक, देवपीयु=अयहारक) शत्रुओं का विनाश करती रही है । जो पृथ्वी सदैव इन्द्र सरीखे वीर का वरण करती है, आवरण फैलाने वाले वृत्र का वरण कदापि नहीं करती । जो पृथ्वी निरन्तर शुभाचारी सज्जन पुरुषों का पालन-पोषण करती है । वह पृथिवी सर्वदा हमको शुभ-मार्ग में प्रेरणा देती रहे ।। ३७ ।।

३८—

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।

ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।

युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।। ३८ ।।

पद-पाठः—यस्याम् सदो हविर्धाने इति सदः ऽ हविर्धाने । यूपः । यस्याम् । निऽमीयते । ब्रह्माणः यस्याम् । अर्चन्ति । ऋक् ऽ भिः । साम्ना । यजुः ऽ विदः । युज्यन्ते । यस्याम् । ऋत्विजः । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ।। ३८ ।।

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां सदः निवासगृहाणि हविर्धाने हविर्वस्तूनि सुरक्षितानि निधीयन्ते यस्यां प्रकाशस्तम्भा विजयस्तम्भा यज्ञस्तम्भा वा निर्मीयन्ते । तत्र भवन्तो ब्राह्मणा यस्यां ऋग्भिः स्तुत्याभिः स्तुतिभिः साम्ना यजुषा वा अर्चन्ति गायन्ति यजन्ति । यस्यां च ऋत्विजः होमकुशला निरन्तरं श्रेष्ठेषु कर्मसु लग्ना भवन्ति । इन्द्राय पातुं च सोमाभिषवं कुर्वन्ति । सेयं कल्याण भेषजा पृथिवी सदैव सुख प्रदा शान्तिदायिनी च भूयात् ।। ३८ ।।

टिप्पणी—सदः—सभा—सीदन्ति अत्र इति सदः । षद्लृ—विशरणगत्यव—सादनेषु । अपुन प्रत्ययः । हविर्धाने—(=सदश्च हविर्धानं च सदो हविर्धाने) हविः—हू + इसिः=हविः, हविषो धानम्—हविर्धानम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथ्वी पर निवास-गृह, भोजन-आच्छादन, हविष्य आदि उपकरण सुरक्षित रक्खे जाते हैं, जहाँ पर यज्ञस्तम्भ, प्रकाशस्तम्भ, विजय स्तम्भ आदि कीर्ति—प्रतीक स्थापित किये जाते हैं । जहाँ पर वेदधारी ब्राह्मण

ऋचाओं से स्तुतियाँ करते हैं, साम-गान से मंगला-धान करते हैं और बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, जहाँ पर ऋत्विक् लोग सदैव यज्ञ-विधि निष्पादन में सावधान तथा तत्पर रहते हैं, जहाँ पर इन्द्र के पानार्थ सोम-रस का निष्पादन किया जाता है वह कल्याण-मयी पृथ्वी सदा ही हमारे लिए मंगल प्रद बनी रहे ॥ ३८ ॥

३९—

यस्यां पूर्वे भूतकृतऋषयो गा उदानृचुः ।

सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । पूर्वे । भूतऽकृतः । ऋषयः गाः । उत् ऽ आनृचुः । सप्त । [स]त्रेण । वेधसः । यज्ञेन । तपसा । सह ।। ३९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां विचित्रार्थदर्शिनः पूर्वे सज्जना अतीन्द्रियार्थ-[द]र्शिन ऋषयश्च विचित्रां वाचम् अर्चितवन्तः यस्याम् वेधसः तत्र भवन्तो ज्ञानिनः [स]प्त सत्रेण संकलन—व्यवकलन संगति विधानेन यज्ञेन तपसा कष्ट स हिष्णुतया च [त]पः प्रपेदिरे सेयं जननीव मान्या भूमिः सदैव हस्तावलम्बना स्यात् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—ऋषयः—अतीन्द्रियार्थदर्शिनः । वेधसः—'विधाञो वेध च' इति [वि]धादेशोऽसिप्रत्ययश्च । विशेषेण दधाति, इति वेधाः । परमेष्ठी । भूतकृतः—भूतस्य [क]र्मणः कर्त्तारः । गाः—वाचः । सत्रेण—षद्ऌट—विशरणादौ ष्ट्रन् । 'सत्रं यज्ञे [स]दादान च्छादनारण्य-—कैतवे' इति मेदिनी । 'सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप [इ]ति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तप [त]द्धि तपः' इति तैत्तिरीयोपनिषदि ॥ ३९ ॥

हिन्दी-व्याख्या—विचित्र—अर्थों के द्रष्टा ऋषि—महर्षि जिस पृथिवी के [आ]श्रय में अद्भुत् वाग्—देवता का दर्शन करके अर्चना करते हैं, जहाँ पर संकलन—[व्य]वकलन—संगतिकरण आदि विषयों के विद्वान यज्ञ और ज्ञान-—सत्र के द्वारा [ना]ना प्रकार से कष्ट उठा कर तप का आचरण करते हैं। वह जननी के समान [उ]न गुणों वाली पृथिवी सदैव हमें सम्बल और अवलम्बन देती रहे ॥ ३९ ॥

[४]०—

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।

भगो अनुप्रयुङ्क्ता मिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

पद-पाठः—सा । नः । भूमिः आ । दिशतु । यत् । धनम् । कामयामहे । भगः । अनुऽप्रयुङ्क्ताम् । इन्द्रः । एतु । पुरः ऽ गवः ॥ ४० ॥

संस्कृत-व्याख्या—सा एवं गुणरूपसम्पन्ना ऽ स्माकं पृथिवी यद् धनं कामयामहे संकल्पयामस्तद् धनम् सहजतया ऽऽ दिशतु प्रापयतु । अस्माकं भगः समग्रैश्वर्यसम्पन्नः देवः सदैव अनुकूलो भवतु । इन्द्रश्चास्माकं देवः पुरोगव एतु प्राप्नोतु । सदैव गोभिः सह आयातु येन अस्माकं गाव इन्द्रियाणि पुष्टिभाजः स्युः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—पुरोगवः—पुरस् + गो + टच् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार निरन्तर माता के ही समान कल्याण की साधना करने वाली हमारी पृथिवी उस—उस धन की प्राप्ति करावे जिस—जिस धन की हम कामना करते हैं । ऐश्वर्यशाली भग देवता सदैव मंगल-मधुर दृष्टि के साथ अनुकूल रहें और गायों के साथ=किरण, वाणी, इन्द्रिय आदि के साथ ओजस्वी देवता इन्द्र सदैव सहज रूप से हमें प्राप्त होते रहें ॥ ४० ॥

४१—

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैऽलवाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥

पद-पाठ—यस्याम् । गायन्ति । नृत्यन्ति । भूम्याम् । मर्त्याः । विऽऐलवाः युध्यन्ते । यस्याम् । आऽक्रन्दः । यस्याम् । वदति । दुन्दुभिः । सा । नः । भूमिः प्र । नुदताम् । सऽपत्नान् । असपत्नम् । मा । पृथिवी । कृणोतु ॥४१॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्याम् आनन्दवर्धनानि क्रियन्ते । गान-नृत्य काव्यालायाः शिल्पानिः कला प्रदर्शनानि च यत्र मोदं भरन्ति । मरणमारणसमथ विशिष्टाः प्रेरिताश्च यत्र संघर्षं तन्वन्ति । यत्र गजा वाजिनः स्वःशब्दैः सुखं प्रसार-

यन्ति । यत्र दुन्दुभि जयघोषश्च क्रियते । सा विजयिनी भूमिरस्माकं सपत्नान् शत्रून् प्रणुदताम् दूरे क्षिपतु । सा भूमिः सपत्नरहितं शत्रुरहितं मां कृणोतु करोतु । भवेयमहमजात शत्रुः । ॥४१॥

टिप्पणी—व्यैलवाः—वि+इला (इला=वाक्) विविधं शब्दयितारः वि+इल+वण शब्दे+उः । अण् व्यैलवाः । सपत्नान्—सपत्नीशाब्दाद् इवार्थेऽकारः । सपत्नीव सपत्नः । अमित्रः सपत्न—उच्यते । तान् । ॥४१॥

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी पर आनन्द-वर्धन कार्य होते हैं । गान, नृत्य, काव्यालाप, शिल्प और अन्य कलायें जहां पर आमोद-प्रमोद का रसायन बिखेरती हैं । जहां पर मरण-मारण में समर्थ विशिष्ट और प्रेरित पुरुष नाना प्रकार से जयशील संघर्ष करते हैं । जहां पर विशाल गजराज, फुर्तीले अश्व, शक्तिशाली बैल अपने आनन्दप्रद आक्रन्द से प्रसन्न करते हैं । जहां पर उत्साह वर्धक नगाड़े बजते हैं । वह जयवर्धन कारिणी, शत्रुशक्ति हारिणी, सुख-समृद्धि प्रसारिणी हमारी मातृ-भूमि हमारे समस्त आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को हमसे दूर कर दे और हमें शत्रु रहित करके निश्चल, निश्चिन्त तथा आनन्दित बना दे ॥४१॥

४२—

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्चकृष्टयः ।

भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । अन्नम् व्रीहिऽयवौ । यस्याः । इमाः । पञ्च । कृष्टयः । भूम्यै । पर्जन्यऽपत्न्यै । नमः । अस्तु । वर्षऽमेदसे ॥ ४२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां जीननिमित्तभूतायां पृथिव्यां विविधानि पोषण-पराणि भोगसाधनान्यन्नानि जायन्ते । व्रीहयः, यवाः, गोधूमाः, मसूराः, सर्षपाः, इक्षुप्रभृतयस्तदुत्पादकाः पंचकृष्टयः पंचजना निषादपंचमाश्चत्वारो वर्णाः प्रादुर्भूताः सन्ति । तस्यै पर्जन्यपत्न्यै मेघपालितायै वर्षमेदसे वर्षाभिः स्नेहन शीलायै भूम्यै नमोऽस्तु । अभिनन्दिता भूमिः सदैव स्नेहदायिनी भूयात् ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—पंचकृष्टयः—पंचप्रकाराः पुरुषा विद्याविनयसम्पन्ना ब्राह्मणा, तद्रक्षकाः शूरवीराः क्षत्रियाः, तत्पूरकाः कृषि व्यवसायोद्योगोयमपरायणा वैश्याः, शिल्पिनः कारुकर्मकुशला आभियंत्रिकाः सेतु—यन्त्र—यान—कारुगृहनिर्माणविदग्धा अथ

सेवापरायणा दासाः, एवं पंचमानवा भवन्ति । पर्जन्यपत्न्यै—पर्जन्यो मेघ—एव पतिः पालको यस्याः सा भूमिः तस्यै । वर्ष मेदसे—दुभिक्ष, स्नेहने—वर्षाभिः स्नेहनशीलायै भूम्यै ।। ४२ ।।

हिन्दी-व्याख्या—समस्त जीवन जिस पर निर्भर है, जिस पृथ्वी पर नाना प्रकार के भोग—साधक अन्न, चावल, गेहूँ, जौ, सर्षप, गन्ना आदि तथा इनके उत्पादक कृषक, शिल्पी=कारीगर, व्यवसायी, उद्योगी, उद्यमी, वैश्य, सेवा—परायण दास आदि, सेतु—यान—यन्त्र, जल—नाली-निर्माण में चतुर यन्त्रिक, विद्या—विनय के उपकरण उत्पन्न करने वाले, रक्षक सैनिक आदि प्रकट होते हैं, उस मेघ के अभिमानी देव से पालित और वर्षा—जल से स्नेहिल पृथ्वी का मैं बारम्बार अभिनन्दन करता हूं ।। ४२ ।।

४३—

यस्याः १ पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या १ विकुर्वते ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भमाशामाशांरण्यां नः कृणोतु ।।४३।।

पद-पाठ—यस्याः । पुरः । देव ऽ कृताः । क्षेत्रे । यस्याः विऽकुर्वते ।

प्रजाऽपतिः । पृथिवीम् । विश्वऽगर्भाम् । आशाम्ऽआशाम् । रण्याम् । नः ।

कृणोतु ।। ४३ ।।

संस्कृत-व्याख्या—यस्याः कमनीयबलाहकायाः पृथिव्या पुरः नानाः विधानि पूरकाणि नगराणि कीर्ति तन्वन्ति । यस्याः क्षेत्रेषु नानाविधानि अन्नानि परिणतानि भवन्ति । तामिमां विश्वगर्भां भुवनस्य पालिकां प्रजापतिः प्रजाया अभिमानी पालकोऽधिष्ठाता सदैव रसयतु । सुखवार्धनां वर्धयतु । अस्याः पृथिव्याः सर्वा आशा दिशः कल्याण रमणीया भवन्तु ।। ४३ ।।

टिप्पणी—देवकृताः—देवेन विद्वत्समूहेन निष्पादियाः । भगवता च मेघाभिमानिना देवेन सम्पादिताः । आशा—दिशा । रण्याम्—रमणीयाम् । विश्वगर्भाम्—विश्वं गर्भे यस्याः सा, विश्वगर्भा नाम् विश्वगर्भाम् ।। ४३ ।।

हिन्दी-व्याख्या—सुन्दर बादन्दों वाली इस पृथ्वी पर वैज्ञानिकों से देव-निर्मित निवास अलकृत हो रहे हैं जो पृथ्वी के वैभव और चमत्कार कर रहे हैं। इस पृथ्वी के सुनहरे खेत नाना प्रकार के अन्नों परिणत कर रहे हैं भगवान् प्रजापति

इस पृथ्वी की हर दिशा में शांति और समृद्धि का स्थापन करें। हमारी हर दिशा आनन्द और औत्सुक्य का सूचक हो ॥ ४३ ॥

४४—

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु

मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।

वसूनि नो वसुदा रासमाना

देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

पद-पाठः—निऽधिम्। बिभ्रती। बहुऽधा। गुहा। वसु। मणिम्। हिरण्यम्। पृथिवी ददातु। मे। वसूनि। नः। वसुऽदा रासमाना। देवी। दधातु। सुऽमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—याऽस्माकं गुणरमणीया पृथिवीं बहुधा बहुप्रकाराणि स्वगुहायामन्तराले वसु वसूनि वासहेतूनि अत्यन्त जीवनहेतूनि वस्तूनि उपादानभूतानि अन्यानि धारणयोग्यानि आवश्यकतापूरकाणि च निधिं निधीनि धन-धान्यानि तदुत्कर्षहेतूनि मणिं हिरण्यादीनि रत्नानि च धारयति। मातानि जीवनाय उत्कर्षाय च मह्यं ददातु। सा कान्तिमती दीप्तिमती रमणीया भूमि सदैव मयि समर्थे सुमनस्यमाना प्रसना कृपावती भूयात्। उदारा दक्षा अभिरूपा पृथिवी सदैव अनुरूपाय में वसूनि सुखानि शुभं च प्रयच्छतु ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—राममाना—ददमाना। निधिः—'उपसर्गे घोः किः' इति किः। रिण्यम्—हर्यते काम्यते इति हिरणमम्। 'हर्यतेः कन्यन् हिरच्' ।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथिवी नाना प्रकार से रस-रहस्य, वस्तु, रमणीय धन, निधि, स्वर्ण, मणि आदि के कारण प्रसन्न और उदार है। वह पृथिवी सदैव मेरे प्रति आनन्दित होकर सुख और धन की वर्षा करती रहे जिससे मैं सदैव शान्त, प्रसन्न और कमनीय बना रहूं और पृथिवी के आनन्दप्रद गुणों को धारण करता रहूं ॥ ४४ ॥

४७—

ये ते पन्थानो बहवो जनायना——

रथस्य वर्त्यानसश्च यातवे ।

यैः संचरन्त्युभये भद्रपापा——

स्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ।।४७।।

पद-पाठः—ये । ते । पन्थानः । बहवः जनाऽअयनाः । रथस्य । वर्त्य । अनस च । यातवे । यैः । सम्ऽचरन्ति । उभये । भद्रऽपापाः । तम् । पन्थान् । जयेय । अनमित्रम् । अतस्करम् । यत् शिवम् । तेन । नः । मृड । ।।४७।।

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! जनायना जनानां गतागतनिमित्ता ये जीवन मार्गाः, तत्सिहिसाधकाश्च रथमार्गाः अस्माकं व्यवहारोपयोगिनः सन्ति । यान् मार्गान् आश्रित्य साधुकारिण ऽ साधुकारिणश्च उभये संचरन्ति संचारं कुर्वते तं जीवनोपायं प्रकारं च वयं जयेम । अस्माकं जीवन मार्ग : शत्रुरहितस्तस्कररहितः शिवो भूयात् । यच्चान्यत् सुखकरम् अस्ति तेन सर्वेण सुखसाधनेन अस्मान् सुखय ।।४७।।

टिप्पणी—पन्थानः—पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पन्था मार्गः । बहु० । पतेस्थश्च' इतीनिः, थश्चान्तादेशः । यद्वा—पथन्तेऽनेन, 'पथे गतौ' वर्त्म —वर्तन्तेऽनेन । मनिन् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी! यातायात के समस्त साधन जल–स्थल तथा गगन में जो विस्तीर्ण हैं वे समस्ते चौड़े रथमार्ग आदि हमारे गमन–आगमान की सिद्धियों को व्यवस्थित तथा पूर्ण करने वाले हों । जिन मार्गों से भद्र पुरुष अथवा दुर्जन व्यक्ति संचार करते हैं, वह समस्त मार्ग हमारे लिए शत्रु तथा तस्कर रहित हों । हे पृथिवी जो शुभ और कल्याणकारण सिद्धियां हैं उसने हमें पावन तथा पूर्ण कीजिये ।।४७।।

४८—

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय ॥४८॥

पद-:पाठः—मल्वम् । बिभ्रती । गुरुऽभृत् । भद्र ऽ पापस्य । नि ऽ धनम् । तितिक्षुः । वराहेण । पृथिवी । सम् ऽ विदाना । सूकराय । वि । जिहीते । मृगाय ॥४७॥

संस्कृत-व्याख्या—इयं पृथिवी गुरुन् पर्वतादीन् यज्ञसंबहान् देवांश्च वहतीति गुरुभृत् भद्राणां पापानां च स्वशरणं तितिक्षते सर्वं सामर्थ्यं च बिभर्ति । इयं पृथिवी वराहेण वराहारेण जलाहारेण मेघेन संविदाना चेतनामयी सूकराय सुष्ठुकिरणाय सूर्याय मृगाय मार्गणशीलाय शुभावस्थानं कामयते ॥४८॥

टिप्पणी—मल्वम्—मलधारणे व प्रत्ययः । सामर्थ्यम् । सूकरायसुष्ठु सुखदाः कराः किरणा यस्य तस्मै । मृगाय—अन्वेषकाय । वराहेण—मेघेन । वराहः—वराहारः वरम्—जलम् ।

हिन्दी-व्याख्या—यह पृथिवी पर्वत आदि गौरवशाली महान् पदार्थों को तथा यज्ञ सम्बन्धी देवताओं को धारण करती है । पुण्यात्माओं तथा पापियों को स्वाश्रय में नियंत्रित करती है । सर्व प्रकार के सामर्थ्यों से सम्पन्न यह पृथिवी मेघ के साथ आनन्द रहती हुई अन्वेषण शील सूर्य के लिये शुभ-अवस्थान देती है ॥४८॥

४९—

ये त आरण्या पशवो मृगा बने

हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।

उलं वृकंपृथिवि दुच्छुनामित–

ऋक्षीकां रक्षो अप बधयास्मत् । ४६ ।

पद-पाठः—ये । ते । आरण्याः । पशवः । मृगाः । वने । हिताः । सिंहाः । व्याघ्राः । पुरुषऽअदः । चरन्ति । उलम् । वृकम् । पृथिवि । दुच्छुनाम् । इतः । ऋक्षीकाम् । रक्षः । अपः बाधय । अस्मत् ।। ४६ ।।

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! घोरेऽरण्ये ये हिंसका मार्गणशीलाः सिंहा व्याघ्रा नरभक्षिणश्चान्ये क्रूरा जतवः स्थिता अप्रतिहतगत्या संचारं कुर्वन्ति । उला उष्णस्वभावा उद्वेजका वृका दुष्टा वनश्वानश्च मल्लकां रक्षः स्वभावानन्यानपि सर्वान् अहितान् अस्मद् दूरे कुरु । यथा नैतेऽस्मान् बाधन्ते तथा कुरु । ४६ ।

टिप्पणी—उलम्—उष्णस्वभावम् उद्वेजकं वनमार्जारम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवि ! घोर कान्तार में रहने वाले हिंसक सिंह, व्याघ्र तथा अन्य क्रूर नरभक्षी जीव जो कि निर्वाध-रूप से विचरण करते हैं तथा उष्ण स्वभाव वाले उद्वेजक मार्जारआदि, भेड़िये, दुष्ट कुत्ते, भालू, राक्षस-पिशाच स्वभाव वाले=उन समस्त हानिकारक वन-जन्तुओं को हमसे पृथक् ही रखना । ये हिंसक प्राणी हम को कभी हानि न पहूचायें । ४६ ।

५०—

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।

पिशाचान् सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ।। ५० ।।

पद-पाठः—ये । गन्धर्वाः । अप्सरसः । ये । च । अरायाः । किमीदिनः । पिशाचान् । सर्वा । रक्षांसि । तान् । अस्मत् । भूमे यवय ।। ५० ।।

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! ये गन्धर्वा अप्सरः-स्वभावाः केवल गाने नृत्ये वा मग्नाः शुहप्रयोजन शून्याः, ये च अरायाः अदातारः किमीदिनः परच्छिद्रान्वेषिणः, ये मांसाशिनः पिशाचाः सर्वाणि च रक्षांसि अस्मत् पृथक् कुरु ।। ५० ।।

टिप्पणी—अराया:—अदातार:, रादाने । किमीदिन:—किम् इदानीं किम् इदानीम् इति रन्ध्रान्वेषणपरान् ।। ५० ।।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! जो केवल नृत्य—गान (=खाओ—पिओ—मौज करो) की भावना से कार्य करते हैं अथवा जो सदा राष्ट के लिए कृपण एवं लुब्धस्वभाव के हैं, जो पर मांसोप-जीवी हैं तथा जो राक्षस-पिशाच आदि हैं—उन सबको जीवन—समूह से पृथक् रक्खे ।। ५० ।।

५१—

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।

वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः । ५१ ।

पद-पाठः—याम् । द्विऽपादः । पक्षिणः । सम्ऽपतन्ति । हंसा। । सुऽपर्णाः । शकुनाः । वयांसि । यस्याम् । वातः मातरिश्वा । ईयते । रजांसि । कृण्वन् । च्यवयन् । च । वृक्षान् । वातस्य । प्रऽवाम् । उपऽवाम् । अनु । वाति । अर्चिः ।। ५१ ।।

संस्कृत-व्याख्या—यां पृथिवीयाश्रित्य द्विपादः पक्षिणः प्रकाशपूर्णे गगने संचारं कुर्वन्ति । ते हंसा:, सशक्ता गृध्रादयः अल्पप्राणाश्च क्षुद्रपक्षिणः सदा पृथिवीं सौभाग्य-शालिनीं कुर्वन्ति । यस्यां पृथिव्याम् आकाशे श्वासं पुष्णन् वायू रजांसि उदकवतो मेघान् कुर्वन् निष्पादयन् अभिवर्तते यो हि प्रभंजनरूपेण दृढान् अपि वृक्षां श्च्यावयति । तस्य वातस्य प्रवाय् प्रकृष्टां गतिमुपवाम् अनुकूलां गतिं चाश्रित्य वयं सर्वे सुखिनः स्याम यतोहि तदनु सूर्यस्य प्रकाशो जागर्ति ।५१।

टिप्पणी—प्रवाम्—वा गतौ क्विप् । प्रकृष्टां गतिम् । उपवाम्—अनुकूलां गतिम् । रजांसि—उदकवतो मेघान् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी से आश्रय लेकर हंस, सुपर्ण, शकुन, वया आदि बड़े और छोटे पक्षी इधर-उधर विचरण करते हैं । आकाश में श्वास भरने वाला जहां पर प्रभंजन (भयंकर वायु—तूफान) जलपूर्ण मेघों को इधर-उधर त्रस्त

करता हुआ अपना अस्तित्व घोषित करता है और बड़े-बड़े वृक्षों को भी धराशायी कर देता है उसी पवन देवता का उत्कृष्ट तथा अनुकूल गति को देखते हुए अपने जीवन-उपाय की गवेषणा हम करते रहें क्योंकि उसी के साथ जीवन को प्रकाश मिलता है।५१।

५२—

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते

अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।

वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता

सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि॥५२॥

पद-पाठः—यस्याम्। कृष्णम्। अरुणम्। च। समऽहिते इति समऽहिते। अहोरात्रे इति। विहिते इति विऽहिते। भूम्याम्। अधि। वर्षेण। भूमिः। पृथिवी। वृता। आऽवृता। सा। नः। दधातु। भद्रया। प्रिये। धामनि ऽ धामनि॥५२॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां कृष्णा शर्वरी प्रकाशपूर्णं श्वेतं च दिनं च सम्यक् प्रकारेण प्राणिनः सुखयन्ति यमयन्ति चर। या पृथिवी वर्षामेघेन पूर्णा सती अन्नोत्पादने समर्था सुखप्रदा च जायते। सा पृथिवी गृहं गहं प्रति सुखं सृजतु। समन्तभद्रा सा सर्वतः सुख-सम्पदां भावयतु।५२।

टिप्पणी—धामनि—'डुधाञ् धारणपोषणमोः' मनिन्। दयातियत्र स्थानं तेजो वा। भद्रया-भन्दते कल्याणं करोति, इति भद्रा। तया। नकारलोपः। रन् प्रत्ययः।

हिन्दी व्याख्या—जिस पृथिवी पर काले वर्ण वाली रात तथा उजले वर्ण वाला दिन=दोनों प्राणियों के कल्याण के लिये नियमपूर्वक सुख पहुंचाते तथा नियंत्रित करते हैं। वर्षा-मेघ से परितृप्त हुई पृथिवी सदा अन्नधन का सृजन करती हुई सुख-आनन्द से आवृत रहे और सभी घरों में सुख-शान्ति तथा समृद्धि बनती-बढ़ती रहे।५२।

१३—

द्यौ श्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।

अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च संददुः॥ ५३॥

पद-पाठः—द्यौः+च। मे। इदम्। पृथिवी। च। अन्तरिक्षम्। च। मे।
व्यचः। अग्निः। सूर्यः। आपः। मेधाम्। विश्वे। देवाः। च। सम्। ददुः॥ ५३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि! त्वदाश्रया इयं द्यौः, इदम् अन्तरिक्षं च विस्तीर्णम्, अयं पृथिवी स्थानोऽग्निराकाशनिवासः सूर्यश्च पृथिव्याम् आन्तरिक्षे [च] स्थितं जलम्; एते सर्वे देवा विश्वे देवाश्च मम हृदये सुखसंभोगोपलक्षणां सम्पदाम्, [श्रु]तिशास्त्र सम्पन्नाम् इह लोक परलोक सौख्यदायिनी वाग्-देवतां च स्थापयन्तु। [ते]न रोग दोषप्रहीणोऽहं सुखमानन्दं च लभेय।

टिप्पणी—मेधाम्—'मेधृसंगमे'। मेधते सङ्गच्छते सर्वम् अस्याम्। 'गुरोश्च-[ह]लः' इत्यकारः। आपः—व्याप्नुवन्तीति। संददुः—'डुदाञ् दाने' लिट्। प्रथवाबहुवचने। [उ]स्।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी! आपके ही आश्रम से यह ऊपर का प्रकाशित [आ]काश आनन्द-मुकुलित हो रहा है, यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष भी आपके ही सहारे [अ]वस्थित है, आपका अभिमानी देव अग्नि, आकाश का अभिमानी देव सूर्य, पृथिवी [त]था अन्तरिक्ष में विद्यमान जल=ये सभी देव तथा विश्व देव हम पर कृपा करते हैं जिससे सकल-भोगों का विधान करने वाली सम्पदा=लक्ष्मी हमें प्राप्त हो तथा [स]कल वेदशास्त्र आदि को धारण करने वाली, दोनों लोकों में सुख और आनन्द को [दे]ने वाली सरस्वती देवी भी कृपा करती रहें। हम अच्छी प्रगल्भ वुद्धि को प्राप्त [क]रके रोग-दोष से निवृति प्राप्त करें।

[५]४—

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।

अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहि॥ ५४॥

पद-पाठः—अहम् । अस्मि । सहमानः । उत्तरः । नाम । भूम्याम् । अभीषाट् । अस्मि । विश्वाषाद् । आशाम् ऽ आशाम् । वि ऽ ससहिः ॥ ५४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अहम् उत्तमां विद्याबुद्धि संप्राप्य उच्चभावं प्राप्नुयाम् । निरन्तरं सहनशीलः, समग्रं विघ्नबाधादिकम् अवरुध्य सर्वत्र सहनशीलोभूयासम् । सर्वा दिशो में सुखप्रदा भूयासुः ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—अभीषाट्—छंदसि सहः षहमर्षणे—ण्विप्रत्ययः । 'अन्येषामपि दृश्यते' इतिपूर्वपदस्य दीर्घः । 'सहेः साडः सः' इति षत्वम् । विश्वाषाट्—अयमपि तथैव ।

हिन्दी-व्याख्या—मैं इस पृथिवी देवता की कृपा से उत्तम विद्या—बुद्धि को प्राप्त करके निरन्तर उन्नति करूं । समस्त विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करके अपनी उच्च सहनशीलता का परिचय दूं । सभी दिशायें मेरे लिए उपायप्रद तथा शान्तिप्रद हों ॥५४ ॥

५५—

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद्

देवैरुक्ता सर्पो महित्वम् ।

आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीम्-

अकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

पद-पाठ—अदः । यत् । देवि । प्रथमाना । पुरस्तात् । देवैः । उक्ता । वि ऽ असर्पः । महि ऽ त्वम् । आ । त्वा । सु ऽ भूतम् । अविशत् । तदानीम् । अकल्पयथाः । प्र ऽ दिशः । चतस्रः ॥ ५५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे विस्तीर्णस्वभावे पृथिवि । यथा यथा त्वं प्रथसे तथा तथा यशः सुखं महिमानं च विस्तारयसि । त्वटयेव कल्याणीशब्दः सम्यक् शोभते । त्वयैव एताः चतसः प्रकल्पिता दिशः ।

टिप्पणी—सुभूतम्—भूतिस्यास्ति, 'अर्श आदिभ्यः' इति, अच् । तदानीम्—'तदो दा च' । दानीं प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे विस्तीर्ण स्वभाव वाली पृथिवी । जिस प्रकार आप फैली हो उसी प्रकार आपकी सुख—सम्पदा भी विस्तीर्ण हो रही है । आपके लिये ही यह 'कल्याणी' शब्द शोभा को प्रदान करता है । आपने ही इन विस्तीर्ण चारों दिशाओं में अपनी तथा अपने यशस्वी पुत्रों की गरिमा स्थापित की है ।

५६—

ये ग्रामा यदरण्यं या सभा अधिभूम्याम् ।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते । ५६ ॥

पद-पाठः—ये । ग्रामाः । यद् । अरण्यम् । याः । सभाः । अधि । भूम्याम् ।

। सम् ऽ ग्रामाः । सम् ऽ इतयः । तेषु । चारु । वदेम । ते ॥ ५६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वदाश्रया ये जनसमूहा जनपदा ग्रामा वा सन्ति यानि वा ऽ रण्यानि ते रम्यानि वन-पुष्पफलैः सह नदीभिश्च सह कीर्तनानि कुर्वन्ति ये रणदुर्मदानां संग्रामा वा सन्ति याश्च सभा—समितयः सन्ति तत्र सर्वत्रैव त्वदर्थे त्वत्सुपुत्रार्थे च कल्याणीम् अलकृतां वाचम् उच्चारयेम ।

टिप्पणी—अरण्यम्—'अर्ते निच्च' । ऋच्छन्ति यत्र शमार्थम् । यद्वा नास्त्यत्र रण्यं रमणीयम् । समितयः—समयन्ति हितस्याम् 'इ गतौ, क्तिन् । सह विद्यमाना मतिः = प्रमा ऽ स्याम् । तत्सम्बुद्धौ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी आपके आश्रय से जो ग्राम, जन-पद आदि हैं, पुष्प-फल, सरोवर-नदी आदि से आनन्दप्रद प्रकृति के रमणीय स्थल हैं उन सभी स्थानों पर तथा सभा-समितियों में हम आपके लिए तथा आपके प्रिय-सुपुत्रों के लिए रमणीय-अलंकृत वाणी का उच्चारण करें ।

५७—

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्

य आक्षियन् पृथिवीं यदजायत ।

मन्द्रा ग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा

वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

पद-पाठः—अश्व । इव । रजः । दुधुवे । वि । तान् । जनान् । ये । आ ऽ अक्षियन् । पृथिवीम् । यत् । अजायत । मन्द्रा । अग्र ऽ इत्वरी । भुवनस्य । गोपाः । वनस्पतीनाम् । गृभिः । ओषधीनाम् । ५७ ॥

सस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! रजस्तेऽत्रधूनोऽश्वस्येव । अस्यां कुल कल्याण गुणायां त्वयि ये जनाः साश्रया निवसन्ति तेषामपि रजस्तमोगुणाः क्षालिताः । यद् यद् उत्पन्नम् उत्पद्यमानं वा तस्य तस्य गुण-शोधनं जातम् । सर्वे शान्ताः स्वच्छा रागद्वेषविवर्जिता जाताः । हे पृथिवि ! त्वं मन्द्रा सर्वथैव कल्याणधना ऽ ग्रेत्वरी भुवनस्य च पालिका भवसि । त्वमेव नाना रसायनानां वनस्पतीनाम् ओषधीनां चोपादानभूता सरहस्या तिष्ठसि ॥ ५७ ॥

टिप्पणी—दुधुवे—धुञ् कम्पने—लिट् । अग्रेत्वरी—इणगतौ क्वनिप्, 'वनोरच' इतिङीप्, रेफश्च । अग्रगामिनी । गृभिः—ग्रह उपादाने–इन्, कित् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! शुभ गुणों से सम्पन्न आपके आश्रय में जो जन निवास करते हैं उनके रजो गुण और तमो गुण उसी प्रकार धुन कर दूर कर दिये जाते हैं जिस प्रकार अश्व अपने शरीर को रज से स्वच्छ कर लेता है । हे पृथिवी ! आप कल्याण–धन से सदा युक्त हैं, सदा अग्रसर रहती हैं । आप ही भुवनों की अधीश्वरी हैं । समस्त रसायन, औषधियों तथा वनस्पतियों की आप ही एक अधिष्ठात्री देवी हैं ।

५८—

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि

यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।

त्विषीमानस्मि जूतिमान—

वान्यान् हन्मि दोधतः ।। ५८ ।।

पद-पाठः—यत् । वदामि । मधुऽमत् । तत् । वदामि । यत् । ईक्षे । तत् । वनन्ति । मा । त्विषिऽमान् । अस्मि । जूतिऽमान् । अव । अन्यान् । हन्मि । दोधतः ।। ५८ ।।

संस्कृत-व्याख्या—अस्यामेव गुणधर्मसम्पन्नायां पृथिव्यां यत् किमपि वाग्या-वहाजातमहं करोमि तत्सर्वं माधुर्यगुणोपेतं भवतु । यत् किमपि शुभदृष्टया ईक्षे पश्यामि तत्सर्वं नयन-रंजनमुल्लासकं मे भवतु । अहं सदैव दीप्तिमान् कमनीयः स्फूर्तिपूर्णो भूयासम् । येऽन्ये हिंसका स्तान् सर्वान् अहं दूरे क्षिपामि ।। ५८ ।।

टिप्पणी—त्विषीमान्—'त्विष्दीप्तौ' । मतुप् । जूतिमान—जु सौत्रो धातुः । वेगेवर्तते । स्त्रियां क्तिन् । 'ऊतियूति०' इति साधुः । मतुप् । अन्यान्—नीचान्, शत्रून् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! आपके मधुर आश्रम में मैं जो कुछ बोलूँ वह माधुर्यपूर्ण हो, जो कुछ देखूँ वह मनोरंजक तथा उल्लास देने वाला हो । मैं सदैव कान्तिमान्, तेजस्वी तथा गतिशील रहूँ । जो हिंसक-लोग हमारी गतिविधियों में बाधक हैं उन्हें मैं दूर फेंक दूँ ।। ५८ ।।

५९—

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती

भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ।। ५९ ।।

पद-पाठः—शन्तिऽवा । सुरभिः । स्योना । कीलालऽऊध्नी । पयस्वती । भूमिः । अधि । ब्रवीतु । मे । पृथिवी । पयसा । सह ॥ ५९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—इयं रसरसायनपूर्णा सदैव प्रशंसनीया गौरिव दुग्धदोहना कल्याणप्रदा सुगन्धैः पुलकिता भूमि र्मे कल्याणमुपदिशतु । माम् अधिकृत्य प्रेरणा-वाचमुच्चारयतु येन सर्वथैवाहं शंसितः प्रशंसितो भूयासम् ॥ ५९ ॥

टिप्पणी—कीलालोध्नी—ऊधसोऽनङ् । कीलाल + ऊधस् + अनङ् । 'बहुव्रीहेरुधसो ङीष्' ४-१-२५ स्योना—'षिवु तन्तुसन्ताने' । बाहुलकान्नः । अन्तरङ्गत्वाद् यण् । सुखदात्री । सन्तनोति सुखतन्तून् ॥ ५९ ॥

हिन्दी व्याख्या—यह रस—रसायन से परिपूर्ण, गौके समान दुध देने वाली, अपनी ही सुगन्ध से पुलकित पृथिवी मुझे सदा कल्याण का उपदेश देती रहे। मेरे कल्याण के लिए प्रेरणा देती रहे जिससे मेरी प्रशंसा बने और बढ़े ॥ ५९ ॥

६०—

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मा-

ऽन्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।

भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यद्-

आविर्भोगे अभवन् मातृमद्भ्यः ॥ ६० ॥

पद-पाठः—याम् । अनुऽऐच्छत् । हविषा । विश्वऽकर्मा । अन्तः । अर्णवे । रजसि । प्रऽविष्टाम् । भुजिष्यऽम् । पात्रम् । निऽहितम् । गुहा । यत् । आविः । भोगे । अभवत् । मातृमत्ऽभ्यः ॥ ६० ॥

संस्कृत-व्याख्या—स्वहृत्य द्रव्यै र्यां पृथिवीं विश्वकर्मा कामयते । या समुद्रस्य जले प्रविष्टाऽपि ततो विशिष्टा दृश्यते। भोगसाधनं पात्रम् अस्या एव पृथिव्याः सकाशाद् गुहायः रहस्यभूतायां निहितं लभ्यते । प्रशंसिता मातृयन्तः पुरुषाः स्वपौरुषबलादस्यामेव पृथिव्यां भोगाय समर्थाः कृतकृत्याश्च भवन्ति ।। ६० ।।

टिप्पणी—अर्णवे—अर्णांसि यत्र सन्ति । 'अणसो लोपश्च' इति वः, सकार-लोपश्च । भुजिष्यम्—भुंक्ते स्वामिदत्तं भुज्यते वा । 'रुचिभुजिश्यां किष्यन्' । मातृमद्भ्यः—प्रशस्ता मातरो येषांते, तेभ्यः ।। ६० ।।

हिन्दी-व्याख्या—अपने हव्य—द्रव्य ये विश्वकर्मा जिस पृथ्वी की पूजा करते हैं, जो समुद्र में प्रविष्ट होकर भी उससे विशिष्ट रूप से प्रकाशित है। पृथ्वी के रहस्य भूत गुहा में भोग के लिए उपयुक्त साधन निहित है। जिनकी मातायें प्रशसनीय हैं, उनकी कृपा से प्रशंसनीय पुरुष अपने पौरुष से भोग में समर्थ तथा कृतकृत्य होते हैं ।। ६० ।।

६१—

त्वमस्यावपनी जनानाम्

अदितः कामदुघा पप्रथाना ।

यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति

प्रजाऽपतिः प्रथमऽजा ऋतस्य ।। ६१ ।।

पद-पाठः—त्वम् । असि । आ ऽ वपनी । जनानाम् । अदितिः । कामऽदुघा । पप्रथाना । यत् । ते । ऊनम् । तत् । ते । आ । पूरयाति । प्रजाऽपतिः प्रथम ऽ जाः ऋतस्य ।। ६१ ।।

संस्कृत-व्याख्या—हे महनीये ! पृथिवि ! त्वम् एव खलु समस्तानां जनानाम् आवपनी आवपन-साधनभूता ऽसि । कार्यसिद्धि-भूता ऽसि । त्वया एव कौतूहलिन्या समस्तो जनः पूज्यते प्रेर्यते च शुभे कर्मणि । त्वमेव वैभवविस्तीर्णा सती सर्वेषां कार्यपूर्तिहेतु र्गौरिव अदीना शालीना । यत्त ऊनम् यह किमपि ते ऊनम् न्यूनमस्ति तत् समग्रं प्रजापतिः प्रपूरयति यः खलु सत्यस्य प्रथमो देव उत्कृष्टतमः ।। ६१ ।।

टिप्पणी—अवपनी—'डु वप् बीजतन्तुसन्ताने' ल्युट् । ङीप् । आ उप्यते-ऽत्र । ऊनम्—न्यूनम् । अव + नक् । असम्पूर्णम् । कामदुघा—'दुहः कब् घश्च' इति कप् प्रत्ययो दृश्य च घः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथवी ! आप ही समस्त मनुष्यों के लिए आवपनी = बीच—सन्तान की धारिका और कार्य-सिद्धि के लिये एक मात्र साधन हो । आपके ही कौतूहल में समस्त प्राणी पूजित और प्रेरित होते रहते हैं । कार्य की पूर्ति और सिद्धि में अदीन—शालीन धेनु के समान आप ही विस्तीर्ण वैभव और सौभाग्य से सम्पंन्न हो । आप में जब कभी कुछ न्यूनता आती है उसे हमारे उदार प्रजापति के रूप में भगवान् सूर्य पूर्ण करते रहते हैं । भगवान् सूर्य ही सत्य के प्रथम, उत्कृऽटतम् देव हैं जिनकी अमृत-दृष्टि आप पर सदा लगी रहती है ।। ६१ ।।

६२—

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा—

अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना

वयं तुभ्यं वलिहृतः स्याम ।। ६२ ।।

पद-पाठः—उप ऽस्थाः । ते । अनमीवाः । अयक्ष्माः । अस्मभ्यम् । सन्तु । पृथिवि । प्र ऽसूताः । दीर्घम् । नः । आयुः । प्रति ऽबुध्यमानाः । वयम् । तुभ्यम् ।

वलि ऽ हृतः । स्याम ॥ ६२ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे पृथिवि ! त्वदायत्ताः सर्वे रोगरहिता अयक्ष्याः क्षय-रहिताश्च स्युः । हे पृथिवी ! अक्षया अरोगाः स्वस्थाः प्रसन्ना वयं निरन्तरं ते कीर्तिवर्धनाः स्याम । य उत्पन्ना ये च उत्पद्यमानाः सर्वे से प्रसवाय ऐश्वर्याय भवन्तु । अस्माकम् आयुः सबलं दीर्घं प्रशस्तं च स्यात् प्रतिदिनं प्रबोधमापन्ना वयं ते वलिहृतः स्याम । व्यवोपहारेया याजकाः पूजकाः सत्कृताः सत्कारकापिणो भवेम ॥ ६२ ॥

टिप्पणी—उपस्थाः—उपतिष्ठते । 'सुपिस्थः' इति कः । अत्र योगविभागात् कर्त्तव्यः । अनमीवाः—अमीवा रोगः, तद्रहिताः । वलिहृतः—वलिपूर्वस्य हरतेः क्विप् । 'अन्येभ्योऽपिदृश्यते' ३·२·१७८ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! प्रकट तथा अप्रकट आपके सभी रस-रसायन हमारे लिए कष्ट-रहित तथा क्षय-रहित, नीरोग रहें जिससे हम प्रशंसनीय दीर्घ-आयु को प्राप्त करें । प्रतिदिन नये-नये प्रबोध से हम सम्यक् समाधि को प्राप्त करें और यजन-पूजन, सत्कार-दान आदि से आपकी गरिमा और यश का विस्तार करते रहें ॥ ६२ ॥

६३—

भूमे मात र्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

सं विदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

सं२०२४ ८१, १२६.

पद-पाठः—भूमे । मातः । नि । धेहि । मा । भद्रया । सु ऽ प्रति स्थितम्

सम ऽ विदाना । दिवा । कवे । श्रियाम् । मा । धेहि । भूत्याम् ॥ ६३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मात र्भूमे ! मां निरन्तरं सुप्रतिष्ठं ज्ञान—गौरवेण पूर्णं निधेहि । हे क्रान्तप्रज्ञे ! अहं त्वदीयोऽस्मि इति मां सदा जानीहि । यां भूत्यां वैभवे श्रियां शोभायां च प्रतिष्ठितं कुरु । अहं श्रीमान् यशस्वी च भवेयम् । इति कुरु ॥ ६३ ॥

टिप्पणी—कवे—कुङ् गतिशोषणयोः, इन् । भूत्याम्–भवनं भूतिः । स्त्रियां क्तन् । सम्पत्तिः । तस्याम् । श्रियाम्—श्रयति हरिम् । क्विप् । दीर्घश्च । तस्याम् ।। ६३ ।।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी मां ! आप सदैव मुझको सप्रतिष्ठित तथा ज्ञान की गरिमा से अलंकृत करती रहो । 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा आप सदा अपने ध्यान रक्खें । मुझे सभी प्रकार के वैभवों से परिपूर्ण और सम्पन्न कीजिये तथा प्रतिष्ठित, प्रशंसित जीवन दीजिये । मैं श्रीमान् भी बनूं और यशस्वी भी ।सम्पन्नता और शोभा से मेरा जीवन भरा-पूर रहे ।। ६३ ।।

———

अशोक कुमार शर्मा एम०ए०

"सप्तम खंड पूर्ण"